उपकार

यू.जी.सी. जूनियर रैसर्च फैलोशिप तथा लैक्चरशिप परीक्षा

संस्कृत

U.G.C.
JUNIOR
RESEARCH FELLOWSHIP
AND
LECTURESHIP
EXAMINATION

उपकार
यू. जी. सी.
जूनियर रिसर्च फैलोशिप तथा लैक्चरशिप परीक्षा
संस्कृत

लेखक :
डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

उपकार प्रकाशन
2/11ए, स्वदेशी बीमा नगर (शाह सिनेमा के सामने), **आगरा–282 002**
फोन : 351238, 351002, 350002; **फैक्स :** (0562) 351251
e-mail : upkar@nde.vsnl.net.in

प्राक्कथन
(Foreword)

अपने गर्भ में असीम व अनन्त रहस्यों तथा विशिष्टताओं को संजोने वाली देववाणी (संस्कृत-भाषा), प्रशासनिक उपेक्षाओं के चलते प्रायः आधुनिक विकासवादी परम्परा से निर्लिप्त रही; अर्थात् इसे व्यावसायिक-शिक्षा का स्वरूप न मिल सका, परन्तु वर्तमान समय में हो रहे तमाम वैज्ञानिक निरीक्षणों व परीक्षणों ने इसे एक ठोस आधार प्रदान किया है.

जहाँ तक प्रतियोगी-परीक्षाओं से संस्कृत भाषा के सम्बन्ध का प्रश्न है, इस दिशा में संस्कृत-भाषा अपनी वैज्ञानिक-पद्धति के कारण बहुत ही लोकप्रिय होती जा रही है. गणित के समान ठोस मूल्यांकन प्रतियोगियों के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बन गया है, परन्तु इन सब विशेषताओं के बाद भी समुचित दिशा-निर्देश के अभाव में प्रतियोगी इसका पूरा-पूरा लाभ उठा सकने से वंचित रह जाते हैं. आज प्रत्येक क्षेत्र में लगभग सभी विषयों से सम्बद्ध अनेकानेक निर्देशिका-पुस्तिकाएं (Guides) तथा सरलीकृत प्रचुर सामग्री उपलब्ध है, परन्तु संस्कृत साहित्य में अब तक संस्कृतज्ञों का ध्यान इस दिशा में नहीं गया.

प्रस्तुत पुस्तक–"संस्कृत–यू.जी.सी. जे. आर. एफ. तथा प्रवक्ता-पात्रता-परीक्षा-निर्देशिका" आज लम्बे समय से चले आ रहे एक अभाव की पूर्ति है. इस पुस्तक की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पूर्वनिर्धारित समस्त क्षेत्रों से सम्बद्ध तथ्यों को न केवल संकलित ही किया गया है, अपितु उन्हें वैज्ञानिक ढंग से सम्पादित व समायोजित भी किया गया है. विशाल संस्कृत-वाङ्मय के ढेर सारे तथ्यों को सारणी (Table) के माध्यम से अत्यन्त सरल ढंग से चन्द पंक्तियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, तथा परीक्षा–प्रारूप-निर्धारण हेतु दिए गए प्रश्नों के उत्तरों को यथास्थान उत्तर-पत्रक (Answer-sheet) पर समुचित रूप से दर्शाया गया है. इस प्रकार यू. जी. सी. परीक्षा के अतिरिक्त अन्य राज्य स्तरीय प्रवक्ता-पात्रता-परीक्षाओं, साक्षात्कारों, प्रशासनिक परीक्षाओं, एम. ए. तथा बी. ए. की परीक्षाओं की दृष्टि से भी यह अधिकाधिक उपयोगी तथा अपने आप में एक पूर्ण पुस्तक के रूप में प्रस्तुत हो, इस बात का यद्यपि पूरा ध्यान दिया गया है, फिर भी किसी प्रकार की न्यूनता परिलक्षित होने पर विद्वदालोचक क्षमा करेंगे तथा उसे सूचित करके उसके संशोधन में अपना सहयोग देने की कृपा करेंगे–

अदृश्यदोषान्मतिविभ्रमाद्वा; यत्किञ्चदूनं लिखितं मया च ।
तत् सर्वमार्यैः परिशोधनीयं; कोपं न कुर्यात् खलु लेखकस्य ॥

जिनकी कृपा तथा सद्प्रेरणाओं से यह कार्य सम्पन्न हो सका है, उन परमपूज्य गुरुवर डॉ. जनार्दन गंगाधर रटाटे जी, पिता श्री प्रताप नारायण पाण्डेय व माता श्रीमती शारदा देवी के श्रीचरणों में प्रस्तुत कृति को समर्पित करते हुए; संस्कृत विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालयस्थ प्रो. श्रीनारायण मिश्र (पूर्व-विभागाध्यक्ष), डॉ. के. पी. सिंह (विभागाध्यक्ष), डॉ. जयशंकरलाल त्रिपाठी, डॉ. रामायण प्रसाद द्विवेदी, डॉ. राधेश्याम चतुर्वेदी, डॉ. श्री

किशोर मिश्र, प्रो. बद्रीनाथ सिंह (दर्शन विभाग), डॉ. अभिमन्यु सिंह (दर्शन विभाग) तथा अग्रज श्री व्यास पाण्डेय के श्री चरणों में साष्टाँग प्रणाम करता हूँ तदन्तर सुहृद्वर श्री कृष्णमुरारि तिवारी, श्री श्यामानन्द मिश्र (U.G.C.J.R.F.), श्री शशिशेखर चतुर्वेदी (U.G.C.J.R.F.) डॉ. देवी प्रकाश त्रिपाठी, श्री कमलेश कुमार पाण्डेय (शोध छात्र; संस्कृत विभाग), श्री सन्तोष कुमार पाण्डेय (शोधछात्र; अंग्रेजी विभाग), डॉ. श्रीकान्त मिश्र, श्री राजेन्द्र कुमार मिश्र (48; मानसरोवर-क्रासिंग; इलाहाबाद) तथा सुरैला–निवासी समस्त सज्जनों के प्रति सविनय आभार प्रकट करते हुए, प्रबन्धक उपकार प्रकाशन को शतसः धन्यवाद देता हूँ.

–डॉ. (देश्य) मिथिलेश पाण्डेय

यू. जी. सी. रिसर्च फैलो

अनुक्रमणिका

परीक्षा-प्रारूप निर्धारण हेतु स्मृत्याधारित हल प्रश्न-पत्र

खण्ड (क) द्वितीय प्रश्न-पत्र

खण्ड (ख) तृतीय प्रश्न-पत्र

---

* कृपया मूल पुस्तक देखने का कष्ट करें.

परीक्षा-प्रारूप निर्धारण हेतु स्मृत्याधारित हल प्रश्न-पत्र

परीक्षार्थियों के लिए निर्देशः–

1. प्रथम पृष्ठ के ऊपर नियत स्थान पर तथा इस पुस्तिका के अन्त में दिए गए उत्तर-पत्रक (Answer-sheet) पर अपना रोल नम्बर लिखिए ।
2. इस प्रश्न-पत्र में 50 बहुविकल्पी (Multiple) प्रश्न हैं ।
3. प्रत्येक प्रश्न के लिए चार वैकल्पिक उत्तर A, B, C, D दिए गए हैं । आपको सही उत्तर के ऊपर चिह्न (×) लगाना है, जैसा कि नीचे दिखाया गया है ।

   उदाहरण – | ~~A~~ | B | C | D |

   यहाँ पर सही उत्तर A है ।
4. प्रश्नों के उत्तर इस पुस्तिका के अन्त में दिए गए उत्तर-पत्रक पर ही अंकित करने हैं । यदि चिह्न (×) उत्तर-पत्रक पर दिए गए खाने के अलावा किसी अन्य स्थान पर अंकित होगा, तो उसका मूल्यांकन नहीं किया जाएगा ।
5. उत्तर-पुस्तिका के अन्त में कच्चा काम (Rough work) करने के लिए उत्तर-पत्रक से पहले दो पृष्ठ दिए गए हैं ।
6. यदि आप अपना नाम या अन्य कोई चिह्न उत्तर-पुस्तिका के किसी भी भाग पर दर्शाते हैं, जिससे कि आपकी पहचान हो सके, तो आप परीक्षा से निष्कासित कर दिए जाएंगे ।
7. आपको परीक्षा के समय की समाप्ति पर उत्तर-पुस्तिका को निरीक्षक महोदय को लौटाना होगा और परीक्षाभवन से बाहर जाते समय कोई भी कागज अपने साथ नहीं ले जाना होगा ।
8. गलत उत्तर के लिए अंक काटे जाएंगे ।
9. अन्दर दिए गए निर्देश ध्यानपूर्वक पढ़ें ।

संस्कृत

द्वितीय प्रश्न-पत्र

Note:—इस प्रश्नपत्र में कुल 50 वहुविकल्पीय प्रश्न हैं. प्रत्येक प्रश्न के दो अंक हैं. सभी प्रश्नों के उत्तर दीजिए. गलत उत्तर के लिए अंक काटे जाएंगे.

1. ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में 'पुरोहित' विशेषण किस देवता से सम्वद्ध है ?
(A) अग्नि (B) सवितृ (C) इन्द्र (D) द्यावापृथिवी

2. 'वृत्र' का नाश किस देवता ने किया ?
(A) अग्नि (B) वरुण (C) इन्द्र (D) विष्णु

3. 'यम-यमी' संवादसूक्त किस वेद में है ?
(A) सामवेद (B) यजुर्वेद (C) ऋग्वेद (D) अथर्ववेद

4. 'शाकल-शाखा' से सम्वद्ध वेद है—
(A) अथर्ववेद (B) सामवेद (C) यजुर्वेद (D) ऋग्वेद

5. 'शतपथ-ब्राह्मण' से सम्वद्ध वेद है—
(A) यजुर्वेद (B) सामवेद (C) अथर्ववेद (D) ऋग्वेद

6. 'यम-नचिकेता' संवाद से सम्वद्ध उपनिषद् है—
(A) केनोपनिषद् (B) कठोपनिषद्
(C) श्वेताश्वतरोपनिषद् (D) बृहदारण्यकोपनिषद्

7. 'असतो मा सद् गयम'–यह उक्ति किस उपनिषद् में है ?
(A) ईश (B) केन (C) वृहदारण्यक (D) कठ

8. 'शुनः शेप' आख्यान किस ब्राह्मण में है ?
(A) तैत्तिरीय (B) शतपथ (C) गोपथ (D) ऐतरेय

9. किस विद्वान् के अनुसार ऋग्वेद का आरम्भ 6000 B.C. है ?
(A) बालगंगाधर तिलक (B) मैक्समूलर
(C) याकोबी (D) बेवर

10. ऋग्वेद की सूक्त-व्यवस्था निम्नलिखित में से किसके अनुसार है ?
(A) प्रपाठक (B) मण्डल (C) लम्बक (D) सर्ग

11. किस वेदाङ्ग को वेद का मुख कहा गया है ?
(A) छन्दस् (B) कल्प (C) व्याकरण (D) शिक्षा

12. 'कारण में कार्य विद्यमान ही है'–यह मत है—
(A) न्याय (B) वैशेषिक (C) मीमांसा (D) साङ्ख्य

13. सांख्यमतानुसार पुरुष और प्रकृति का सम्बन्ध है—
(A) असत्य (B) सत्यासत्य (C) नित्य (D) ज्ञानजन्य

14. सांख्यमतानुसार 'अपवर्ग' होता है—
(A) ज्ञानजन्य (B) विवेकजन्य (C) अभ्यासजन्य (D) वैराग्यजन्य

15. सांख्यमतानुसार प्रमाण हैं—
(A) चत्वारि (B) पञ्च (C) त्रीणि (D) षट

16. 'तत्त्वमसि' को कहते हैं—
(A) अभेद्वाक्य (B) ब्रह्मवाक्य (C) अद्वयवाक्य (D) उपदेशवाक्य

17. अद्वैतमतानुसार 'संसारवंध' का कारण है—
(A) जीवज्ञान (B) ममत्वज्ञान (C) विशेषज्ञानाभाव (D) अज्ञान

18. अद्वैतमतानुसार 'जीव' कहलाता है—
(A) सर्वज्ञ (B) किञ्चिज्ञ (C) आत्मज्ञ (D) त्रिकालज्ञ

19. 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्य से सम्वद्ध है—
(A) अभिधा (B) लक्षणा (C) जहदजहल्लक्षणा (D) व्यञ्जना

20. 'सादृश्य' को स्वतन्त्र पदार्थ मानते हैं—
(A) प्रभाकरमीमांसा (B) भाट्टमीमांसा (C) वेदान्त (D) न्यायवैशेषिक

21. न्यायवैशेषिक मतानुसार करण का लक्षण है—
(A) असाधारणकारणम् (B) फलोत्पादकं
(C) साधकतमम् (D) फलसाधनम्

22. न्याय-वैशेषिक मत में 'पद' का लक्षण है—
(A) शक्तम् (B) सुवन्तम् (C) तिङन्तम् (D) सुप्तिङन्तम्

23. न्यायमतानुसार 'अप्रमा' का लक्षण है—
(A) प्रत्यक्षभिन्नम् ज्ञानम् (B) प्रत्यक्षानुमानभिन्नम् ज्ञानम्
(C) तदभाववति तत्प्रकारकं ज्ञानम् (D) असाक्षिज्ञानम्

24. योगमत में पदार्थों की संख्या है—
(A) 7 (B) 16 (C) 25 (D) 26

25. 'पाणिनि' के अनुसार प्रातिपदिक का लक्षण है—
(A) आद्यन्तौ टकितौ (B) तुल्यास्य प्रयत्नम् (C) नवेति (D) अर्थवदधातुरप्रत्ययः

26. 'पाणिनि' के अनुसार निष्ठा है—
(A) अचोऽन्त्यादि (B) क्तक्तवतू (C) ईदूदेद्विवचनम् (D) नवेति

27. 'पाणिनि' के अनुसार 'कर्म' को परिभाषित करने वाला सूत्र है—
(A) क्रिययायमभिप्रैति सः (B) साधकतमम्

(C) कर्त्तुरीप्सिततमम् (D) आधारः

28. 'नीलोत्पलम्' में समास है—

(A) अव्ययी (B) द्वन्द्व (C) द्विगु (D) कर्मधारय

29. 'पीताम्वरम्' का विग्रह है—

(A) पीतम् च तत् अम्वरम् (B) पीतम् अम्बरम् यस्य स.
(C) पीतम् अम्बरम् येन सः (D) पीतम् अम्बरम् यस्मिन्

30. 'अनुरूप' पद में समास है—

(A) अव्ययीभाव (B) तत्पुरुष (C) द्विगु (D) द्वन्द्व

31. 'त्रिलोकी' पद में समास है—

(A) द्विगु (B) द्वन्द्व (C) अव्ययीभाव (D) बहुव्रीहि

32. द (d) का अघोष रूप है—

(A) त (t) (B) थ (th) (C) ध (dh) (D) क (k)

33. 'उ' एक ऐसा स्वर है, जो है—

(A) केन्द्रीय (B) विवृत (C) पश्च (D) अग्र

34. दो क्रमिक व्यञ्जन-महाप्राण-ध्वनियों में से एक के महाप्राणत्वह्रास का प्रस्ताव किस भाषाविद् ने प्रस्तुत किया ?

(A) ग्रिम (B) ग्रासमैन (C) वर्नर (D) आप्टे

35. 'मराठी' निम्नलिखित में से किस भाषा-परिवार के अन्तर्गत है ?

(A) सामी (B) चीनी
(C) जर्मन (D) आधुनिक भारतीय भाषा

36. 'सानुमती' का सम्बन्ध जिस काव्य से है—

(A) शिशुपालवधम् (B) उत्तररामचरितम्
(C) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (D) किरातार्जुनीयम्

37. 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'–यह काव्यलक्षण किसका है ?

(A) विश्वनाथ कविराज (B) मम्मटाचार्य
(C) आनन्दवर्धनाचार्य (D) धनञ्जयाचार्य

38. 'अभिधा' द्वारा जिस अर्थ का बोध होता है, वह है—

(A) लक्ष्यार्थ (B) तात्पर्यार्थ (C) व्यंग्यार्थ (D) वाच्यार्थ

39. 'करुण-रस' का स्थायिभाव है—

(A) शोक (B) रति (C) शम (D) उत्साह

40. 'मालिती-माधव' रूपक के प्रकार (विधा) का नाम है—

(A) प्रकरण (B) नाटक (C) ईहामृग (D) प्रहसन

41. नाटकगत संधियों की संख्या है—

(A) एक (B) पञ्च (C) नव (D) दश

42. निम्नलिखित में से खण्डकाव्य है—
(A) रघुवंशम् (B) शिशुपालवधम् (C) मेघदूतम् (D) नैषधम्

43. रूपकों की संख्या है—
(A) पञ्च (B) नव (C) दश (D) अष्टादश

44. 'याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा'–इस उक्ति से सम्वद्ध है—
(A) वेणीसंहारम् (B) मेघदूतम् (C) नैषधीयचरितम् (D) किरातार्जुनीयम्

45. वाणभट्ट की आत्मकथा से युक्त रचना है—
(A) बुद्धचरितम् (B) उत्तररामचरितम् (C) दशकुमारचरितम् (D) हर्षचरितम्

46. 'भट्टनारायण' जिस रूपक के रचयिता हैं, उसका नाम है—
(A) मृच्छकटिकम् (B) रत्नावली (C) वेणीसंहारम् (D) मोहराजपराजयम्

47. वह ग्रन्थ–जिसमें राक्षस-पात्र की योजना की गई है—
(A) सामाजिकराक्षसम् (B) मुद्राराक्षसम् (C) उत्तररामचरितम् (D) राक्षसप्रतिज्ञा

48. 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्'–इस उक्ति से सम्वद्ध ग्रन्थ है—
(A) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (B) मृच्छकटिकम्
(C) उत्तररामचरितम् (D) स्वप्नवासवदत्तम्

49. 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः'–से सम्वद्ध रचना है—
(A) मृच्छकटिकम् (B) स्वप्नवासवदत्तम् (C) शिशुपालवधम् (D) इनमें से कोई नहीं

50. 'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः'–इस सूक्ति से युक्त रचना है—
(A) किरातार्जुनीयम् (B) शिशुपालवधम् (C) नैषधीयचरितम् (D) रघुवंशम्

उत्तरमाला

1. (A) 2. (C) 3. (C) 4. (D) 5. (A) 6. (B) 7. (C) 8. (C)
9. (A) 10. (B) 11. (C) 12. (D) 13. (A) 14. (B) 15. (C) 16. (D)
17. (D) 18. (B) 19. (B) 20. (A) 21. (A) 22. (A) 23. (C) 24. (D)
25. (D) 26. (B) 27. (C) 28. (D) 29. (A) 30. (A) 31. (A) 32. (A)
33. (C) 34. (B) 35. (D) 36. (C) 37. (A) 38. (D) 39. (A) 40. (A)
41. (B) 42. (C) 43. (C) 44. (B) 45. (D) 46. (C) 47. (B) 48. (C)
49. (A) 50. (A)

संस्कृत

(स्मृति पर आधारित)

नोट—इस प्रश्नपत्र में कुल 50 वहुविकल्पीय प्रश्न हैं । प्रत्येक प्रश्न के दो अंक हैं । सभी प्रश्नों के उत्तर दीजिए । गलत उत्तर के लिए अङ्क काटे जाएंगे ।

1. ऋग्वेद के प्रथम-मण्डल के प्रथम-सूक्त का देवता है–
(A) इन्द्र (B) विष्णु (C) वृहस्पति (D) अग्नि

2. ऋग्वेद में कुल कितने मण्डल हैं ?
(A) 1017 (B) 64 (C) 10 (D) 8

3. 'कविक्रतुः' विशेषण से सम्बद्ध देवता है–
(A) वृहस्पति (B) अग्नि (C) वरुण (D) इन्द्र

4. 'काण्व-शाखा' से सम्बद्ध वेद है–
(A) शुक्लयजुर्वेद (B) कृष्णयजुर्वेद (C) अथर्ववेद (D) सामवेद

5. ''त्रिविक्रम' विशेषण से सम्बद्ध देवता है–
(A) अग्नि (B) विष्णु (B) इन्द्र (D) अश्विनौ

6. 'याज्ञवल्क्य-जनक-संवाद' से सम्बद्ध उपनिषद् है–
(A) छान्दोग्योपनिषद् (B) केनोपनिषद्
(C) बृहदारण्यकोपनिषद् (D) प्रश्नोपनिषद्

7. 'ऐतरेय-ब्राह्मण' से सम्वद्ध वेद है–
(A) शुक्लयजुर्वेद (B) कृष्णयजुर्वेद (C) सामवेद (D) ऋग्वेद

8. 'ताण्ड्य-ब्राह्मण' से सम्बद्ध वेद है–
(A) सामवेद (B) अथर्ववेद (C) यजुर्वेद (D) ऋग्वेद

9. 'ऊर्जोनपात्' किस वैदिक देवता का विशेषण है–
(A) इन्द्र (B) अग्नि (C) रुद्र (D) सोम

10. ऋग्वैदिक यम-यमी सम्वाद का क्रमाङ्क है–
(A) 10/95 (B) 10/108 (C) 3/33 (D) 10/10

11. सामवेद के उत्तरार्चिक में कुल कितने प्रपाठक हैं–
(A) 9 (B) 5 (C) 6 (D) 13

12. किस वेद पर सर्वाधिक 'धर्मसूत्र' ग्रन्थ पाए जाते हैं–
(A) ऋग्वेद (B) यजुर्वेद (C) सामवेद (D) अथर्ववेद

13. न्याय-वैशेषिक मत में 'व्याप्तिविशिष्ट-पक्षताज्ञान' है–
(A) व्याप्ति (B) साध्य (C) परामर्श (D) अनुमान

14. वेदान्तमत में 'अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा' है–
(A) ब्रह्म (B) जीव (C) विकार (D) विवर्त

15. 'मन' को आत्मा स्वीकार करते हैं–
(A) बौद्ध (B) चार्वाक (C) जैन (D) नास्तिक

16. 'ब्रह्म' का स्वरूप है–
(A) सत्यासत्य (B) मिथ्याज्ञान (C) विज्ञान (D) मायाच्छादित

17. अद्वैत-वेदान्त के अनुसार–ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध–
(A) भेद (B) अभेद (C) भेदाभेद (D) अनिर्वचनीय

18. 'ब्रह्म' का 'विवर्त' है–
(A) अज्ञान (B) जगत् (C) माया (D) अध्यास

19. 'पक्षता' की परिभाषा है–
(A) सिषाधयिषा-विरहविशिष्ट सिद्ध्यभावः । (B) पक्षतावच्छेदकस्याभावः ।
(C) विरुद्धयोः परामर्शे हेतोः सत्प्रतिपक्षता । (D) सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः ।

20. साङ्ख्यमत में पुरुष का स्वरूप है–
(A) व्यक्त (B) चेतन (C) कर्ता (D) महान्

21. सांख्यसम्मत प्रमाणों की संख्या है–
(A) 25 (B) 6 (C) 4 (D) 3

22. सांख्यमत में 'महत्' से उद्भूत तत्त्व है–
(A) प्रकृति (B) विकृति (C) अहंकार (D) पञ्चतन्मात्रा

23. न्याय-वैशेषिक मत में 'प्रध्वंसाभाव' का लक्षण है–
(A) अनादिः सान्तः (B) सादिरनन्तः
(C) त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्न (D) तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न

24. योग-मत में वृत्तियों की संख्या है–
(A) 3 (B) 7 (C) अनेक (D) 5

25. 'निर्जलम्' पद में समास है–
(A) बहुब्रीहि (B) तत्पुरुष (C) कर्मधारय (D) अव्ययीभाव

26. 'करण' की परिभाषा है–
(A) कर्तृकरणयोः (B) कार्यं करोति (C) साधकतमम् (D) कर्मणा यमभिप्रैति

27. 'अलोन्त्यात्पूर्वः' से किस संज्ञा का विधान होता है ?
(A) गति (B) टि (C) घि (D) उपधा

28. 'द्वियमुनम्' पद में कौनसा समास है ?
(A) द्विगु (B) अव्ययीभाव (C) द्वन्द्व (D) कर्मधारय

29. 'वागर्थाविव' पद में कौनसा समास है ?
(A) द्वन्द्व (B) कर्मधारय (C) केवल (D) बहुब्रीहि

30. 'दिवस्तदर्थस्य' सूत्र से किस विभक्ति का निर्देश किया गया है ?
(A) द्वितीया (B) तृतीया (C) पञ्चमी (D) षष्ठी

31. 'ज्' का घोष रूप है–
(A) स् (B) श् (C) ष् (D) थ्

32. 'इ' स्वर है–
(A) केन्द्रीय (B) विवृत (C) पश्च (D) अग्र

33. 'ग्रिम-नियम' का संशोधन किसने किया था ?
(A) वर्नर (B) ग्रासमैन
(C) याकोवी (D) प्रो. पाट व फोर्तनातोव

34. 'मराठी' किस भाषापरिवार से सम्बन्ध रखती है ?
(A) द्रविण (B) महाराष्ट्र (C) भारोपीय (D) दक्षिणपूर्व एशियाई

35. 'थ' का उच्चारण स्थान है–
(A) तालु (B) मूर्द्धा (C) कण्ठ (D) दन्त

36. 'ऊ' स्वर है–
(A) पश्चसंवृत (B) अग्र-विवृत (C) अग्र-अर्धसंवृत (D) पश्च-अर्धविवृत

37. 'साहित्यदर्पण' के अनुसार 'महाकाव्य' में न्यूनतम सर्ग होने चाहिए–
(A) 5 (B) 7 (C) 21 (D) 8

38. 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' से सम्बद्ध महाकाव्य है–
(A) शिशुपालवधम् (B) उत्तररामचरितम् (C) किरातार्जुनीयम् (D) नैषधीयचरितम्

39. 'भतुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः' से सम्बद्ध रचना है–
(A) शाकुन्तलम् (B) वासवदत्तम् (C) उत्तररामचरितम् (D) किरातार्जुनीयम्

40. 'चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः' इस सूक्ति से सम्बद्ध रचना है–
(A) वेणीसंहारम् (B) स्वप्नवासवदत्तम् (C) मेघदूतम् (D) मोहराजपराजयम्

41. एक पात्र प्रयोजित रूपक है–
(A) अङ्क (B) ईहामृग (C) भाण (D) डिम

42. सोलह नायकों से युक्त रूपक है–
(A) डिम (B) वीथी (C) समवकार (D) ईहामृग

43. 'स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम् अमानुषीपु' इस उक्ति से युक्त नाटक है–
(A) उत्तररामचरितम् (B) अभिज्ञानशाकुन्तलम्
(C) स्वप्नवासवदत्तम् (D) वेणीसंहारम्

44. आचार्य वामन की काव्यपरिभाषा है–
(A) काव्यस्यात्मा ध्वनिः (B) शब्दार्थौ सहितं काव्यम्
(C) रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः (D) रीतिरात्मा काव्यस्य

45. यह प्रहसन है–
(A) मत्तविलास (B) उरुभङ्ग (C) मोहराजपराजय (D) वेणीसंहार

46. 'मुरला' पाई जाती है–
(A) हर्षचरितम् (B) उत्तररामचरितम् (C) दशकुमारचरितम् (D) विक्रमाङ्कदेवचरितम्

47. 'विदूषक' रहित रचना है–
(A) विक्रमोर्वशीयम् (B) मालविकाग्निमित्रम्
(C) महावीरचरितम् (D) इनमें से कोई नहीं

48. 'वृहत्कथा' की भाषा है–
(A) संस्कृत (B) प्राकृत (C) राक्षसी (D) पैशाची

49. 'दुःखं न्यासस्य रक्षणम्' इस सूक्ति से युक्त रचना है–
(A) शिशुपालवधम् (B) हर्षचरितम् (C) स्वप्नवासवदत्तम् (B) मालविकाग्निमित्रम्

50. कालिदास के अग्निमित्र की द्वितीय पत्नी है–
(A) मदनिका (B) मालविका (C) धारिणी (D) इरावती

उत्तरमाला

1. (D) 2. (C) 3. (B) 4. (A) 5. (B) 6. (C) 7. (D) 8. (A)
9. (B) 10. (D) 11. (A) 12. (B) 13. (C) 14. (D) 15. (B) 16. (C)
17. (B) 18. (B) 19. (A) 20. (B) 21. (D) 22. (C) 23. (B) 24. (D)
25. (D) 26. (C) 27. (D) 28. (B) 29. (C) 30. (D) 31. (B) 32. (D)
33. (B) 34. (C) 35. (D) 36. (A) 37. (D) 38. (C) 39. (A) 40. (B)
41. (C) 42. (A) 43. (B) 44. (D) 45. (A) 46. (B) 47. (D) 48. (D)
49. (C) 50. (D)

संस्कृत

द्वितीय प्रश्न-पत्र

Note:—इस प्रश्नपत्र में कुल 50 बहुविकल्पीय प्रश्न हैं. प्रत्येक प्रश्न के दो अंक हैं. सभी प्रश्नों के उत्तर दीजिए.

1. वेद शब्द से अभिप्रेत है—
   (A) दर्शन (B) ऋषिमत (C) ज्ञान (D) सिद्धान्त
2. विष्णु का परमपद है—
   (A) आकाश (B) हृदय (C) अन्तरिक्ष (D) भूलोक
3. ऋग्वेद के मण्डलों की संख्या है—
   (A) पन्द्रह (B) आठ (C) दश (D) सात
4. ज्ञानकाण्ड इनका विषय है—
   (A) शुक्लयजुर्वेद (B) प्रातिशाख्य (C) उपनिषद् (D) ब्राह्मणग्रन्थ
5. नारद-सनत्कुमार-संवाद आता है—
   (A) केनोपनिषद् (B) तैत्तिरीयोपनिषद् (C) छान्दोग्योपनिषद् (D) प्रश्नोपनिषद्
6. बृहदारण्यकोपनिषद् सम्बद्ध है—
   (A) ऋग्वेद (B) शुक्लयजुर्वेद (C) अथर्ववेद (D) सामवेद
7. पुरुष-सूक्त आता है—
   (A) शतपथब्राह्मण (B) सामवेद (C) ऋग्वेद (D) अथर्ववेद
8. 'वैदिक देवशास्त्र' के लेखक कौन हैं ?
   (A) मैक्समूलर (B) बेबर (C) मैकडोनल (D) कीथ
9. उत्तरध्रुव को वेदों का रचना स्थान माना है—
   (A) मैकडोनल ने (B) मैक्समूलर ने
   (C) बेबर ने (D) बाल गंगाधर तिलक ने
10. सर्वप्रथम वेदों का निर्वचन किया है—
    (A) वेदव्यास ने (B) शाण्डिल्य ने (C) यास्क ने (D) श्वेतकेतु ने
11. 'शब्द-प्रक्रिया-शास्त्र' का मूल कौनसा वेदाङ्ग है ?
    (A) शिक्षा (B) कल्प (C) व्याकरण (D) निरुक्त
12. 'प्राणाग्निहोत्रविद्या' किस उपनिषद् में है ?
    (A) ईशावास्योपनिषद् (B) मुण्डकोपनिषद् (C) प्रश्नोपनिषद् (D) छान्दोग्योपनिषद्

13. सांख्य-मत में यथार्थस्वभाव में पुरुष—
(A) सदैव सक्रिय (B) सृष्टिकाल सक्रिय
(C) सदैव निष्क्रिय (D) प्रलेय एवं निष्क्रिय

14. सांख्य-मत में स्वीकृत प्रमाणों की संख्या है—
(A) दो (B) तीन (C) चार (D) पाँच

15. प्रकृति का अस्तित्वबोधक प्रमाण है—
(A) प्रत्यक्ष (B) अनुमान (C) उपमान (D) अर्थापत्ति

16. सांख्यमतानुसार मोक्ष का साक्षात् कारण—
(A) ब्रह्मज्ञान (B) प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञान
(C) अष्टांगयोग (D) ईश्वरज्ञान

17. अद्वैतवेदान्त-मत में अज्ञान का स्वरूप कैसा है ?
(A) सत् (B) असत् (C) सदसत् (D) सदअसद्विलक्षण

18. अद्वैतवेदान्त के मतानुसार जगत् का स्वरूप है—
(A) माया-विवर्त (B) माया-परिणाम (C) ब्रह्मपरिणाम (D) जीवपरिणाम

19. भामती के रचयिता हैं—
(A) वाचस्पतिमिश्र (B) पद्मपाद (C) सदानन्द (D) शङ्कर

20. अद्वैतवेदान्तानुसार ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध—
(A) भेद (B) अभेद (C) भेदाभेद (D) अनिर्वचनीय

21. अनुमिति का करण है—
(A) हेतुज्ञान (B) पक्षधर्मताज्ञान (C) सपक्षधर्मताज्ञान (D) व्याप्तिज्ञान

22. कार्य का अन्तिमकारण है—
(A) अवान्तर व्यापार (B) करण (C) कर्ता (D) साधारण कारण

23. घटाभाव और भूतल का सम्बन्ध—
(A) संयोग (B) समवाय (C) स्वरूप (D) विशेषण-विशेष्य

24. न्यायमतानुसार जीवात्मा का परिमाण—
(A) देहपरिमाण (B) विभुपरिमाण (C) अणुपरिमाण (D) मध्यमपरिमाण

25. 'पाणिनिं' के अनुसार 'उपधा' का लक्षण है—
(A) क्तक्तवतू (B) अलोन्त्यात् पूर्व (C) यूस्त्र्याख्यौ (D) सुप्तिङन्तम्

26. 'पाणिनि' के अनुसार 'आ', 'ऐ', 'औ' की संज्ञा है—
(A) गुण (B) टि (C) गति (D) वृद्धि

27. पाणिनि के अनुसार 'कर्म' का लक्षण है—
(A) ध्रुवमपाये (B) कर्तुरीप्सिततमम् (C) आधारः (D) स्वतन्त्रः

28. 'चोरभयम्' पद में समास है—
(A) तत्पुरुष (B) बहुव्रीहि (C) कर्मधारय (D) द्वन्द्व

29. 'हरित्रातः' का विग्रहवाक्य है—

(A) हरयेत्रातः (B) हरिणात्रातः (C) हरौत्रातः (D) हरित्रातः

30. 'समया' के योग में कौनसी विभक्ति होगी ?

(A) षष्ठी (B) पञ्चमी (C) द्वितीया (D) चतुर्थी

31. 'द्वादश' पद में समास है—

(A) तत्पुरुष (B) कर्मधारय (C) बहुव्रीहि (D) द्वन्द्व

32. 'द्विमूर्द्धः' पद में समास है—

(A) अव्ययीभाव (B) द्विगु (C) तत्पुरुष (D) बहुव्रीहि

33. 'वैदिक भाषा', इस भाषा से सबसे निकट है—

(A) हिट्टाइट (B) इन्डोयूरोपियन (C) अवेस्तन (D) पर्शियन

34. 'भारोपीय-भाषा' के मुख्य विभाग हैं—

(A) दो (B) तीन (C) चार (D) पाँच

35. भारोपीय-भाषा से संस्कृत चवर्ग की उत्पत्ति वताने वाला—

(A) ग्रिम (Grimm) (B) कोलिट्ज (Colitz)

(C) वर्नर (Verner) (D) ग्रासमन (Grassman)

36. दिगम्बर जैन आगमों की मुख्य भाषा है—

(A) शौरसेनी (B) महाराष्ट्री (C) संस्कृत (D) वैदिकभाषा

37. 'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्' सूक्ति सम्बद्ध ग्रंथ है—

(A) रघुवंशम् (B) किरातार्जुनीयम् (C) शिशुपालवधम् (D) बुद्धचरितम्

38. शाल्मलिवृक्ष का वर्णन इसमें पाया जाता है—

(A) कादम्बरी (B) हर्षचरित (C) दशकुमारचरित (D) वासवदत्ता

39. 'वसन्तक' किसमें पाया जाता है ?

(A) रत्नावली (B) मृच्छकटिकम्

(C) उत्तररामचरितम् (D) अभिज्ञानशाकुन्तलम्

40. "अहो उदग्ररमणीया पृथिवी" यह वाक्य इस नाटक में है—

(A) मुद्राराक्षसम् (B) अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(C) वेणीसंहारम् (D) मालविकाग्निमित्रम्

41. अजविलाप, इसमें है—

(A) स्वप्नवासवदत्तम् (B) नैषधीयचरितम् (C) रघुवंशम् (D) कुमारसम्भवम्

42. "ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति" इस सूक्ति से युक्त रचना है—

(A) उत्तररामचरितम् (B) कुन्दमाला (C) मुद्राराक्षस (D) मालतीमाधव

43. 'शकार' इस रचना में है—

(A) किरातार्जुनीयम् (B) मृच्छकटिकम् (C) वेणीसंहारम् (D) मालतीमाधवम्

44. विश्वनाथ के अनुसार काव्यलक्षण है—
(A) शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्
(B) रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्
(C) वाक्यं रसात्मकं काव्यम्
(D) शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली

45. साक्षात्सांकेतित अर्थ की बोधिका है—
(A) अभिधा (B) लक्षणा (C) तात्पर्या (D) व्यञ्जना

46. रति स्थायिभाव वाला रस है—
(A) करुण (B) शृंगार (C) अद्भुत (D) वीर

47. यह 'प्रहसन' है—
(A) प्रियदर्शिका
(B) प्रतिज्ञायौगन्धरायण
(C) मत्तविलास
(D) मृच्छकटिक

48. रूपक कितने प्रकार के हैं ?
(A) तीन (B) दो (C) पाँच (D) दस

49. इनमें से कौनसा महाकाव्य नहीं है ?
(A) रघुवंशम् (B) शिशुपालवधम् (C) हर्षचरितम् (D) नैषधीयचरितम्

50. नाटक-सन्धियों में प्रथम है—
(A) निर्वहण (B) प्रतिमुख (C) गर्भ (D) मुख

उत्तरमाला

1. (C) 2. (C) 3. (C) 4. (C) 5. (C) 6. (B) 7. (C) 8. (C)
9. (D) 10. (C) 11. (A) 12. (D) 13. (C) 14. (B) 15. (B) 16. (B)
17. (D) 18. (C) 19. (A) 20. (B) 21. (B) 22. (A) 23. (D) 24. (B)
25. (B) 26. (D) 27. (B) 28. (A) 29. (B) 30. (C) 31. (D) 32. (D)
33. (C) 34. (A) 35. (B) 36. (A) 37. (B) 38. (A) 39. (B) 40. (A)
41. (C) 42. (A) 43. (B) 44. (C) 45. (A) 46. (B) 47. (C) 48. (D)
49. (C) 50. (D)

संस्कृत

खण्ड (क)
द्वितीय प्रश्न-पत्र

1 वैदिक साहित्य

1.1. देवता

वैदिक आर्यों ने विचित्र प्राकृतिक लीलाओं को सुगमतापूर्वक समझने, समझाने के लिए भिन्न-भिन्न देवताओं की कल्पना की है । इस अखिल ब्रह्माण्ड को विभिन्न देवताओं के क्रीड़ाङ्गन के रूप में देखा गया है । ऐसी मान्यता है कि इन्हीं प्रकृति-नियामक देवताओं के अनुग्रह से ही जगत् का समस्त कार्य संचालित होता है, तथा विभिन्न प्राकृतिक घटनायें उन्हीं के कारण सम्पन्न होती हैं । पाश्चात्य विचारकों के मत में–वैदिक-देवता, भौतिक जगत् के प्राकृतिक दृश्यों के अधिष्ठाता हैं । भौतिक घटनाओं की उपपत्ति के लिए उन्हें देवता मान लिया गया है । वैदिक देवताओं के विषय में उल्लेखनीय है कि जिस देवता की स्तुति मन्त्रों के द्वारा की जाती है, वही देवता स्तुतिकाल में सबसे बड़ा, व्यापक व जगत् का स्रष्टा तथा सर्वाधिक लोकोपकारक माना जाता है ।

जहाँ तक देवताओं की संख्या का प्रश्न है, ऋग्वेद 1/139/119. के अनुसार कुल 33 देवता हैं; जिनमें से 11 पृथ्वी में, 11 अन्तरिक्ष में तथा 11 द्युलोक में हैं । शतपथब्राह्मण 11/6/3/5/. के विवरणानुसार 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य, 1 इन्द्र तथा 1 प्रजापति, कुल 33 देवता हैं, यद्यपि ऋग्वेद 11/53/6; शतपथब्राह्मण 11/6/3/4 तथा शाङ्खायन श्रौतसूत्र 8/21/14. में देवताओं की संख्या 3339 निर्दिष्ट है । यहाँ ध्यान देने योग्य तथ्य है कि पुराणों में जो 33 कोटि देवता का उल्लेख मिलता है; वहाँ 'कोटि' शब्द प्रकार-वाचक है, संख्या-वाचक नहीं ।

1.1.1. अग्नि

वैदिक साहित्य में पृथ्वी-स्थानीय देवताओं में अग्नि का सर्वप्रमुख स्थान है । ऋग्वेद में लगभग 200 सम्पूर्ण सूक्तों में अग्नि का स्तवन किया गया है । याज्ञिक प्रधानता के कारण प्रायः सभी मण्डलों के प्रारम्भिक सूक्त अग्नि को सम्बोधित किये गये हैं ।

मानवीकरण के रूप में यज्ञ से सम्बद्ध होने के कारण अग्नि का अङ्ग-प्रत्यङ्ग पूर्णतः घृतमय माना जाता है । ये घृतपृष्ठ, घृतप्रतीक, घृतकेश, हरितकेश, ज्वाललोम इत्यादि नामों से जाने जाते हैं । इनका दाँत स्वर्णिम अथवा प्रकाशयुक्त है । घृत, अग्नि का नेत्र है–"धृत मे चक्षुः" इनके एक ज्वालामय मस्तक अथवा तीन अथवा सहस्र मस्तक हैं । यज्ञ से सम्बन्धित होने के कारण समिध एवं घृत ही अग्नि का भोजन है । पिघलाया हुआ घृत इनका प्रिय पेय है । दिन में तीन बार इन्हें भोजन प्रदान किया जाता है–"**त्रिस्ते अन्नं कृण्वत् सस्मिन्नहन् ।**"

अग्नि का मुख्य गुण प्रकाशमय होना है । इनकी ज्वालाएँ विद्युत तथा किरणों के सदृश हैं । 'अग्नि' हिरण्यरूप हैं, तथा सूर्य के सदृश प्रकाशित होते हैं । इनका पथ कृष्णवर्ण है । कई बार इनके लिए धूमकेतु विशेषण प्रयुक्त हुआ है । ये वनों पर आक्रमण करते हैं तथा उसे जला डालते हैं । इनका रथ प्रकाशमय, चमकीला तथा स्वर्णिम है । यह रथ दो मनोजवा एवं मनोज्ञ, घृतपृष्ठ, लोहित, वायुप्रेरित अश्वों द्वारा खींचा जाता है ।

वैदिक मन्त्रों में अग्नि को प्रायः होता, ऋत्विक् एवं पुरोहित कहा गया है । यज्ञ सम्पादित करते समय अग्नि का आह्वान किया जाता है, क्योंकि अग्नि ही दूत की भाँति देवताओं को यज्ञ-स्थल पर ले आते हैं, तथा हवि को उनके पास तक पहुँचाते हैं । अग्नि ही एकमात्र ऐसे देवता हैं, जिनका मानव-मात्र के साथ घनिष्ठतम सम्वन्ध है । प्रत्येक गृह में अग्नि का निवास होने के कारण इनको गृहपति, **विश्पति** एवं दमूनस् इत्यादि नामों से जाना जाता है । इनके लिए 'असुर' उपाधि का भी प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ होता है–असु या प्राणशक्ति देने वाला है । ये अपने उपासकों का उसी प्रकार कल्याण करते हैं, जैसे–पिता-पुत्र का. "सः नः पितेव सूनवेग्ने ......" ऋक्. 1/1/9.

अग्नि की उत्पत्ति के सम्वन्ध में वहुत मतभेद पाया जाता है । ऋग्वेद पुरुषसूक्त के अनुसार - अग्नि की उत्पत्ति, विराट-पुरुष के मुख से हुई है–"मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च" वैदिक ऋषि अग्नि के पिता को द्यौस् की संज्ञा देते हैं–"यदेनं द्यौर्जनयत् सुरेताः ।" कहीं पर इन्हें त्वष्टा का पुत्र तो कहीं द्यावा-पृथिवी का पुत्र कहा गया है । ऋग्वैदिक विवरण के अनुसार–इन्द्र ने दो पत्थरों के बीच अग्नि को उत्पन्न किया–"यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान्" इसके अतिरिक्त अग्नि का जन्म दो अरणियों के घर्षण से किंवा दश युवतियों से हुआ माना जाता है ।

1.1.2. सवितृ.

'सवितृ' द्युस्थानीय देवता हैं । ऋग्वेद के 11 सम्पूर्ण तथा अंशतः अनेक अन्य सूक्तों में सवितृ का गुणगान किया गया है । सवितृदेव मुख्यरूप से स्वर्णिम देवता हैं । इसीलिए इन्हें–स्वर्णनेत्र, स्वर्णहस्त, स्वर्णपाद एवं स्वर्णजिह्व की संज्ञा दी गई है । एक स्थान पर इन्हें लौह-जवंड़ों वाला भी कहा गया है । इनके केश, पीले तथा सुनहले हैं । ये विविध रूपवाले स्वर्णिम रथ पर चढ़कर चलते हैं, जिसे सफेद पैरवाले दो घोड़े खींचते हैं ।

'सवितृ' मुख्य रूप से सवके प्रकाशक देवता हैं । ये पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक सवको प्रकाशित करते हैं । अपने स्वर्णिम रथ पर चढ़कर ये नीचे तथा ऊपर के मार्गों पर विचरण किया करते हैं । इनके प्राचीन मार्ग, धूलरहित तथा अन्तरिक्ष में स्थित हैं । इन्हें यदा-कदा 'असुर' (प्राणशक्ति सम्पन्न) भी कहा गया है । इनके व्रत नियत हैं । सभी देवता इनका अनुसरण करते हैं । कोई भी प्राणी इनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता । इस प्रकार ये सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हुए तथा देवताओं को अमरत्व प्रदान करते हुए जङ्गम तथा स्थावर सभी के शासक हैं । इन्हें एक प्रेरक देवता के रूप में देखा गया है । ये उदित होते हुए सूर्य की शक्ति के प्रतिरूप हैं । सविता का प्रत्येक कार्य प्रसव से सम्बन्धित है । प्रासवीत्, आसुवत्, सवे, साविषत् आदि क्रियायें मुख्य रूप से सविता के लिए ही प्रयुक्त हुई हैं । गायत्री मन्त्र का सम्बन्ध सीधे सवितृ देव से ही है–यथा "ॐ भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुवरिण्यं । भर्गोदेवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्" ॥ ऋग्वेद ॥ 3//62//10//

1.1.3. विष्णु.

विष्णु एक द्युस्थानीय देवता हैं । सूक्तों की सङ्ख्या की दृष्टि से ऋग्वेद में विष्णु का स्थान गौण है । मात्र 5 सूक्तों में इनकी स्तुति की गई है, परन्तु महत्ता की दृष्टि से इन्हें वहुत उच्च-पद प्राप्त है । मानवाकृति के रूप में विष्णु के तीन कदमों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है–"विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः", "यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु", "उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था"

"सधस्थमेको त्रिभिरित्पदेभिः" इत्यादि । अपने तीन कदमों के द्वारा इन्होंने सम्पूर्ण लोकों को नापा था । पक्षी भी उड़कर इनके लोक में नहीं पहुँच सकते, जहाँ पवित्र आत्मा वाले लोग जाने की इच्छा करते हैं । यहीं पर मधु का एक सरोवर है । यही विष्णु का परमधाम है; जो नीचे की तरफ हमेशा प्रकाशित रहता है । यहीं पर सहस्र सींगों वाली गायें हैं–"ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै। यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः ।।" विष्णु के इन्हीं तीनों कदमों में सम्पूर्ण प्राणी निवास करते हैं ।

व्यापनशील होने से विष्णु सूर्य के क्रियाशील रूप के प्रतिनिधि हैं । वेदों में विष्णु को इन्द्र का मित्र तथा पुराणों में उपेन्द्र भी कहा गया है । पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड इनके वाहन हैं । विष्णु के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये गर्भ के रक्षक हैं । गर्भाधान के निमित्त अन्य देवताओं के साथ विष्णु की भी स्तुति की जाती है । ये परोपकारी, प्रचुरधन का दान करने वाले, उदार, सबके रक्षक तथा विश्व का भरण-पोषण करने वाले हैं । शाकपूणि के मत में–सूर्य के तीनों लोक-पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक ही विष्णु के तीनों कदम हैं; जबकि और्णवाभ के मत में विष्णु के तीनों कदम ही सूर्य के उदय, मध्याह्न तथा अस्त के द्योतक हैं ।

1.1.4. इन्द्र.

अन्तरिक्ष-स्थानीय 'इन्द्र' को वैदिक देवताओं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है । ऋग्वेद के 250 सम्पूर्ण सूक्तों में तथा अंशतः अन्यान्य देवताओं के साथ अनेक सूक्तों में स्तुति की गई है । मानवाकृति के रूप में इन्द्र के हाथ, सिर, पैर इत्यादि अंगों का समुल्लेख किया गया है । उनका पेट, सोम से भरे हुए सरोवर के समान है । इनके होठों के अत्यन्त सुन्दर होने के कारण इन्हें 'सुशिप्र' कहा गया है । इन्द्र का प्रधान शस्त्र 'वज्र' है । इसी वज्र को धारण करने के कारण इन्हें 'वज्रिन्' या 'वज्रवाहु' इत्यादि कई नामों से पुकारा गया है । इनके इस वज्र का निर्माण त्वष्टा ने किया था । इन्द्र जिस मनोगामी रथ पर बैठते हैं, वह दो हरितवर्ण के अश्वों द्वारा खींचा जाता है ।

'इन्द्र' का सर्वश्रेष्ठ पेय 'सोम' है । इसीलिए इन्हें 'सोमपा' की संज्ञा दी गई है–"यो सोमपा निचितो वज्रबाहुः ।" सोमपान करने के पश्चात् ही ये बड़े से बड़ा कार्य सम्पन्न करते हैं । वृत्रासुर युद्ध के समय इन्होंने सोम से भरे हुए तीन सरोवरों को खाली कर दिया ।

ऋग्वेद में इन्द्र की उत्पत्ति का उल्लेख है कि उन्होंने अपनी माँ को मारकर अस्वाभाविक रूप से उनके बगल से उत्पन्न होना चाहा । उत्पन्न होते ही इन्होंने अपने पराक्रम का परिचय दिया, जिससे आकाश और पृथ्वी काँपने लगे–"यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यषेताम् ।" कहीं-कहीं इन्द्र की उत्पत्ति असुरों के विनाश हेतु देवताओं के द्वारा बताई गई है; यद्यपि पुरुषसूक्त, इन्द्र की उत्पत्ति विराट पुरुष के मुख से स्वीकार करता है–"मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च" ।

मरुत् का मित्र होने के कारण इन्द्र को मरुत्सखा, मरुत्थान आदि नामों से सम्बोधित किया गया है । इन्द्र ने ही अपने पराक्रम से, काँपती हुई पृथिवी को दृढ़ किया तथा उड़ने वाले पर्वतों को स्थिर किया । इनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य वृत्र वध है । इसके अतिरिक्त इन्होंने आकाश तथा पृथ्वी का विस्तार करते हुए अनेक दस्युओं समेत पणियों का बध किया तथा बल नामक असुर का बध करके गायों को उसकी गुफा से मुक्त किया । घोड़े, गाय, ग्राम, रथ, दिशाएँ सभी इन्द्र की आज्ञा में हैं । इन्द्र ने ही सूर्य तथा उषा को उत्पन्न किया–"यो सूर्य उषसं जजान।" तथा दो पत्थरों के मध्य अग्नि को उत्पन्न किया । ऐसे महान्पराक्रमी इन्द्र को युद्धक्षेत्र में दोनों ही पक्षों की सेनायें अपनी-अपनी सहायता हेतु बुलाती हैं । इनकी सहायता के बिना कोई भी व्यक्ति विजय नहीं प्राप्त कर सकता । इतना ही नहीं इन्द्र अचल पदार्थों को भी चल बना देता है । इस प्रकार इन्द्र सम्पूर्ण विश्व का प्रतिरूप है । इस इन्द्र ने ही पर्वतों पर निवास करने वाले 'शम्बर' नामक असुर को 40 वर्षों पर्यन्त ढूँढ़ कर मार डाला तथा द्युलोक में चढ़ते हुए रोहिणी नामक असुर को झटका देकर नीचे गिरा दिया । ऐसे इन्द्र के लिए जो सोम पीसता है, पुरोडाश पकाता है, परिश्रम करता है, तथा उसकी स्तुति किंवा प्रशंसा करता है, उसको वह बारम्बार धन प्रदान करता है ।

1.1.5. रुद्र.

'रुद्र' अन्तरिक्ष-स्थानीय देवता हैं । सम्पूर्ण ऋग्वेद में रुद्र से सम्बद्ध तीन ही सूक्त उपलब्ध होते हैं–1/114//;2/33//; तथा 7/46//. इसके अतिरिक्त अन्य देवताओं के साथ इनका नाम लगभग 50 बार आया है । मानवाकृति के रूप में रुद्र के मुख, अधर, केश, हाथ, पैर तथा वस्त्र इत्यादि का उल्लेख मिलता है । इनका वर्ण भूरा है, तथा होंठ वहुत सुन्दर हैं, इसीलिए इनके लिए ऋग्वेद में क्रमशः वभ्रु एवं सुशिप्र विशेषण भी प्रयुक्त हुआ है । वाजसनेयी संहिता में इन्हें रक्तवर्णी तथा नाना प्रकार के रूपों को धारण करने वाले तथा सूर्य की भाँति प्रकाशमान वतलाया गया है । ये चर्मवस्त्र को धारण करते हैं, तथा पर्वतों पर निवास करते हैं । शस्त्र के रूप में ये धनुष तथा वाण धारण करते हैं–"अहं रुद्राय धनुरातनोमि" साथ ही साथ इन्हें वज्र धारण करने वाला भी कहा गया है । इनका कृपाण विद्युत का वना हुआ है, जो वायु से भी अधिक तीव्र गति वाला है । कहीं-कहीं इन्हें चक्र धारण करने वाला भी वताया गया है ।

ऋग्वेद, रुद्र के विनाशकारी एवं कल्याणकारी द्विविध स्वरूपों का चित्रण प्रस्तुत करता है । ये एक भयानक पशु के समान विध्वंसक तथा शक्तिशाली वृषभ् हैं । इनके लिए असुर (प्राणशक्ति सम्पन्न) विशेषण का प्रयोग हुआ है । अनेक स्थानों पर इन्हें मरुतों का पिता कहा गया है, जब ये प्रसन्न होते हैं, तो अपने लोकोपकारक शिवस्वरूप में आते हैं और मनुष्यों तथा पशु-पक्षी सभी जीवों की रक्षा करते हैं । इनके हाथों को मृणयाकुः (सुख देने वाला), जलाषः (शीतलता प्रदान करने वाला) भेषजः (आरोग्यता प्रदान करने वाला) कहा गया है । ये देवताओं के कुशल वैद्य भी हैं ।

1.1.6. बृहस्पति.

पृथ्वी-स्थानीय देवता 'वृहस्पति' ऋग्वेद के 11 सम्पूर्ण सूक्तों में स्वतन्त्र रूप से तथा अन्य दो सूक्तों में इन्द्र के साथ संयुक्त रूप में वर्णित हैं । इनका दूसरा नाम व्रह्मणस्पति (मन्त्र के पति) भी है । मानवीकरण के रूप में इनके शारीरिक चिह्नों का कोई विशेष परिचय नहीं मिलता है । इनकी सींगें तीखी तथा पीठ काली है । इन्हें सप्तमुख, सप्तरश्मि, सप्तजिह्व, नीलपृष्ठ, तीक्ष्ण सींगोंवाला, शतपंखोंवाला कहा गया है । ये स्वयं सुवर्ण के समान देदीप्यमान हैं । इन्हें हाथों में धनुष-वाण तथा सुनहला परशु लिए हुए दर्शाया गया है । इनके रथ को लाल रंग के घोड़े खींचते हैं तथा ये दैत्यों का नाश करके गोष्टों को खोल देते हैं । सभी प्रार्थनाओं तथा मन्त्रों के प्रेरक होने के कारण वृहस्पति के विना यज्ञादिक अनुष्ठान एक निष्फल व्यापार मात्र होता है । वृहस्पति इन्द्र के साथ घनिष्ठ रूप से प्रशंसित किये गये हैं । 'वृहस्पति' शब्द का प्रथम अंश वृह् (वर्धन) धातु से निष्पन्न वृह शब्द षष्ठी विभक्ति एकवचन में है । फलतः इसका अर्थ होता है–मन्त्र या प्रार्थना का अधिपति । वृहस्पति अग्नि के प्रतीक जान पड़ते हैं । अग्नि की ही भाँति वृहस्पति भी एक पुरोहित हैं, जिन्हें शक्ति का पुत्र एवं अंगिरस् भी कहा गया है । अग्नि की ही भाँति वृहस्पति के भी तीन स्थान हैं तथा ये भी सभी गृहों के पूज्य एवं आवासों के अधिपति अर्थात् 'सदस्पति' कहे जाते हैं । इस प्रकार वृहस्पति यागादिक अनुष्ठानों के ऊपर शासन करने वाले हैं ।

1.1.7. अश्विनौ.

द्युस्थानीय अश्विन् युगल देवता हैं । इन्द्र, अग्नि तथा सोम के वाद अश्विन् का नाम आता है । ऋग्वेद के लगभग 50 सम्पूर्ण सूक्तों में तथा अनेक सूक्तों में अन्यान्य देवताओं के साथ अश्विन् देव की स्तुति की गयी है । दो होते हुए भी ये अविभक्त रूप से एक दूसरे से संयुक्त हैं । ये प्राचीन होते हुए भी युवक हैं । ये दोनों प्रकाशमान हैं तथा कमलपुष्पों की माला धारण करने वाले हैं ।

'अश्विनौ' के लिए मुख्य रूप से 'द्रस्रा' (अद्भुत); नासत्या (सत्य), हिरण्यवर्तन् (स्वर्णिम मार्ग वाले) इत्यादि विशेषणों का प्रयोग मिलता है । सोम की अपेक्षा मधु से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

इनके पास मधु से भरा हुआ कोश है, साथ ही साथ इनका अंकुश एवं रथ भी मधुमय है । इनका रथ कभी वैल, कभी घडियाल, एवं कभी पक्षियों के द्वारा खींचा जाता है । उषा तथा सूर्य के उदय काल के मध्य में इनका आविर्भाव होता है ।

अश्विनौ को सूर्यपुत्री (सूर्या) का पति वतलाया गया है; जिसे इन्होंने स्वयं वरण किया है । विपत्तियों से प्राणियों का उद्धार करना इनकी मुख्य विशेषता है । इसके अतिरिक्त देवताओं के बीच एक कुशल-वैद्य के रूप में भी अश्विन्द्वय प्रतिष्ठित हैं । इन्होंने ही च्यवन ऋषि को वृद्धता से मुक्त कर यौवन प्रदान किया था । पेदु को इन्होंने एक सफेद शीघ्रगामी अश्व प्रदान किया था तथा अन्धकार युक्त कारागृह में वन्द अत्रि का उद्धार इन्होंने ही किया था । इनका एक महान् कार्य यह भी है कि इन्होंने भृज्यु का समुद्र तल से उद्धार किया था, जवकि उसका हजार डाड़ों वाला जहाज समुद्र के वीच टूट गया था ।

1.1.8. वरुण.

'वरुण' एक द्युस्थानीय देवता हैं । ऋग्वेद के लगभग 12 सम्पूर्ण सूक्तों में तथा अंशतः 24 अन्य सूक्तों में वरुण की स्तुतियाँ संकलित हैं । वरुण की मानवाकृति अत्यन्त सुन्दर है । ये अपनी भुजाओं को हिलाते हुए भ्रमण करते हैं, रथ हाँकते हैं, खाते-पीते हैं, तथा बैठते हैं । इनका शरीर पुष्ट व मांसल है । इनका सुनहरा कवच दर्शकों के हृदय को चकाचौंध कर देता है । सूर्य इनके नेत्र हैं । कदाचित् इनके सहस्र नेत्र भी हैं । ये दूर से दूर की वस्तु को भी देख सकते हैं । ऊर्ध्वतम लोक में एक हजार स्तम्भों तथा सहस्र द्वारों से मण्डित इनका स्वर्णिम प्रासाद है । जहाँ पर बैठकर ये भविष्य में करणीय समस्त कार्यों को देखा करते हैं । इनके गुप्तचर इन्हें चारों ओर से घेरकर बैठे रहते हैं ।

'असुर' विशेषण से विशिष्ट 'वरुण' को ऋग्वेद में एक सम्राट के रूप में उपस्थित किया गया है । इनकी आज्ञायें अत्यन्त कठोर हैं । इन कठोर नियमों के अनुशीलन के ही कारण इन्हें धृतव्रत भी कहा गया है । आकाशगामी पक्षी, वेगवती नदियाँ व सुविस्तीर्ण आकाश भी इनकी महानता की सीमा का स्पर्श भी नहीं कर सकते । सभी लोक 'वरुण' में ही समाहित हैं । ये अपने उपासकों को केवल उसी के द्वारा किये गये पापों से मुक्त नहीं करते हैं, वल्कि उसके पिता द्वारा, दूसरों के द्वारा तथा अज्ञान व भ्रमवश किये गये सभी पापों से मुक्त कर देते हैं । विश्व के नैतिक-अध्यक्ष के रूप में वरुण से वढ़कर कोई भी देवता नहीं है ।

1.1.9. उषस्.

'उषा' शब्द वस् दीप्तौ धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है, प्रकाशमान या दीप्तिसम्पन्न । द्युस्थानीय देवता उषस् की स्तुति किंवा उसके स्वरूपों का वर्णन ऋग्वेद के लगभग 20 सूक्तों में किया गया है । उषा को एक सुन्दरी नवयुवती-नर्तकी के रूप में उपस्थापित किया गया है । यह नित्य-नवीना हो करके भी पुराणी है । उषा सबके मार्ग को प्रकाशित करती है तथा अन्धकार को दूर भगाती है । ऐसी उषा देवता*, चमकते हुए सुसज्जित वेगवान् सौ रथों पर चलती हैं । यह अपने निर्धारित नियमों का पालन करती हुई, देवताओं की आज्ञा का कभी भी उल्लंघन नहीं करती हैं । यह देवताओं को सोम पीने के लिए बुलाती हैं । उषा का सूर्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । इन्हें विभिन्न स्थलों पर सूर्य की पत्नी, माता अथवा बहन भी कहा गया है । सूर्य, उषा का उसी प्रकार पीछा करता है, जिस प्रकार कोई पुरुष किसी नवयौवना स्त्री का । उषा रात्रि की बड़ी वहन तथा द्यौस् की पुत्री है । उषा का सम्वन्ध अश्विनौ, अग्नि, इन्द्र एवं अन्यान्य देवताओं के साथ है ।

---

* 'देवता' शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है.

1.1.10. विषयसम्बद्ध वैदिक देवता
(एक संक्षिप्त-परिचय)

देवता. सूक्त (निवास स्थान. ऋषि)	विशेषण / उपाधि	स्वरूप / जन्म / निवास / वाहन / अस्त्र / उपलब्धि / सम्बन्धादिक
अग्नि. 200. (पृथ्वी स्थानीय) (मधुच्छन्दा)	ऋत्विक्, होता, पुरोहित, रत्नधातम, कविक्रतु, चित्रश्रवस्तम, कवि, हव्यवाह, धूमकेतु, गृहपति, दमूनस, अंगिरस्, दूत, विश्ववेदाः, सहस्राक्ष, त्रिमूर्द्धा, सप्तरश्मि, घृतपृष्ठ, घृतलोम, घृतप्रतीक, शोचिषकेश, मन्द्रजिह्व, उर्जोनपात्, अपांनपात्, असुर, विश्पति इत्यादि ।	भास्वर ज्वालाओं वाले हिरण्यरूप ब्राह्मण देवता माने जाते हैं । इनका जन्म द्यौः व पृथ्वी से/अरणियों से/दशयुवतियों से माना जाता है । जन्मस्थान स्वर्ग है । मातरिश्वा इन्हें पृथ्वी पर लाये । हर घर में इनका निवास है । रथ-स्वर्णिम है, जिसे दो या अधिक घृतपृष्ठ, भूरे, हरे, मनोज्ञ, मनोजवा घोड़े खींचते हैं । (**व्युत्पत्ति**—अंगं नयति सन्नममानः अक्नोपनो भवति, अग्रं यज्ञेषु, प्रणीयते, अग्रणीभवति इति।)
सवितृ. 11. (द्युस्थानीय) (गार्त्समद)	असुर, हिरण्यपाणि, सुपर्ण, सुनीथ, हिरण्याक्ष, हिरण्यस्तूप, विचर्षणि, सुमृळीक, दमूना, स्वर्णनेत्र, स्वर्णहस्त, स्वर्णपाद, स्वर्णजिह्व, इत्यादि ।	हिरण्यमय स्वरूप वाले तथा स्वर्णिम रथ वाले सवितृ, गायत्री-मन्त्र के उपास्य देवता हैं । इनका सम्बन्ध प्रातःकाल के ही समान सायंकाल से भी है । इन्हीं के आदेश पर रात्रि का आगमन होता है । ऋग्वेद. 2.83. इनके जबड़े लोहे के हैं । (**व्युत्पत्ति**–सविता सर्वस्य प्रसविता, अन्धकार मध्यादागच्छन् प्रकाशः सवितेति कथ्यते)
विष्णु. 5. (द्युस्थानीय) (दीर्घतमा)	उरुक्रम, उरुगाय, कुचर, गिरिष्ठा, वृष्णः, गिरिक्षित, विक्रम, त्रिविक्रम, भीम, इत्यादि ।	सूर्य के समान व्यापनशील प्रकाशमान् विशाल-शरीर वाले युवक हैं । तीन ही पग में सम्पूर्ण विश्व को नाप लिया है । कामनाओं का वर्षण करने वाले हैं । इनके परमधाम में मधु का उत्स है तथा बहुत सींगों वाली गतिशील बहुत सी गायें हैं । (**व्युत्पत्ति**–विष्णातेर्विशतेर्वा स्याद् वेवेष्टेर्व्याप्तिकर्मणः)
इन्द्र. 250. (अन्तरिक्षस्थानीय) (गृत्समद)	वृत्रहा, सुशिप्र, सोमपा, शक्र, पुरन्दर, वज्री, वज्रहस्त, मरुत्सखा, मरुत्थान, वज्रवाहु, हरिकेश, हरिश्मश्रु, हिरण्यवाहु, चित्रभानु, पुरुहूत, वृषा, शचीपति, आखण्डल, सोमी, मरुत्वान, धनञ्जय, गोत्रभिद्, मनस्वान्, संवृक्समत्सु, सप्तरश्मि, अच्युतच्युत, अपांनेता, इत्यादि । शतक्रतु	बालों समेत सम्पूर्ण शरीर भूरे रंग का है । पिता द्यौः तथा माता अदिति हैं । कदाचित् त्वष्टा पिता हैं । त्वष्टा के द्वारा लोहे/सोने का निर्मित वज्र धारण करते हैं । अत्यन्त बलशाली क्षत्रिय तथा युद्ध के देवता हैं । रथ सुनहरा है, जिसे दो भूरे रंग के घोड़े खींचते हैं । वृत्रवध इनका प्रमुख कार्य है । (**व्युत्पत्ति**—इरां दृणाति, इरां ददाति, इरां दधाति, इरां धारयते, इन्दवे द्रवति, इन्दौरतमे, इच्छत्रूणां दारयिता ।)

रुद्र. 3. (अन्तरिक्षस्थानीय) (गृत्समद)	त्र्यम्बक, कृत्तिवास, नीललोहित, भव, शर्व, पशुपति, मरुत्पिता, असुर, मरुत्वान्, मीढ्वान्, तव्यान्, वङ्कु, भिषक्तम्, जलाषभेषजः, बभ्रु, सुशिप्र, रक्तवर्णी, शिव, मृणयाकुः,	मानवरूपधारी तथा देवताओं के सर्वोत्कृष्ट वैद्य हैं । इन्हें स्वर्ग का रक्ताभ-वराह भी कहा गया है । पिनाक-धनुष, सृक-वज्र तथा कृपाण-विद्युत ही इनके शस्त्र हैं । इनके कल्याणकारी तथा विनाशकारी दोनों स्वरूपों का वर्णन है । ये महामृत्युञ्जयमन्त्र के उपास्य देवता हैं । (**व्युत्पत्ति**—रौतीति सतो रोरुयमाणो द्रवतीति वा रोदयतेर्वा, यदरुदत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्, यदरोदीत तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्)
बृहस्पति. 11. (पृथ्वीस्थानीय) (वामदेव)	गणपति, सप्तरश्मि, सप्तमुख, सप्तजिह्व, नीलपृष्ठ, ब्रह्मणस्पति, पथिकृत, मन्द्रजिह्व, सदस्पति (साथ रहने से कतिपय इन्द्र के भी विशेषण प्रयुक्त हैं ।) इत्यादि ।	स्वर्णिम देदीप्यमान स्वरूप वाले हैं । हाथों में धनुष-वाण तथा स्वर्णिम 'परशु' धारण करते हैं । रथ को लाल रंग के घोड़े खींचते हैं । इन्हें शक्ति का पुत्र तथा अंगिरस् कहा गया है । अग्नि के साथ इनका साम्य है । वाणीत्रय-वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती से तथा 'रव' शब्द से इनका सम्बन्ध है ।
अश्विनौ. 50. (द्युस्थानीय) (कक्षीवान्)	नासत्या, दस्रा, हिरण्यवर्त्तनि, दिवो नपाताः, माध्वी, नराः, मधुयुवा, सुदानू, मघवाना, तुविष्मा, अध्रिगू, इत्यादि ।	अत्यन्त सुन्दर तथा सर्वदा युवावस्था प्राप्त है । द्यौः इनके पिता तथा सूर्यपुत्री सूर्या इनकी पत्नी हैं । मधु प्रिय पेय है । मार्ग, रथ, अंकुश सब मधुमय है । ये युगलदेवता प्राणियों को विपत्ति से मुक्ति दिलाने वाले तथा देवताओं के कुशल वैद्य हैं । इनका रथ, अश्व/बैल/घड़ियाल या पक्षियों के द्वारा खींचा जाता है । उषा तथा सूर्योदय के मध्य इनका आविर्भाव होता है ।
वरुण. 12. (द्युस्थानीय) (शुनः शेप)	असुर, क्षत्रिय, धृतव्रत, ऋतगोपा, अमृतस्यगोपा, उरुशंशः, दूतदक्षः, स्वराट्, मायावी, इत्यादि ।	आकाश में सहस्र स्तम्भों से मण्डित इनका स्वर्णिम प्रासाद तथा स्वर्णिम झूला है । ये माया शक्ति से जगत् का संचालन करते हैं । सूर्य इनके नेत्र, तथा वायुगत शब्द इनके श्वांस-प्रश्वांस हैं । इनके नियम अत्यन्त कठोर हैं । अतः ये नैतिक अध्यक्ष के रूप में प्रतिष्ठित हैं । (**व्युत्पत्ति**—वरुणो वृणोतीति सतः ।)
उषस्. 20. (द्युस्थानीय) (वशिष्ठ)	मघोनी, विश्ववारा, सुभगा, गवांमाता, हिरण्यवर्णा, चित्रामघा, सुजाता, अन्तिवामा, रेवती, ऋतावरी, अश्वती, गोमती, अह्नांनेत्री, पुराणी युवतिः, दिवः दुहिता, सुदृशीक संदृक, अमृत्यकेतुः, भास्वती, अमृता, अर्जुनी, अरुषा, सप्रतीका, भद्रा, सूनरी, सूनृतावती, ऋतपा, इत्यादि ।	उषा का मानवीय स्वरूप स्वर्णिम वस्त्रसुसज्जिता नवयौवना-नर्तकी के रूप में सर्वोत्कृष्ट है । यह प्रातःकालिक देवी है । इसे सूर्य की पत्नी, माता तथा बहन भी कहा गया है । यह द्यौः की पुत्री व रात्रि की बहन है । लालवर्ण वाले बलशाली घोड़ों तथा 'अमरत्व' की पताका वाला स्वर्णिम रथ है । यह सोमपान नहीं करती है ।
सोम. 150. (पृथ्वीस्थानीय) (कण्व)	मौञ्जवत्, वनस्पति, वाचस्पति, विश्वचर्षणिः, रक्षोहा, वृत्रहन्तम्, महिष्ठ, अमर्त्य, सहस्रधार, इन्द्रपीत, पवमान, मधुमान, अमृत, शुद्ध, शुक्र, शुचि, दिवः शिशुः उत्तमं हविः, औषधिपति, इत्यादि ।	सोम का वास्तविक निवास स्थान-स्वर्ग है । इसे स्वर्ग का शिशु भी कहा गया है । यह श्येनपक्षी द्वारा पृथ्वी पर लाया गया । यह अमरत्व प्रदान करने वाले रोगनिवारक तथा इन्द्र का अत्यन्त प्रिय पेय है । इसे वनस्पतियों का राजा कहा जाता है ।

'उषा' के लिए 'मघोनी' (दानशीला), विश्ववारा (सबके द्वारा वरण की जाने वाली), रेवती (धनवाली), ऋतावरी, अश्वमती, गोमती, सुभगा, दुहितादिवः (आकाश में उत्पन्न), अमृत्यकेतुः (अमरत्व की पताका वाली) इत्यादि विशेषणों का प्रयोग किया गया है । उषा की प्रायः प्रकाश, धन, पुत्र एवं दीर्घायु के लिए प्रार्थना की गई है । सम्पूर्ण विश्व उषा-देवता को प्रणाम करता है ।

नोट—उषस् सूक्तों में वैदिक ऋषियों की प्रतिभा अपने चरमोत्कर्ष पर दृष्टिगोचर होती है । ये सूक्त अत्यन्त सुन्दर, प्रभावशाली व प्रतिभासम्पन्न हैं । आलोचकों ने इन्हें वैदिक-गीति-काव्य का प्रमुख निदर्शन माना है ।

1.1.11. सोम.

पृथ्वी-स्थानीय देवता 'सोम' का ऋग्वैदिक देवताओं में प्रमुख स्थान है । नवम् मण्डल के समस्त 144 सूक्त तथा अन्य मण्डलों के 6 सूक्त (कुल 150 सूक्त) सम्पूर्ण रूप से 'सोम' को समर्पित हैं । इसके अलावा कुछ अन्य सूक्तों में भी इन्द्र, अग्नि, पूषन् अथवा रुद्र के साथ इनकी स्तुति की गई है । सोम का सम्वन्ध निरन्तर सोमलता के साथ रहने से मानवाकृति के रूप में अग्नि के समान इनकी मानवाकृति विकसित न हो सकी ।

यज्ञानुष्ठान के अवसर पर सोमलता का सवन करके हविर्द्रव्य बनाया जाता था, जो सोमरस कहलाता था । यही सोमरस देवताओं को अर्पित किया जाता था । सोमरस को निचोड़ने के लिए हाथ की दसों अंगुलियों से पत्थर को पकड़कर सोमलता को दबाया (पीसा) जाता था; इसी को आलंकारिक भाषा में कहा गया है कि दश-युवतियाँ सोम को उत्पन्न करती हैं । पत्थरों को दश लगामों से नियन्त्रित अश्व कहा गया है ।

'सोम' को स्वर्ग का पुत्र अथवा स्वर्ग का दुग्ध कहा गया है । यह स्वर्ग में शुद्ध किया जाता है । यह वह पेय है, जो अमरत्व प्रदान करता है । इसीलिए इसे 'अमृत' या 'वनस्पति' कहा गया है । देवता लोग अमरत्व प्राप्त करने के लिए सोमपान किया करते हैं. यह पेय मनुष्यों को भी अमरत्व प्रदान करता है तथा वाणी को शक्ति प्रदान करता है; इसीलिए इसे 'वाचस्पति' का विरुद दिया गया है । सोम, इन्द्र का एक ऐसा मित्र है, जो उनकी शक्ति को बढ़ाता है । सोम का औषधि के रूप में भी वर्णन पाया जाता है । अतः यह एक रोगनिवारक औषधि है । मूजवत् पर्वत पर उत्पन्न होने के कारण इसे 'मौञ्जवत्' भी कहा गया है । यदा-कदा इसे स्वर्ग का शिशु भी कहा गया है; जो श्येन द्वारा पृथ्वी पर लाया गया । ऋग्वैदिक व अथर्ववैदिक आख्यानों में इसका समीकरण चन्द्रमा के साथ किया गया है ।

1.2. विषयवस्तु

1.2.1. संहिताएँ.

जिसके द्वारा देवताओं की स्तुति की जाती है; वह ऋक् (ऋचा या मन्त्र) कहलाता है-**"ऋच्यन्ते स्तूयन्ते देवा अनया इति ऋक्"** ऐसी ऋचाओं या मन्त्रों **(मननात् मन्त्राः)** के समूह का ही नाम संहिता है । यह संहिता–ऋक्, यजुः, साम व अथर्व के नाम से जानी जाती है । इन्हीं संहिताओं का दूसरा नाम वेद है । 'वेद' की परिभाषा करते हुए आचार्य सायण ने अपने भाष्य में लिखा है–**"अपौरुषेयं वाक्यं वेदः ।"** अथवा **"इष्ट प्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः अलौकिकमुपायं वेदयते स वेदः।"** महर्षि दयानन्द ने वेद को परिभाषित करते हुए लिखा है–**"विदन्ति-जानन्ति, विद्यन्ते-भवन्ति विदन्ते सर्वाः सत्य-विद्या यैः यत्र वा स वेदः।"** अर्थात् जिसके अन्तर्गत सभी सत्यविद्याओं का ज्ञान प्राप्त होता है, उसे वेद कहते हैं ।

जहाँ तक संहिताओं की विषयवस्तु का प्रश्न है–श्रीमद्भागवतकार ने लिखा है–

"ऋक् यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः ।
शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात् क्रमात् ॥"

अर्थात् ऋक् का विषय है–'शस्त्र' । 'शस्त्र' उसे कहते हैं, जो मन्त्रों द्वारा उच्चरित होता है, तथा जिसका गान नहीं किया जा सकता है । 'इज्या' अर्थात् यज्ञकर्म, यजुस् विषयक है, तथा 'साम' का विषय है–'स्तुति-स्तोम' अर्थात् स्तुति के लिए प्रयुज्यमान ऋक् समुदाय, जो उद्गाता द्वारा गाया जाता है । यह स्तोम–त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश आदि अनेक प्रकार का होता है । जहाँ तक अथर्व का प्रश्न है, इसका प्रतिपाद्य विषय है–'प्रायश्चित्त' । श्रीधरस्वामी का कथन है कि प्रायश्चित्त का लक्ष्य ब्राह्मकर्म (ब्रह्मा नामक ऋत्विक् का कर्म) है ।

(i) ऋग्वेद-संहिता.

ऋग्वेद-संहिता में ऋचाओं का संग्रह है । 'ऋचा' उसे कहते हैं, जिसके द्वारा देवताओं की स्तुति की जाती है । अथवा चरण एवं अर्थों से युक्त वृत्तवद्ध मन्त्रों को ऋचा कहते हैं–**"पादेनार्थेन चोपेता वृत्तबद्धा मन्त्राः ।" ॥ जैमिनि न्याय सूत्र ॥** ऋग्वेद पुरुषसूक्त के अनुसार–इन ऋचाओं की उत्पत्ति विराट-यज्ञपुरुष से ही बताई गई है–**"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानिजज्ञिरे ।"**

महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि के अनुसार ऋग्वेद की 21 शाखायें हैं–**"एकविंशतिधा वाहवृच्यम् ।"** इनमें–शाकल, वाष्काल, आश्वलायन, शाङ्खायन तथा माण्डूकायन शाखा विशेष प्रसिद्ध हैं । आज इनमें से मात्र शाकलशाखा ही पूर्णरूप से उपलब्ध है । चूँकि ऋग्वेद का मण्डलों एवं सूक्तों में विभाजन तथा ऋग्वेद का सर्वप्रथम पदपाठ, शाकल ने किया, अतः इसे शाकल-संहिता भी कहा जाता है । शाकलशाखा के अनुसार ऋग्वैदिक विषयवस्तु निम्नलिखित हैं–

विषयवस्तु

ऋग्वेद-संहिता में मुख्यतया विभिन्न देवताओं की याज्ञिक स्तुतियों का संकलन किया गया है; जो तत्त्वज्ञान विषयक विचारों से परिपुष्ट होने के कारण मानव-जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं । इस प्रकार इसमें कुल 33 देवताओं की स्तुतियाँ की गयी हैं, जिनमें इन्द्र तथा अग्नि का सर्वप्रमुख स्थान है । कहीं-कहीं नदी, पर्वत, सूर्य, उषा, मरुत्, वरुण इत्यादि का अत्यन्त मनोहारी प्राकृतिक-चित्रण भी किया गया है । ऋग्वेद में लगभग 20 सूक्त ऐसे हैं, जिन्हें संवाद-सूक्त कहा जाता है । इनमें–पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी, सरमा-पणि तथा विश्वामित्र-नदी संवाद-सूक्त बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं । इन्हें नाटकों व महाकाव्यों का बीजभूत स्वीकार किया जाता है ।

विषयवस्तु की दृष्टि से ऋग्वेद के समस्त सूक्तों को मुख्यतया दश वर्गों में रखा जा सकता है–1. देवता-सूक्त, 2. ध्रुवपद, 3. कथा, 4. संवाद, 5. दानस्तुति, 6. तत्त्वज्ञान, 7. संस्कार, 8. मान्त्रिक, 9. लौकिक तथा 10. आप्रीसूक्त । यद्यपि कुछ विद्वानों ने इन्हें 1. ऋषिसूक्त, 2. देवतासूक्त, 3. अर्थसूक्त तथा 4. छन्दसूक्त, इन चार विभागों में रखा है । इन विविध-विषयों से सन्निविष्ट होने के कारण ऋग्वेद को अन्य वेदों की अपेक्षा अधिक गरिमापूर्ण स्थान प्राप्त है । यजुस्, साम और अथर्व संहिताओं के अन्तर्गत जिन विषयों का विवेचन किया गया है, वे सभी मूल रूप से ऋग्वेद में निहित हैं । यहाँ तक कि ब्राह्मणों एवं आरण्यकों का भी मानना है कि जिन विषयों का प्रतिपादन ब्राह्मणों एवं आरण्यकग्रन्थों में किया गया है, वह उनकी अपनी मौलिक-विषयवस्तु नहीं है, अपितु वे सभी मूलरूप से ऋग्वेद में पहले से ही निहित हैं; चाहे वह प्राणविद्या हो, या प्रतीकोपासना हो या ब्रह्मविद्या ही क्यों न हो । इन तथ्यों के अतिरिक्त प्रथममण्डल के 164वें सूक्त में लगभग 52 ऋचाएं प्रहेलिका के रूप में दी गयी हैं, जो अत्यन्त क्लिष्ट, सारगर्भित तथा अर्थबोध होने पर परमानन्द को देने वाली हैं । इन प्रहेलिका-ऋचाओं के ऋषि दीर्घतमा हैं । दूसरी मुख्य बात यह है कि ऋग्वेद का प्रारम्भ 'अग्निसूक्त' से तथा अन्त 'संज्ञानसूक्त' से किया गया है ।

(ii) यजुर्वेद-संहिता.

यजुर्वेद-संहिता, यजुसों का संग्रह है । यजुस् का अर्थ होता है-जिसमें अक्षरों की संख्या नियत न हो- **"अनियताक्षरावसानो यजुः ।"** इसके अलावा **"गद्यात्मको यजुः"** एवं **"शेषे यजुः शब्दः"** //जै. सू. /2/1/37// का भी तात्पर्य यही है कि-ऋक् और साम से भिन्न गद्यात्मक मन्त्रों का अभिधान यजुस् है । यजुर्वेदसंहिता के मुख्यदेवता वायु तथा आचार्य; वेदव्यास के शिष्य वैशम्पायन जी हैं। महाभाष्य, चरणव्यूह एवं पुराणों के अनुसार यजुर्वेद की 100, 101, 109, 86 इत्यादि शाखाओं का पता चलता है । तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ एवं कपिष्ठल, ये चार कृष्णयजुर्वेद तथा वाजसनेयी और काण्व ये दो शुक्लयजुर्वेद की शाखायें हैं ।

विषयवस्तु

शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के अनुसार सामान्य विषय-विवेचन निम्नलिखित हैं–

सम्पूर्ण 'वाजसनेयी' संहिता कुल 40 अध्यायों 303 अनुवाकों तथा 1975 कण्डिकाओं (मन्त्रों) में विभक्त है । प्रारम्भिक दो अध्यायों में दर्श-पौर्णमास यज्ञों से सम्वद्ध मन्त्र हैं । तृतीय अध्याय में अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य यज्ञोपयोगी मन्त्रों का संकलन है । चतुर्थ से अष्टम अध्याय पर्यन्त सोमयागों का तथा ग्यारहवें से अट्ठारहवें अध्याय-पर्यन्त 'अग्निचयन' (होमाग्नि-वेदी निर्माण पद्धति) का वर्णन है । उपर्युक्त वेदी का निर्माण विशिष्ट प्रकार के तथा विशिष्ट स्थान से लाये गये कुल 10800 ईंटों (Bricks) से किया जाता है । यहाँ सोलहवें अध्याय में 'शतरुद्रीय-होम' तथा अट्ठारहवें अध्याय में 'वसोर्धारा' सम्वन्धी मन्त्र निर्दिष्ट हैं । उन्नीसवें से इक्कीसवे अध्याय तक सौत्रामणि तथा 22-25 अध्याय तक अश्वमेधयज्ञ का विधान किया गया है । छब्बीसवें से उन्तीसवें अध्यायपर्यन्त खिलमन्त्रों (परिशिष्ट) का विवेचन किया गया है, जिसमें पूर्वनिर्दिष्ट अनुष्ठानों के विषय में नवीन मन्त्र दिये गये हैं । तीसवें अध्याय में पुरुषमेध की चर्चा की गयी है, जबकि इकतीसवें अध्याय में पुरुषसूक्त का वर्णन है; जिसमें ऋग्वेद की अपेक्षा छः मन्त्र अधिक हैं। वत्तीसवें से तैंतीसवें अध्याय में सर्वमेध के मन्त्र उल्लिखित हैं तथा चौंतीसवें अध्याय के प्रारम्भ में मन्त्रों का शिवसङ्कल्पसूक्त वर्णित है, जो मन तथा मानसिक-वृत्तियों के स्वरूप के प्रतिपादन में अत्यन्त उपादेय है । छत्तीसवें से अड़तीसवें अध्याय में 'प्रवर्ग्ययाग' का विशद वर्णन मिलता है । इस संहिता के अन्त में चालीसवें अध्याय का वर्ण्यविषय ईशावास्योपनिषद् है । यही एकमात्र सर्वप्राचीन उपनिषद् है, जो संहिता का भाग है । ध्यातव्य है कि यजुर्वेद संहिता से सम्बन्धित ऋत्विक् को अध्वर्यु कहा जाता है ।

(iii) सामवेद-संहिता.

'साम' शब्द का शाब्दिक अर्थ है–'देवों को प्रसन्न करने वाला गान ।' बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है–**"सा च अमश्चेति तत्साम्नः सामत्वम् । सा ऋक् । तया सह सम्बन्धः अमो नाम स्वरो वर्तते तत्साम ।"** अर्थात्–**'सा'** और **'अम'** से मिलकर **'साम'** शब्द की उत्पत्ति हुई है । जहाँ 'सा' का अर्थ है–'ऋचा' और 'अम' का अर्थ है–षडज, ऋषज्, गान्धार आदि सप्तस्वर । अतः ऋग्वेद की ऋचायें जव स्वरों से मिलती हैं, तव 'साम' बनता है । इस प्रकार जिन ऋचाओं को ये 'साम' अपना आधार वनाते हैं, उन ऋच्राओं को 'सामयोनि' कहा जाता है, अर्थात् इन्हीं ऋचाओं को 'साम' का उत्पत्ति स्थान माना जाता है ।

'साम' के महत्त्व को दर्शाते हुए 'शतपथब्राह्मण' में कहा गया है–**"नासामा यज्ञो भवति"** अर्थात् साम के बिना यज्ञ नहीं होता है । इसीलिए बृहद्देवता में कहा गया है कि-जो पुरुष साम को जानता है, वही वेद के रहस्य को जानता है–**"सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम्"** गीता में पद्मनाभ भगवान श्रीकृष्णजी स्वयमेव कहते हैं–**"वेदानां सामवेदोऽस्मि।"** 10/22.

सामवेद का देवता सूर्य एवं ऋत्विक्–उद्‌गाता है; जो यज्ञों में सामगानों का पाठ करता है । यद्यपि इस वेद की सहस्र शाखाएँ बतायी जाती हैं–"**सहस्रवर्त्मा सामवेदः**" परन्तु वर्तमान समय में इसकी मात्र तीन शाखाएँ उपलब्ध होती हैं–1. कौथुमीय, 2. राणायनीय, 3. जैमिनीय, कौथुम शाखा के अनुसार सामवेद संहिता के दो प्रमुख विभाग हैं–1. पूर्वार्चिक तथा 2. उत्तरार्चिक । यहाँ पर आर्चिक का अभिप्राय ऋचाओं के संग्रह से है । पूर्वार्चिक में कुल छः प्रपाठक हैं, तथा उत्तरार्चिक में नौ । इन प्रपाठकों का विभाजन अर्धों एवं दशतियों अथवा अध्यायों और खण्डों में हुआ है । प्रत्येक खण्ड में एक देवता अथवा एक छन्दपरक ऋचाएँ हैं ।

विषयवस्तु

पूर्वार्चिक के प्रथम प्रपाठक में अग्नि से सम्बन्धित ऋचाओं का संकलन है । अतः इस प्रपाठक को 'अग्निपर्व' या आग्नेयकाण्ड भी कहा जाता है । द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक में इन्द्र से सम्बन्धित ऋचाएँ हैं, जो 'ऐन्द्रपर्व' कहलाता है । पञ्चमप्रपाठक का सम्बन्ध पवमान (सोम) से है, जिसे 'पवमानपर्व' कहते हैं । षष्ठ प्रपाठक को 'अरण्यपर्व' की संज्ञा दी गयी है, क्योंकि इसमें ऐसी ही ऋचाओं का संकलन है, जो केवल अरण्यगान के ही योग्य हैं; जबकि प्रथम से पञ्चमप्रपाठक तक की ऋचाओं को गाँवों में गाया जा सकता है; जिन्हें ग्रामगान कहते हैं । गान चार प्रकार के होते हैं–1. ग्राम या वेय (प्रकृति) गान; 2. अरण्यगान; 3. ऊहगान; 4. उह्य (रहस्य) गान ।

उत्तरार्चिक के अनेक मन्त्र पूर्वार्चिक से लिये गये हैं । इसमें सात प्रमुख अनुष्ठानों का निर्देश है–1. दशरात्र, 2. संवत्सर, 3. एकाह, 4. अहीन, 5. सत्र, 6. प्रायश्चित्त, 7. क्षुद्र । पूर्वार्चिक में ऋचाओं का छन्द वर्णनीय देवताओं के अनुसार है, जबकि उत्तरार्चिक में यह क्रम यज्ञों के अनुसार है । पूर्वार्चिक भाग की सहायता से 'उद्‌गाता' प्रथमतः सङ्गीतशिक्षा प्राप्त कर लेता है, तदुपरान्त उत्तरार्चिक में संकलित स्तोत्रों को कण्ठस्थ करके याज्ञिक अवसरों पर उसका पाठ करता है । उत्तरार्चिक में इसी दृष्टि से 400 स्तोत्रों का भी संकलन किया गया है । प्रत्येक स्तोत्र में तीन या चार ऋचायें हैं । इस प्रकार उत्तरार्चिक में कुल 1225 मन्त्र हैं; जबकि पूर्वार्चिक में इनकी संख्या 650 है । इस प्रकार कौथुमशाखा में कुल 1875 मन्त्र हैं, जिनमें पूर्वार्चिक की 267 ऋचाओं का उत्तरार्चिक में पुनः उल्लेख किया गया है । शेष 1507 ऋचाएँ मूलतः ऋग्वेद की हैं ।

सामवेदस्थ विभिन्न प्रकार के साममन्त्र यज्ञसम्पादन-काल में गाये जाते हैं । साधारणतया इनके पाँच भाग होते हैं–

1. **प्रस्ताव**–यह मन्त्र का प्रारम्भिक भाग होता है, जो 'हुं' से प्रारम्भ होता है । इसे प्रस्तोता नामक ऋत्विक् गाता है ।

2. **उद्‌गीथ**–इसे साम का प्रधान ऋत्विक् उद्‌गाता गाता है । इसके प्रारम्भ में 'ॐ' लगाया जाता है ।

3. **प्रतीहार**–इसका अर्थ है, दो को जोड़ने वाला । इसे प्रतिहर्ता नामक ऋत्विक् गाया करता है ।

4. **उपद्रव**–इसे उद्‌गाता नामक ऋत्विक् गाता है ।

5. **निधन**–इसमें मन्त्र का दो पादांश या ॐ रहता है । इसका गायन, तीनों ऋत्विक् (प्रस्तोता, उद्‌गाता एवं प्रतिहर्ता) एक साथ करते हैं–उदाहरणतया–"**अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥**"

(iv) अथर्ववेद-संहिता.

अंगिरा वंशीय अथर्वा ऋषि द्वारा दृष्ट होने के कारण इस वेद को अथर्ववेद-संहिता के नाम से जाना जाता है । इसे भृग्वंगिरा वेद तथा ब्रह्मवेद के नाम से भी जाना जाता है । इसका ऋत्विक् ब्रह्मा कहा जाता है । इस वेद के देवता 'सोम' तथा प्रमुख आचार्य सुमन्तु हैं । अथर्वसंहिता में यज्ञोपयुक्त अंश कम होने से इसे वेदत्रयी की अपेक्षा कम महत्त्व दिया गया है, क्योंकि यह अधिकांश

अभिचारात्मक ही है । महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार– 1. पिप्पलाद, 2. स्तोद, 3. मोद, 4. शौनकीय, 5. जाजल, 6. जलद, 7. ब्रह्मवेद, 8. देवदर्श तथा 9. चारणवैद्य; ये नौ शाखायें हैं । इनमें से इस समय पिप्पलाद एवं शौनकीय मात्र दो ही शाखायें उपलब्ध होती हैं । सम्पूर्ण अथर्ववेद में कुल 20 काण्ड, 34 प्रपाठक, 111 अनुवाक, 739 सूक्त तथा 5849 मन्त्र हैं । इनमें से लगभग 1200 मन्त्र ऋग्वेद में भी मिलते हैं । आचार्य वलदेव उपाध्याय के अनुसार–अथर्ववेद में कुल 20 काण्ड, 731 सूक्त तथा 5987 मन्त्र हैं ।

विषयवस्तु

ऋग्वेदादि तीनों वेदों का विषय, स्वर्गलोक की प्राप्ति इत्यादि पारलौकिक तथ्यों से सम्बन्द्ध विषयों का प्रतिपादन है; जवकि अथर्ववेद की विषयवस्तु ऐहिक है । इस जीवन को सुखमय तथा दुःखरहित वनाने के लिए जिन-जिन साधनों की आवश्यकता होती है; उनकी सिद्धि के लिए नाना प्रकार के अनुष्ठानों का विधान इस वेद में किया गया है–**"अङ्गेषु गात्रेषु यो रसः सप्तधातुमयः तमधिकृत्य या चिकित्सा साङ्गिरसानां चिकित्सा ।"** अर्थात् शरीर में जो सप्तधातुमय रस है, उसकी चिकित्सा जिसमें है, वह अङ्गिरस वेद है । संहिता के प्रारम्भिक 13 काण्डों का विषय जारण, मारण, उच्चाटनादि से सम्वन्धित है । चौदहवें काण्ड में विवाह, 18वें में श्राद्ध, तथा वीसवें अध्याय में सोमयाग से सम्वन्धित मन्त्र दिये गये हैं, जवकि उन्नीसवें अध्याय में राष्ट्रवृद्धि एवं अध्यात्मपरक सूक्त हैं । अथर्ववेद की विषय-सामग्री को मुख्यतया निम्नलिखित 7 वर्गों में रखा जा सकता है–

1. **भैषज्यसूक्त**–इसमें रोग, रोगों के लक्षण, निदान एवं जड़ी-बूटियों इत्यादि का 144 सूक्तों में विवेचन किया गया है ।

2. **आयुष्यसूक्त**–इसमें वे सूक्त आते हैं, जिनमें दीर्घायु प्राप्त करने की प्रार्थनाओं का संकलन है । स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए रक्षासूक्त का भी विधान, इस सूक्त के अन्तर्गत आता है ।

3. **पौष्टिकसूक्त**–इन सूक्तों में कृषिकर्म, गृहनिर्माण एवं व्यापार से सम्वन्धित वर्णन मिलते हैं । इसमें वृष्टिसूक्त अत्यन्त रमणीय है ।

4. **स्त्रीकर्मसूक्त**–इसके अर्न्तगत विवाह, प्रेम, सन्तानोत्पत्ति तथा प्रसूत-पुत्र की रक्षा हेतु भव्यप्रार्थनाओं वाले सूक्त संकलित हैं । अपनी सपत्नी को वश में करने के लिए, तथा अपने पति स्नेह को प्राप्त करने हेतु अनेक जादू-टोनों का वर्णन मिलता है ।

5. **प्रायश्चित्तसूक्त**–चरित्रसम्वन्धी त्रुटि, धर्मविरोध तथा अनेकानेक ज्ञात, अज्ञात अपराधों के लिए प्रायश्चित्त करने के मन्त्र इन सूक्तों में निर्दिष्ट हैं ।

6. **ब्रह्मण्यसूक्त**–इन सूक्तों में सृष्टि के परम तत्त्व के रूप में परब्रह्म का विवेचन है । इन्हीं सूक्त के कारण अथर्व को 'ब्रह्मवेद' भी कहा जाता है । ये दार्शनिक दृष्टिकोण से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं ।

7. **राजकर्मसूक्त**–ये सूक्त राजाओं एवं उनके कार्यों से सम्वन्धित सूक्त हैं । शत्रु को परास्त करने की प्रार्थनाएँ तथा संग्राम सम्वन्धी रथ, दुन्दुभी, शंखादि अनेक साधनों का विवेचन इस सूक्त में पाया जाता है ।

उपर्युक्त सूक्तों के अतिरिक्त दुन्दुभि, पृथ्वी इत्यादि सूक्त भी उपलब्ध होते हैं ।

1.2.2. ब्राह्मण तथा आरण्यक.

(i) ब्राह्मण

आचार्य सायण के अनुसार–जो परम्परा से मन्त्र नहीं हैं, वह ब्राह्मण हैं, तथा जो ब्राह्मण नहीं हैं, वह मन्त्र हैं । शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार–**"ब्रह्म वै मन्त्रः"** 7/1/1/5/ से स्पष्ट है कि वैदिक मन्त्रों के व्याख्यान उपस्थित करने के कारण 'ब्राह्मण' ऐसा नामकरण किया गया । 'ब्रह्म' शब्द का एक दूसरा अर्थ यज्ञ भी होता है । इस प्रकार ब्राह्मणों में मन्त्रों, कर्मों तथा विनियोगों की व्याख्या है । ब्राह्मणों के द्रष्टा किंवा रचनाकार आचार्य कहे जाते हैं, जवकि ऋचाओं के द्रष्टा ऋषि कहलाते हैं

विषयवस्तु

ब्राह्मणों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'विधि' है; तथापि **शावर-भाष्य** में ब्राह्मणों के प्रतिपाद्य विषय के रूप में विधि के अङ्गभूत कुल 10 वस्तुओं का उल्लेख किया गया है–

"हेतुर्निवचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः ।
प्रक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण कल्पना । उपमानं दशैतेतो विधयो ब्राह्मणस्य तु ॥"

परन्तु इनमें विधि, विनियोग, हेतु अर्थवाद, निरुक्ति तथा आख्यान की ही प्रधानता है । इनमें से भी 'विधि' सर्वप्रमुख है ।

विधि–यज्ञ का विधान कव किया जाय ? कैसे किया जाय ? उसमें किन साधनों की आवश्यकता होती है ? विभिन्न यज्ञों के अधिकारी कौन होते हैं ? ऐसी जटिल याग-प्रक्रिया के विषय को सुलझाने के लिए 'ब्राह्मणों' का अभ्युदय हुआ । ऐतरेय, शतपथ, गोपथ, इत्यादि ब्राह्मणों में अनेक विधियाँ भरी पड़ी हैं । उदाहरणतया–'वहिष्-पवमान' के लिए अध्वर्यु तथा उद्गाता आदि पाँच ऋत्विजों के प्रसर्पण का विधान किया गया है । इस समय ऋत्विजों के मौन रहने तथा धीरे-धीरे पैर रखने का विधान है । पाँचों ऋत्विजों (अध्वर्यु, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता तथा ब्रह्मा) को एक दूसरे के पीछे इसी क्रम में पंक्तिवद्ध चलने का विधान है । इस समय अध्वर्यु अपने हाथ में कुश लेकर चलता है ।

विनियोग–किस मन्त्र का प्रयोग, किस उद्देश्य की सिद्धि के लिए किया जाता है ? ऐसा मन्त्रों के विनियोग का उल्लेख प्रथमतः 'ब्राह्मणों' में ही दिखाई देता है । ताण्ड्यब्राह्मण की **"स नः पवस्व शं गवे"** इस ऋचा का गायन पशुओं की रोगनिवृत्ति के निमित्त किया जाता है । **"आ नो मित्रावरुणा"** इस मन्त्र का प्रयोग दीर्घरोगी को रोगमुक्त करने के लिए किया जाता है । ऐसे अनेकानेक विनियोग हैं ।

हेतु–'हेतु' का अभिप्राय उन कारणों के निर्देश से है, जिसे कर्मकाण्ड की विशेष विधि के लिए उपयुक्त वतलाया गया है; क्योंकि विधि विभाग सयुक्तिक होता है; कल्पना-जन्य नहीं । इन्हीं का कारण वतलाना ही हेतु है । उदाहरणस्वरूप–'वहिष् पवमान' में पाँचों ऋत्विजों के अध्वर्यु को हाथ में दर्भमुष्टि लेकर चलने का अभिप्राय अश्वरूपधारी भागते हुए यज्ञदेव को दर्भमुष्टि दिखाकर लौटा ले आना है ।

अर्थवाद–'अर्थवाद' में निन्दा तथा प्रशंसा दोनों का ही निवेश रहता है । अर्थात् यागनिषिद्ध निन्दा तथा यागोपयोगी वस्तुओं की प्रशंसा की जाती है । जैसे–यज्ञ में माष (उड़द) निषिद्ध होने से माष की निन्दा–**"अमेध्या वै माषा"** तथा 'वहिष् पवमान' स्त्रोत्र की उपादेयता होने से स्तुति की गयी है ।

निरुक्ति–शब्दों के निर्वचन (व्युत्पत्ति) का ब्राह्मणों में जगह-जगह उल्लेख किया गया है । इससे अर्थों के मौलिक स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है । निरुक्तों की व्युत्पत्तियों के मूल ये ब्राह्मणग्रन्थ ही हैं ।

आख्यान–विधि के स्वरूप को हृदयङ्गम कराने तथा विषय को सरस एवं रोचक बनाने के लिए आख्यानों का समायोजन किया गया है । ये आख्यान 1. स्वल्पकाय तथा 2. दीर्घकाय भेद से दो प्रकार के हैं । स्वल्पकाय आख्यानों में उन कथाओं की गणना है, जो सद्यः विधि की सयुक्तिकता प्रदर्शित करते हैं । जैसे–यज्ञ देव का अश्व रूप में भागना तथा वाक् का देवताओं का परित्याग इत्यादि । दीर्घकाय आख्यानों में–पुरुरवा-उर्वशी; शुनःशेप इत्यादि के आख्यान सम्मिलित हैं ।

प्रमुख ब्राह्मण

ऋग्वेद के ब्राह्मणों में ऐतरेय-ब्राह्मण तथा शांखायन-ब्राह्मण का नाम लिया जाता है; जबकि यजुर्वेद के ब्राह्मणों में 'शतपथ-ब्राह्मण' का नाम सुप्रसिद्ध है । यह अत्यन्त प्राचीन एवं विपुलकाय 100 अध्यायों वाला यागानुष्ठान का सर्वोत्तम प्रतिपादक ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ माध्यन्दिन तथा काण्व दोनों शाखाओं पर उपलब्ध होता है । माध्यन्दिन शाखा में 14 काण्ड, 100 अध्याय, 68 प्रपाठक, 438 ब्राह्मण तथा 7624 काण्डिकायें (मन्त्र) हैं, जबकि काण्वशाखा में 17 काण्ड, 104 अध्याय, 435 ब्राह्मण तथा 6806 काण्डिकायें हैं ।

सामवेदीय ब्राह्मणों में–ताण्ड्यब्राह्मण, षड्विंशब्राह्मण, सामविधानब्राह्मण, आर्षेय-ब्राह्मण, देवताध्यायब्राह्मण या दैवतब्राह्मण, उपनिषद् (मन्त्र) या छान्दोग्यब्राह्मण, संहितोपनिषद्ब्राह्मण, वंशब्राह्मण तथा जैमिनीय तवल्कारब्राह्मण का नाम लिया जाता है; जबकि अथर्ववेद पर एकमात्र 'गोपथब्राह्मण' ही उपलब्ध होता है ।

(ii) आरण्यक.

सायणाचार्य के मतानुसार-जिन आध्यात्मिक ग्रन्थों का मनन-चिन्तन ग्राम/नगर के कोलाहलपूर्ण वातावरण में सम्भव न हो सकने के कारण अरण्य के एकान्त, शान्त वातावरण में किया गया, वेदों में निहित अनेक रहस्यों का जिनमें उद्घाटन किया गया तथा जिनके माध्यम से प्राणविद्या का दार्शनिक विश्लेषण किया गया, वे ही आरण्यक के नाम से जाने जाते हैं ।

वस्तुतः आरण्यकग्रन्थ, ब्राह्मणग्रन्थों के ही पूरक हैं, परन्तु साथ-साथ उपनिषदों के प्रारम्भिक भाग भी हैं । ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में विशेष अन्तर यह है कि-ब्राह्मणग्रन्थों के यज्ञ अत्यन्त जटिल कर्मकाण्ड वाले हैं, जबकि आरण्यक ग्रन्थों के यज्ञ अत्यन्त ही सरल विधि-विधान विहित हैं, जिनको वानप्रस्थी एवं मुनि लोग भी कर सकते हैं । अतः हम यह कह सकते हैं कि मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद के जिस अंश में आध्यात्मिक तत्वों की मीमांसा, प्राणविद्या तथा प्रतीकोपासना का विषय वर्णित है; वह अंश 'आरण्यक' नाम से जाना जाता है । महाभारत आदिपर्व का कथन है–

"नवनीतं यथा दध्नो, मलयाच्चन्दनं यथा ।
आरण्यकं च वेदेभ्यः, औषधिभ्योऽमृतं यथा ॥"

विषयवस्तु

आरण्यकों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्राणविद्या एवं प्रतीकोपासना है । इसका महत्त्वपूर्ण विवेचन हमें ऐतरेय एवं तैत्तिरीय इन दोनों आरण्यकों में प्राप्त होता है । इस परिप्रेक्ष्य में ऐतरेयारण्यक का निम्नलिखित अंश अत्यन्त उपादेय है–**"प्राणेन सृष्टावान्तरिक्षं च वायुश्च । अन्तरिक्षं वा अनुचरन्ति । अन्तरिक्षमनुशृण्वन्ति । वायुः अस्मै पुण्यं गन्धमावहति । एवमेतौ प्राणपितरं परिचरतोऽन्तरिक्षं च वायुश्च ।"** इस कथन से स्पष्ट है कि अन्तरिक्ष और वायु; ये दोनों प्राण रूपी कारण के ही कार्य माने गये हैं । अर्थात् प्राण पिता है और अन्तरिक्ष तथा वायु उसके पुत्र हैं । ऋग्वेद पुरुषसूक्त का भी ऐसा ही कथन है–**"प्राणाद्वायुरजायत .... ॥ ऋग्वेद / पुरुषसूक्त** // अर्थात् प्राण से ही वायु पैदा हुआ ।

प्राण से ही यह समस्त विश्व आवृत्त है–**"सर्वे हीदं प्राणेनावृत्तम् ।"** कौषीतकि उपनिषद् का स्पष्ट कथन है–**"यावद्धस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः** //12//" अर्थात् जब तक इस शरीर में प्राण रहता है, तभी तक आयु है । अतः, श्रुतिमन्त्रों में प्राण के लिए 'गोपा' विशेषण का प्रयोग किया गया है । आरण्यकों में प्राण को खण्ड, मुहूर्त, दिन-रात, पक्ष, मास, संवत्सर इत्यादि विभिन्न रूपों में देखा गया है । ऐतरेय-आरण्यक का तो कथन है कि–सभी ऋचायें, सभी वेद, सभी घोष इत्यादि सभी प्राणरूप ही हैं–**"सर्वा ऋचः, सर्वे वेदाः, सर्वे घोषा एकैव व्याहृतिः प्राण एव प्राण ऋच इत्येव विद्यात् ।" ऐतरेय आरण्यक** /2/2/10//

इस प्रकार आरण्यक ग्रन्थों में प्राणविद्या का इतना अधिक चिन्तन-मनन हुआ कि वेदमन्त्रों के द्रष्टा (ऋषियों) को भी प्राण के रूप में स्वीकार किया गया । उदाहरणतया–प्राण ही शयन के समय वाक्, चक्षु आदि इन्द्रियों के निगरण के कारण गृत्स कहलाता है और रतिकाल में वीर्य के विसर्ग जन्य मद को उत्पन्न करने के कारण मद है । अतः प्राण और अपान का संयोग ही 'गृत्समद' है । इसी तरह प्राण ही 'विश्वामित्र' है; क्योंकि इस प्राणदेवता का भोग्य होने के कारण मित्र है–**"विश्वं मित्रं यस्य असौ विश्वामित्रः ।"** प्राण को देखकर वाक् आदि देवताओं ने कहा–'यही हममें वाम-वन्दनीय (स्तुत्य) हैं, क्योंकि ये हम सब में श्रेष्ठ हैं । अतः देवों में वाम होने से प्राण ही 'वामदेव' है । प्राण ने ही समस्त विश्व को पाप से बचाया अतः वह 'अत्रि' है–**"सर्वं पाप्मनोऽत्रायत इति अत्रिः ।"** ग

सम्पन्न होने से मनुष्य के देह को 'वाज' कहते हैं तथा प्राण इस शरीर में प्रविष्ट होकर सतत इसकी रक्षा करता है । अतः प्राण ही "विभ्रद्वाज" (भरद्वाज) है । देवताओं ने जब प्राण का दर्शन किया तो कहा, तुम्ही 'वशिष्ठ' हो; क्योंकि प्राण ही सबसे बढ़कर वास या निवास का हेतु है । अतः वह 'वशिष्ठ' है । इसी प्रकार अन्यान्य ऋषियों को भी प्राण के रूप में देखा गया । इस प्रकार हम देखते हैं कि आरण्यकों में उन महान् आध्यात्मिक तत्त्वों का सङ्केत मिलता है, जो उपनिषदों में पुष्पित-पल्लवित हुआ ।

प्रमुख आरण्यक

ऋग्वेद के आरण्यकों में ऐतरेय-आरण्यक तथा शाङ्खायन-आरण्यक का नाम आता है । इसमें ऐतरेय-आरण्यक; ऐतरेयब्राह्मण का ही परिशिष्ट भाग है । इसमें कुल पाँच विभाग हैं । प्रत्येक विभाग को भी आरण्यक की ही संज्ञा दी गयी है । अतः कुछ लोगों का मानना है कि यह एक, आरण्यक नहीं है, अपितु पाँच आरण्यकों का संग्रह है । शांखायन आरण्यक में कुल 15 अध्याय हैं, जिनमें-महाव्रत, प्राणविद्या, अग्निहोत्र, कालस्वरूप, आत्मा, ब्रह्म एवं अन्यान्य याज्ञिक तत्त्वों का भी विवेचन है । 15 वें अध्याय में आचार्यों का वंश वर्णित है ।

शुक्लयजुर्वेद की दोनों शाखाओं पर बृहदारण्यक, कृष्णयजुर्वेद पर तैत्तिरीय तथा मैत्रायणी आरण्यक उपलब्ध होता है । इसके अतिरिक्त सामवेद पर तवलकार आरण्यक (जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण) तथा छान्दोग्य-आरण्यक उपलब्ध होता है, जबकि अथर्ववेद पर कोई आरण्यक नहीं उपलब्ध होता है ।

1.2.3. उपनिषद्

वेद रूपी वृक्ष की 'ब्राह्मण' यदि शाखाएँ हैं तथा आरण्यक उन शाखाओं से उद्भूत पुष्प हैं, तो यह भी मानना होगा कि उस आरण्यक रूपी पुष्प की सुगन्ध **'उपनिषदें'** ही हैं । कहने का आशय यह है कि प्राचीन-काल में ऋषियों ने जो बीज आरण्यकों में बोया था, वही उपनिषदों में पुष्पित व पल्लवित हुआ दिखायी पड़ता है । वेद के अन्तिम भाग होने के कारण इन्हें वेदान्त नाम से भी जाना जाता है ।

आचार्य शङ्कर की दृष्टि में उपनिषद् 'ब्रह्मविद्या' है । उपनिषद् शब्द की निष्पत्ति उप और नि उपसर्ग पूर्वक 'सदॢ' धातु से हुई है । यहाँ 'सदॢ' का प्रयोग– 1. विशरण, 2. गति (जानना या प्राप्त करना) तथा 3. अवसादन, इन तीन अर्थों में होता है । इस प्रकार उपनिषद् का अभिप्राय है–अविद्या का विशरण (नाश), ब्रह्मविद्या की प्राप्ति तथा सांसारिक दुःखों का शिथिलीकरण (अवसादन) । यद्यपि उपनिषद् का मुख्य अभिप्राय 'ब्रह्मविद्या' से ही है; परन्तु गौड रूप में ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थों को भी उपनिषद् कहा जाता है । इनमें मुख्य उपनिषदों की संख्या दश है–

"ईशकेनकण्ठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरः । छान्दोग्य-ऐतरेयं च बृहदारण्यकं तथा ॥"

विषयवस्तु

भारतीय-दर्शन के बीज यद्यपि ऋग्वेदादि में भी उपलब्ध होते हैं; परन्तु भारतीय-दर्शन का स्वरूप अपनी पूर्णता के साथ उपनिषदों में ही प्राप्त होता है । उपनिषदों में प्रमुख रूप से ब्रह्मविद्या की ही विवेचना की गयी है । ब्रह्म, आत्मा, माया, जगत्, पुनर्जन्म इत्यादि उपनिषदों के प्रमुख प्रतिपाद्य विषय हैं, जिसकी संक्षिप्त झलक निम्नलिखित है–

ब्रह्म–उपनिषदों के अनुसार, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्ममय है । ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है–**"ईशावास्यमिंद सर्वम् ...... ।"** इसी भावना का विशदीकरण ऋग्वेद पुरुषसूक्त में मिलता है–**"स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ।"** यह ब्रह्म चलता भी है, नहीं भी चलता है, दूर से दूर है तथा पास से भी पास है–**"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य**

बाह्यतः॥ ईशावास्योपनिषद् ॥ तैत्तिरीयोपनिषद् का कथन है--"**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । ये जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तं विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्म इति ॥**" अर्थात् जिससे सभी प्रा उत्पन्न होते हैं तथा उद्भूत प्राणी, जिससे जीवित रहते हैं और अन्त में जिसकी ओर जाते हैं; व ब्रह्म है। इस प्रकार ब्रह्म शब्द का प्रयोग अद्वैत, सर्वव्यापी तथा सत् तत्त्व के रूप में हुआ है ।

आत्मा–कठोपनिषद्भाष्य आचार्य शङ्कर के अनुसार–'जो सर्वत्र व्याप्त है, जो सबको अपने ग्रहण कर लेता है, जो विषयों का उपभोग करता है, तथा जिसकी सत्ता निरन्तर रहती है, उ आत्मा कहते हैं ।' आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया "**आत्मैवेदम् सर्वम्**" अर्थात् आत्मा ही सब कुछ है । कठोपनिषद् के अनुसार–

"**न जायते म्रियते वा विपश्चित, नायंकुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।**
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥"

ब्रह्म और आत्मा–उपनिषदों में ब्रह्म और आत्मा का प्रयोग ऐक्यभाव की प्रधानता के रूप में हुआ है बृहदारण्यकोपनिषद् का स्पष्ट कथन है–"**अयमात्मा ब्रह्म**" अर्थात् यह आत्मा ही ब्रह्म है । इस अतिरिक्त सुप्रसिद्ध महावाक्य–"**अहं ब्रह्मास्मि**" तथा "**तत्त्वमसि**" भी इसी बात की ओर संकेत करते है

माया (अविद्या या अज्ञान)–माया या अविद्या को आचार्य शङ्कर ने 'अध्यास' कहा है । य भावरूप वह तत्त्व है, जो वस्तु के वास्तविक स्वरूप को ढककर उसमें अवस्तु का दर्शन कराता है जो यथार्थ न होकर व्यक्ति-भ्रम मात्र होता है । यह अज्ञान या अध्यास न सत् है, न असत् है त न सदसद् ही, अपितु यह भावरूप एक अनिर्वचनीय तत्त्व है । वस्तुतः जगत् की सत्ता का कारण यही अज्ञान ही अविद्या है, जो जगत् के ब्रह्ममय स्वरूप पर पर्दा डालकर, उसे सुख, दु तथा मोह से अन्वित करता है ।

ब्रह्म और जगत्–उपनिषदों के अनुसार–यह व्यक्त जगत्, अव्यक्त ब्रह्म का ही रूप है । जगत् का निमित्तकारण और उपादानकारण ब्रह्म ही है । जिस प्रकार मकड़ी जाला बुनती है; उ प्रकार अक्षर ब्रह्म से क्षर जगत् की उत्पत्ति होती है । आचार्य शङ्कर भी ब्रह्म को सत्य एवं जगत् मिथ्या स्वीकार करते हैं, जैसा कि इस कथन से परिलक्षित है–"**ब्रह्मसत्यंज गन्मिथ्या।**"

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त उपनिषदों में प्राणसिद्धान्त, पुनर्जन्म, विद्या-अविद्या, सम्भू असम्भूति आदि अन्यान्य विषयों का वर्णन किया गया है ।

कुछ प्रमुख उपनिषदों का सामान्य परिचय व प्रतिपाद्य विषय

1.2.3.1. ईशावास्योपनिषद्

उपनिषदों में सबसे प्राचीन व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ईशावास्योपनिषद्, माध्यन्दिनिशाखा यजुर्वेद चालीसवाँ अध्याय है । इसमें कुल 18 मन्त्र हैं । इन मन्त्रों में कर्मसन्यास से हटकर कर्मोपासना का मार्मिक विवेचन किया गया है तथा अद्वैतभाव का बहुत ही सुस्पष्ट वर्णन किया गया है । यहाँ ब्रह्म स्वरूप विवेचन के पश्चात्; विद्या-अविद्या, तथा सम्भूति एवं असम्भूति का विवेचन प्राप्त होता है ।

1.2.3.2. कठोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा पर समुपलब्ध यह ग्रन्थ अपने प्रकृष्ट अद्वैत-तत्त्व के प्रतिपादन लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है । यहाँ पर नचिकेता के द्वारा अग्निचयन विद्या अथवा ब्रह्मविद्या का किया गया है । "**नेह नानास्ति किञ्चन**" इस उपनिषद् का गम्भीर शंखनाद है । यह उपनिषद् अध्यायों तथा प्रत्येक अध्याय तीन-तीन वल्लियों में विभक्त है ।

1.2.3.3. केनोपनिषद्

प्रस्तुत उपनिषद् **'केनेषितं पतति'** से प्रारम्भ होने के कारण केनोपनिषद् के नाम से जाना है । इसका दूसरा नाम तवलकारोपनिषद् भी है । सम्पूर्ण ग्रन्थ चार खण्डों में विभक्त है । प्रथम

में उपास्य ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म में अन्तर; द्वितीय खण्ड में ब्रह्म के रहस्यमय रूप का संकेत तथा तृतीय व चतुर्थ में उमा-हैमवती के रोचक आख्यान द्वारा परब्रह्म की सर्वशक्तिमत्ता तथा देवताओं की अल्पशक्तिमत्ता का अत्यन्त सुन्दर निदर्शन है ।

1.2.3.4. प्रश्नोपनिषद्

प्रस्तुत उपनिषद् अथर्ववेदीय ब्राह्मणभाग के अन्तर्गत आता है । भाष्यकार आचार्य शङ्कर के अनुसार–'मुण्डकोपनिषद् में कहे हुए तथ्यों का विस्तृत विवेचन ही प्रश्नोपनिषद् है–**"मन्त्रोक्तस्यार्थस्य विस्तरानुवादीदं ब्राह्मणमारभ्यते ॥"**

प्रश्नोपनिषद् कुल छः खण्डों में विभक्त है । इसका प्रत्येक खण्ड एक प्रश्न के नाम से जाना जाता है; जिसका प्रतिपाद्य-विषय सूत्रवत् निम्नलिखित है–

सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणि, अश्वलकुमार, विदर्भदेशीय भार्गव, तथा कबन्धी कुल छः प्रश्नकर्ता ऋषि, ब्रह्मविद्या की खोज में महर्षि पिप्पलाद के समीप जाते हैं और उनसे आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर पूछते हैं और महर्षि पिप्पलाद एक उदात्त तत्त्वज्ञानी के रूप में उनका उत्तर देते हैं–

(i) प्रथम प्रश्न में रयि और प्राण के द्वारा प्रजापति से ही सम्पूर्ण चराचर जगत् की उत्पत्ति का निरूपण किया गया है ।

(ii) दूसरे प्रश्न के उत्तर में स्थूल देह के प्रकाशक और धारण करने वाले प्राण का निरूपण है।

(iii) तीसरे प्रश्न में प्राण की उत्पत्ति व स्थिति विषयक विचार किया गया है ।

(iv) चौथे प्रश्न में स्वप्नावस्था का वर्णन करते हुए यह बताया गया है कि सूर्य की किरणों के समान सभी इन्द्रियाँ मन में ही लीन हो जाती हैं । केवल प्राण ही जागता रहता है ।

(v) पाँचवें प्रश्न में ओंकार का पर और अपर के प्रतीक के रूप में वर्णन करके उसके द्वारा अपरब्रह्म की उपासना करने वाले को क्रममुक्ति और परब्रह्म की उपासना करने वाले को परब्रह्म की प्राप्ति एवं उसका फल बतलाया गया है ।

(vi) छठवें प्रश्न में सुकेशा के प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य पिप्पलाद ने मुक्तावस्था में प्राप्त होने वाले निरुपाधिक ब्रह्म को प्राणादि 16 कलाओं के आरोहपूर्वक प्रत्यागात्म रूप से निरूपित किया गया है ।

1.2.3.5. मुण्डकोपनिषद्

अथर्ववेदीय 'मुण्डकोपनिषद्' कुल तीन मुण्डकों तथा प्रत्येक मुण्डक दो-दो खण्डों में विभक्त है । अपने नाम के ही अनुरूप यह ग्रन्थ मुण्डनसम्पन्न व्यक्तियों (संन्यासियों) के लिए ही विहित है । इसके अन्तर्गत ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ-पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है । यहाँ पर कर्मकाण्ड की हीनता तथा दोषों के अनन्तर ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है । द्वैतवाद का प्रधा स्तम्भभूत–**"द्वा सुपर्णासयुजा"** 3/1/1// मन्त्र इसी उपनिषद् का वचन है । ध्यातव्य है कि 'वेदान्त' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ के मन्त्र 3/2/6// में उपलब्ध होता है ।

1.2.3.6. माण्डूक्योपनिषद्

अथर्ववेदीय अत्यन्त स्वल्पकाय कुल 12 खण्डों या वाक्यों में विभक्त प्रस्तुत उपनिषद् ॐकार की अत्यन्त मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करता है । इसी सन्दर्भ में चतुष्पाद आत्मा का सूक्ष्मविवेचन भी प्राप्त होता है । आचार्य गौडपाद ने इसी पर 'माण्डूक्यकारिका' नामक ग्रन्थ लिखा है ।

1.2.3.7. तैत्तिरीयोपनिषद्

प्रस्तुत उपनिषद् कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय-आरण्यक सप्तम्, अष्टम् तथा नवम् खण्ड का ही सम्मिलित अंश है । यहाँ ब्रह्मविद्या के सूक्ष्म निरूपण के साथ-साथ गुरु-शिष्य-शिष्टाचार भी अच्छी तरह निरूपित है । वरुण तथा भृगु के संवाद रूप में यहीं पर ब्रह्मप्राप्ति का साधनभूत 'पंचकोशविवेक' भी वर्णित है ।

1.2.3.8. ऐतरेयोपनिषद्

ऋग्वेदीय ऐतरेयारण्यकस्थ द्वितीयारण्यक के अन्तर्गत चतुर्थ से लेकर षष्ठ अध्यायों का ही ना
ऐतरेयोपनिषद् है । इसमें मानव शरीर की उपयोगिता का क्रमिक वर्णन अपने चरम उत्कर्ष पर है
"प्रज्ञानं ब्रह्म" यह महावाक्य इसी उपनिषद् का वचन है । यहाँ पर मुख्यतः सृष्टिवाद व आदर्शवा
तथा प्रज्ञान का निरूपण है ।

1.2.3.9. छान्दोग्योपनिषद्

प्रस्तुत सामवेदीय उपनिषद् प्राचीनता, गम्भीरता तथा ब्रह्मज्ञान-प्रतिपादन की दृष्टि से उपनिषद
में नितान्त प्रौढ़, प्रामाणिक तथा प्रमेय बहुल है । इसमें कुल 8 अध्याय या प्रपाठक हैं । प्रथ
अध्याय में विविध विद्याओं, साम तथा ॐकार के स्वरूप का मार्मिक विवेचन, द्वितीय अध्याय
अन्त में 'शौव उद्गीथ' तृतीय अध्याय में देवमधु के रूप में सूर्योपासना, गायत्रीवर्णन, तथा अङ्गिर
द्वारा श्रीकृष्ण को अध्यात्म शिक्षा तथा अन्त में अण्ड से सूर्य का जन्म (3/19) वर्णित है । **"स
खल्विदं ब्रह्म" 3/14/1/** यह महावाक्य इसी अध्याय की देन है । चतुर्थ अध्याय रैक्व के दार्शनि
तथ्य व सत्यकामजाबाल कथा (4/4/9) का विस्तृत निदर्शन है । पञ्चम अध्याय में प्रवाहण जैव
के दार्शनिक सिद्धान्त तथा केकय अश्वपति के सृष्टि-विषयक तथ्यों का विशद वर्णन है (5/11/24
षष्ठ अध्याय अत्यन्त ही महनीय है । इसमें आरुणि की दार्शनिकता का अत्यन्त रोचक व तर्कपू
विवेचन है । **"तत्त्वमसि"** आरुणि की अध्यात्मशिक्षा का पाठस्थानीय मन्त्र है । सप्तम अध्याय
सनत्कुमार तथा नारद का विश्वविश्रुत वृत्तान्त उपस्थापित है । इस वृत्तान्त अथवा सनत्कुमार
द्वारा नारद को दिये गये उपदेश का पर्यवसान–**"यो वै भूमा तदमृतम्; अथ यदल्पं तन्मर्त्यम् ॥"** इ
मन्त्र के साथ होता है । अतः इसे 'भूमा-दर्शन' भी कहते हैं । अन्तिम तथा आठवें अध्या
(प्रपाठक) में इन्द्रविरोचन आख्यान एवं आत्मावगति के व्यावहारिक उपायों का निदर्शन होता है ।

1.2.3.10. बृहदारण्यकोपनिषद्

शुक्लयजुर्वेदानुयायी प्रस्तुत उपनिषद् परिमाण व तत्त्वज्ञान-प्रतिपादन दोनों ही दृष्टियों
अत्यन्त विशालकाय ग्रन्थ है । महर्षि याज्ञवल्क्य की आध्यात्मिक-दार्शनिक-शिक्षा से ओत-प्रोत इ
उपनिषद् में कुल छः अध्याय हैं । प्रथम अध्याय में मृत्यु, प्राण व सृष्टिप्रक्रिया तथा द्वितीय अध्य
में गार्ग्य-अजातशत्रु-संवाद और वन की ओर प्रस्थान करते हुए याज्ञवल्क्य के द्वारा मैत्रेयी के प्र
दिव्य दार्शनिक वाणी श्रुतिगोचर होती है । तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों में जनक-याज्ञवल्क्य आख्या
है । पञ्चम अध्याय में नीति, सृष्टि तथा परलोक विषयक विविध दार्शनिक विषयों का विवे
किया गया है; जबकि षष्ठ अध्याय में प्रवहण जैवलि तथा श्वेतकेतु आरुणेय का दार्शनिक संव
वर्णित है । विश्वविश्रुत महर्षि याज्ञवल्क्य की आध्यात्मिक शिक्षा का उपदेश बृहदारण्यकोपनिषद्
निम्नलिखित पंक्ति में देखा जा सकता है–**"आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासित
मैत्रेयि ।"** (**बृहदारण्यकोपनिषद्** //4//5//6//)

1.2.3.11. श्वेताश्वतरोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदानुयायी यह उपनिषद् शैव-धर्म का प्रतिपादक प्रतीत होता है । यहाँ पर सांख्य त
वेदान्त के सिद्धान्तों का मिश्रित रूप उपलब्ध होता है । यहाँ पर परमात्मतत्त्व के रूप में 'शिव'
उपस्थापित किया गया है । भक्तितत्त्व का प्रथमतः प्रतिपादन इस उपनिषद् की मुख्य विशेषता है
इसका दूसरा अध्याय पूर्णतः योग के सिद्धान्तों की विवेचना करता है ।

1.2.3.12. कौषीतकि उपनिषद्

ऋग्वेदानुयायी प्रस्तुत उपनिषद् ग्रन्थ शाङ्खायन आरण्यक के चार अध्यायों में वर्णित है
प्रथम अध्याय में देवयान तथा पितृयान का विस्तृत वर्णन है, तथा द्वितीय अध्याय में विशु

दार्शनिक सिद्धान्तों का । तृतीय अध्याय में प्रतर्दन इन्द्र से ब्रह्मविद्या सीखते हैं, जिसके पर्यवसान में प्राणतत्त्व का विशद विवेचन किया गया है । अन्त में यही प्राण आत्मा का प्रतीक सिद्ध किया गया है, जो जगत् के समस्त पदार्थों का कारण है तथा सभी प्राणी उसके हाथ में यन्त्रवत् घूमते रहते हैं (3/4)। अन्तिम तथा चौथे अध्याय में वृहदारण्यकस्थ वालाकि-अजातशत्रु आख्यान की पुनरावृत्ति है ।

1.2.3.13. मैत्री या मैत्रायणी उपनिषद्

कृष्णयजुर्वेद का यह उपनिषद् ग्रन्थ अपने विचित्र सिद्धान्तों के लिए अलग छवि रखता है । यहाँ पर सांख्य, योग तथा हठयोग के सिद्धान्तों का वर्णन दर्शन के विकास की प्रक्रिया को उपस्थापित करने में अत्यन्त उपादेय है । सम्पूर्ण उपनिषद् गद्य-पद्यात्मक कुल सात प्रपाठकों में विभक्त है ।

1.2.3.14. महानारायण या याज्ञिक्युपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयशाखा पर उपलब्ध होता है । सायणाभाष्य के साथ प्रकाशित तैत्तिरीय-आरण्यक का दशम प्रपाठक तथा उनके पूर्ववर्ती भट्टभास्कर के भाष्य के साथ प्रकाशित उस ग्रन्थ का छठा प्रपाठक महानारायणोपनिषद्, याज्ञिक्युपनिषद् या केवल नारायणीयोपनिषद् के नाम से जाना जाता है । इसमें पाठों की भिन्नता तथा वेदान्त, संन्यास, दुर्गा, नारायण, महादेव, दन्ति और गरुड आदि शब्दों के मिलने से स्पष्ट है कि यह बहुत प्राचीन नहीं हो सकता । इसमें नारायण का उल्लेख परमात्मतत्त्व के रूप में हुआ है । साथ ही स्नान, आचमन, होम आदि के लिए उपयुक्त मन्त्रों की सत्ता तथा अन्त में तत्त्वज्ञानी के जीवन का यज्ञ के रूप में चित्रण किया गया है ।

1.2.3.15. बाष्कलमन्त्रोपनिषद्

यह ऋग्वेद की उस बाष्कल-शाखा के अर्न्तगत आता है, जो आज अप्राप्य है । इसमें कुल 25 मन्त्र हैं । आत्मतत्त्व की विवेचना ही इसका प्रतिपाद्य विषय है । इसकी पाण्डुलिपि सम्प्रति एकमात्र अड्यार-पुस्तकालय (मद्रास) में उपलब्ध है ।

1.2.3.16. छागलेयोपनिषद्

कुल छः अनुच्छेदों या पैराग्राफों वाला यह उपनिषद्, अत्यन्त छोटा उपनिषद् है । इस ग्रन्थ के अन्त में एक बार छागलेय नाम की आवृत्ति हुई है । इसमें सरस्वती नदी के तट पर ऋषियों के सत्र, ऋषियों के द्वारा कवष ऐलूष की निन्दा; कवष ऐलूष के निर्देशानुसार ऋषियों का कुरुक्षेत्रस्थ वालिशों (ऋषियों) के पास जाना तथा वालिशों के द्वारा रथ के दृष्टान्त से ऋषियों को दिया गया उपदेश वर्णित है । जिसका सार इस प्रकार है–

"यथैतत्कूबरस्तक्ष्णायोज्झितो नेङ्गते मनाक् । परित्यक्तोऽयमात्मना तद्वद्देहो विरोचते ॥"

इस उपनिषद् की भी एकमात्र पाण्डुलिपि आड्यार-ग्रन्थालय (मद्रास) में उपलब्ध है ।

1.2.3.17. आर्षेयोपनिषद्

यहाँ पर ऋषियों का ब्रह्मबोध (ब्रह्मविचार) परस्पर विमर्श द्वारा वर्णित है । विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ इत्यादि प्रमुख ऋषि हैं । इन ऋषियों के विचार-विमर्श का विवरण देने से ही इसका नाम आर्षेय (ऋषि सम्बद्ध) प्रतीत होता है ।

1.2.3.18. शौनकोपनिषद्

उपर्युक्त तीन उपनिषदों की ही श्रेणी में यह उपनिषद् भी आड्यार-ग्रन्थालय की एकमात्र पाण्डुलिपि से ज्ञात व प्रकाशित है । इसके अन्त में उपदेष्टा के रूप में शौनक का उल्लेख है । असुरों पर देवों की विजय तथा इन्द्र के महत्त्व-वर्णन के साथ ही छन्दों का भी उल्लेख करते हुए एकाक्षर ॐ की उपासना करने का उपदेश दिया गया है ।

कुछ महत्त्वपूर्ण उपनिषद्वाक्य

1. मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।। ई. उ.। 1 ।।
2. विद्ययाऽमृतमश्नुते ।। ई. उ. । 11 ।।
3. आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।। के. उ . । 2 / 4।।
4. स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति ।। क. उ. । 1 / 1 / 12 ।।
5. न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः ।। कठोप. । 1 / 1 / 27 ।।
6. अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।। कठोप. । 1 / 2 / 18 ।।
7. उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।। कठोप. । 1 / 3 / 14 ।।
8. मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।। कठोप. । 2 / 1 / 11 ।।
9. सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।। कठोप. । 2 / 3 / 19 ।।
10. भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया । क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टेपराऽवरे ।। मुण्डकोप. । 2 / 2 / 8।
11. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते ।। मुण्डकोप. । 3 / 1 / 1 // श्वेता. / 4 / 6।
12. सत्यमेव जयते नानृतम् ।। मुण्डकोप. । 3 / 1 / 6 ।।
13. ओमिति ब्रह्म ।। तैत्ति. उ.। 1 / 8 / 1 ।।
14. सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्माप्रमदः । सत्यान्नप्रमदितव्यम् । ....
    मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । श्रद्धया देयम् ।। तैत्तिरीयोप. । 1 / 11 / 1-3
15. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।। तैति. उ. । 2 / 1 / 1 ।।
16. रसो वै सः।। तैति. उ. । 2 / 7 / 1 ।।
17. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति ।। तैत्ति. उ. । 3 / 1 / 1 ।।
18. अन्नं न निन्द्यात् ।। तैत्ति. । 3 / 7 / 1 ।।
19. परोक्षप्रिया इव हि देवाः ।। ऐतरेयोप. । 1 / 3 / 14 ।।
20. ओङ्कार एवेदं सर्वम् ।। छा. उ. । 2 / 23 / 3 ।।
21. सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।। छा. उ. । 3 / 14 / 1 ।।
22. न जीवो म्रियते ।। छा. । 6 / 11 / 3 ।।
23. तत्त्वमसि ।। छा. उ. । 6 / 16 / 3 ।।
24. यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।। छा. उ. । 7 / 23 / 1 ।।
25. यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते ।। छा. उ. । 8 / 1 / 6 ।
26. असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मामृतंगमय ।। बृह. उ. । 1 / 3 / 28 ।
27. अहं ब्रह्मास्मि ।। बृह. उ. । 1 / 4 / 10 ।।
28. कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः ।। बृह. उ. । 1 / 5 / 18 ।।
29. आत्मा वा रे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।। बृह. उ. 2 / 4 / 5 ।।
30. अस्त महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृगवेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ।। बृ. उ. । 2 / 4 / 10
31. त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवा ।। बृ. उ. । 3 / 9 / 2 ।।

32. विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ॥ बृ. उ. । 3 / 9 / 28 ॥
33. नेह नानास्ति किञ्चन ॥ बृ. उ. । 4 / 4 / 19 ॥ कठोप. । 2 / 1 / 11 ॥
34. नेति नेति ॥ बृ. उ. । 4 / 5 / 3 ॥
35. ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
बृ. उ. । 5 / 1 / 1 ॥ ई. उ. / 1 ॥
36. त्रयं शिक्षेद् दमं दानं दयामिति ॥ बृ. उ. । 5 / 2 / 3 ॥
37. सत्यं ब्रह्म ॥ बृ. उ. । 5 / 4 / 1 ॥
38. पुरुष एवेदं सर्व यद्भूतं यच्च भव्यम् ॥ श्वेता. । 3 / 15 ॥
39. नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते वहिः ॥ श्वेता. । 3 / 18 ॥
40. अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ॥ श्वेता. । 4 / 5 ॥
41. न स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः । यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स रक्षते ॥ श्वेता. । 5 / 10 ॥
42. तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ श्वेता. । 6 / 14 ॥
43. मन एव मनुष्याणां कारणं वन्धमोक्षयोः ॥ ब्रह्मविन्दूप. । 1 / 2 ॥
44. अहं शिवरूपमस्मि ॥ कैवल्योप. । 1 / 20 ॥
45. आपो वै सर्वा देवताः ॥ जावालोप. । चतुर्थखण्ड ॥
46. सूचनात् सूत्रम् ॥ आरुणिकोप. । 3 ॥
47. विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ महानारायणोप. । 9 / 7 ॥
48. चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा .... ॥ म. ना. उ. । 10 / 1 ॥
49. अमृतमापः ॥ म. ना. उ. । 14 / 1 ॥
50. धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति ॥ म. ना. उ. । 22 / 1 ॥
51. यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं वलमस्तु तेजः ॥ ब्रह्मोपनिषद् ॥
52. अयमात्मा ब्रह्म ॥ बृह. उ. । 2 / 5 / 19 ॥
53. ॐ नमो भगवते ॥ अक्ष्युपनिषद् ॥
54. ॐ भूर्भुवः स्वः ॥ सूर्योपनिषद् ॥
55. ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ॥ सूर्योपनिषद् ॥
56. स वा अयमात्मा ब्रह्म ॥ बृह. उ. । 4 / 4 / 5 ॥
57. रमन्ते योगिनोऽन्ते ॥ रा. पू. ता. ॥
58. कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ॥ ई. उ. । 2 ॥
59. धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ कठोप. । 1 / 2 / 12 ॥
60. मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ कठोप. । 2 / 1 / 10 ॥
61. पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ प्र. उ. । 3 / 7 ॥
62. परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥ मुण्डकोप. । 3 / 2 / 7 ॥
63. तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः ॥ तैत्ति. उ. । 2 / 1 / 1 ॥
64. वेदा ह्यमृताः ॥ छा. उ. । 3 / 5 / 4 ॥
65. आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्वं विदितम् ॥ बृ. उ. । 4 / 5 / 6 ॥

1.3. संवाद-सूक्त

1.3.1. पुरुरवा-उर्वशी. ऋक्. 10/95

पुरुरवसि राजवर्षावप्सरास्तूर्वशी पुरा ।
न्यवसत्संविदं कृत्वा तस्मिन् धर्मं चचार च ॥ 147 ॥

(प्राचीनकाल में उर्वशी नाम की अप्सरा, पुरुरवा नाम के राजर्षि के साथ रही । नियमपूर्व वह उसके साथ लोक-धर्म में प्रवृत्त हुई ।)

तया तस्य च संवासमसूयन् पाकशासन : ।
पैतामहं चानुरागमिन्द्रवच्चापि तस्य तु ॥ 148 ॥

(पाकशासन अर्थात् इन्द्र ने उर्वशी के साथ पुरुरवा के सहवास की तथा पुरुरवा पर इन्द्र तुल्य ब्रह्मा के प्रेम की ईर्ष्या करते हुए (अपने बगल में बैठे हुए) वज्र से कहा ।)

स तयोस्तु तु वियोगार्थं पार्श्वस्थं वज्रमब्रवीत ।
प्रीतिं भिन्द्धि तयोर्वज्र मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ 149 ॥

(उस इन्द्र ने उन दोनों अर्थात् पुरुरवा और उर्वशी का वियोग कराने के लिए पार्श्वस्थ वज्र कहा, हे वज्र ! यदि मेरा प्रिय चाहो, तो उन दोनों का प्रेम तोड़ दो ।)

तथेत्युक्त्वा तयोः प्रीतिं वज्रोऽभिनत् स्वमायया ।
ततस्तया विहीनस्तु चचारोन्मत्तवन्नृपः ॥ 150 ॥

वज्र ने कहा–वैसा ही होगा (तथा) उसने अपनी माया से उनका प्रेम तोड़ दिया; तब उ से वियुक्त होकर पुरुरवा पागल की भाँति इधर-उधर घूमने लगा ।)

चरन् सरसि सोऽपश्यदभिरूपामिवोर्वशीम् ।
सखीभिरभिरूपाभिः पञ्चभिः पार्श्वतो वृताम् ॥ 151 ॥

(इधर-उधर भटकते हुए उस पुरुरवा ने एक सरोवर में पाँच समान रूपवती सखियों के सुन्दरी उर्वशी को देखा ।)

तामाह पुनरेहीति दुःखात्सा त्वब्रवीन्नृपम् ।
अप्राप्याहं त्वयाद्येहस्वर्गे प्राप्स्यसि मां पुनः ॥ 152 ॥

(पुरुरवा ने उससे कहा-पुनः मेरे पास आओ; परन्तु उस उर्वशी ने दुःख के साथ राजा उत्तर दिया–अब मैं तुम्हारे लिए अप्राप्य हूँ । तुम मुझे पुनः स्वर्ग में प्राप्त करोगे।)

Note:—उपर्युक्त श्लोक क्रमाङ्क 147 से 152 तक; ऋग्वेद में उल्लिखित न होने के कारण, के क्रमभङ्क को ध्यान में रखते हुए, बृहद्देवता //7/147–152// (पुरुरवा-उर्वशी-व के आधार पर दिया गया है. ऋग्वेदस्थ मूल संवाद-सूक्त निम्नलिखित है.

ऋषि – पुरुरवा ऐळ और उर्वशी ।
देवता – उर्वशी और पुरुरवा ऐळ ।
छन्द – त्रिष्टुप् ।
स्वर – धैवत ।

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन् परतरे चनाहन् ॥ 1 ॥

(पुरुरवा ने उर्वशी से कहा)–हे निर्दय नारी ! तुम अपने मन को अनुरागी बनाओ । हम ही परस्पर वार्तालाप करें । यदि हम इस समय मौन रहेंगे तो आने वाले दिनों में सुखी नहीं होंगे ।।

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।

पुरुरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वातइवाहमस्मि ॥ 2 ॥

(उर्वशी ने उत्तर दिया)–हे पुरुरवा ! वार्तालाप से कोई लाभ नहीं । मैं वायु के समान ही दुष्प्राप्य नारी हूँ । उषा के समान तुम्हारे पास आई हूँ । तुम अपने गृह को लौट जाओ ॥ 2 ॥

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।

अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥ 3 ॥

(पुरुरवा ने कहा)–हे उर्वशी ! मैं तुम्हारे वियोग में इतना सन्तप्त हूँ कि, अपने तूणीर से वाण निकालने में भी असमर्थ हो रहा हूँ । इस कारण में युद्ध जीतकर असीमित गायों को नहीं ला सकता । मैं राजकार्यों से विमुख हो गया हूँ । अतः मेरे सैनिक भी कार्यहीन हो गए हैं ॥ 3 ॥

सा वसु दधती श्वसुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।

अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥ 4 ॥

हे उषा ! उर्वशी यदि श्वसुर को भोजन कराना चाहती तो निकटस्थ घर से पति के पास जाती ॥ 4 ॥

त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।

पुरुरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्व स्तदासीः ॥ 5 ॥

(उर्वशी ने कहा)–हे पुरुरवा ! मुझे किसी सपत्नी से प्रतिस्पर्द्धा नहीं थी, क्योंकि मैं तुमसे हर प्रकार से सन्तुष्ट थी । जव से मैं तुम्हारे घर से आई तभी से तुमने सुखों का विधान किया ॥ 5 ॥

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिहदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।

ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥ 6 ॥

सुजूर्णि, श्रेणि, सुम्न आदि अप्सराएं मलिन वेश में यहाँ आती थीं । गोष्ठ में जाती हुई गायें जैसे शब्द करती हैं, वैसे ही शब्द करने वाली वे महिलाएं मेरे घर में नहीं आती थीं ॥ 6 ॥

समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः ।

महे यत्त्वा पुरुरवो रणायावर्धयन् दस्युहत्याय देवाः ॥ 7 ॥

जब पुरुरवा उत्पन्न हुआ, तब सभी देवाङ्गनाएं उसे देखने आयीं । नदियों ने भी उसकी प्रशंसा की । तब हे पुरुरवा ! देवताओं ने घोर संग्राम में जाने तथा दस्यु के विनाश हेतु तुम्हारी स्तुति की ॥ 7 ॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।

अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः ॥ 8 ॥

जब पुरुरवा मनुष्य होकर अप्सराओं की ओर गए, तब अप्सराएं अन्तर्धान हो गईं । वह उसी प्रकार वहाँ से चली गईं, जैसे भॅयभीत हरिणी भागती है या रथ में योजित अश्व द्रुतगति से चले जाते हैं ॥ 8 ॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।

ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥ 9 ॥

मनुष्य योनि को प्राप्त हुए पुरुरवा जब दिव्यलोकवासिनी अप्सराओं की ओर बढ़े, तो वे अप्सराएं वैसे ही भाग गईं, जैसा क्रीडाकारी अश्व भाग जाता है ॥ 9 ॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।

जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशीं तिरत दीर्घमायुः ॥ 10 ॥

जो उर्वशी अंतरिक्ष की विद्युत के समान आभामयी है, उसने मेरी सभी अभिलाषाओं को पूर्ण किया था । वह उर्वशी अपने द्वारा उत्पन्न मेरे पुत्र को दीर्घजीवी करे ॥ 10 ॥

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः ।

आशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आश्रृणोः किमभुग्वदासि ॥ 11 ॥

(उर्वशी ने कहा)–हे पुरुरवा ! तुमने पृथिवी की रक्षा के लिए पुत्र उत्पन्न किया है । मैं तुमसे अनेक बार कह चुकी हूँ कि, मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगी । तुम इस समय प्रजा-पालन के कार्य से विमुख होकर व्यर्थ-वार्तालाप क्यों करते हो ? ॥ 11 ॥

कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।

को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥ 12 ॥

(पुरुरवा ने कहा)–हे उर्वशी ! तुम्हारा पुत्र मेरे पास किस प्रकार रहेगा ? वह मेरे पास आकर रोवेगा । पारस्परिक प्रेम के बन्धन को कौन सद्‌गृहस्थ तोड़ना स्वीकार करेगा ? तुम्हारे श्वशुर के घर में श्रेष्ठ आलोक जगमगा उठा है ॥ 12 ॥

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।

प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥ 13 ॥

(उर्वशी ने कहा)–हे पुरुरवा मेरा उत्तर सुनो । मेरा पुत्र तुम्हारे पास आकर नहीं रायेगा । मैं सदैव उसकी मंगल-कामना करूँगी । तुम अब मुझे नहीं पा सकोगे । अतः अपने घर को लोट जाओ । मैं तुम्हारे पुत्र को तुम्हारे पास भेज दूँगी ॥ 13 ॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ ।

अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥ 14 ॥

(पुरुरवा ने कहा)–हे उर्वशी ! मैं तुम्हारा पति आज पृथिवी पर गिर पड़ा हूँ । वह (मैं) फिर कभी न उठ सका । वह दुर्गति के बन्धन में फँसकर मृत्यु को प्राप्त हो, और वृक (भेड़िया) आदि उसके शरीर का भक्षण करें ॥ 14 ॥

पुरुरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन् ।

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥ 15 ॥

(उर्वशी ने कहा)–हे पुरुरवा ! तुम गिरो मत । तुम अपनी मृत्यु की इच्छा मत करो । तुम्हारे शरीर को वृक आदि भक्षण न करें । स्त्रियों का और वृकों का हृदय एक समान होता है, उनकी मित्रता कभी अटूट (स्थायी) नहीं रहती ॥ 15 ॥

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।

घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्ना तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥ 16 ॥

(उर्वशी ने कहा)–मैंने विविधरूप धारण करके मनुष्यों में विचरण किया । चार वर्षों तक मैं मनुष्यों में ही वास करती रही । नित्यप्रति एक बार घृतपान करती हुई घूमती रही ॥ 16 ॥

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वशिष्ठः ।

उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥ 17 ॥

(पुरुरवा ने कहा)–उर्वशी जल को प्रकट करने वाली तथा अंतरिक्ष को पूर्ण करने वाली है । वशिष्ठ ही उसे अपने वश में कर सके हैं । तुम्हारे पास उत्तमकर्मा पुरुरवा रहे (मैं रहूँ) । हे उर्वशी ! मेरा हृदय जल रहा है, अतः लोट आओ ॥ 17 ॥

इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद्‌भवसि मृत्युबन्धुः ।

प्रजा ते देवान् हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥ 18 ॥

(उर्वशी ने कहा)–हे पुरुरवा ! सभी देवताओं का कथन है कि, तुम मृत्यु को जीतने वाले होवोगे और हव्य द्वारा देवताओं का यज्ञ करोगे, फिर स्वर्ग में आनन्दपूर्वक वास करोगे ॥ 18 ॥

1.3.2. यम-यमी. ऋग्वेद 10/10.

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।

पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यमानः ॥ 1 ॥

(यमी अपने सहोदर भाई यम से कहती है)–विस्तृत समुद्र के मध्य द्वीप में आकर, इस निर्जन प्रदेश में मैं तुम्हारा सहवास (मिलन) चाहती हूँ; क्योंकि माता की गर्भावस्था से ही तुम मेरे साथी हो। विधाता ने मन ही मन समझा है कि तुम्हारे द्वारा मेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा; वह हमारे पिता का एक श्रेष्ठ नाती होगा ।

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद्विपुरुषा भवाति ।

महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परिख्यन् ॥ 2 ॥

(यम ने कहा)–यमी, तुम्हारा साथी यम, तुम्हारे साथ ऐसा सम्पर्क नहीं चाहता; क्योंकि तुम सहोदरा भगिनी हो, अतः अगन्तव्या हो । यह निर्जनप्रदेश नहीं हैं; क्योंकि द्युलोक को धारण करने वाले महान् बलशाली प्रजापति के पुत्रगण (देवताओं के चर) सब कुछ देखते हैं ।

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।

नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥ 3 ॥

(यमी ने कहा)–यद्यपि मनुष्य के लिए ऐसा संसर्ग निषिद्ध है, तो भी देवता लोग इच्छापूर्वक ऐसा संसर्ग करते हैं । अतः मेरी इच्छानुकूल तुम भी करो । पुत्र-जन्मदाता पति के समान मेरे शरीर में पैठो (मेरा सम्भोग करो ।)

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम ।

गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥ 4 ॥

(यम ने उत्तर दिया)–हमने ऐसा कर्म कभी नहीं किया । हम सत्यवक्ता हैं । कभी मिथ्या कथन नहीं किया है । अन्तरिक्ष में स्थित गन्धर्व या जल के धारक आदित्य तथा अन्तरिक्ष में रहने वाली योषा (सूर्यस्त्री-सरण्यू) हमारे माता-पिता हैं । अतः, हम सहोदर बन्धु हैं । ऐसा सम्बन्ध उचित नहीं है.

गर्भे नु नौं जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।

नकिरस्य प्रमिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथ्वी उत द्यौः ॥ 5 ॥

(यमी ने कहा)–रूपकर्ता, शुभाशुभ प्रेरक, सर्वात्मक, दिव्य और जनक प्रजापति ने तो हमें गर्भावस्था में ही दम्पति बना दिया है । प्रजापति का कर्म कोई लुप्त नहीं कर सकता । हमारे इस सम्बन्ध को द्यावा-पृथ्वी भी जानते हैं ।

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्रवोचत् ।

बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहो वीच्या नॄन् ॥ 6 ॥

(यमी ने पुनः कहा)–प्रथम दिन (संगमन) की बात कौन जानता है ? किसने उसे देखा है ? किसने उसका प्रकाश किया है ? मित्र और वरुण का यह जो महान्धाम (अहोरात्र) है, उसके बारे में हे मोक्ष, बन्धनकर्ता यम ! तुम क्या कहते हो ?

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।

जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ 7 ॥

(यमी ने कहा)–जैसे एक शैया पर पत्नी, पति के साथ अपनी देह का उद्घाटन करती है, वैसे ही तुम्हारे पास मैं अपने शरीर को प्रकाशित कर देती हूँ । तुम मेरी अभिलाषा करो । आओ हम दोनों एक स्थान पर शयन करें । रथ के दोनों चक्कों के समान एक कार्य में प्रवृत्त हों ।

न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।

अन्येन महाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ 8 ॥

(यम ने उत्तर दिया)–देवों में जो गुप्तचर हैं, वे रात-दिन विचरण करते हैं । उनकी आँखें कभी वन्द नहीं होतीं । दुःखदायिनी यमी ! शीघ्र दूसरे के पास जाओ, और रथ के चक्कों के समान उसके साथ एक कार्य करो ।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्यचक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।

दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विभृयादजामि ॥ 9 ॥

(यम ने पुनः कहा)–दिन-रात में यम के लिए जो कल्पित भाग हैं, उसे यजमान दें । सूर्य का तेज यम के लिए उदित हो । परस्पर सम्वद्ध दिन, द्युलोक और भूलोक यम के वन्धु हैं । यमी, यम भ्राता के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को धारण करे ।

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।

उप बर्वृहि वृषभाय वाहु मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ 10 ॥

(यम ने पुनः कहा)–भविष्य में ऐसा युग आयेगा, जिसमें भगिनियाँ अपने वन्धुत्व विहीन भ्राता को पति वनावेंगीं । सुन्दरी ! मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे को पति वनाओ । वह वीर्य सिंचन करेगा; उस समय उसे वाहुओं में आलिङ्गन करना ।

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।

काममूता वह्वे तद्रापामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥ 11 ॥

(यमी ने कहा)–वह कैसा भ्राता है; जिसके रहते भगिनी अनाथा हो जाय, और भगिनी ही क्या है, जिसके रहते भ्राता का दुःख दूर न हो ? मैं काममूर्च्छिता होकर नाना प्रकार से बोल रही हूँ; यह विचार करके भली-भाँति मेरा सम्भोग करो ।

न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।

अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ 12 ॥

(यम ने उत्तर दिया)–हे यमी ! मैं तुम्हारे शरीर से अपना शरीर मिलाना नहीं चाहता । जो भ्राता, भगिनी का सम्भोग करता है, उसे लोग पापी कहते हैं । सुन्दरी ! मुझे छोड़कर अन्य के साथ आमोद-प्रमोद करो । तुम्हारा भ्राता तुम्हारे साथ मैथुन करना नहीं चाहता ।

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।

अन्या किल त्वा कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥ 13 ॥

(यमी ने कहा)–हाय यम; तुम दुर्वल हो । तुम्हारे मन और हृदय को मैं कुछ नहीं समझ सकती । जैसे-रस्सी घोड़े को वाँधती है, तथा लता जैसे वृक्ष का आलिङ्गन करती है; वैसे ही अन्य स्त्री तुम्हें अनायास ही आलिङ्गन करती है; परन्तु तुम मुझे नहीं चाहते हो ।

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।

तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाऽधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥ 14 ॥

(यम ने यमी से कहा)–तुम भी अन्य पुरुष का ही भली-भाँति आलिङ्गन करो । जैसे-लता, वृक्ष का आलिङ्गन करती है, वैसे ही अन्य पुरुष तुम्हें आलिङ्गित करे । तुम उसी का मन हरण करो अपने सहवास का प्रवन्ध उसी के साथ करो । इसी में मङ्गल होगा ।*

---

* ऋषि – यमी वैवस्वती; यम वैवस्वत ।
देवता – यम वैवस्वत; यमी वैवस्वती ।
छन्द – त्रिष्टुप् ।
स्वर – धैवत ।

1.3.3. सरमा-पणि. ऋग्वेद. 10/108.

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड्, दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि ॥ 1 ॥

(सरमा क्या इच्छा करती हुई इस स्थान पर पहुँची है; क्योंकि मार्ग वहुत दूर उभरा हुआ तथा गमनागमन से रहित है । हममें तुम्हारा कौनसा अभिप्रेत अर्थ निहित है ? तुम्हारी यात्रा कैसी थी ? रसा (नदी) के जल को तुमने कैसे पार किया ?)

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि, महइच्छन्ती पणयो निधीन्वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आव,त्तथा रसाया अतरं पयांसि ॥ 2 ॥

(हे पणियों ! इन्द्र के द्वारा भेजी गई, मैं उसकी दूती हूँ । तुम लोगों के प्रभूत धन की इच्छा करती हुई घूम रही हूँ । मेरे कूदने के भय से उस रसा के जल ने मेरी सहायता की । इस प्रकार रसा के जल को मैंने पार किया ।)

की दृङिन्द्रः सरमे का दृशीका, यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च मच्छान्मित्रमेना दधा,माथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥ 3 ॥

(हे सरमा ! इन्द्र कैसा है ? उसकी दृष्टि कैसी है ? जिसकी दूती (तुम) दूर से यहाँ आई हो । अगर वह आवे, तो हम उसे मित्र वनावेंगे । तव वह हमारी गायों का संरक्षक (गोपति) होगा ।)

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स, यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा, हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥ 4 ॥

(सरमा ने कहा)–मैं उसको कष्ट पहुँचाया जाने वाला नहीं समझती हूँ; अपितु वह (शत्रुओं को) कष्ट देता है । जिसकी मैं दूती वनकर वहुत दूर से यहाँ आई हूँ । वहती हुई गहरे जल वाली नदियाँ उसको छिपा नहीं सकतीं । हे पणियों ! इन्द्र द्वारा मारे जाकर तुम लोग (पृथ्वी पर) पड़ जाओगे ।

इमा गावः सरमे या ऐच्छः, परिदिवो अन्तान्त्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥ 5 ॥

(पणियों ने कहा)–हे सरमा ! आकाश की छोर तक चारों तरफ घूमती हुई इन गायों को, जिनकी तुमने इच्छा की है । हे सौभाग्यवती ! तुममें से कौन मुक्त कर सकता है ? और हमारे शस्त्र भी अत्यन्त तीक्ष्ण हैं ।

असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तनवः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था, बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥ 6 ॥

(सरमा ने कहा)–हे पापियों ! तुम्हारे वचन शस्त्र के आघात से सुरक्षित हैं; तथा पापी शरीर वाणों के निशाने से बचने वाले हो सकते हैं । तुम्हारे पास पहुँचने के लिए मार्ग भी अगम्य हो सकता है; किन्तु किसी भी प्रकार से वृहस्पति दया नहीं करेंगे ।

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो, गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा, रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥ 7 ॥

(पणियों ने कहा)–हे सरमा ! गायों, अश्वों तथा रत्नों से भरा हुआ यह खजाना पर्वतों से ढका हुआ है । कुशल रक्षक पणि, इसकी रक्षा करते हैं । तुम व्यर्थ में इस खाली स्थान पर आई हो ।

एह गमन्नृषयः सोमशिता, अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोना,-मथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥ 8 ॥

(सरमा ने कहा)–सोमपान से उत्तेजित, अयास्य, अङ्गिरस, नवग्वा आदि ऋषि यहाँ पर आयेंगे । वे गायों के इस विशाल समूह को वाँट लेंगे । तव पणियों को अपने इस वचन को उगलना पड़ेगा ।

एवा च त्वं सरम आजगन्थ, प्रबधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा, अप ते गवां सुभगे भजाम ॥ 9 ॥

(पणियों के कहा)–हे सरमा ! इस प्रकार यदि तुम देवताओं की शक्ति से पीड़ित की गई हो; तो हम तुम्हें वहन वनाते हैं । फिर मत जाओ । हे सौभाग्यवती ! हम तुम्हें गायों का अलग हिस्सा देंगे ।

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥ 10 ॥

(सरमा ने कहा)–मैं न तो भ्रातृत्व को जानती हूँ न स्वसृत्व को; इन्द्र तथा भयानक अङ्गिरस इसको जानते हैं । जब मैं आई (तव) वे गायों की इच्छा करने वाले मालूम पड़े । अतः हे पणियों ! (इसकी अपेक्षा) किसी विस्तृत स्थान पर चले जावो ।

दूरमित पणयो वरीय उद्,
गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः,
सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥ 11 ॥

(सरमा ने कहा)–हे पणियो ! किसी विस्तृत स्थान पर चले जावो । छिपी हुई गायें, चट्टानों के आवरण को तोड़ती हुई सत्य नियम के अनुकूल वाहर निकलें; जिनको बृहस्पति ने ढूँढ़ निकाला है तथा जिनका, सोम ने, पत्थरों ने तथा बुद्धिमान ऋषियों ने (पता लगाया है ।) *

1.3.4. विश्वामित्र-नदी. ऋग्वेद 3/33.

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे, विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ 1 ॥

पर्वतों की गोद से निकलकर समुद्र की ओर जाने की इच्छा करती हुई (परस्पर) स्पर्द्धा से दौड़ती हुई, खुले वाग वाली दो घोड़ियों की तरह (वछड़े) को चाटती हुई दो सफेद माता गायों की तरह विपाट् और शुतुद्री (अपने) प्रवाह से तेजी से वह रही हैं.

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे, अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने, अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ 2 ॥

इन्द्र द्वारा भेजी गई, वहने के लिए प्रार्थना करती हुई, दो रथियों की तरह समुद्र की ओर जा रही हो । हे शुभ्रे ! एक साथ जाती हुई, लहरों से उमड़ती हुई; तुममें से प्रत्येक एक दूसरे की ओर जा रही हो ।

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं, विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरासंरिहाणे, समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥ 3 ॥

श्रेष्ठ नदी माता (शुतुद्री) के पास आया हूँ । चौड़ी तथा सुन्दर विपाट् के पास आया हूँ । वछड़े को चाटती हुई दो माताओं की तरह, एक ही स्थान (समुद्र) को लक्ष्य करके बहती हुई (शुतुद्री और विपाट्) के पास आया हूँ ।

एना वयं पयसा पिन्वमाना, अनुयोनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः, किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ 4 ॥

---

* ऋषि – पणि, सरमा ।
देवता – सरमा, पणि ।
छन्द – त्रिष्टुप् ।
स्वर – धैवत ।

ऐसी हम लोग अपनी धारा से उमड़ रही हैं, तथा देव (इन्द्र) द्वारा निर्मित स्थान पर चल रही हैं । स्वाभाविक रूप से प्रवाहित हम लोगों की गति रुकने के लिए नहीं है । किस इच्छा से ऋषि (विश्वामित्र) नदियों की वार-वार स्तुति कर रहा है ।

रमध्वं मे वचसे सोम्याय, ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।

प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा, वस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ 5 ॥

हे पवित्र जलवाली (नदियों) ! सोमाप्लावित मेरे वचनों के प्रति अपनी यात्रा से क्षणभर के लिए रुक जाओ । अपनी सहायता का इच्छुक, कुशिकपुत्र मैंने ऊँची स्थिति से नदी (शुतुद्री) का आह्वान किया है ।

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुर,–पाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।

देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम् उर्वीः ॥ 6 ॥

वज्रधारी इन्द्र ने हमें खोदकर वाहर किया । उसने नदियों के घेरने वाले वृत्र को मारा । सुन्दर हाथों वाले सवितृ देव ने हम लोगों को लाया । हम जितनी चौड़ी हैं, उसकी आज्ञा में निरन्तर वहती हैं ।

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तद्, इन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।

वि वज्रेण परिषदो जघाना,–यन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ 7 ॥

इन्द्र का वह पराक्रमयुक्त कार्य, जो उसने अहि को मारा, अवश्य कहने योग्य है । उसने वज्र से (जल के) प्रतिवन्धकों को काट डाला । जल अपना मार्ग खोजता हुआ प्रवाहित हुआ ।

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा, आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।

उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व, मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥ 8 ॥

हे स्तुतिगायक ! इस वचन को कभी भी मत भूलो, ताकि भावियुगों के लोग तुम्हारे इस वचन को सुन सकें । हे कवि ! अपनी स्तुतियों में हमारा आदर रखो । हम लोगों को मनुष्यकोटि में नीचे मत लावो । (हमारा) तुम्हें नमस्कार है ।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत, ययौ वो दूरादनसा रथेन ।

नि षू नमध्वं भवता सुपारा, अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ 9 ॥

हे सुन्दर बहनो ! (मुझ) कवि की वात सुनो; (क्योंकि मैं) तुम्हारे पास बहुत दूर से गाड़ी तथा रथ से आया हूँ । अच्छी तरह झुक जावो । हे नदियो अपनी जलधारा से अक्ष के नीचे होकर (बहती हुई) आसानी से पार करने योग्य हो जावो ।

आ ते कारो शृणवामा वचांसि, ययाथ दूरादनसा रथेन ।

नि ते नंसै पीप्यानेव योषा, मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ 10 ॥

हे कवि ! हम तुम्हारी बातें सुनती हैं, (क्योंकि तुम) बहुत दूर से गाड़ी तथा रथ के साथ आये हो । तुम्हारे लिये मैं नीचे झुकती हूँ, जैसे दूध से भरे स्तन वाली औरत (अपने पुत्र के लिए) तथा जैसे युवती अपने प्रेमी का आलिङ्गन करने के लिए (झुकती है) ।

यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।

अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त, आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥ 11 ॥

(हे नदियो) चूँकि (तुम्हारी अनुमति मिल गई है, इसलिए) भरतवंशी (हम लोग) तुम्हें पार करें, पार जाने की इच्छा वाला (तुम्हारे द्वारा) अनुज्ञात एवं इन्द्र द्वारा भेजा गया (भरतवंशियों का) झुंड (पार करे) (तुम्हारा) प्रवाह अपनी स्वाभाविक गति में प्रवाहित होता हुआ बहे । मैं पवित्र नदियों का समर्थन चाहता हूँ ।

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।

प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा, आ वक्षणाः पृणध्वं यात् शीभम् ॥ 12 ॥ 13 ॥

पार जाने की इच्छावाले भरतवंशियों ने पार कर लिया । ब्राह्मण ने नदियों का समर्थन प्राप्त कर लिया । सुन्दर धनवाली (तुम लोग) धन लाती हुई अपनी जगह पर प्रवाहित होवो; भर जावो; शीघ्रता से वहो ।

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥ 13 ॥ 12 ॥

तुम्हारी धारा जुवा की कील के नीचे से वहे । जल रस्सी को छोड़ दे । दुष्कृतों से रहित, पापरहित तथा तिरस्कार न करने योग्य (ये नदियाँ) वृद्धि न प्राप्त करें ।*

1.4. वैदिक साहित्य का इतिहास

1.4.1. वैदिक काल के विषय में विभिन्न सिद्धान्त

1.4.1.1. मैक्समूलर (Prof. Maxmuller).

प्रो. मैक्समूलर ने सन् 1859 ई. में अपने ग्रन्थ "A History of Ancient Sanskrit-Literature" में वेदों के काल-निर्णय का प्रथम श्लाघनीय प्रयास किया । उनके अनुसार सर्वप्राचीन ऋग्वेद की रचना 1200 विक्रम पूर्व में हुई होगी; क्योंकि विक्रम से लगभग 500 वर्ष पूर्व वौद्ध-धर्म का उदय समस्त वैदिक वाङ्मय के अस्तित्व को स्वीकार करता है । अतः वेद, वौद्ध-धर्म से अर्वाचीन नहीं हो सकते । इसी वौद्ध धर्म की आधार-शिला पर प्रो. मैक्समूलर का वैदिक-काल-निर्णय-विषयक प्रारम्भिक मत सर्वतोभावेन अवलम्वित है ।

प्रो. मैक्समूलर ने समग्र वैदिक युग को चार विभागों में वाँटा है-(1) छन्दकाल (2) मन्त्रकाल (3) ब्राह्मणकाल (4) सूत्रकाल । इसमें प्रत्येक युग की विचारधारा के उदय तथा ग्रन्थनिर्माण के लिए उन्होंने 200 वर्षों का काल माना है । वुद्ध से प्रथम होने के कारण सूत्रकाल 600 विक्रम पूर्व; ब्राह्मणकाल 600 से 800 वि.पू.; मन्त्रकाल 800 से 1000 वि.पू. तथा छन्दकाल 1000 से 1200 विक्रम पूर्व तक स्वीकार किया । उनकी दृष्टि में यही मौलिकता का युग था; परन्तु वाद में मैक्समूलर को यह समय कम जान पड़ा, तो उन्होंने अपनी पुस्तक-"Chips from a German workshop" में इस काल को वढ़ाकर 1500 वि.पूर्व निर्धारित किया तथा सन् 1890 ई. में प्रकाशित "Physical Religion" (भौतिक धर्म) नामक अपनी पुस्तक में उसी प्रो. मैक्समूलर ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए लिखा-"We could hope to be able to laydown at terminus a quo-weather the Vedic-Hymns were compossed in 1000 or 1500 or 2000 or 3000years B.C. no power on earth could ever fix." अर्थात् इस भूतल पर कोई भी ऐसी शक्ति नहीं है, जो कभी निश्चय कर सके कि वैदिक मन्त्रों की रचना 1000 या 1500 या 2000 या 3000 वि.पू. में की गई हो । परन्तु यह भारत और भारतीय संस्कृति का दुर्भाग्य ही है कि हम आज भी वेदों के काल-निर्णय के विषय में 1200 विक्रम पूर्व को ही शाश्वत सत्य मान वैठे हैं, जवकि इस मत के प्रस्तोता स्वयं मैक्समूलर ने इसे अपनी भूल वताया ।

1.4.1.2. ए. वेबर. (A. Weber).

सुप्रसिद्ध जर्मन वेद-विद्यार्थी प्रो. ए. वेवर ने कहा है-"वेदों का समय निश्चित नहीं किया जा सकता । वे उस तिथि के वने हुए हैं, जहाँ तक पहुँचने के लिए हमारे पास उपयुक्त साधन नहीं हैं।

---

* ऋषि – विश्वामित्र ।
देवता – नदियाँ (विपाट्, शुतुद्री) ।
छन्द – पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, उष्णिक् ।
स्वर – 1,7,5, पञ्चम / 2,4,6,8,–12, धैवत / 13, ऋषभ ।

वर्तमान प्रमाण-राशि, हम लोगों को उस समय के उन्नत शिखर तक पहुँचाने में असमर्थ है ।" प्रो. वेवर ने यही कहा कि-"वेदों के समय को कम से कम 1200 ई.पू. या 1500 ई.पू. के बाद का कथमपि स्वीकार नहीं किया जा सकता ।" यह उस प्रकाण्ड वैदिक विद्वान् का मत है, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन वेदाध्ययन में ही विताया तथा अनेक वैदिक ग्रन्थों का सम्पादन करके उन्हें छपवाया ।

प्रो. वेवर ने अपनी पुस्तक-"History of Indian literature" में यहाँ तक लिख दिया कि-"Any such of attempt of defining the Vedic antiquity is absolutly fruitless." अर्थात् इस वात के लिए प्रयत्न करना सर्वथा वेकार है ।

1.4.1.3. डा. जैकोबी. (Jacobi).

जर्मन विद्वान् डा. जैकोवी का वैदिक काल विषयक सिद्धान्त, ज्योतिष की आधार शिला पर अवलम्वित है; जो वालगंगाधर तिलक के मत से मिलता-जुलता है । डा. जैकोवी ने कृत्तिका और **बसन्तसम्पात*** के आधार पर वेदमन्त्रों का रचना काल 4590 ई.पू. तथा व्राह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल 2500 ई.पू. के पश्चात् स्वीकार किया है । डा. जैकोबी अपने मत की पुष्टि में ऋग्वेद की **"मण्डूक-सूक्त"** की एक ऋचा का उल्लेख करते हैं-

"देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य, ऋतुं नरो न प्र मिनन्येते ।

संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ताधर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥" ऋक् /7/10/3/9 //

इस ऋचा में **"संवत्सरे प्रावृष्यागतायाम्"** (संवत्सर की गणना में वर्षा ऋतु के आने पर **"जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुम्"**-संवत्सर के जो वारह मास होते हैं; उनके क्रम में वर्षा ऋतु के प्रथम स्थान की रक्षा करते हैं ।

1.4.1.4. बाल गंगाधर तिलक (Balgangadhar Tilak).

'लोकमान्य वाल गंगाधर तिलक' ने ऋग्वेद में उपलब्ध ज्योतिष-विषयक साक्ष्यों के आधार पर वेदों का काल 4000 से 6000 विक्रम पूर्व स्वीकार किया है ।

ऋग्वेद का प्रगाढ़ अनुशीलन करके, तिलकजी ने 'मृगशिरा' नक्षत्र में 'वसन्तसम्पात' होने के अनेक साक्ष्य एकत्र किये हैं । तैत्तिरीय-संहिता का कथन है कि-"फाल्गुनी पूर्णिमा वर्ष का मुख है ।" तिलकजी का मानना है कि यदि पूर्णचन्द्रमा, फाल्गुनी नक्षत्र में था, तो सूर्य अवश्यमेव 'मृगशिरा' में

---

* जनसामान्य को विदित है कि-वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा शिशिर कुल छः ऋतुएँ होती हैं । प्राचीनकाल से लेकर आज तक जिस नक्षत्र के साथ जिस ऋतु का उदय होता था, आज वही ऋतु, उस नक्षत्र से पूर्ववर्ती नक्षत्र के समय आकर उपस्थित होता है अर्थात् ऋतुएँ कमशः पीछे हटती चली जा रही हैं । प्राचीन काल में वसन्त से वर्ष का प्रारम्भ माना जाता था; जवकि आजकाल 'वसंतसम्पात' (Vernal equinox) मीन की संक्रान्ति से प्रारम्भ होता है और यह संक्रान्ति पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण से प्रारम्भ होती है, जवकि किसी समय यह 'वसन्तसम्पात' उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि नक्षत्रों में था ।

भारतीय ज्योतिषियों ने सूर्य के संक्रमणवृत्त को कुल 360 अंशों में विभक्त कर रखा है, जो कुल 27 नक्षत्रों में विभक्त है अर्थात् प्रत्येक नक्षत्र 360/27 या $13\frac{1}{2}$ अंशों का एच चाप बनाता है । ध्यातव्य है कि संक्रमण-विन्दु को एक अंश पीछे हटने में कुल 72 वर्ष का समय लग्ता है । अतः इस संक्रमण-बिन्दु (वसन्तसम्पात) को पूरे एक नक्षत्र पीछे हटने में कुल $72 \times 13\frac{1}{2}$ या 972 वर्षों का समय लगेगा । वर्तमान समय में वसन्तसम्पात पूर्वाभाद्रपद के चतुर्थ चरण में पड़ता है, तो जब यह वसन्तसम्पात आज से $4\frac{1}{2}$ नक्षत्र पहले कृत्तिका में पड़ता था वह समय $972 \times 4\frac{1}{2}$ वर्ष या 4374 वर्ष पहले अर्थात् लगभग 2500 वि.पू. का होना चाहिए ।

रहा होगा । ऋग्वेद में 'मृगशिरा' की इस आकाश-स्थिति का संकेत अनेक मन्त्रों तथा आख्यानों में किया गया है; जिसकी एक झलक कालीदासजी ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रारम्भ में ही दी है–"**मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ।**" मृगशिरा में वसन्तसम्पात का समय, कृत्तिका वाले समय 2500 वि.पू. से लगभग (2 × 972) = 1944 वर्ष पूर्व अवश्य होगा; क्योंकि मृगशिरा से कृत्तिका तक पीछे हटने में दो नक्षत्र पार करना होगा; जबकि एक नक्षत्र पार करने में 972 वर्ष का समय लगता है । अतः वह समय लगभग 2500 + 1944 = 4444 वि.पू. होना न्यायसंगत होगा ।

तिलकजी के मत में ऋग्वेद में मृगशीर्ष से भी पूर्व 'पुनर्वसु' नक्षत्र में वसन्तसम्पात होने का यथेष्ट संकेत मिलता है । अदिति को देवमाता कहे जाने का भी यही रहस्य है; क्योंकि–'पुनर्वसु' नक्षत्र की देवता अदिति है । पुनर्वसु ही उस समय नक्षत्रमाला में आदि नक्षत्र था । पुनर्वसु में सूर्य का संक्रमण होते ही देवताओं के पवित्रकाल (उत्तरायण देवयान) का आरम्भ होता था । यह काल मृगशिरा से दो नक्षत्र, पीछे हटकर होने के कारण लगभग 2000 वर्ष पूर्व का है ।

इस प्रकार तिलकजी स्वीकार करते हैं कि यही अदितियुग, भारतीय-संस्कृति का प्राचीन युग है । यह युग 4000 से 6000 विक्रमपूर्व तक माना जा सकता है । तिलकजी ने वैदिक काल को कुल चार विभागों में रखा है–

1. अदिति काल — 4000 से 6000 विक्रमपूर्व तक
2. मृगशिरा काल — 2500 से 4000 विक्रमपूर्व तक (ऋग्वेदसंहिता का मन्त्रकाल)
3. कृत्तिका काल — 1400 से 2500 विक्रमपूर्व तक (तैत्तिरीय संहिता व ब्राह्मणकाल)
4. अन्तिम काल — 500 से 1400 विक्रमपूर्व तक (सूत्रग्रन्थों का रचना काल)

लोकमान्य तिलकजी ने "Orion" (ओरायन) के पश्चात् लिखे गये अपने ग्रन्थ "Arctic Home in the Vedas" में वेदकाल को 10000 (दस हजार) ई.पू. वतलाया । उन्होंने, विज्ञान तथा ज्योतिष के आधार पर यह सिद्ध किया कि 'भारत में आने से पूर्व आर्य लोग उत्तरी ध्रुव में रहते थे और वहाँ पर भी वे वैदिक धर्मानुयायी ही थे । यह घटना कम से कम 10,000 ई.पू. की है ।

1.4.1.5. एम. विन्टरनित्ज. (M. Winternitz).

विन्टरनित्ज ने ब्राह्मणग्रन्थों, पाणिनि व्याकरण की संस्कृत भाषा तथा अशोकन शिलालेखों की भाषा, इन सवका वैदिक-भाषा से साम्य को ध्यान में रखते हुए, ऋग्वेद का काल जैकोवी तथा तिलक द्वारा निर्धारित तिथि (4500-6000) के वीच में स्वीकार किया । उनका मत है कि ज्योतिष अथवा भूगर्भशास्त्र के आधार पर वेदों का काल ई.पू. 6000 या 2500 मानना उचित नहीं है ।

1.4.1.6 भारतीय परम्परागत विचार. (Indian traditional views).

प्राचीन भारतीय परम्परावादी विद्वानों के मतानुसार वेद-निर्माण-काल का निर्णय करना मूर्खता ही नहीं वल्कि असम्भव है । इन परम्परावादी भारतीय विद्वानों का मानना है कि–'वेद नित्य हैं और सृष्टि के प्रारम्भ से ही वेदों का आविर्भाव हुआ है । ऋग्वेद पुरुषसूक्त, वेदों के निर्माण के लिए स्वयं प्रमाण है–

"**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥**"

इन विद्वानों का कहना है कि–जिस परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति की, उसी ने सृष्टि के पूर्व वेद का आविर्भाव किया होगा । जैसे–कुम्हार 'घट' की निर्मिति करने के पूर्व, अपने मस्तिष्क में घट की एक नियमसंहिता तैयार कर लेता है, तदनुसार मिट्टी को आकार प्रदान करता है । कोई भी कार्य, किसी कर्ता के बिना असम्भव है । यह ब्रह्माण्ड भी एक कार्य है । अतः इसका भी नियमतः कोई कर्ता अवश्य होना चाहिए । ब्रह्माण्ड के कर्ता हम–आप हो ही नहीं सकते । अतः स्पष्ट है कि इसका कर्ता ईश्वर ही है । चूँकि प्रत्येक कर्ता अपने कार्य का स्वरूप अपनी वुद्धि (मस्तिष्क) में आरेखित करने के बाद ही उसे साकार-स्वरूप प्रदान करता है । अतः ब्रह्माण्ड रूपी कार्य का आरेख भी ब्रह्माण्डोत्पत्ति के पूर्व उस कर्ता (ईश्वर) की वुद्धि में निर्मित होना चाहिए ।

उपर्युक्त सिद्धान्त के आधार पर परम्परावादी विद्वानों का कहना है कि–सृष्टिकर्ता विधाता ने सृष्ट्युत्पत्ति के पूर्व जिस आरेख या विचारधारा की सर्वप्रथम कल्पना अपनी बुद्धि में की, वही आम्नाय या वेद है । ऋग्वेद का ही कथन है–"**तस्मादृचो पातक्षन् यजुरुस्मादपाकयन् । सामानि यस्य लोमानि, अथर्वाङ्गिरसो मुखम् ॥**" इन समस्त वेदवचनों में यज्ञ (यजनीय, पूजनीय या ईश्वर) से ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व इन चारों वेदों की उत्पत्ति स्पष्टतः वर्णित है । इस प्रकार 'आप्तवाक्य' को प्रमाण मानने वाले दार्शनिक विद्वानों ने परमात्मा को वेदों का जनिता स्वीकार किया है ।

जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य ने वेदों का सर्वज्ञानमयत्व मानते हुए यह युक्तिवाद प्रस्तुत किया है–"**महतः ऋग्वेदादेः शास्त्रस्य अनेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म । न हि ईदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादि लक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञात् अन्यतः संभव अस्ति ।**" अर्थात् ऋग्वेदादि महान् शास्त्र अनेक विद्या स्थानों से विकसित हुआ है और यह प्रदीपवत् समस्त विषयों को प्रकाशित करता है । इस प्रकार के सर्वज्ञान सम्पन्न शास्त्र का उत्पत्ति स्थान ब्रह्म ही हो सकता है, क्योंकि सर्वज्ञ परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी से ऋग्वेदादि सर्वज्ञान सम्पन्न शास्त्र की उत्पत्ति नहीं हो सकती । "**ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥**" के अनुसार–शङ्कराचार्यजी इस वात पर जोर देते हैं कि–सर्वज्ञानमय पूर्णवेद की उत्पत्ति, पूर्ण ब्रह्म से ही सम्भव है । भगवान् व्यास ने भी ब्रह्मसूत्रस्थ "**विप्रतिषेधाच्च**" के द्वारा, यही मत सूचित किया है ।

परम्परा से प्राप्त वेद के इस नित्यत्व एवं अपौरुषेयत्व को विभिन्न आस्तिक दर्शनाचार्यों ने भी स्वीकार किया है । भगवान् जैमिनि ने पूर्वमीमांसा-दर्शन में–"**नित्यस्तु स्याद् दर्शनस्य परार्थत्वात्**" इत्यादि छः सूत्रों द्वारा अनित्यवादी पक्षों के तर्कों का खण्डन करते हुए, वेदों का नित्यत्व बड़ी मार्मिकता से प्रतिपादित किया है । उत्तरमीमांसा में महर्षि वादरायण व्यासजी ने "**शास्त्रयोनित्वात्**" इस सूत्र के द्वारा वेदों का उद्गम परब्रह्म से ही हुआ है । इस सिद्धान्त को स्थापित किया है । नैयायिकों का मानना है कि–सृष्टि के आदि में ईश्वर की निःश्वासवायु से वेदों की उत्पत्ति हुई–

> "**अनादिनिधना नित्या, वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।**
> **आदौ वेदमयी दिव्या, यतः सर्वा प्रवृत्तयः ॥**"

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि परम्परावादी विद्वान् वेदों को नित्य स्वीकार करते हैं । अतः वेदों के काल-निर्धारण का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है ।

1.4.2. ऋग्वेद का क्रम.

ऋग्वेद की कुल 21 शाखाओं का उल्लेख होने के बावजूद भी यह हम लोगों का दुर्भाग्य ही कहा जायगा कि इस समय एक मात्र 'शाकल-शाखा' ही पूर्ण रूप से उपलब्ध होती है; जिसे ऋग्वेद-संहिता के नाम से जाना जाता है । इसका विभाग दो रूपों में प्राप्त होता है, जिसे अष्टकक्रम तथा मण्डलक्रम के नाम से जाना जाता है । इन दोनों क्रमों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

(i) अष्टक-क्रम.

'अष्टक-क्रम' के अनुसार सम्पूर्ण ऋग्वेद कुल आठ अष्टकों में विभक्त है । प्रत्येक अष्टक में आठ-आठ अध्याय पाये जाते हैं । इस प्रकार कुल अध्यायों की संख्या 64 (चौंसठ) हो जाती है । ये अध्याय भी वर्गों में तथा वर्ग ऋचाओं में विभक्त हैं । इस प्रकार कुल 8 अष्टक, 64 अध्याय, 2006 वर्ग तथा $10580\frac{1}{4}$ ऋचायें (मन्त्र) हैं ।

(ii) मण्डल-क्रम.

मण्डल-क्रम के अनुसार सम्पूर्ण ऋग्वेद 10 मण्डलों में विभक्त है । प्रत्येक मण्डल अनुवाकों में, अनुवाक सूक्तों में तथा सूक्त ऋचाओं या मन्त्रों में विभक्त हैं । '**कात्यायन-सर्वानुक्रमणी**' के अनुसार

सम्पूर्ण ऋग्वेद में कुल 10 मण्डल, 85 अनुवाक, 1017 सूक्त तथा $10580\frac{1}{4}$ मन्त्र हैं; जिनमें
153826 शब्द तथा 432000 अक्षर पाये जाते हैं ।

महत्त्व की दृष्टि से 'अष्टकक्रम' की अपेक्षा 'मण्डलक्रम' ज्यादा महत्त्व रखता है; क्यो
इसकी पद्धति वैज्ञानिक व ऐतिहासिक है । ऋग्वेद का सर्वप्रथम पदपाठ तथा मण्डलक्रम में विभ
शाकल ऋषि ने किया । अतः इसे शाकल-शाखा या शाकल-संहिता भी कहा जाता है । ध्यातव्य
कि–'रावणकृत' ऋग्वैदिक पदपाठ भी मिलता है, जो शाकल्य से कुछ भिन्न है । यजुर्वेद तैत्ति
शाखा के पदपाठकार आत्रेय तथा सामवेद के पदपाठकार गार्ग्य हैं ।

1.4.3. संहिताओं के पाठ–भेद

वेदपाठियों के मुँह से आज भी वेदों का सस्वर उच्चारण ठीक उसी प्रकार विशुद्ध रूप में
जा सकता है, जैसा कि प्राचीन युग में किया जाता था । इसके लिए महर्षियों ने आठ विकृतियों
पाठों की व्यवस्था की है, जो 1. जटा, 2. माला, 3. शिखा, 4. रेखा, 5. ध्वज, 6. दण्ड, 7.
तथा 8. घन के नाम से जाने जाते हैं–

"जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः । अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः ॥"

मन्त्रों का प्रकृत उपलब्ध पाठ 'संहिता-पाठ' कहलाता है । उदाहरणतया–"**ओषधयः सं**
सोमेन सह राज्ञा ॥" 10/97/22//. इस पाठ के प्रत्येक पद का विच्छेद होने पर यही 'पद
कहा जाता है । 'पदपाठ में पद तो वे ही रहते हैं, परन्तु स्वरों में पर्याप्त अन्तर आ जाता
जैसे–"**ओषधयः सं । वदन्ते । सोमेन । सह राज्ञा ।**" क्रम के दो पदों का पाठ 'क्रमपाठ' कहलाता
यथा–"**ओषधयः सं । संवदन्ते । वदन्ते सोमेन । सोमेन सह ।**" जब अनुलोम तथा विलोम से जहाँ
क्रम तीन बार पढ़ा जाता है, उसे 'जटापाठ' कहते हैं, जैसे–"**ओषयः सं, समोषधयः, ओषधयस्**
संवदन्ते, वदन्ते सं, संवदन्ते ।" इस 'जटापाठ' में जब अगला एक पद जोड़ दिया जाता है, तब
'शिखापाठ' कहलाता है–"**ओषधयः सं, समोषधयः, ओषधयः सं–वदन्ते । सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं व**
सोमेन ॥" इन पाठों में सबसे विलक्षण तथा कठिन 'घनपाठ' होता है, जिसमें पदों की आ
अनुलोम तथा विलोम क्रम से अनेक बार होती है । यह घनपाठ चार प्रकार का होता है; परन्तु
के प्रदर्शन का यहाँ पर कोई औचित्य न होने से उदाहरण स्वरूप एक पाठ दिया जा
है–"**ओषधयः सं, समोषधय ओषधयः संवदन्ते, वदन्ते समोषधय ओषधयः सं वदन्ते । सं वदन्ते वदन्ते**
संवदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते सं, सं वदन्ते सोमेन ॥"

उपर्युक्त पाठों पर दृष्टिपात करने से हम देखते हैं कि– यह मेधा-शक्ति की पराकाष्ठा
उत्कर्ष है कि ऐसे विषमपाठ को हमारे वेदपाठी शुद्धातिशुद्ध रूप से अनायास ही पाठ करते रहते
वेद रूपी दुर्ग की रक्षा हेतु ये पाठ रूपी दुर्भेद्य दीवारें हैं । यही कारण है कि आज भी हमारा
उसी विशुद्धि तथा प्रामाणिकता के साथ उपलब्ध हो रहा है ।

1.5. वेदाङ्ग

"अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि" अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु के स्वरूप
जानने में सहायता मिलती है, उसे उस वस्तु का अङ्ग कहते हैं । अतः वेदों के स्वरूप को जानने
जो उपयोगी शास्त्र है, उन्हें वेदाङ्ग के नाम से जाना जाता है । इन वेदाङ्गों की उत्पत्ति सम्भ
उपनिषद्-काल में ही हो गई थी । इन वेदाङ्गों के नाम तथा क्रम का सर्वप्रथम वर्णन मुण्डकोप
1/15 में मिलता है । इन्हें 1. शिक्षा, 2. कल्प, 3. व्याकरण, 4. निरुक्त, 5. छन्द तथा 6. ज्यो
के नाम से जाना जाता है । इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

1.5.1. शिक्षा

"स्वरवर्णाद्युच्चारण प्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा ।" अर्थात् जिसके द्वारा हमें वैदिक मन्त्रों के शुद्धातिशुद्ध उच्चारण का ज्ञान होता है, उन्हें शिक्षा के नाम से जाना जाता है । इसे वेद रूपी पुरुष का घ्राण वताया गया है–**"शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य ।"**

वेद के उच्चारण को ठीक-ठीक रूप में करने के लिए स्वरज्ञान की नितान्त आवश्यकता होती है । ये उदात्तानुदात्त स्वरित भेद से तीन प्रकार के होते हैं, जिन्हें 'पाणिनि' ने क्रमशः–**"उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः,** तथा **समाहारस्वरितः"** कहा है ।

वैदिकसाहित्य में स्वर-प्रक्रिया का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । **इसका कारण है** 'अर्थनियामकता' । **"इन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्व"** इसका सुप्रसिद्ध उदाहरण है । **तैत्तिरीयोपनिषद् की प्रथम वल्ली** में शिक्षा के छः अङ्गों (**1. वर्ण, 2. स्वर, 3. मात्रा, 4. वल, 5. साम और 6. सन्तान**) का विवेचन किया गया है । आचार्य पाणिनि ने अपनी ऋग्वैदिक शिक्षा में वेद-पाठ करने वाले के छः गुणों तथा छः दोषों का उल्लेख किया है–जो इस प्रकार हैं–

"माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः । धैर्यं लयसमर्थञ्च षडेते पाठका गुणाः ॥ पा. शि. 33 ॥
गीती शीघ्री शिरः कम्पी तथा लिखितपाठकः । अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः ॥" पा. शि. 32 ॥

प्रमुख शिक्षा-ग्रन्थ

ऋग्वैदिक शिक्षा-ग्रन्थों में पाणिनीय शिक्षा विशेष उल्लेखनीय है; जवकि यजुर्वेदिक शिक्षा-ग्रन्थों में याज्ञवल्क्यशिक्षा, वाशिष्ठीशिक्षा, माण्डव्यशिक्षा, भरद्वाजशिक्षा, माध्यन्दिनि-शिक्षा तथा अवसान निर्णयशिक्षा का नाम लिया जाता है । सामवेद के प्रमुख शिक्षाग्रन्थों में नारदीय शिक्षा तथा शाकटायन कृत 'ऋकतन्त्र' एवं अथर्ववेद के शिक्षाग्रन्थों में माण्डूकी शिक्षा, कौत्सप्रणीत शौनकीया चतुरध्यायिका प्रतिनिधि शिक्षा ग्रन्थ है; यद्यपि इनके अतिरिक्त–व्यास-शिक्षा, कात्यायनी-शिक्षा, पाराशरी-शिक्षा, अमोघानन्दिनी-शिक्षा, वर्णरत्नप्रदीपिका-शिक्षा, केशवीशिक्षा, मल्लशर्मशिक्षा, स्वराङ्कुश-शिक्षा, षोडशश्लोकी-शिक्षा, स्वरभक्ति-लक्षण-शिक्षा, प्रातिशाख्य-प्रदीप-शिक्षा, क्रमसन्धान-शिक्षा, गलदृक्-शिक्षा, मनःस्वारशिक्षा इत्यादि अनेक शिक्षाग्रन्थों के नाम सुने जाते हैं । इनके अतिरिक्त कुछ शिक्षासूत्र भी वताये गये हैं, जैसे–आपिशलि, पाणिनि तथा चन्द्रगोमी रचित शिक्षा-सूत्र प्रकाशित हैं ।

1.5.2. कल्प

जिन ग्रन्थों में यज्ञ के प्रयोगों की कल्पना या समर्थन किया जाय, उन्हें कल्प के नाम से जाना जाता है–**"कल्प्यन्ते समर्थ्यन्ते यज्ञ-यागादि-प्रयोगाः यत्र इति कल्पः ।"** इसी को दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि–वेद में विहित कर्मों की क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करने वाला शास्त्र, कल्प कहलाता है–**"कल्पो वेदविहितानां कर्मणामनुपूर्वेण कल्पनाशास्त्रम् ।"** इस प्रकार कल्पशास्त्र को वेदपुरुष का हाथ स्वीकार किया गया है–**"हस्तौ कल्पोऽथपठ्यते ।"** ये कल्पशास्त्र, चूँकि सूत्र शैली में निबद्ध हैं, अतः इन्हें कल्पसूत्र भी कहा जाता है । विषय की दृष्टि से कल्पसूत्रों को निम्नलिखित चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है–1. श्रौतसूत्र, 2. गृह्यसूत्र, 3. धर्मसूत्र तथा 4. शुल्बसूत्र ।

(i) श्रौतसूत्र– श्रौतसूत्रों का मुख्य प्रतिपाद्य-विषय, श्रुतिप्रतिपादित महत्त्वपूर्ण यज्ञों-दर्शपौर्णमास, पिण्डपितृ, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, सोमयाग, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध इत्यादि का क्रमबद्ध वर्णन है । ऋग्वैदिक श्रौतसूत्रों में आश्वलायनश्रौतसूत्र तथा शाङ्खायन या कौषीतकि श्रौतसूत्र का नाम लिया जाता है; जबकि यजुर्वेद के श्रौतसूत्रों में कात्यायन या पारस्कर-श्रौतसूत्र शुक्लयजुर्वेद पर तथा आपस्तम्ब, बौधायन, हिरण्यकेशी (सत्याषाढ़), वैखानस, भारद्वाज, मानव, मैत्रायणी, वाराह एवं वाधूल-श्रौतसूत्र कृष्ण-यजुर्वेद पर उपलब्ध होते हैं । सामवेदीय श्रौतसूत्रों में लाट्यायन, द्राह्यायण, मसक या आर्षेय, खादिर तथा जैमिनीय श्रौतसूत्र के नाम उल्लेखनीय हैं, जबकि अथर्ववेद पर एकमात्र वैतानश्रौतसूत्र उपलब्ध होता है ।

(ii) गृह्यसूत्र–इसके अन्तर्गत गृहाग्नि में सम्पूर्ण होने वाले–पुंसवन, जातकर्म, नामकर गोदान, उपनयन, विवाह, अन्त्येष्टि इत्यादि विभिन्न सांस्कारिक यागों का विवेचन है । ऋग्वैदि गृह्यसूत्रों में आश्वलायन, शांखायन (कौषीतकि) तथा शाम्वव्य गृह्यसूत्रों का समुल्लेख है; त यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रों में–कात्यायन (पारस्कर) या कातीय तथा वाजसनेय गृह्यसूत्र शुक्लयजुर्वेद पर आपस्तम्ब, वौधायन, सत्याषाढ़, वैखानस, भारद्वाज, वाधूल तथा कठ गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद पर जाते हैं । सामवेदीय गृह्यसूत्रों में खादिर, गोभिल, गौतम व जैमिनीय-गृह्यसूत्र प्रसिद्ध हैं; जब अथर्ववेद पर एकमात्र कौशिकगृह्यसूत्र उपलब्ध होता है ।

(iii) धर्मसूत्र– धर्मसूत्रों में यद्यपि गृह्यसूत्रों से ही सम्वद्ध विषयों का विवेचन किया गया परन्तु दोनों में दृष्टिभेद से अन्तर पाया जाता है । गृह्यसूत्रों में अनुष्ठानों के आकार-प्रकार पर दिया गया है; जवकि धर्मसूत्रों में–आचार, कर्तव्य, कर्म, व्यवहार, राजधर्म प्रायश्चित्त इत्यादि विवेचन किया गया है । धर्मसूत्रों में–वौधायन, वशिष्ठ, हिरण्यकेशि, वैखानस एवं विष्णू धर्म तथा आपस्तम्व धर्मसूत्र, कृष्णयजुर्वेद पर और हारीतशंख धर्मसूत्र शुक्लयजुर्वेद पर उपलब्ध होत ऋग्वेद तथा सामवेद पर एक-एक धर्मसूत्र उपलब्ध है, क्रमशः जिसे वशिष्ठ धर्मसूत्र त गौतमधर्मसूत्र के नाम से जाना जाता है । अथर्ववेद पर कोई भी धर्मसूत्र उपलब्ध नहीं होता है ।

(iv) शुल्वसूत्र– शुल्व का अर्थ होता है–रज्जु (रस्सी) अर्थात् रज्जु के द्वारा मापी गई वेदी रचना शुल्वसूत्र का प्रतिपाद्य विषय है । भारतीय रेखागणितीय ऐतिहासिक जानकारी की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ हैं । ये शुल्वसूत्र मात्र यजुर्वेद पर ही प्राप्त होते हैं; जिसमें शुक्लयजुर्वेद एकमात्र कात्यायन शुल्वसूत्र तथा कृष्णयजुर्वेद पर–वौधायन, आपस्तम्व, मानव, मैत्रायणीय, वा एवं वाधूल ये छः शुल्वसूत्र उपलब्ध होते हैं ।

1.5.3. व्याकरण

'व्याकरण' वह वेदाङ्ग है, जो पदों की प्रकृति तथा प्रत्यय का उपदेश देकर पदों के स्वरूप परिचय कराता है–"**व्याक्रियन्ते शब्दाः अनेनेति व्याकरणम् ।**" इसे वेदरूपी पुरुष का मुख स्वी किया गया है–"**मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।**" ऋग्वेद *//4//58//6//* में शब्दशास्त्र (व्याकरण) को वृषभ के रूप में उपस्थापित किया गया है–

> **"चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।**
> **त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेश ॥" ऋक् /4/58/3**

वार्तिककार आचार्य कात्यायन ने व्याकरणशास्त्र के महत्त्व को दर्शाते हुए "**रक्षोह लघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्**" अर्थात् 1. रक्षा, 2. ऊह, 3. आगम, 4. लघु तथा 5. असन्देह; इन प्रयोजनों का समुल्लेख किया है ।

सामान्यतया विद्वत्समाज में, व्याकरण के आठ सम्प्रदायों का नाम लिया जाता है–"**व्या मष्टप्रभेदम् ।**" वोपदेव के अनुसार ये आठ प्रभेद निम्नलिखित हैं–"**इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापि शाकटायनः । पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादि शाब्दिकाः ॥**" इस प्रकार इन अष्ट व्याकरणों में व्याकरण सर्वप्राचीन सिद्ध होता है । महर्षि शाकटायन ने अपने ग्रन्थ ऋक्तन्त्र में है–'व्याकरणशास्त्र' का कथन सर्वप्रथम ब्रह्मा ने बृहस्पति से किया; बृहस्पति ने इन्द्र से; इ भरद्वाज से; भरद्वाज ने ऋषियों से; ऋषियों ने ब्राह्मणों से व्याकरणशास्त्र का कथन किया । प्रकार प्राचीन काल में 'ऐन्द्रव्याकरण' की सत्ता हमें सर्वप्रथम उपलब्ध होती है । तैत्तिरीय संहि भी ऐसा ही उल्लेख है कि देवताओं ने इन्द्र से "वाचं व्याकुरु" (वाणी का व्याख्यान कीजिए) प्रार्थना की थी, परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि आज इस ग्रन्थ का अन्यान्य ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होता है ।

पाणिनि-व्याकरण

सम्प्रति 'व्याकरण-वेदाङ्ग' का प्रतिनिधित्व करने वाला ग्रन्थ एकमात्र पाणिनि व्याकरण है; जिसे अष्टाध्यायी के नाम से जाना जाता है । इस ग्रन्थ में कुल आठ अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय चार-चार पादों में तथा ये पाद सूत्रों में विभक्त हैं । **प्रथम एवं द्वितीय अध्याय** में संज्ञा व परिभाषा सम्बन्धी सूत्र हैं; **तीसरे से पाँचवें अध्याय** तक कृदन्त एवं तद्धित प्रत्ययों का निरूपण है । **छठवें अध्याय** में द्वित्व, सम्प्रसारण, सन्धि, स्वर, आगम, लोप, दीर्घ, इत्यादि से सम्वन्धित सूत्र हैं, जबकि **सातवें अध्याय** में अङ्गाधिकार प्रकरण तथा **आठवें अध्याय** में द्वित्व, प्लुत, णत्व, षत्व इत्यादि के नियम वर्णित हैं । इस ग्रन्थ को प्रायः अष्टक, अष्टाध्यायी, शव्दानुशासन तथा वृत्तिसूत्र; इन चार नामों से जाना जाता है । अब तक इस ग्रन्थ पर अनेक वृत्तियाँ, भाष्य, वार्तिक, टीकायें-प्रटीकायें लिखी जा चुकी हैं ।

नोट—दर्शनप्रधान-व्याकरणशास्त्र के रूप में भर्तृहरि रचित "वाक्यपदीय" संस्कृत साहित्य की एक अमूल्य निधि है ।

1.5.4. निरुक्त

'निरुक्त', 'निघण्टु' के ऊपर लिखी गई टीका है; जिसका कार्य है, वैदिक पदों की निरुक्ति (व्युत्पत्ति) वतलाना । वर्तमान समय में एकमात्र 'निघण्टु' उपलब्ध होता है; इसी के ऊपर महर्षि यास्करचित निरुक्त पाया जाता है । महाभारत शान्तिपर्व के अनुसार निघण्टु के प्रणेता प्रजापति कश्यप हैं, जबकि कुछ लोग निरुक्तकार यास्क को ही निघण्टु का भी कर्ता मानते हैं । वर्तमान में निघण्टु पर जो व्याख्याग्रन्थ उपलव्ध होता है, उसके कर्ता का नाम आचार्य वलदेव उपाध्याय ने देवराज यज्वा स्वीकार किया है ।

निघण्टु में कुल पाँच अध्याय हैं, जिसमें प्रारम्भिक तीन अध्यायों को नैघण्टुक काण्ड, चौथे को नैगमकाण्ड तथा पाँचवें को दैवतकाण्ड के नाम से जाना जाता है ।

निघण्टु काल के अनन्तर निरुक्तों का समय प्रारम्भ होता है । दुर्गाचार्य जी ने अपनी दुर्गावृत्ति में 14 निरुक्तकारों का उल्लेख किया है; जबकि महर्षि यास्क ने–1. अग्रायण, 2. औपमन्यव, 3. औदुम्वरायण, 4. और्णवाभ, 5. कात्थक्य, 6. क्रौष्टुकि, 7. गार्ग्य, 8. गालव, 9. तैटीकि, 10. वार्ष्यायणि, 11. शाकपूणि तथा 12. स्थौलाष्टीवि, इन 12 निरुक्तकारों का उल्लेख किया है ।

यास्करचित निरुक्तम्

सम्प्रति यास्क रचित "निरुक्तम्" ही निरुक्त वेदाङ्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है । सम्पूर्ण ग्रन्थ 14 अध्यायों में विभक्त है; जिसमें अंतिम दो अध्याय परिशिष्ट रूप में दिये गये हैं । प्रस्तुत निरुक्त में–नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात के लक्षण, भावविकारलक्षण, पदविभाग–परिज्ञान, देवता-परिज्ञान, अर्थप्रशंसा, वर्णलोप, वर्णविपर्यय-विवेचन, सम्प्रसार्य व असम्प्रसार्य धातु, अभिशाप, अभिज्ञा, परिवेदना, निन्दा, प्रशंसा आदि द्वारा मन्त्राभिव्यक्ति, उपदेश व देवताओं का वर्गीकरण किया गया है । इसमें वैदिक शब्द निर्वचन के अतिरिक्त, भाषाविज्ञान, साहित्य, समाजशास्त्र व ऐतिहासिक विषयों का भी प्रसंगानुकूल विवेचन मिलता है । यास्क ने यहाँ पर वैदिक देवताओं को 1. पृथ्वीस्थानीय, 2. अन्तरिक्षस्थानीय तथा 3. द्युस्थानीय, इन तीन वर्गों में रखा है । इस ग्रन्थ की टीकाओं में 'दुर्गाचार्य' व महेश्वर कृत टीका तथा निरुक्तनिचय नाम्नी टीका विशेष प्रसिद्ध है ।

1.5.5. छन्द

"छन्दः पादौ तु वेदस्य" अर्थात् 'छन्दवेदाङ्ग' को वेदपुरुष के पादों के रूप में स्वीकार किया गया है । चूँकि वेद छन्दोमयी वाणी है । अतः वेदमन्त्रों के सम्यक् उच्चारण व भावबोधन हेतु छन्दों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है । महर्षि कात्यायन का स्पष्ट कथन है कि–'जो व्यक्ति–छन्द, ऋषि तथा देवता के ज्ञान से हीन होकर मन्त्र का अध्ययन-अध्यापन या यजन-याजन करते हैं. उनके वे सभी कार्य निष्फल ही होते हैं ।

छन्दवेदाङ्ग का प्रतिनिधि ग्रन्थ, आचार्य 'पिङ्गल' कृत–'छन्द-सूत्र' माना जाता है । इस ग्रन्थ में प्रतिपादित समस्त छन्दोविचार–**"यमाताराजभानसलगाम्"** इस सूत्र में निहित है । सूत्रशैली में निवद्ध यह सम्पूर्ण ग्रन्थ कुल आठ अध्यायों में विभक्त है; जिसके प्रथम अध्याय से चौथे अध्याय के सातवें सूत्र तक वैदिक छन्दों के लक्षण, तदनन्तर लौकिक छन्दों के लक्षण दिये गये हैं ।

ध्यातव्य है कि लौकिक संस्कृत में मात्र पद्यों को ही छन्द रूप माना गया है, परन्तु वैदिक साहित्य में–गद्य-पद्य सभी को छन्द से युक्त माना गया है–**"नाच्छन्दसि वागुच्चरति"** अर्थात् छन्द के विना वाणी उच्चरित ही नहीं होती । **नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि** के अनुसार–**"छन्दहीनो न शब्दोऽस्ति, न छन्दः शब्दवर्जितम् ।"**

निरुक्तकार यास्क ने **'छन्द'** शब्द की व्युत्पत्ति छद् (ढकना) धातु से वतलायी है । इनके 'छन्द' कहलाने का रहस्य यही है कि ये वेदों के **आवरण** हैं–**"छन्दांसि छादनात्" निरुक्त /7/19.** वैदिकछन्दों की एक खास विशेषता यह भी है कि लौकिक छन्दों की तरह इनमें लघु, गुरु के क्रम का कोई विशेष नियम नहीं है । ये अक्षर गणना पर ही नियत रहते हैं । इसीलिए कात्यायन ने–**"यदक्षरपरिमाणकं तच्छन्दः"** लिखा है । यद्यपि लौकिक छन्दों में चार चरण होते हैं, परन्तु वैदिक छन्दों में ऐसा कोई नियम नहीं है । कुछ छन्द एक चरण के, कुछ तीन के, कुछ पाँच व कुछ छः पदों के भी उपलब्ध होते हैं । दूसरी बात यह है कि यदि गणना के अनुसार अक्षर निश्चित मात्रा से एक या दो न्यूनाधिक भी हों, तो छन्दों के स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।

वैदिक छन्दों के मुख्यतया दो भेद हैं–1. केवल अक्षर गणनानुसारी तथा 2. पादाक्षर गणनानुसारी । वेदों में प्रयुक्त कुल 21 छन्द पाये जाते हैं, जो तीन संप्तकों में विभक्त हैं–

(i) प्रथम सप्तक–1. **गायत्री** (24 अक्षर) 2. **उष्णिक्** (28 अक्षर) 3. **अनुष्टुप्** (32 अक्षर) 4. **बृहती** (36 अक्षर) 5. **पङ्क्ति** (40 अक्षर) 6. **त्रिष्टुप्** (44 अक्षर) तथा 7. **जगती** (48 अक्षर)

(ii) द्वितीय सप्तक–द्वितीय सप्तक के सातों छन्द 'अतिछन्द' के नाम से प्रख्यात हैं । इनकी अक्षर संख्या पूर्व की अपेक्षा चार अधिक होती है–

1. **अतिजगती** (52 अक्षर) 2. **शक्वरी** (56 अक्षर) 3. **अतिशक्वरी** (60 अक्षर) 4. **अष्टि** (64 अक्षर) 5. **अत्यष्टि** (68 अक्षर) 6. **धृति** (72 अक्षर) 7. **अतिधृति** (76 अक्षर)

(iii) तृतीय सप्तक–1. **कृति** (80 अक्षर) 2. **प्रकृति** (84 अक्षर) 3. **आकृति** (88 अक्षर) 4. **विकृति** (92 अक्षर) 5. **संस्कृति** (96 अक्षर) 6. **अभिकृति** (100 अक्षर) 7. **उत्कृति** (104 अक्षर)

कात्यायन सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद के समस्त मन्त्रों के छन्दों की संख्या इस प्रकार है–**गायत्री** = 2467; **उष्णिक्** = 341; **अनुष्टुप्** = 855; **बृहती** = 181; **पंक्ति** = 312; **त्रिष्टुप्** = 4253; **जगती** = 1358 । इस प्रकार प्रथम सप्तक की कुल ऋचाओं का योग = 9767 है । इसके अतिरिक्त लगभग 300 मन्त्र अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि इत्यादि विविध छन्दों में निबद्ध हैं । एकपदा ऋचायें केवल छः तथा नित्य द्विपदा ऋचायें = 17 हैं. ऋग्वेद का सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द त्रिष्टुप् है तत्पश्चात् गायत्री तथा जगती का स्थान है ।

1.5.6. ज्योतिष

वेद की प्रवृत्ति यज्ञ सम्पादन के लिए है, और यज्ञ का विधान, विशिष्ट समय की अपेक्षा रखता है, जैसे–तैत्तिरीय-शतपथब्राह्मण का कथन है कि–कृत्तिका में अग्नि का आधान, फाल्गुनी पूर्णमास में दीक्षा, इत्यादि विहित है । इस प्रकार नक्षत्र, तिथि, वार, मास, संवत्सर, इत्यादि की जानकारी वैदिक कर्मकाण्ड के लिए आवश्यक है अतः इनके ज्ञान के लिए **ज्योतिष** का अवगाहन जरूरी है; क्योंकि जो व्यक्ति ज्योतिष को भलीभाँति जानता है; वही यज्ञ का यथार्थ ज्ञाता है–

"वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः, कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम् ॥"

यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र को 'वेदपुरुष' का नेत्र स्वीकार किया गया है–**"ज्योतिषामयनं चक्षुः"** ।

आचार्य 'लगध' रचित वेदाङ्ग ज्योतिष के दो प्रतिनिधिग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जिनका सम्बन्ध ऋग्वेद व यजुर्वेद से है । इनमें ऋग्वेद से सम्बन्धित **"आर्चज्योतिष"** (362 श्लोक) तथा यजुर्वेद से सम्बन्धित **"याजुस् ज्योतिष"** (432 श्लोक) है । इन दोनों ग्रन्थों के श्लोक इतने क्लिष्ट और सारगर्भित हैं कि आज भी विद्वानों के लिए रहस्य के विषय बने हुए हैं । डा. थीवो, शंकरबालकृष्ण दीक्षित, बालगंगाधर तिलक तथा सुधाकर द्विवेदी इत्यादि अनेक विद्वानों ने इन श्लोकों पर समय-समय पर अपनी व्याख्यायें लिखी । इस परिपेक्ष्य में शंकरबालकृष्ण दीक्षितजी की टीका–**"भारतीय ज्योतिष"** तथा तिलकजी की अंग्रेजी टीका **"वेदाङ्ग ज्योतिष"** व सुधाकर द्विवेदी की टीका **"वेदाङ्ग ज्योतिष"** विशेष महत्त्व रखती हैं ।

ज्योतिष सिद्धान्त ग्रन्थों में यद्यपि द्वादश राशियों से गणना की जाती है, परन्तु इस वेदाङ्ग ज्योतिष में राशियों का कहीं भी नामोल्लेख तक नहीं हुआ है । नक्षत्रों की संख्या 27 ही है । श्री दीक्षितजी ने इस 'वेदाङ्ग ज्योतिष' का रचनाकाल अनेक प्रमाणों के आधार पर 1400 ई.पू. स्वीकार किया है ।

परिशिष्ट

प्रातिशाख्य

प्रातिशाख्य ग्रन्थों में–शिक्षा, छन्द तथा व्याकरण इन तीनों के नियमों का सामान्य विवेचन किया गया है । किसी शाखा विशेष में क्या नियम हैं; यही बतलाना प्रातिशाख्यों का प्रयोजन है अर्थात् प्रातिशाख्य के अन्तर्गत–शिक्षा, छन्द तथा व्याकरण इन तीनों का समाहार हो जाता है । ये प्रातिशाख्य भिन्न-भिन्न संहिताओं व शाखाओं पर भिन्न-भिन्न उपलब्ध होते हैं, जैसे ऋग्वेद पर ऋक्प्रातिशाख्य (परिषद = पार्षद) या ऋक्लक्षण नामक प्रातिशाख्य उपलब्ध होता है । इसी प्रकार यजुर्वेद पर कात्यायन कृत वाजसनेयि प्रातिशाख्य; सामवेद पर ऋक्तन्त्र तथा पुष्पसूत्र एवं अथर्ववेद पर अथर्ववेदप्रातिशाख्यसूत्र तथा शौनकीया चतुराध्यायिका ये दो प्रातिशाख्य ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं ।

1.6. वैदिक-साहित्य (एक संक्षिप्त परिचय)

वेद (संहिता)	ब्राह्मण	आरण्यक	उपनिषद	शिक्षा/ प्रातिशाख्य	कल्पसूत्र				विशेष-विवरण
					श्रौतसूत्र	गृह्यसूत्र	धर्मसूत्र	शुल्बसूत्र	
ऋग्वेद 1. शाकलशाखा 2. वाष्कलशाखा 3. आश्वलायनशाखा 4. शांखायनशाखा 5. माण्डूकायनशाखा	1. ऐतरेय ब्राह्मण 2. शांखायन या कौषीतकि ब्राह्मण	1. ऐतरेय 2. शांखायन	1. **ऐतरेयोपनिषद्** —सृष्टिवाद, आदर्शवाद, प्रज्ञानं ब्रह्म 2. **कौषीतकि उपनिषद्**—प्राण तत्व की प्रस्थापना 3. **वाष्कलोप-निषद्**	1. पाणिनीय शिक्षा 2. ऋक्प्राति-शाख्य/ परिषद (पार्षद) ऋक्लक्षण (शौनक की रचना है)	1. आश्वलायन 2. कौषीतकि या शांखायन	1. आश्वलायन 2. शांखायन या कौषीतकि 3. शाम्बव्य	वशिष्ठ धर्मसूत्र (एक- मात्र)	× (कोई नहीं)	**ऋत्विक्**—**होता (मन्त्र**-$10580\frac{1}{4}$) **सूक्त**—1017, **अनुवाक**–85, **मण्डल**–10, **अष्टक**–8, **अध्याय**–64, **वर्ग**–2006, **मन्त्र**—$10580\frac{1}{4}$ **कालनिर्धारण** 1. **मैक्समूलर**—1000–1200 B.C. 2. **वेबर**—अनिश्चित (लगभग 1200-1500 B.C.) 3. **तिलक्**—2500–4000 B.C. 4. **जैकोबी**—2500–4500 B.C. 5. **विन्टरनित्ज**—4500–6000 B.C

<table>
<tr>
<td>**यजुर्वेद**
शुक्ल – (क)
1. माध्यन्दिन या वाजसनेयीशाखा
2. काण्वशाखा
कृष्ण – (ख)
1. तैत्तिरीयशाखा
2. मैत्रायणीशाखा
3. कठशाखा
4. कपिष्ठलशाखा</td>
<td>(क)
1. शतपथ (माध्यन्दिनि शाखा)
2. शतपथ (काण्व-शाखा)
(ख)
1. तैत्तिरीय
2. मैत्रायणी
3. कठ ब्राह्मण
4. कपिष्ठल</td>
<td>(क) –
शुक्ल
1.बृहदारण्यक (दोनों शाखा पर)
(ख) –
कृष्ण
1. तैत्तिरीय
2. मैत्रायणी</td>
<td>(क)
1. **ईशावास्योपनिषद्**–(ज्ञान, कर्म, उपासना का समन्वय)
2.**बृहदारण्यकोप** – (याज्ञवल्क्य-जनक संवाद, आरुणि आख्यान अहं ब्रह्माष्मि, आत्मावारे)
3. **कठोप–** अग्नि-विद्या, यम– नचिकेता
4. **मैत्रायण्युप-उपनिषद्**–सांख्य व हठ योग
5. **तैत्रिरीयोप**—
6. **श्वेताश्वतरोप**-शैव, सांख्य, योग</td>
<td>1. वाजसनेयी प्रा. (कात्यायन)
2. तैत्तिरीय प्रा.
3. याज्ञवल्क्य शि.
4. वाशिष्ठी शि.
5. माण्डव्य शि.
6. भारद्वाज शि.
7. माध्यन्दिनि शि.
8. अवसान-निर्णय शि.</td>
<td>(क)
1. कात्यायन या पारस्कर
(ख)
1. वौधायन
2. आपस्तम्ब
3. सत्याषाढ़
4. वैखानास
5. भारद्वाज
6. कठ
7. वाधूल
8. वारहि
9. मानव
10. मैत्री</td>
<td>(क)
1. कातीय/ कात्यायन/ पारस्कर
(ख)
1. कठ
2. आपस्तम्ब
3. वौधायन
4. सत्याषाढ़
5. वैखानस
6. भारद्वाज
7. वाधूल</td>
<td>(क)
1. हारीत
2. शंख
(ख)
1. विष्णु
2. वशिष्ठ
3. आप-स्तम्ब
4. वौधायन
5. हिरण्य-केशी
6. वैखानस</td>
<td>(क)
1. कात्यायन शुल्वसूत्र
(ख)
1. मानव
2. वौधायन
3. आपस्तम्ब
4.मैत्रायणी
5. वाराह
6. वाधूल</td>
<td>**ऋत्विक्**—अध्वर्यु,
शाखायें–85
मुख्यदेवता—वायु,
मुख्य आचार्य–वैशम्पायन,
विषय—विविध यागादिक
1. **वाजसनेयी-शाखा–**40 अध्याय, 303 अनुवाक व 1975 मन्त्र/कण्डिकायें । षड्मन्त्रक शिवसंकल्प सूक्त अध्याय 34 में है । 40वाँ अध्याय ईशोपनिषद् है ।
2. **काण्व शाखा–**40 अध्याय, 328 अनुवाक तथा 2086 मन्त्र हैं ।</td>
</tr>
</table>

सामवेद 1. कौथुमीय शाखा 2. राणायनीय शाखा 3. जैमिनीय शाखा	1. प्रौढ़/ पंचविंश 2. षडविंश 3. सामविधान 4. आर्षेय 5. देवताध्याय 6. उपनिषद्/ मन्त्र या छान्दोग्य 7. संहितोपनिषद् 8. वंशब्राह्मण 9. जैमिनीय या तवलकार	1. तवलकार या जैमिनीयोप-निषद् 2. छान्दोग्य-आरण्यक	1. **छान्दोग्योप-निषद्**—(आरुणिदर्शन, सत्यकाम जाबल, सनत्कुमार नारद, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तत्यमसि) 2. **केनोप-निषद्**—(उमा-हेमवती आख्यान)	1. नारदीय शिक्षा 2. ऋक्तन्त्र (शाकटायन कृत) 3. पुष्पसूत्र प्रातिशाख्या (पुष्प ऋषि प्रणीत)	1. लाट्यायन 2. द्राह्यायण 3. मशकसूत्र या आर्षेय 4. खादिर 5. जैमिनीय	1. खादिर 2. गोभिल 3. गौतम 4. जैमिनीय	1. गौतम धर्मसूत्र (एक-मात्र)	× (कोई नहीं)	**शाखाएँ**—1000 (सहस्रवर्त्मा सामवेदः) सम्प्रति 13 शाखाओं का परिचय प्राप्त, तीन उपलब्ध हैं. **कौथुमशाखा–पूर्वार्चिक**—650 मन्त्र. **उत्तरार्चिक**—1225 मन्त्र, **कुल**—1875 मन्त्र, **ऋग्वेदस्थ**—1504 ऋचायें हैं. 6 **सामविकार**— 1. वकार, 2. विश्लेषण, 3. विकर्षण, 4. अभ्यास, 5. विराम, 6. स्तोम 5 **सामगान**— 1. प्रस्ताव, 2. उद्गीथ, 3. प्रतिहार, 4. उपद्रव तथा 5. निधन (छान्दोग्यादिक दो अतिरिक्त सामगान मानते हैं) **ऋत्विक**—उद्गाथा

अथर्ववेद 1. पिप्पलादशाखा 2. शौनकशाखा 3. मौदमहाभाष्य शाखा 4. स्तौदशाखा 5. जाजलशाखा 6. [illegible]दशाखा 7. ब्रह्मवदशाखा 8. देवदर्शशाखा 9. चारणवैद्यशाखा	1.गोपथब्राह्मण (एकमात्र)	× (कोई नहीं)	1. **प्रश्नोप-निषद्**–(महर्षि अथर्वा-सुकेश, भारद्वाज, शैव्य, सत्यकाम, सौर्यायणी, गार्ग्य, कौशल्य, आश्वलायन, भार्गव, वैदर्भि, कवन्धी, कात्यायन आदि का प्रश्नोत्तर) 2. **मुण्डकोप-निषद्**—(ब्रह्मा-अथर्वा, ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति, सत्यमेव जयते, द्वा सुपर्णा सयुजा) 3. **माण्डूक्योप-निषद्**–ॐकार व चतुष्पादात्मा का विवेचन, अयमात्मा ब्रह्म	1. माण्डूकी शिक्षा 2. शौनकीया प्रातिशाख्य या कौत्स व्याकरण 3. अथर्ववेद प्रातिशाख्य	1. वैतान श्रौतसूत्र (एकमात्र)	1. कौशिक-गृह्यसूत्र (एकमात्र)	× (कोई नहीं)	× (कोई नहीं)	**ऋत्विक्**—ब्रह्मा, **उपाधियाँ**—ब्रह्मवेद, अंगिरवेद, अथर्वाङ्गि रसवेद, भैषज्यवेद, छन्दोवेद, इत्यादि । **उपवेद**—सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद, पुराणवेदादि, **मन्त्रों के दो विभाग**—1. शान्तिपौष्टिक कर्म वाले तथा 2. आभिचारिक कर्म वाले; **काण्ड**—20; **सूक्त**—731, **मन्त्र**—6000;

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1.1. देवता

1. ऋग्वैदिक देवताओं की संख्या है–
(A) 33 (B) 35 (C) 39 (D) 25

2. ऋग्वेद में 'असुर' शब्द किसके लिए प्रयुक्त हुआ हे ?
(A) देवता (B) ऋषि (C) याज्ञिक (D) ईश्वर

3. 'धृतव्रत' शब्द किस देवता की उपाधि है ?
(A) वरुण (B) अग्नि (C) वायु (D) इन्द्र

4. मार्गों का अध्यक्ष है–
(A) इन्द्र (B) विष्णु (C) पूषन् (D) सविता

5. 'आधृणि' किस देवता का विशेषण है ?
(A) इन्द्र (B) उषस् (B) अग्नि (D) पूषन्

6. 'आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च' से सम्बद्ध है–
(A) विष्णु (B) सविता (C) अग्नि (D) वरुण

7. 'उरुक्रम' कहा जाता है–
(A) विष्णु (B) रुद्र (C) सविता (D) उषस्

8. विष्णु का निवासस्थान है–
(A) द्युलोक (B) अन्तरिक्ष (C) पृथिवी (D) पाताललोक

9. 'उरुगाय' उपाधिवाला है–
(A) रुद्र (B) अग्नि (C) सविता (D) विष्णु

10. 'देवता' शब्द है–
(A) पुलिङ्ग (B) स्त्रीलिङ्ग (C) नपुंसकलिङ्ग (D) उभयलिङ्ग

11. 'घृतलोम' किस देवता का विशेषण है ?
(A) अग्नि (B) विष्णु (C) रुद्र (D) मरुत्

12. 'जातावेदाः' कहा जाता है–
(A) वरुण (B) इन्द्र (C) अग्नि (D) वायु

13. 'पुरोहित' हैं–
(A) इन्द्र (B) सविता (C) वायु (D) अग्नि

14. 'दमूनाः' किसका विशेषण है ?
(A) पूषन् (B) सविता (C) रुद्र (D) अग्नि

15. 'ब्रह्मणस्पति' विशेषण वाला है–
(A) अग्नि (B) विष्णु (C) बृहस्पति (D) वरुण

16. ऋग्वेद नवम-मण्डल से सम्बद्ध देवता है–
(A) इन्द्र (B) अग्नि (C) सोम (D) उषस्

17. 'शतक्रतु' विशेषण वाला है–
(A) विष्णु (B) अश्विनौ (C) वायु (D) इन्द्र

18. तिलकजी के मत में इन्द्र का प्रतीक है–
(A) सूर्य (B) मेघ (C) वर्षा (D) नदी

19. 'यास्क' के अनुसार 'वृत्र' किसका प्रतीक है ?
(A) मेघ (B) शब्द (C) अंधकार (D) अज्ञान

20. ऋग्वेद में स्वातन्त्र्येण रुद्र के सूक्तों की संख्या है–
(A) 10 (B) 4 (C) 5 (D) 3

21. मरुतों के पिता हैं–
(A) विष्णु (B) रुद्र (C) इन्द्र (D) अग्नि

22. शुक्लयजुर्वेद के प्रकाश में 'पिनाक-धनुष' का सम्वन्ध है–
(A) रुद्र (B) विष्णु (C) अग्नि (D) मरुत्

23. "याति देवः प्रवता यात्युद्वता । याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।" इस मन्त्र से सम्बन्द्ध देवता है–
(A) सविता (B) अग्नि (C) उषस् (D) रुद्र

24. गायत्री मन्त्र के उपास्य देवता हैं–
(A) रुद्र (B) सविता (C) विष्णु (D) अग्नि

25. 'दस्रा' उपाधिवाला है–
(A) अश्विन् (B) विष्णु (C) रुद्र (D) विवस्वान्

26. 'सोम' की अपेक्षा 'मधु' से अधिक प्रेम करने वाला है–
(A) वरुण (C) विष्णु (C) रुद्र (D) अश्विन्

27. 'दिव्य-भिषक्' उपाधिवाला है–
(A) रुद्र (B) इन्द्र (C) अग्नि (D) अश्विन्

28. 'भुज्यु' का उद्धार करने वाला देवता है–
(A) रुद्र (B) इन्द्र (C) विष्णु (D) अश्विन्

29. 'ऋजास्व' को आँखें प्रदान करने वाला है–
(A) अश्विन् (B) मरुत् (C) इन्द्र (D) अग्नि

30. 'शयु' के लिए किस देवता के ने बन्ध्या गाय को दूध देने वाली बनाया–
(A) विष्णु (B) रुद्र (C) इन्द्र (D) अश्विन्

31. जल में दशरात्रि तक कष्ट सहने वाले रेभ को निकालने वाला है–
(A) रुद्र (B) इन्द्र (C) वरुण (D) अश्विन्

32. 'यास्क' के अनुसार किस देवता का काल आधीरात से लेकर सूर्योदय तक है ?
(A) अश्विन् (B) अग्नि (C) इन्द्र (D) रुद्र

33. किस देवता को 'सूर्य' की पत्नी व माता कहा गया है ?
(A) अदिति (B) उषस् (C) पृथ्वी (D) दिति

34. नैरुक्त मत में देवता कितने प्रकार के होते हैं ?
(A) 1 (B) 4 (C) 5 (D) 3

35. निरुक्तकार के मत में देवताओं का स्थान नहीं है–
(A) पृथिवी (B) स्वर्ग (C) अन्तरिक्ष (D) द्युलोक

36. यास्क के अनुसार 'उषा' का निर्वचन है–
(A) उदेति (B) उद्गच्छित (C) उदासते (D) उच्छति

37. यास्क मत में 'अग्नि' का निर्वचन कौन नहीं है ?
(A) अक्नोपनो भवति (B) अग्रणीः भवति
(C) अङ्गंनयति सन्नममानः (D) अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते

38. 'ऋतावरी' किसका विशेषण है ?
(A) अदिति (B) पृथिवी (C) उषस् (D) दिति

39. 'यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं' मन्त्र से सम्बद्ध है–
(A) अग्नि (B) इन्द्र (C) वरुण (D) विष्णु

40. वृद्ध को युवा बनाने वाला देवता है–
(A) विष्णु (B) इन्द्र (C) वरुण (D) अश्विनौ

41. 'पवमान' उपाधि वाला है–
(A) वृत्रासुर (B) वरुण (C) सोम (D) इन्द्र

42. 'सद्योजङ्घामायसीं विश्पलायै' का सम्बन्ध है–
(A) रुद्र (B) शिव (C) परमेष्ठिन् (B) अश्विन्

1.2. संहिताएँ

1. ऋग्वैदिक मण्डलों की संख्या है–
(A) 5 (B) 1017 (C) 33 (D) 10

2. ऋग्वैदिक-विभाजन के कुल कितने आधार हैं ?
(A) 1 (B) 2 (C) 3 (D) 4

3. पतञ्जलि के अनुसार ऋग्वेद की शाखाएँ थीं–
(A) 11 (B) 21 (C) 101 (D) 1000

4. समस्त ऋग्वैदिक सूक्तों की संख्या है–
(A) 85 (B) 1028 (C) 1016 (D) 10850

5. 'शौनक' के अनुसार ऋग्वेद की ऋचाओं की संख्या है–
(A) 10580 (B) 2006 (C) 10585 (D) $10585\frac{1}{4}$

6. 'होता' का सम्वन्ध है–
(A) सामवेद से (B) ऋग्वेद से (C) यजुर्वेद से (D) अथर्ववेद से
7. 'सामवेद' का ऋत्विक् है–
(A) होता (B) ब्रह्मा (C) अर्ध्वयु (D) उद्‌गाता
8. ऋग्वेद में अध्यायों व वर्गों की संख्या है–
(A) 8/85 (B) 64/2006 (C) 85/2006 (D) 64/85
9. ऋग्वैदिक रचना-काल 'मैक्समूलर' के मत में–
(A) 3500 B.C. (B) 2500 B.C. (C) 1200 B.C. (D) 4500 B.C.
10. लोकमान्य तिलक के मत में वैदिक रचनाकाल है–
(A) 6000—4500 B.C. (B) 4500—1200 B.C.
(C) 4000—2500 B.C. (D) 2500—1200 B.C.
11. ज्योतिष के आधार पर वैदिक तिथि निर्धारित करने वाला विद्वान् है–
(A) विन्टरनित्स् (B) मैक्समूलर
(C) लोकमान्य वाल गंगाधर तिलक (D) मैक्डोनल
12. यजुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय है–
(A) ज्ञान (B) कर्मकाण्ड (C) स्तुति (D) गान
13. सामवेद के उत्तरार्चिक में कुल कितने प्रपाठक हैं ?
(A) 9 (B) 5 (C) 6 (D) 13
14. जैमिनि शाखा किस वेद से सम्वद्ध है ?
(A) ऋक् (B) यजुस् (C) साम (D) अथर्व
15. महाभाष्य के अनुसार सामवेद की शाखाएं हैं–
(A) 1000 (B) 21 (C) 85 (D) अज्ञात
16. 'अध्वर्यु' से युक्त वेद है–
(A) ऋग्वेद (B) यजुर्वेद (C) अथर्ववेद (D) सामवेद
17. सामवेद के पूर्वार्चिक में कुल कितने मन्त्र हैं ?
(A) 650 (B) 1771 (C) 227 (D) 450
18. ऋग्वेद से ली गई कुल सामवैदिक ऋचाओं की संख्या है–
(A) 1504 (B) 104 (C) 1875 (D) 1250
19. 'ब्रह्मा' से सम्वन्ध रखने वाला वेद है–
(A) ऋग्वेद (B) सामवेद (C) यजुर्वेद (D) अथर्ववेद
20. अथर्ववेद में मन्त्रों की कुल संख्या है–
(A) 5987 (B) 10580 (C) 1875 (D) 18000
21. 'पुरुरवा-उर्वशी' संवाद क्रम है–
(A) 10/95 (B) 10/10 (C) 10/96 (D) 10/130

22. ऋग्वेद में 10/10 से संकेतित सूक्त है–
(A) पुरुरवा-उर्वशी (B) सरमा-पणि (C) यम-यमी (D) विश्वामित्र-नदी

23. 'सरमा-पणि' संवाद-सूक्त का मण्डल क्रम है–
(A) 10/10 (B) 10/95 (C) 10/121 (D) 10/108

24. 'नासदीयसूक्त' है–
(A) संवाद-सूक्त (B) दार्शनिकसूक्त (C) दान-सूक्त (D) भोग-सूक्त

25. 10/90 से सांकेतिक ऋग्वैदिक सूक्त है–
(A) हिरण्यगर्भ सूक्त (B) पुरुष-सूक्त
(C) नासदीयसूक्त (D) यम-यमी संवाद सूक्त

26. ऋग्वेद का 10/121 सूक्त है–
(A) उषस् (B) हिरण्यगर्भ (C) पुरुष (D) नासदीय

27. 'श्रद्धासूक्त' का मण्डल क्रम है–
(A) 10/129 (B) 10/90 (C) 10/145 (D) 10/151

28. 'वाक्सूक्त' का मण्डलक्रमाङ्क है–
(A) 10/129 (B) 10/97 (C) 10/151 (D) 10/125

29. 'श्रदासूक्त' के ऋषि हैं–
(A) श्रद्धाकामायनी (B) यमी वैवस्वती
(C) विस्वावारा आत्रेयी (D) सरमा ऋषिका

30. 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं' से सम्वद्ध सूक्त है–
(A) वाक् (B) शिवसङ्कल्प
(C) नासदीय (D) यम-यमी संवादसूक्त

31. 'शिव सङ्कल्प' सम्वद्ध बेद है–
(A) शुक्ल यजुर्वेद (B) अथर्ववेद (C) ऋग्वेद (D) सामवेद

32. 'सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' से सम्वद्ध वेद है–
(A) ऋग्वेद (B) यजुर्वेद (C) सामवेद (D) अथर्ववेद

33. 'समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः' किस वेद का अन्तिम मन्त्र है ?
(A) शुक्लयजुर्वेद (B) कृष्णयजुर्वेद (C) अथर्ववेद (D) ऋग्वेद

34. 'रमध्व में वचसे सोम्याय ऋतावरी रूप मुहूर्तमेवैः' प्रस्तुत ऋचा ऋग्वेद के किस संवाद-सूक्त उद्धृत है ?
(A) पुरुरवा-उर्वशी (B) यम-यमी (C) विश्वामित्र-नदी (D) सरमा-पणि

35. ऋग्वेद-चतुर्थ-मण्डल के मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं–
(A) वामदेव (B) विश्वामित्र (C) अत्रि (D) भरद्वाज

36. ऋग्वेद-पञ्चम-मण्डल के ऋषि हैं–
(A) वामदेव (B) विश्वामित्र (C) अत्रि (D) भरद्वाज

37. भरद्वाज ऋग्वेद के किस मण्डल के ऋषि हैं ?
    (A) द्वितीय (B) षष्ठ (C) सप्तम् (D) चतुर्थ
38. 'शतार्चिनः' का सम्वन्ध किस मण्डल से है ?
    (A) द्वितीय (B) प्रथम (C) चतुर्थ (D) तृतीय
39. ऋग्वेद-सप्तम-मण्डल के ऋषि हैं–
    (A) भरद्वाज (B) अत्रि (C) विश्वामित्र (D) वशिष्ठ
40. ऋग्वैदिक ऋषि जो द्वितीय-मण्डल से सम्वद्ध है–
    (A) विश्वामित्र (B) गृत्समद (C) वामदेव (D) अत्रि
41. 'दशतयी' उपाधि वाला है–
    (A) ऋक् (B) यजुः (C) साम (D) अथर्व
42. ऋग्वेद के द्वितीय से लेकर नवम-मण्डल तक के ऋषियों की संज्ञा है–
    (A) शतर्चिनः (B) माध्यम (C) चारण (D) पावन
43. चातुर्वर्ण्योत्पत्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला ऋग्वैदिक मण्डल है–
    (A) प्रथम (B) तृतीय (C) सप्तम (D) दशम
44. साम-गान वाली ऋचाओं की संज्ञा है–
    (A) आर्चिक (B) योनि (C) पवमान (D) औदगात्र
45. ऋग्वेद-प्रथम-मण्डल-प्रथम-सूक्त सम्वद्ध ऋषि व छन्द हैं–
    (A) अत्रि/त्रिष्टुप (B) अनुष्टुप/भरद्वाज (C) त्रिष्टुप/विश्वामित्र (D) मधुच्छन्दस्/मायत्री
46. 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' सम्वन्ध वेद है–
    (A) ऋग्वेद (B) सामवेद (C) अथर्ववेद (D) यजुर्वेद
47. चुलैट पं. दीनानाथ शास्त्री ने किस पुस्तक में वेद का काल आज से तीन लाख वर्ष पूर्व निर्धारित किया है ?
    (A) वेदतत्त्वार्थ दर्शिका (B) वेदकाल निर्णय
    (C) वैदिक काल मीमांसा (D) कालचक्र और वैदिक साहित्य
48. विन्टरनित्स् ने ऋग्वेद का समय माना है–
    (A) 3500 B.C. (B) 2500 B.C. (C) 6000 B.C. (D) 1500 B.C.

1.3. ब्राह्मण व आरण्यक-साहित्य

1. सवसे अर्वाचीन (Latest) ब्राह्मणग्रन्थ है–
   (A) ऐतरेय (B) शतपथ (C) गोपथ (D) ताण्ड्य
2. 'शुनःशेप' आख्यान सम्वद्ध ब्राह्मण है–
   (A) शतपथ (B) ऐतरेय (C) शांखायान (D) गोपथ
3. पुरुरवा-उर्वशी आख्यान सम्वद्ध ब्राह्मण है–
   (A) शतपथ (B) ताण्ड्य (C) ऐतरेय (D) वंश

4. किस ब्राह्मणग्रन्थ को महाब्राह्मण कहा जाता है ?
   (A) शतपथ (B) ऐतरेय (C) ताण्ड्य (D) गोपथ
5. ऐतरेय आरण्यक में कुल कितने अध्याय हैं ?
   (A) 18 (B) 15 (C) 4 (D) 10
6. सामवेद-कौथुम-शाखा-सम्बद्ध है–
   (A) बृहदारण्यक (B) छान्दोग्य (C) प्रश्न (D) ईश
7. 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' यह किसकी उक्ति है ?
   (A) आपस्तम्ब (B) यास्क (C) सायण (D) कुमारिल
8. शावरभाष्य के अनुसार ब्राह्मणग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषय हैं–
   (A) 5 (B) 10 (C) 7 (D) 12
9. आचार्य सावयस अषाढ़ तथा याज्ञवल्क्य के बीच हुई मीमांसा किस ब्राह्मण से सम्बन्ध रखती है ?
   (A) गोपथ (B) शतपथ (C) ऐतरेय (D) तैत्तिरीय
10. 'ऐतरेय ब्राह्मण' में कुल कितने अध्याय हैं ?
   (A) 40 (B) 20 (C) 25 (D) 21
11. 'चरैवेति' यह प्रसिद्ध वाक्यांश किस ब्राह्मण से सम्बद्ध है ?
   (A) शतपथ (B) तैत्तिरीय (C) ऐतरेय (D) गोपथ
12. कौषीतिक-ब्राह्मण में अध्यायों की संख्या है–
   (A) 40 (B) 30 (C) 5 (D) 20
13. माध्यन्दिनि शाखा शतपथ ब्राह्मण में कुल कितने काण्ड हैं ?
   (A) 40 (B) 25 (C) 14 (D) 18
14. शतपथ ब्राह्मण-राजसूययज्ञ-सम्बद्ध काण्ड है–
   (A) तृतीय (B) द्वितीय (C) सप्तम (D) पञ्चम
15. ताण्ड्यमहाब्राह्मण का मुख्य विषय है–
   (A) देवस्तुति (B) अश्वमेध (C) राजसूय (D) साम व सोमयाग
16. वत्स तथा मेधातिथि की आख्यायिका किस ब्राह्मण ग्रंथ से सम्बन्धित है ?
   (A) शतपथ (B) ऐतरेय (C) ताण्ड्य (D) तैत्तिरीय
17. ताण्ड्यमहाब्राह्मण में आर्यों की समकक्षता पाने हेतु व्रात्यों के लिए कौनसा यज्ञ विहित है ?
   (A) अश्वमेध (B) पिण्डपितृ (C) सोम (D) व्रात्य
18. षडविंश-ब्राह्मण में कुल कितने प्रपाठक हैं ?
   (A) 5 (B) 10 (C) 15 (D) 25
19. सामविधान-ब्राह्मण में कुल कितने प्रकरण हैं ?
   (A) 5 (B) 7 (C) 3 (D) 11
20. आर्षेय ब्राह्मण में कितने प्रपाठक हैं ?
   (A) 5 (B) 3 (C) 7 (D) 21

12966

21. सामवेदीय वंशब्राह्मण में कुल कितने खण्ड हैं ?
(A) 10 (B) 5 (C) 3 (D) 7
22. पूर्व और उत्तर द्विविध विभाग वाला ब्राह्मण ग्रन्थ है–
(A) शतपथ (B) गोपथ (C) ऐतरेय (D) ताण्ड्य
23. सम्पूर्ण गोपथ ब्राह्मण में कुल कितने प्रपाठक हैं ?
(A) 17 (B) 20 (C) 15 (D) 11
24. 'अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीयते' किसका कथन है ?
(A) शङ्कराचार्य (B) दुर्गाचार्य (C) माधवाचार्य (D) सायणाचार्य
25. 'सर्वाऋचः सर्वे वेदाः सर्वे घोषा एकैव व्याहृतिः प्राण एव प्राण' इससे सम्बन्ध आरण्यक ग्रन्थ है–
(A) मैत्रायणीय (B) तैत्तिरीय (C) ऐतरेय (D) तवलकार
26. शांखायन आरण्यक के अध्यायों की संख्या है–
(A) 17 (B) 20 (C) 15 (D) 25
27. 'कश्यपः पश्यको भवति । यत् सर्व पश्यतीति सौक्ष्म्यात्' किस आरण्यक से सम्बद्ध है ?
(A) ऐतरेय (B) तवलकार (C) तैत्तिरीय (D) मैत्रायणीय
28. तवलकार आरण्यक में अध्यायों की संख्या है–
(A) 15 (B) 10 (C) 4 (D) 7
29. 'अथा अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी' किस ब्राह्मण से सम्बद्ध है ?
(A) ताण्ड्य (B) कौषीतीकि (C) तैत्तिरीय (D) शतपथ

1.4. उपनिषद्

1. 'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' यह किस उपनिषद् का मन्त्र है ?
(A) मुण्डक (B) प्रश्न (C) कठ (D) छान्दोग्य
2. कठोपनिषद् में कुल कितने अध्याय हैं ?
(A) 1 (B) 2 (C) 3 (D) 4
3. नचिकेता के पिता ने यज्ञ का आयोजन किया था–
(A) दर्श (B) सौत्रामणि (C) राजसूय (D) विश्वजित्
4. 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस महावाक्य का सम्बन्ध है–
(A) ऐतरेय से (B) बृहदारण्यक से (C) छान्दोग्य से (D) श्वेताश्वतर से
5. 'सत्यकाम-जाबाल' की कथा किस उपनिषद् में है ?
(A) ऐतरेय (B) छान्दोग्य (C) कठ (D) श्वेताश्वतर
6. नारद-सनत्कुमार आख्यान सम्बन्धित है–छान्दोग्योपनिषद्–
(A) तृतीय अध्याय (B) पञ्चम अध्याय (C) सप्तम अध्याय (D) अष्टम अध्याय
7. 'तत्त्वमसि' महावाक्य से सम्बन्धित है–
(A) कठ (B) बृहद् (C) छान्दोग्य (D) माण्डूक्य

8. 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' से सम्बन्धित उपनिषद् है–
(A) मुण्डक (B) प्रश्न (C) छान्दोग्य (D) बृहद्

9. 'वेदान्त' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किस उपनिषद् में हुआ ?
(A) श्वेताश्वतर (B) छान्दोग्य (C) माण्डूक्य (D) मुण्डक

10. चतुष्पाद् आत्मा के विवेचन वाला है–
(A) तैत्तिरीय (B) माण्डूक्य (C) ऐतरेय (D) छान्दोग्य

11. मैत्रेयी के प्रति याज्ञवल्क्य के उपदेश किस उपनिषद् में वर्णित हैं ?
(A) ऐतरेय (B) छान्दोग्य (C) बृहदारण्यक (D) श्वेताश्वतर

12. प्रवहण-जैवालि तथा श्वेतकेतु-आरुणेय का दार्शनिक संवाद किस उपनिषद् में है ?
(A) कठ (B) प्रश्न (C) बृहद् (D) श्वेताश्वतर

13. 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः' किस उपनिषद् का मन्त्र है ?
(A) कठ (B) छान्दोग्य (C) प्रश्न (D) बृहदारण्यक

14. शैव-धर्म का प्रतिपादन किस उपनिषद् में प्राप्त है ?
(A) ईश (B) छान्दोग्य (C) माण्डूक्य (D) श्वेताश्वतर

15. उपनिषदों का प्रथम भाषान्तर फारसी भाषा में कब हुआ ?
(A) 15वीं सदी (B) 16वीं सदी (C) 17वीं सदी (D) 18वीं सदी

16. 'दाराशिकोह' के प्रेरणा से सम्पन्न फारसीग्रन्थ 'सिर्र-ए-अकबर' किस वैदिक साहित्य का अनुवाद है ?
(A) उपनिषद् (B) आरण्यक (C) ब्राह्मण (D) संहिता

17. केनोपनिषद् में कितने खण्ड हैं ?
(A) 5 (B) 4 (C) 7 (D) 9

18. किस उपनिषद् में 'ब्रह्मा' अपने ज्येष्ठ पुत्र 'अथर्वा' को ब्रह्म–विद्या का उपदेश देते हैं ?
(A) माण्डूक्य (B) प्रश्न (C) मुण्डक (D) छान्दोग्य

19. माण्डूक्योपनिषद् में कितने खण्ड हैं ?
(A) 15 (B) 12 (C) 20 (D) 7

20. ऐतरेयोपनिषद् में कितने अध्याय हैं ?
(A) 7 (B) 5 (C) 3 (D) 6

21. छान्दोग्योपनिषद् में कितने अध्याय हैं ?
(A) 11 (B) 8 (C) 15 (D) 10

22. 'इन्द्र-विरोचन' की कथा किस उपनिषद् में पाई जाती है ?
(A) छान्दोग्य (B) बृहद् (C) माण्डूक्य (D) मुण्डक

23. कौषीतिक उपनिषद् में कुल अध्याय हैं–
(A) 7 (B) 6 (C) 4 (D) 8

24. 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्' मन्त्र वाला उपनिषद् है–
(A) केन (B) कठ (C) प्रश्न (D) ईश

25. 'अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्' मन्त्र से युक्त उपनिषद् है–
(A) ईश (B) केन (C) कठ (D) छान्दोग्य

26. 'तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति' इससे सम्बद्ध उपनिषद् है–
(A) प्रश्न (B) मुण्डक (C) माण्डूक्य (D) कठ

27. 'एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव' किस उपनिषद् में है ?
(A) ईश (B) केन (C) कठ (D) प्रश्न

28. 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' यह मन्त्र किस उपनिषद् में पाया जाता है ?
(A) मुण्डक (B) केन (C) कठ (D) प्रश्न

29. मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य देवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि'– यह किस उपनिषद् से सम्वद्ध है ?
(A) मुण्डक (B) माण्डूक्य (C) तैत्तिरीय (D) श्वेताश्वतर

30. 'रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' यह किस उपनिषद् से सम्वद्ध है ?
(A) मुण्डक (B) कठ (C) तैत्तिरीय (D) छान्दोग्य

31. 'तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतः अरणीषु चाग्निः । एवमात्मनि गृह्यतेऽसौ ।' यह किस उपनिषद् का वचन है ?
(A) श्वेताश्वतर (B) बृहदारण्यक (C) छान्दोग्य (D) मुण्डक

32. 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां' किस उपनिषद् का मन्त्र है ?
(A) बृहदारण्यक (B) छान्दोग्य (C) श्वेताश्वतर (D) माण्डूक्य

33. शिक्षा-कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोज्योतिषामिति' इस मन्त्र के द्वारा किस उपनिषद् में वेदाङ्गों का उल्लेख हुआ है ?
(A) छान्दोग्य (B) बृहदारण्यक (C) मुण्डक (D) तैत्तिरीय

34. 'सत्यमेव जयते' किस उपनिषद् से उद्धृत है ?
(A) माण्डूक्योपनिषद् (B) मुण्डकोपनिषद्
(C) छान्दोग्योपनिषद् (D) बृहदारण्यकोपनिषद्

35. 'असतो मा सद् गमय' किस उपनिषद् का वचन है ?
(A) बृहदारण्यक (B) छान्दोग्य (C) मुण्डक (D) माण्डूक्य

36. 'सत्यं ज्ञानमनन्तं व्रह्म' यह महावाक्य पाया जाता है–
(A) ना. उ. (B) बृं. उ. (C) छा. उ. (D) तै. उ.

37. 'पूर्णमदः पूर्णमिदं' पाया जाता है–
(A) बृहदारण्यकोपनिषद् (B) छान्दोग्योपनिषद्
(C) प्रश्नोपनिषद् (D) तैत्तिरीयोपनिषद्

38. 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' यह महावाक्य किस उपनिषद् में पाया जाता है ?
(A) बृहदारण्यकोपनिषद् (B) छान्दोग्योपनिषद्
(C) प्रश्नोपनिषद् (D) तैत्तिरीयोपनिषद्

39. 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः' किस उपनिषद् का वचन है ?
(A) मुण्डकोपनिषद् (B) माण्डूक्योपनिषद् (C) केनोपनिषद् (D) प्रश्नोपनिषद्

40. 'अयमात्मा ब्रह्म' महावाक्य से सम्बद्ध वेद है–
(A) बृहदारण्यक (B) छान्दोग्य (C) प्रश्न (D) तैत्तिरीय

1.5. वेदाङ्ग

1. वेद का मुख कहा जाने वाला वेदाङ्ग है–
(A) शिक्षा (B) छन्द (C) निरुक्त (D) व्याकरण

2. 'पारिषद्' उपाधि वाला शिक्षा ग्रन्थ है–
(A) ऋक्प्रातिशाख्य (B) तैत्तिरीयप्रातिशाख्य
(C) सामप्रातिशाख्य (D) अथर्वप्रातिशाख्य

3. ऋक्प्रातिशाख्य (शौनक) में कुल पटलों की संख्या–
(A) 21 (B) 14 (C) 18 (D) 20

4. शिक्षा-ग्रन्थ वेदों की किन विधियों के निरूपक हैं ?
(A) निर्वचन (B) व्याकरण (C) उच्चारण (D) कालनिर्धारण

5. 'पुष्पसूत्र' किस वेद का प्रातिशाख्य है ?
(A) सामवेद (B) शुक्लयजुर्वेद (C) कृष्णयजुर्वेद (D) अथर्ववेद

6. श्रौतसूत्रों का वर्ण्यविषय है–
(A) संस्कार (B) आश्रम-कर्तव्य (C) वैदिक यज्ञ (D) यज्ञवेदी निर्माण

7. 'षोडश'संस्कार' किसके विषय हैं ?
(A) धर्मसूत्र (B) श्रौतसूत्र (C) गृह्यसूत्र (D) शुल्वसूत्र

8. निरुक्त में शब्दों की कौनसी विधि स्वीकृत है ?
(A) सन्धि (B) समास (C) व्युत्पत्ति (D) निर्वचन

9. यास्क कृत निरुक्त जिस वैदिक-शब्दकोश पर आधारित है, उसका नाम है–
(A) संग्रह (B) संहिता (C) निघण्टु (D) सञ्चयन

10. वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णविनाश और अनेक अर्थों में धातुओं का प्रयोग–ये पाँच किसके प्रतिपाद्य विषय हैं ?
(A) शिक्षा (B) व्याकरण (C) निरुक्त (D) मीमांसा

11. यास्क के निरुक्त में कुल कितने अध्याय हैं ?
(A) 14 (B) 12 (C) 15 (D) 17

12. निघण्टु में कुल कितने अध्याय हैं ?
(A) 5 (B) 7 (C) 10 (D) 12

13. बृहती छन्द में अक्षरों की संख्या पायी जाती है–
(A) 28 (B) 32 (C) 36 (D) 40

14. त्रिष्टुप् छन्द में अक्षरों की संख्या है–
(A) 32 (B) 36 (C) 40 (D) 44

15. यास्क के अनुसार 'आख्यात' का लक्षण है–
(A) भावप्रधान (B) सत्त्वप्रधान (C) शब्दप्रधान (D) धातुप्रधान

16. यास्क मत में 'नाम' का लक्षण है–
(A) भावप्रधान (B) सत्त्वप्रधान (C) धातुप्रधान (D) शब्दप्रधान

17. निम्नलिखित में समुद्र का निर्वचन नहीं है–
(A) समद् द्रवन्ति अस्मादापः (B) समभिद्रवन्ति एनमापः
(C) समुद्यन्ति एनमापः (D) समुदको भवति

18. जातवेदाः का निर्वचन नहीं है–
(A) जातं वेदयति (B) जातानि वेद
(C) जातानि एनं विदुः (D) जाते-जाते विद्यते

19. 'विश्वान् नरान् नयति' किसका निर्वचन है ?
(A) विश्वकर्मा (B) विश्वामित्र (C) वैश्य (D) वैश्वानर

20. वैदिक मन्त्र के उच्चरण में स्वर के मुख्य भेद हैं–
(A) 2 (B) 3 (C) 5 (D) 6

21. 'शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्' यह किस शिक्षा ग्रन्थ से सम्बद्ध है ?
(A) पाणिनीय (B) नारदीय (C) माण्डूकी (D) याज्ञवल्क्य

22. 'स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्' यह किस शिक्षा ग्रन्थ से सम्बद्ध है ?
(A) याज्ञवल्क्य (B) नारदीय (C) पाणिनीय (D) वशिष्ठी

23. धर्मसूत्रों में कौन प्राचीनतम माना जाता है ?
(A) आपस्तम्ब (B) बौधायन (C) हारीत (D) गौतम

24. 'रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्' किसकी उक्ति है ?
(A) पाणिनि (B) कात्यायन (C) भर्तृहरि (D) पतञ्जलि

25. 'वैयाकरणग्रन्थसंग्रह' के रचियता हैं–
(A) यास्क (B) व्याडि (C) शाकटायन (D) गालव

26. 'अर्थावबोधे निरपे तया पदजातं यत्र उक्तं तत् निरुक्तम्' किसी उक्ति है ?
(A) यास्क (B) दुर्गाचार्य (C) सायणाचार्य (D) माधवाचार्य

27. वैदिक छन्द में किसी पाद के एक अक्षर कम/अधिक को कहा जाता है–
(A) निचृत/भुरिक् (B) विराट/स्वराट (C) भुरिक/विराट (D) निचृत/स्वराट

28. जगती तथा पङ्क्ति छन्द में अक्षरों की संख्या है–
(A) 48/40 (B) 42/44 (C) 40/48 (D) 44/42

उत्तरमाला

1.1. देवता

1. (A)	2. (A)	3. (A)	4. (C)	5. (D)	6. (B)	7. (A)	8. (A)
9. (D)	10. (B)	11. (A)	12. (C)	13. (D)	14. (C)	15. (C)	16. (C)
17. (D)	18. (A)	19. (A)	20. (D)	21. (D)	22. (A)	23. (A)	24. (B)
25. (A)	26. (D)	27. (D)	28. (D)	29. (A)	30. (D)	31. (D)	32. (A)
33. (B)	34. (D)	35. (B)	36. (D)	37. (A)	38. (C)	39. (D)	40. (D)
41. (C)	42. (D)						

1.2. संहिताएँ

1. (D)	2. (B)	3. (B)	4. (B)	5. (A)	6. (B)	7. (D)	8. (B)
9. (C)	10. (C)	11. (C)	12. (B)	13. (A)	14. (C)	15. (A)	16. (B)
17. (A)	18. (A)	19. (D)	20. (A)	21. (A)	22. (C)	23. (D)	24. (B)
25. (B)	26. (B)	27. (D)	28. (D)	29. (A)	30. (B)	31. (A)	32. (A)
33. (D)	34. (C)	35. (A)	36. (C)	37. (D)	38. (B)	39. (D)	40. (B)
41. (A)	42. (B)	43. (D)	44. (B)	45. (D)	46. (A)	47. (B)	48. (A)

1.3. ब्राह्मण व आरण्यक साहित्य

1. (C)	2. (B)	3. (A)	4. (C)	5. (A)	6. (B)	7. (A)	8. (B)
9. (B)	10. (A)	11. (C)	12. (B)	13. (C)	14. (B)	15. (D)	16. (C)
17. (D)	18. (A)	19. (C)	20. (B)	21. (C)	22. (B)	23. (D)	24. (D)
25. (C)	26. (C)	27. (C)	28. (C)	29. (C)			

1.4. उपनिषद्

1. (C)	2. (B)	3. (D)	4. (C)	5. (B)	6. (C)	7. (C)	8. (A)
9. (D)	10. (B)	11. (C)	12. (C)	13. (D)	14. (D)	15. (C)	16. (A)
17. (B)	18. (C)	19. (B)	20. (C)	21. (B)	22. (A)	23. (C)	24. (D)
25. (C)	26. (D)	27. (C)	28. (A)	29. (C)	30. (C)	31. (A)	32. (C)
33. (C)	34. (B)	35. (A)	36. (D)	37. (A)	38. (B)	39. (A)	40. (A)

1.5. वेदाङ्ग

1. (D)	2. (A)	3. (C)	4. (C)	5. (A)	6. (C)	7. (C)	8. (D)
9. (C)	10. (C)	11. (A)	12. (A)	13. (C)	14. (D)	15. (A)	16. (B)
17. (C)	18. (A)	19. (D)	20. (B)	21. (A)	22. (C)	23. (D)	24. (D)
25. (B)	26. (C)	27. (A)	28. (A)				

2 दर्शनशास्त्र (Philosophy)

भौतिक दृष्टिकोण स शान्ति की सम्भावना समाप्त हो जाने पर (जैसा कि आज अमरीका, चीन, फ्रांस आदि विकसित देशों में देखने को मिलता है) चिन्तनशील मानव ने ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक शान्ति के निमित्त जिस शास्त्र का उद्भावन किया, वही दर्शनशास्त्र है । भारतवर्ष में विश्व के प्राचीनतम वाङ्मय–ऋग्वेद से ही इस दार्शनिक-चिन्तन का प्रारम्भ स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है, जिसका विकास उपनिषदादि परवर्ती ग्रन्थों में देखा जाता है । **"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः"** अर्थात् 'आत्मदर्शन (साक्षात्कार) करना चाहिए ।' यह श्रुति का निर्देश है । संसार के साथ ही सुख-दुःख भी उत्पन्न होते हैं, क्योंकि संसार त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न होता है, जो सुख-दुःख तथा मोह इन तीनों गुणों से अन्वित है । संसार का प्रत्येक जीव स्वभावतः सुख की प्राप्ति तथा दुःख की निवृत्ति चाहता है, जो आत्मसाक्षात्कार से ही सम्भव है । अतः श्रुति ने आत्मदर्शन का उपर्युक्त आदेश दिया है; परन्तु भिन्न-भिन्न ऋषियों-महर्षियों ने भिन्न-भिन्न मार्ग (विधि) से उस आत्मा का साक्षात्कार किया और इस साक्षात्कार से उन्हें जिस ज्ञानराशि किंवा परमानन्द की प्रतीति हुई, उसे लोकोपकारार्थ अपने शिष्यों में फैलाया । यही कारण है कि जिस ऋषि ने जो मार्ग दर्शाया वह उसका दर्शन कहलाया । इस प्रकार मूल रूप में कुल नौ दार्शनिक विचारधारायें या सम्प्रदाय देखने को मिलते हैं–1. साङ्ख्य, 2. योग, 3. न्याय, 4. वैशेषिक, 5. पूर्वमीमांसा, 6. उत्तरमीमांसा, 7. चार्वाक, 8. बौद्ध और 9. जैन । इनमें प्रथम छः आस्तिक तथा शेष तीन नास्तिक दर्शन के नाम से जाने जाते हैं ।

2.1. साङ्ख्यकारिका (श्रीमदीश्वरकृष्ण)

ईश्वरकृष्णकृत 'साङ्ख्यकारिका', साङ्ख्यदर्शन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । जितनी प्रसिद्धि इस ग्रन्थ की कारिकाओं को मिली. सम्भवतः उतनी इस दर्शन के किसी अन्य ग्रन्थ को न मिल सकी । कुल सत्तर कारिकाओं के इस संग्रह को साङ्ख्यसप्तति तथा सुवर्ण/हिरण्य सप्तति के नाम से भी जाना जाता है । 'अनुयोगद्वार-सूत्र' में इसे "कणग-सत्तरी" कहा गया है । 16वीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान् परमार्थ ने इस हिरण्यसप्तति का वृत्ति सहित चीनी भाषा में अनुवाद किया था, जिसका संस्कृत-अनुवाद श्री अय्यास्वामी शास्त्री ने किया । साङ्ख्यकारिका की सुप्रसिद्ध टीकाओं में–1. माठरवृत्ति, 2. युक्तिदीपिका, 3. जयमंगला, 4. तत्त्वकौमुदी, 5. चन्द्रिका तथा 6. गौड़पादभाष्य टीकाओं का नाम लिया जाता है ।

'साङ्ख्यकारिका' के अन्तर्गत कुल 25 तत्त्वों का विवेचन किया गया है, जो इस प्रकार हैं–प्रकृति, महत् (बुद्धि), अहंकार, 5 तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध), 11 इन्द्रियाँ (5 ज्ञानेन्द्रियाँ–श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण; 5 कर्मेन्द्रियाँ–वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ एक मन जो उभयेन्द्रिय है); 5 महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) और पुरुष । यहाँ पर प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द भेद से प्रमाणों की संख्या तीन है, मुख्य सिद्धांत सत्कार्यवाद है । बुद्धि व

अहंकार युक्त एकादश इन्द्रियों से युक्त 13 करण हैं तथा 18 तत्त्वों का समूह सूक्ष्म-शरीर है । गुणों में वैषम्य होने से सृष्टि तथा साम्य होने से सृष्टिनाश होता है । आत्मा का ही दूसरा नाम पुरुष है, जो शरीर भेद से अनेक हैं ।

2.1.1 सत्कार्यवाद

भारतीय दर्शन में साङ्ख्य के कार्य-कारणवाद अथवा परिणामवाद सिद्धान्त को 'सत्कार्यवाद' के नाम से जाना जाता है । सत्कार्यवाद के अनुसार–प्रत्येक कार्य उत्पत्ति (आविर्भाव) के पूर्व अपने उपादान-कारण में अव्यक्त रूप से उपस्थित रहता है–"Satkaryavada is the theory of the existence of effect in its cause prior to its productions."

ईश्वरकृष्ण के शब्दों में सत्कार्यवाद का स्वरूप निम्नलिखित है–

"असदकरणादुपादानग्रहणात्, सर्वसम्भवाभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात्, कारणभावाच्च सत् कार्यम् ॥" 9 ॥

असदकरणात् → असत् अकरणात् का अभिप्राय अविद्यमान (असत्) को उत्पन्न न कर सकने से है, जैसे–बालू से तेल नहीं बन सकता; क्योंकि बालू में तेल नहीं है । तेल, तिल से ही निकलेगा, क्योंकि उसी में उसकी सत्ता है ।

उपादानग्रहणात् → अर्थात् कार्यविशेष के लिए कारणविशेष को ही ग्रहण करने से; जैसे–पट के लिए तन्तु का ही ग्रहण होता है, मिट्टी का नहीं ।

सर्वसंभवाभावात् → सभी कारणों से सब कार्यों की सिद्धि न होने से, जैसे–चाँदी से सोने के आभूषण व वन्ध्या से पुत्रोत्पत्ति असम्भव है ।

शक्तस्य शक्यकरणात् → जो जिस कार्य में समर्थ है, उससे उसी कार्य के सम्पन्न होने से । जैसे दूध से दही, तन्तु से पट तथा मृत्तिका से घटोत्पत्ति इसलिए होती है, क्योंकि दूध, तन्तु व मृत्तिका में क्रमशः दही, पट व घट की सामर्थ्य विद्यमान है ।

कारणभावात् → कारण जैसा होने से अर्थात् कारण के सदृश ही कार्य की उत्पत्ति होने से । जैसे–गेहूँ बोने से गेहूँ ही उत्पन्न होता है । अतः स्पष्ट है कि सत् की ही उत्पत्ति होती है, असत् की नहीं अर्थात् उत्पत्ति (आविर्भाव) के पूर्व कार्य की सत्ता कारण में विद्यमान रहती है । यही सत्कार्यवाद कहा जाता है ।

2.1.2. पुरुष–स्वरूप

साङ्ख्यदर्शन में मुख्य रूप से दो ही तत्त्वों को स्वीकार किया गया है–1. प्रकृति और 2.पुरुष। इसमें पुरुष (चेतन) का स्वरूप प्रकृति के स्वरूप वाला भी है, तथा उससे भिन्न भी है, जैसाकि साङ्ख्यकारिका में कहा गया है–

हेतुमदनित्यमव्यापि, सक्रियमनेकमाश्रितं, लिङ्गम् ।
साऽवयवं परतन्त्रम्–व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ॥ 10 ॥
त्रिगुणमविवेकिविषयः, सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि ।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ॥ 11 ॥

यहाँ पर 11वीं कारिका में वर्णित पुरुष; प्रकृति के स्वरूप से भिन्न (त्रिगुणातीत, विवेकी अविषय, असामान्य, चेतन तथा अप्रसवधर्मी) तथा 10वीं कारिका में कथित प्रकृति के स्वरूप वाला (अहेतुमत्, नित्य, व्यापी, निष्क्रिय, एक, अनाश्रित, अलिङ्ग, निरवयव और स्वतन्त्र) है । इसी को **'तद्विपरीतस्तथा च पुमान्'** कहा गया है । इस प्रकार के गुणों वाला पुरुष नित्य और एक होते हुए भी शरीर-भेद से बहुत होता है–

"जनन-मरण-करणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च ।

पुरुषवहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥" 18 ॥

अर्थात् जन्म-मृत्यु और इन्द्रियों के प्रतिनियम से या प्रत्येक शरीर का जन्म, मरण और इन्द्रियों के संघात के पृथक्-पृथक् होने से तथा त्रैगुण्य (सत्व, रज, तम) के विपर्यय से पुरुष का वहुत होना स्वयं सिद्ध है ।

जहाँ तक पुरुष की सत्ता का प्रश्न है, तो पञ्चमहाभूतों का यह शरीर किसी के उपयोग के लिए ही होगा, इस भावना से तथा **'त्रिगुणमविवेकिविषयः'** इत्यादि पूर्व कथित स्वरूप से भिन्न की सत्ता होने से, रथ का संचालन करते हुए सारथी की भाँति अधिष्ठान की उपयोगिता से, भोक्तृत्वभाव से (जैसे विभिन्न व्यंजनों के रखे रहने का यही तात्पर्य है कि उसका कोई उपभोक्ता भी होगा) तथा कैवल्य की ओर प्रवृत्ति होने से पुरुष की सत्ता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है । ईश्वरकृष्ण के शब्दों में–

"संघातपरार्थत्वात्, त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात् ।

पुरुषोऽस्ति, भोक्तृभावात्, कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥" 17 ॥

2.1.3. प्रकृति–स्वरूप

साङ्ख्यदर्शन में प्रकृति (अव्यक्त) का स्वरूप, उसकी विकृति (व्यक्त/महदादि) के स्वरूपवाला भी है, तथा उससे भिन्न स्वरूप वाला भी है । यथा–

"हेतुमदनित्यमव्यापि, सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् ।

सावयवं परतन्त्रं,–व्यक्तं, विरीतमव्यक्तम् ॥" 10 ॥

अर्थात् व्यक्त से भिन्न (अहेतुमत्, नित्य, व्यापी, निष्क्रिय, एक, अनाश्रित, अलिङ्ग, निरवयव तथा स्वतंत्र है) तथा–

"त्रिगुणमविवेकि विषयः, सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि ।

व्यक्तं तथा प्रधानं - - - - - - - - - - - - - - ॥" 11 ॥

व्यक्त के समान स्वरूपवाला भी है । अर्थात्–त्रिगुण, अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन एवं प्रसवधर्मी भी है ।

इस प्रकार के गुणों वाली प्रकृति, पुरुष के समक्ष अपने को ठीक उसी प्रकार से प्रस्तुत करती है तथा निवृत्त भी हो जाती है; जैसे–कोई नर्तकी रंगमञ्च पर अपना नाच दिखाकर (अपना कार्य समाप्त कर) उस द्रष्टा (दर्शक) के प्रति नृत्य से निवृत्त हो जाती है । **यच्चोक्तम्–**

"रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात् ।

पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य निवर्तते प्रकृतिः ॥" 59 ॥

ईश्वरकृष्ण ने इस प्रकृति की सुकुमारता को इंगित करते हुए कहा है कि–भला इस प्रकृति से अधिक सुकुमार और कौन हो सकता है ? जो यह सोचती हुई कि पुरुष ने मुझे एक बार देख लिया है, उसके सामने फिर कभी नहीं जाती है–

"प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्ति इति मे मतिर्भवति ।

या दृष्टाऽस्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ॥" 61 ॥

इस प्रकार उपर्युक्त स्वरूपमती प्रकृति वन्धन तथा मोक्ष के घेरे में घूमती रहती है । यह अपने ही सप्तस्वरूपों–धर्म, अधर्म, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य तथा अज्ञान से अपने को बन्धन में डाल लेती है, तथा पुरुष के प्रयोजन के हेतु एक ज्ञान को छोड़ देती है, जिसके माध्यम से पुरुष अपने व प्रकृति के स्वरूप का सम्यक् दर्शन करके भ्रममुक्त हो जाता है या प्रकृति अपने को मुक्त कर लेती हैं–

"रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः ।

सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येक रूपेण ॥" 63 ॥

2.1.4. सृष्टिक्रम

न्याय-वैशेषिक व वेदान्तादि दर्शनों की भाँति साङ्ख्यदर्शन, सृष्टि के लिए ईश्वर या ब्रह्म की उपयोगिता को स्वीकार नहीं करता है; अपितु प्रकृति और पुरुष (जड़ और चेतन) के संयोग को ही सृष्टि में हेतु मानता है । जैसा कि एक लूला और अन्धा इन दो व्यक्तियों का संयोग (पङ्ग्वन्धन्याय) गमन कार्य में सहायक सिद्ध होता है, ठीक उसी प्रकार पुरुष का प्रधान (प्रकृति) के साथ संयोग सृष्टि का निमित्त होता है । यहाँ पर पुरुष को लूला व प्रकृति को अन्धा दर्शाया गया है । ईश्वरकृष्ण के शब्दों में–

"पुरुषस्य दर्शनार्थं, कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥" 21 ॥

इस प्रकार पङ्ग्वन्धवत् पुरुष-प्रकृति संयोग होने पर प्रकृति से महत् (बुद्धि), उस महत् तत्त्व से अहङ्कार, तथा अहङ्कार से सोलहरूपों वाला समूह उत्पन्न होता है । अर्थात् अहङ्कार के वैकृत सात्त्विक अंश से एकादश इन्द्रियाँ तथा तमोगुण प्रधान अंश से पञ्चतन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं । इन सोलह के समूह में स्थित पञ्चतन्मात्राओं से पञ्चमहाभूत उत्पन्न होते हैं (शब्द तन्मात्रा से आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से तेज, रस से जल तथा गन्ध तन्मात्रा से पृथ्वी) अर्थात् उपर्युक्त पञ्चपरमाणुओं (तन्मात्राओं) से पञ्चमहाभूतों का आविर्भाव होता है, जैसाकि साङ्ख्यकारिकाकार का कथन है–

"प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः ।
तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥" 22 ॥

2.1.5. प्रत्ययसर्ग

धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्यादि जो बुद्धि के परिणाम हैं–(**"अध्यवसायो बुद्धिः धर्मो ज्ञानं विरागमैश्वर्यम्"**) और विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि तथा सिद्धि के रूप में परिणत होते हैं, यही भावसर्ग अथवा प्रत्ययसर्ग (बौद्धिकसृष्टि) कही जाती है ।

इस प्रकार विपर्यय, तुष्टि, अशक्ति और सिद्धि रूप बुद्धि के परिणामों से हुए इस प्रत्ययसर्ग के 50 प्रकार हैं । ईश्वरकृष्ण के शब्दों में–

"एष प्रत्ययसर्गो विपर्यया-ऽशक्ति-तुष्टि-सिद्ध्याख्यः ।
गुणवैषम्यविमर्दात्तस्य च भेदास्तु, पञ्चाशत् ॥" 46 ॥

इनमें संशय रूप अज्ञान ही विपर्यय के नाम से जाना जाता है, जैसे-किसी स्थाणु (ठूँठ) को देखने पर यह संशय होता है कि यह ठूँठ है या मनुष्य या प्रेत । इसी का नाम विपर्यय है । जब उसी ठूँठ को अच्छी तरह देखने पर भी संशय दूर नहीं होता, तो इसी को अशक्ति या असामर्थ्य कहते हैं, और जब उस स्थाणु को देखकर व्यक्ति न तो जानने की चेष्टा करता है, और न संशय करता है, तो इसी उपेक्षात्मक बुद्धि को (चाहे स्थाणु हो या पुरुष, इससे हमें क्या लेना-देना है) तुष्टि कहा जाता है; परन्तु जब स्थाणु पर बैठे हुए पक्षी को अथवा उस पर चढ़ी हुई लता या अन्य कारणों से जब व्यक्ति यह निश्चय कर लेता है कि यह स्थाणु ही है, तो इससे उसकी इन्द्रियाँ आनन्दित होती हैं; यही सिद्धि है । इनमें विपर्यय के पाँच भेद, इन्द्रियों की विकलता के कारण उत्पन्न अशक्ति के 28 भेद, तुष्टि के 9 तथा सिद्धि के 8 भेद होते हैं । इस प्रकार प्रत्ययसर्ग के (5 + 28 + 9 + 8 = 50) पचास भेद होते हैं–

"पञ्चविपर्ययभेदाः भवन्त्यशक्तिस्तु करणवैकल्यात् ।
अष्टाविंशतिभेदा, तुष्टिर्नवधाऽष्टधा सिद्धिः ॥" 47 ॥

2.1.6. कैवल्य (अपवर्ग)

कैवल्य का तात्पर्य मोक्ष (ऐकान्तिक सुख) या दुःखत्रय की ऐकान्तिक व आत्यन्तिक निवृत्ति है । यह ऐकान्तिक दुःखनिवृत्ति, प्रकृति-पुरुष-विवेकज्ञान (भेदभाव) से ही सम्भव है–**"व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानात् ।"**

इस प्रकार विवेकज्ञान अथवा साक्षात्कार होने पर पुरुष, त्रिगुणत्मिका प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है, और प्रकृति को रंगमञ्च पर नृत्य करती हुई नर्तकी के रूप में दर्शक की भाँति, बैठकर देखता है । प्रकृति भी इस मुक्त पुरुष के लिए (मैं इसके द्वारा देख ली गई हूँ ऐसा जानकर) अपना कार्यसम्पादन वन्द कर देती है–**"रङ्गस्यदर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात् ॥"** पुरुष भी "मैं इसे देख चुका हूँ" ऐसा सोचकर उस प्रकृति की उपेक्षा कर देता है । ऐसी स्थिति में धर्म-अधर्म, ज्ञान-अज्ञान, वैराग्य-अवैराग्य, ऐश्वर्य एवं अनैश्वर्य रूप बुद्धि के परिणाम दग्धवीज रूप हो जाते हैं; जिससे उनका कोई फल नहीं होता, किन्तु कुम्हार के चाक की भाँति संस्कारवशात् पुरुष, शरीर को धारण किये रहता है–

"सम्यग् ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रमभ्रमवद् धृतशरीरः ॥" 67 ॥

परन्तु जव उक्त संस्कार समाप्त हो जाते हैं, तव शरीर भी नहीं रह जाता, प्रकृति कृतार्थ होकर सदा के लिए उस पुरुष से निवृत्त हो जाती है और पुरुष, कभी नाश न होने वाले अवश्यंभावी, ऐकान्तिक व आत्यन्तिक कैवल्य को प्राप्त होता है–

"प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति ॥" 68 ॥

2.2. वेदान्तसार (सदानन्द)

श्री सदानन्द योगीन्द्रकृत प्रस्तुत **'वेदान्तसार'** नामक ग्रन्थ, अद्वैत-वेदान्त का एक प्रकरण-ग्रन्थ है । यह स्वल्पकाय होने पर भी कोहिनूर हीरे के समान है । इसका 'वेदान्तसार' नाम पूर्णरूपेण सार्थक सिद्ध हुआ है । इसके समुचित अध्ययन करने से अद्वैत वेदान्त के ग्रन्थों को समझ सकने की योग्यता प्राप्त हो जाती है । ध्यातव्य है कि–यद्यपि प्रस्तुत वेदान्तसार के अतिरिक्त रामानुजाचार्य, स्वामीनारायण सम्प्रदाय तथा आचार्य शङ्करभगवत्पाद द्वारा भी वेदान्तसार नामक ग्रन्थों की रचना की गई है, परन्तु लोकप्रसिद्धि सदानन्द योगीन्द्रकृत 'वेदान्तसार' को ही प्राप्त है । अब तक इस पर सुवोधिनी (नृसिंहसरस्वतीकृत); विद्वन्मनोरञ्जनी (रामतीर्थतयतिकृत) तथा बालबोधिनी (आपदेव कृत) इत्यादि अनेक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं ।

2.2.1.अनुबन्ध-चतुष्टय

परस्पर सुसम्वद्ध विचारणीय तत्त्वों को अनुबन्ध के नाम से जाना जाता है । प्रस्तुत प्रकरण ग्रन्थ वेदान्तसार में अनुवन्ध की चर्चा करते हुए ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही श्री सदानन्द योगीन्द्र ने लिखा है–**"तत्रानुबन्धो नामाधिकारि-विषय-सम्बन्ध-प्रयोजनानि ।"** अर्थात् ये अनुबन्ध चार हैं–1. अधिकारी, 2. विषय, 3. सम्बन्ध और 4. प्रयोजन ।

साधारण तौर पर किसी भी ग्रन्थ को देखकर मन में एक जिज्ञासा उठती है कि इसका (इस ग्रन्थ को पढ़ने का) अधिकारी कौन है ? इसका प्रतिपाद्य विषय क्या है ? इससे मेरा क्या सम्बन्ध है ? तथा इस ग्रन्थ का उद्देश्य क्या है ? यही स्थिति प्रस्तुत ग्रन्थ के भी विषय में है । अतः इसके चारों अनुवन्धों का संक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जा रहा है ।

1. **अधिकारी**–यहाँ पर साधनचतुष्टयसम्पन्न प्रमाता को वेदान्त का अधिकारी बताया गया है–**"अधिकारी तु विधिवदधीत वेदवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखिलवेदार्थोस्मिन् जन्मनि जन्मांत्तरे वा**

काम्यनिषिद्धवर्जनपुरःसरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चितोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्त निर्मलस्वान्तः साधन चतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता ।"

2. **विषय**–जीव तथा ब्रह्म की एकता ही प्रस्तुत वेदान्तग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है–"**विषयो जीवब्रह्मैक्यं शुद्ध चैतन्यं प्रमेयं तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात् ।**"

3. **सम्बन्ध**–यहाँ पर बोध्य-बोधकभाव सम्बन्ध समझना चाहिए–"**सम्बन्धस्तु तदैक्य प्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्य-बोधकोभावः ।**"

4. **प्रयोजन**–जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य विषयक अज्ञान की निवृत्ति तथा स्वस्वरूपावगति ही इस ग्रन्थ का प्रयोजन है–"**प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः स्वस्वरूपानन्दावापत्तिश्च ।**" "**तरति शोकमात्मवित्**", "**इत्यादि श्रुतेः**" "**ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।**"

2.2.2. अज्ञान

अज्ञान को अविद्या अथवा माया के रूप में जाना जाता है । इसी को आचार्य शङ्कर ने अध्यास कहा है । यह न तो सत् है और न असत्, बल्कि सत् और असत् दोनों के बीच एक अनिर्वचनीय कड़ी है–"**अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधिभावरूपं यत्किञ्चिदिति वदन्त्यहमज्ञ इत्याद्यनुभावात् ।**" शायद इसी भाव को ध्यान में रखते हुए वेदान्त-सिद्धान्तमुक्तावलीकार ने लिखा है–

"**अज्ञानं ज्ञातुमिच्छेद् यो, मानेनात्यन्तमूढधीः । स तु नूनं तमः पश्येद्, दीपेनोत्तमतेजसा ॥**"

यह अज्ञान एक होने पर भी समष्टि तथा व्यष्टि भेद से दो प्रकार का होता है । समष्टि अभिप्राय से इसे एक तथा व्यष्टि अभिप्राय से अनेक माना जाता है । जैसे, समष्टिभाव से अनेक वृक्षों के समूह को एक वन तथा जलसमूह को जलाशय कह दिया जाता है; परन्तु व्यष्टिगत दृष्टिकोण से देखने पर, यह आम है, यह महुआ, पीपल, नीम, शीशम इत्यादि भिन्न-भिन्न वृक्ष तथा बावली, कूप, तालाब, घट इत्यादि के जल का बोध होता है । इसी प्रकार अन्तःकरण रूप उपाधि के भेद से भिन्न-भिन्न प्रतीत हुए प्रत्येक जीव के भिन्न-भिन्न अज्ञानों के लिए समष्ट्यभिप्रायेण एक ही अज्ञान का प्रयोग होता है । अज्ञान को एक व्यक्ति को व्याप्त करने के कारण 'व्यष्टि अज्ञान' तथा पूरे समूह को व्याप्त करने के कारण 'समष्टि अज्ञान' कहा गया है–"**इदमज्ञानं समष्टिव्यष्ट्यभिप्रायेणैकमनेकमिति च व्यवह्रियते । तथाहि । यथा वृक्षाणां समष्ट्यभिप्रायेण वनमित्येकत्वव्यपदेशो यथा वा जलानां समष्ट्यभिप्रायेण जलाशय इति तथा नानात्वेन प्रतिभासमानानां जीवगताज्ञानानां समष्ट्यभिप्रायेण तदेकत्वव्यपदेशो "ऽजामेकाम्" इत्यादि श्रुतेः ।**"

इस अनिर्वचनीय अज्ञान तत्त्व की दो शक्तियाँ बताई गई हैं–1. आवरणशक्ति और 2. विक्षेप शक्ति । इसमें आवरणशक्ति, अज्ञान की वह शक्ति है जो (सूर्य को बादल की भाँति) प्रमाता की दृष्टि को आच्छादित कर आत्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप को ढक देती है; यथा–"**घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं, यथा मन्यते निष्प्रभंचातिमूढः । तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः, स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥**" अज्ञान की दूसरी विक्षेप शक्ति मिथ्या पदार्थों को उत्पन्न करने वाली है । अर्थात् अज्ञान की प्रथम (आवरण) शक्ति द्वारा आवृत्त किये गये पदार्थ पर, जिस दूसरी शक्ति के द्वारा ब्रह्मा से लेकर समस्त चराचर जीव पर्यन्त जगत् की सृष्टि की जाती है; उस द्वितीय शक्ति को विक्षेप शक्ति के नाम से जाना जाता है । उदाहरणतया–प्रथमतः आवरणशक्ति ने अन्धकार में पड़ी हुई किसी रस्सी के वास्तविक स्वरूप को ढक दिया, तब तक दूसरी विक्षेप शक्ति ने उस रस्सी में सर्प की भावना का आरोप कर दिया । यही अज्ञान है ।

2.2.3. अध्यारोप

जो वस्तु जिस रूप में नहीं है, उस रूप का उस वस्तु में आरोप (भ्रम) ही अध्यारोप है । अर्थात् जो सर्प नहीं है, ऐसी किसी रस्सी में सर्प का आरोप करना (यथार्थ में अयथार्थ का आरोप करना = भ्रम) ही अध्यारोप के नाम से जाना जाता है–"**असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद् वस्तुन्यवस्त्वाऽरोपोऽध्यारोपः ।**" ठीक इसी प्रकार ब्रह्म और जगत् सम्बन्धी अध्यारोप में सत्-चित्

आनन्द-अद्वितीय ब्रह्म ही वस्तु है और अज्ञान से उत्पन्न सम्पूर्ण जड़-पदार्थ ही अवस्तु है (अयथार्थ या मिथ्या है) अतः उस यथार्थ ब्रह्म में इन अयथार्थ जड़ पदार्थों का आरोप ही अध्यारोप है–**"वस्तु सच्चिदानन्दानन्ताद्वयं ब्रह्म । अज्ञानादि सकल जड़समूहोऽवस्तु ।"**

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि केवल सच्चिदानन्द ब्रह्म ही सत् (वस्तु) है; परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि ब्रह्म से इतर अज्ञान असत् है । यदि ऐसा होता, तो आकाशकुसुम, अथवा शशश्रृंगवत् उसकी प्रतीति नहीं होनी चाहिए, जबकि होती है । वह इस प्रतीयमान जड़-जगत का कारण है । इसका मतलब अज्ञान को सत् होना चाहिए, परन्तु आत्मज्ञान से उसका नाश होने के कारण उसे सत् भी नहीं कहा जा सकता । अतः अज्ञान न तो सत् है और न असत् ही, अपितु वह अनिर्वचनीय है–**"अज्ञानं तु सदसद्भ्याम् अनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति वदन्त्यहमज्ञ इत्याद्यनुभवात् । "देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढान्" इत्यादि श्रुतेश्च ।"**

2.2.4. लिङ्गशरीरोत्पत्ति

लिङ्गशरीर का ही दूसरा नाम सूक्ष्मशरीर है । यह 17 अवयवों के संयोग से उत्पन्न होता है । जिनके द्वारा प्रत्यगात्मा अर्थात् जीवात्मा के अस्तित्व का बोध होता है, उन्हें ही लिङ्ग कहते हैं । ये लिङ्ग चूँकि शरीर में स्थित रहते हैं, अतः इन्हें लिङ्गशरीर के नाम से जाना जाता है ।

जिन 17 अवयवों से इस लिङ्ग शरीर की उत्पत्ति होती है, उन्हें एकादश इन्द्रिय (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और मन) पञ्चवायु (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) तथा बुद्धि के नाम से जाना जाता है–**"सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिङ्गशरीराणि । अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं बुद्धिमनसी कर्मेन्द्रियपञ्चकं वायुपञ्चकं चेति ।"**

उपर्युक्त पञ्च ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति साङ्ख्याचार्य यद्यपि अहंकार से मानते हैं, परन्तु वेदान्ती अज्ञान के त्रिगुण से उत्पन्न त्रिगुणात्मक भूतों के सात्विक अंश से उद्भूत मानते हैं, अर्थात् आकाश के सात्त्विक अंश से श्रोत्र, वायु के सात्विक अंश से त्वगिन्द्रिय, तेज के सात्विक अंश से चक्षु, जल के सात्त्विक अंश से जिह्वा तथा पृथ्वी के सात्विक अंश से घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई है–**"ज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा-घ्राणाख्यानि । एतान्याकाशादीनां सात्विकांशेभ्यो व्यस्तेभ्यः पृथक्-पृथक् क्रमेणोत्पद्यन्ते ।"** इसके अतिरिक्त बुद्धि का लक्षण है–**"बुद्धिः नाम निश्चयात्मिकान्तःकरणवृत्तिः ।"** अर्थात् निश्चयात्मिका अन्तःकारणवृत्ति ही बुद्धि है, जैसे–मैं ब्रह्म ही हूँ । जहाँ तक मन का प्रश्न है, इसका अभिप्राय संशयात्मक अन्तःकारणवृत्ति से है । नील-पीत इत्यादि विषय-विवेचन को संकल्प कहते हैं, इसी का विपर्यय विकल्प कहा जाता है । संकल्प और विकल्प में यही भेद है । मैं चिद्रूप हूँ या शरीर रूप हूँ–यही संशयात्मक अन्तःकरणवृत्ति ही मन है–**"मनो नाम संकल्पविकल्पात्मिकान्तः करणवृत्तिः ।"** कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति के विषय में वेदान्तियों का कहना है कि–आकाशादि भूतों के रजोगुण के प्राबल्य से कर्मेदियों की उत्पत्ति होती है अर्थात्–आकाश के रजोगुण से वाक्, वायु से पाणि, अग्नि से पाद, जल से पायु तथा पृथ्वी के रजोगुण से उपस्थेन्द्रिय की उत्पत्ति होती है ।

इस प्रकार श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण । बुद्धि । मन । वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ । प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समानवायु, इन सत्रह तत्वों या लिङ्गों के योग से तीन कोशों का निर्माण होता है । इन तीनों कोशों का संक्षिप्तस्वरूप निम्नलिखित है–

1. **विज्ञानमयकोश**–पञ्चज्ञानेन्द्रियों से युक्त बुद्धि को विज्ञानमयकोश के नाम से जाना जाता है ।
2. **मनोमयकोश**–पञ्चज्ञानेन्द्रियों व मन का सम्मिलित रूप ही मनोमय-कोश कहा जाता है ।
3. **प्राणमयकोश**–पञ्चकर्मेन्द्रियों तथा पञ्चप्राणों का सम्मिलित रूप प्राणमय-कोश कहा गया है ।

इन्ही तीनों कोशों (विज्ञानमय, मनोमय तथा प्राणमय) को ही सूक्ष्मशरीर या लिङ्गशरीर के नाम से जाना जाता है–**"एतेषु कोशेषु विज्ञानमयो ज्ञानशक्तिमान कर्तृरूपः । मनोमय इच्छाशक्तिमान् करणरूपः । प्राणमयः क्रियाशक्तिमान् कार्यरूपः । योग्यत्वादेवमेतेषां विभाग इति वर्णयन्ति । एतत्कोशत्रयं मिलितं सूक्ष्मशरीरम् इति उच्यते ।"**

2.2.5. पञ्चीकरण

स्थूल-शरीर के उत्पादक पञ्चीकृत-महाभूतों की विशिष्ट-स्थिति ही पञ्चीकरण के नाम से जानी जाती है । स्थूलसृष्टि (सूक्ष्म या लिङ्ग सृष्टि से भिन्न) को समझने के लिए **'पञ्चीकरण'** प्रक्रिया का ज्ञान नितान्त आवश्यक है; जो इस प्रकार है–

सर्वप्रथम पञ्चमहाभूतों (आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी) में से प्रत्येक को दो-दो भागों में विभक्त कर लेते हैं । इस प्रकार पाँचोंमहाभूत दस भागों में विभक्त हो जाते हैं । अब पाँचों महाभूतों के (जो प्रत्येक दो भागों में विभक्त हैं) एक-एक भाग को चार-चार भागों में विभक्त कर लेते हैं । इस प्रकार प्रत्येक महाभूत पाँच टुकड़ों में विभक्त हो जाता है । एक भाग आधा ($\frac{1}{2}$ भाग) है तथा शेष चार भाग अष्टमांश ($\frac{1}{8}$ के चार टुकड़े) हैं । ऐसी स्थिति में प्रत्येक महाभूत के चारों अष्टमांशों को अन्य चार महाभूतों के आधे-आधे भागों में ($\frac{1}{2}$ टुकड़ों में) मिला देते हैं, अर्थात् आकाश के चार अष्टमांशों में से एक अष्टमांश वायु के अर्धांश में, एक तेज के अर्धांश में, एक जल के अर्धांश में तथा एक पृथ्वी के अर्धांश में मिला देते हैं । इसी प्रकार सभी महाभूतों के अष्टमांशों को सभी के अर्धांशों में मिला देते हैं तब हम देखते हैं कि प्रत्येक महाभूत के पास अपना तो अर्धांश ($\frac{1}{2}$ भाग) है, ही; इसके अतिरिक्त अन्य चारों महाभूतों के भी चार अष्टमांश (एक अर्धांश) उनमें मिल गये; इससे वह पूर्ण तो हो ही गया, साथ ही साथ प्रत्येक महाभूत पञ्चमहाभूतों का समन्वित रूप हो गया । ऐसी स्थिति में **"प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति"** के आधार पर जिसमें जिस अंश की अधिकता है, उसमें उस गुण की प्रधानता समझनी चाहिए । इसी को पञ्चीकरण के नाम से जाना जाता है–**"स्थूल भूतानि तु पञ्चीकृतानि । पञ्चीकरणं त्वाकाशादिपञ्चस्वेकैकं द्विधा समं विभज्य तेषु दशसु भागेषु प्राथमिकान् पञ्चभागान्प्रत्येकं चतुर्धा समं विभज्य तेषां चतुर्णां भागानां स्व-स्व द्वितीयार्द्धभागपरित्यागेन भागान्तरेषु संयोजनम् ।"** तदुक्तम्–**"द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः । स्व-स्वेतरद्वितीयांशैर्योजनात्पञ्च-पञ्च ते ॥ इति ।"**

पञ्चीकरण के पश्चात् प्रत्येक महाभूत अपने पूर्ववर्ती महाभूत के गुणों को ग्रहण कर लेता है अर्थात् आकाश में शब्द, वायु में शब्द और स्पर्श; अग्नि में शब्द, स्पर्श तथा रूप; जल में शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस; पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का गुण पाया जाता है–**"तदानीमाकाशे शब्दोऽभिव्यज्यते वायौ शब्दस्पर्शावग्नौ शब्दस्पर्शरूपाण्यप्सु शब्दस्पर्शरूपरसाः पृथिव्यां शब्दस्पर्शरूपरस गन्धाश्च ।"** निम्नलिखित सारणी आरेख से पञ्चीकरण की उपर्युक्त प्रक्रिया को भली भाँति समझा जा सकता है–

पञ्चीकरण—प्रकोष्ठ					
सूक्ष्म—भूत					स्थूलभूत
$\frac{1}{2}$ आकाश	$\frac{1}{8}$ वायु	$\frac{1}{8}$ तेज	$\frac{1}{8}$ जल	$\frac{1}{8}$ पृथ्वी	आकाश
$\frac{1}{2}$ वायु	$\frac{1}{8}$ आकाश	$\frac{1}{8}$ तेज	$\frac{1}{8}$ जल	$\frac{1}{8}$ पृथ्वी	वायु
$\frac{1}{2}$ तेज	$\frac{1}{8}$ आकाश	$\frac{1}{8}$ वायु	$\frac{1}{8}$ जल	$\frac{1}{8}$ पृथ्वी	तेज
$\frac{1}{2}$ जल	$\frac{1}{8}$ आकाश	$\frac{1}{8}$ वायु	$\frac{1}{8}$ तेज	$\frac{1}{8}$ पृथ्वी	जल
$\frac{1}{2}$ पृथ्वी	$\frac{1}{8}$ आकाश	$\frac{1}{8}$ वायु	$\frac{1}{8}$ तेज	$\frac{1}{8}$ जल	पृथ्वी

2.2.6. विवर्त

किसी यथार्थ वस्तु की भ्रम के कारण अयथार्थ रूप में प्रतीति तथा पुनः उसके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जाना ही अपवाद कहलाता है, अर्थात् अज्ञानादि प्रपञ्च की मिथ्या प्रतीति और पुनः भ्रम के निराकरण के उपरान्त सत्यभूत ब्रह्म की स्थिति अपवाद है । यह मिथ्या प्रतीति दो कारणों से देखी जाती है– 1. परिणामवाद तथा 2. विवर्तवाद । इसमें परिणामवाद वह स्थिति है, जब कोई वस्तु अपने वास्तविक स्वरूप का परित्याग कर अन्य रूप को ग्रहण कर लेती है । यही विकारभाव है, जैसे–दूध का दही के रूप में परिवर्तित होना–**"सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः ।"**

विवर्तवाद वह प्रक्रिया है, जब कोई वस्तु अपने वास्तविक स्वरूप का परित्याग न करते हुए अपने सदृश किसी अन्य वस्तु के रूप में प्रतिभासित होने लगती है; जैसे–रस्सी अपने यथार्थ रूप का परित्याग न करते हुए भी सर्प (अयथार्थ रूप) की मिथ्या प्रतीति करवाने लगती है (प्रतिभासित होती है) यही विवर्तवाद है–**"अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः ।"**

इस प्रकार यह सुस्पष्ट हो जाता है कि–सांसारिक प्रपञ्च, सत्‌चित्-आनन्द ब्रह्म का परिणाम नहीं अपितु ब्रह्म का विवर्त है; क्योंकि ब्रह्मरूप सत्यवस्तु में प्रपञ्च की प्रतीति मिथ्या है । यदि इस सांसारिक प्रपञ्च को ब्रह्म का परिणाम कहा जायगा, तो ब्रह्म में भी सांसारिक अनित्यादि भाव आ जायेंगे । प्रायः देखा जाता है कि अपने कारणों में इस सम्पूर्ण प्रपञ्चों के लीन होने का ज्ञान हो जाने पर उक्त मिथ्या प्रतीति नष्ट हो जाती है । अन्त में केवल एक ब्रह्म ही शेष बचता है । यही अपवाद है ।

2.2.7. जीवन्मुक्ति

स्व-स्वरूपभूत अखण्ड-ब्रह्म का ज्ञान ही जीवन्मुक्ति है । अर्थात् गुरु के उपदेश, श्रुतिवाक्य तथा अपने अनुभव से आत्मा और ब्रह्म की एकता का ज्ञान जब हो जाता है, तब उस ज्ञान से आत्मविषयक सम्पूर्ण अज्ञान नष्ट हो जाता है, और अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाला जीवन्मुक्त कहा जाता है । यह स्थिति तब आती है, जब अज्ञान और उसके कार्यरूप स्थूल, सूक्ष्म दोनों प्रपञ्च, सञ्चितकर्म (ज्ञानोत्पत्ति के पूर्व अनारब्ध फल वाले कर्म), संशय (देह से अतिरिक्त ब्रह्म-स्वरूप आत्मा है या नहीं अथवा ब्रह्मज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होगी या नहीं, ऐसी विचिकित्सा) तथा विपर्यय आदि पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं । ऐसी स्थिति में साधक उस ब्रह्म के और अपने वास्तविक स्वरूप को जानकर, उस ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित करता है (ब्रह्म का साक्षात्कार करता है) यही जीवन्मुक्ति है–**"जीवन्मुक्तो नाम स्व-स्वरूप-अखण्ड-ब्रह्मज्ञानेन तदज्ञानबाधन द्वारा स्व-स्वरूपाखण्डब्रह्मणि साक्षात्कृतेऽज्ञानतत्तत्कार्यसंचितकर्मसंशयविपर्ययादीनामपि बाधितत्वादखिलबाधरहितो ब्रह्मनिष्ठः ।"**

"भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥"

इस प्रकार उपर्युक्त जीन्मुक्ति-प्राप्त्यनन्तर अर्थात् ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर साधक की हृदयग्रन्थि (अहंकार) खुल जाती है । सम्पूर्ण सन्देह दूर हो जाते हैं और प्रारब्धकर्म छोड़कर सञ्चित तथा क्रियमाण-कर्म नष्ट हो जाते हैं । आवागमन का यह बन्धन सदा के लिए नष्ट हो जाता है । शरीरान्त होने पर जीवन्मुक्त पुरुष उसी ब्रह्म में लीन (एकाकार) हो जाता है ।

2.3. तर्क संग्रह (अन्नं भट्ट)

'तर्कसंग्रह' एक प्रकरण ग्रन्थ है । ध्यातव्य है कि दो समान-तन्त्रों का आश्रय लेकर जो लघुग्रन्थ लिखे गये हैं, उन्हें प्रकरण ग्रन्थ कहा जाता है । इसमें दो में से किसी एक शास्त्र की प्रधानता तथा दूसरे की अप्रधानता होती है । एक शास्त्र के सिद्धान्त को मुख्य आधार मानकर उसमें उसके समानतन्त्री दूसरे शास्त्र के सिद्धान्तों का समावेश किया जाता है । यहाँ पर वैशेषिक शास्त्र का प्रधानतया तथा न्यायशास्त्र का अप्रधानतया समावेश है । इसमें पदार्थों का निरूपण तो

वैशेषिक शास्त्र के अनुसार तथा प्रमाणों का निरूपण न्यायशास्त्र के अनुसार किया गया है । अत्यन्त लघुकाय होने पर भी प्रस्तुत ग्रन्थ न्याय-वैशेषिक शास्त्रों का एक प्रामाणिक प्रकरण ग्रन्थ है । इसका महत्त्व इसी से स्पष्ट है कि इस पर लगभग 24 टीकायें लिखी गई हैं । इस ग्रन्थ के प्रणेता तैलङ्गवंशीय ब्राह्मण पण्डित अन्नं भट्ट (17वीं शदी) ने स्वयमेव इस पर दीपिका नाम की टीका लिखी है । इसके अतिरिक्त 'न्यायबोधिनी' (गोवर्धनाचार्यकृत), नीलकण्ठी (नीलकण्ठ दीक्षितकृत) तथा 'पदकृत्य' (चन्द्रजसिंह कृत) टीकायें विशेष महत्व रखती हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव; ये सप्त-पदार्थ हैं, जिनका यहाँ पर अत्यन्त बोधगम्य शैली में (बालानां सुखबोधाय) निरूपण किया है ।

2.3.1. पदार्थ

"पदस्यार्थः पदार्थ इति व्युत्पत्या अभिधेयत्वं पदार्थसामान्यलक्षणम् ।" अर्थात् अभिधेयत्व, ज्ञेयत्व प्रमेयविषयत्वादि शब्दों से पदार्थ का बोध होता है; क्योंकि जो ज्ञेय होगा, वह अभिधेय या प्रमिति का विषय भी होगा । ऐसे ज्ञेय तत्त्व को ही 'पदार्थ' शब्द से सम्बोधित किया गया है । तर्कसंग्रहकार ने सप्तपदार्थों का उल्लेख किया है–**"द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाभावः सप्तपदार्थाः ।"** अर्थात् 1. द्रव्य, 2. गुण, 3. कर्म, 4. सामान्य, 5. विशेष, 6. समवाय और 7. अभाव–ये सात पदार्थ हैं इनका सूत्रवत् संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

(i) द्रव्य–"द्रव्यत्वजातिमत्वम्" अर्थात् जिसमें द्रव्यत्व-जाति रहती है, उसे द्रव्य कहते हैं । द्रव्य नौ हैं–**"पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव"** इसमें पृथिवी का विशेष गुण गन्ध, जल का विशेषगुण शैत्य, तेज का विशेषगुण ऊष्णत्व, वायु का विशेष गुण स्पर्श, आकाश का विशेष गुण शब्द, काल का विशेषगुण अतीतादि-व्यवहारहेतुकता, दिक् का विशेषगुण प्रच्यादिव्यवहार-हेतुकता आत्मा का विशेष गुण ज्ञानाधिकरणत्व तथा मन का विशेषगुण सुखादि उपलब्धि साधकता है ।

(ii) गुण–"द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सतिसामान्यवान् गुणः ।" अर्थात् जातिमान् पदार्थ को गुण कहते हैं परन्तु उसे द्रव्य तथा कर्म से भिन्न होना चाहिए । कुल गुणों की संख्या 24 बताई गई है **"रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-संख्या-परिमाण-पृथकूत्व-संयोग-विभाग-परत्व-ऽपरत्व-गुरुत्व-द्रवत्व-स्नेह-शब्द-बुद्धि-सुख-दुःख-इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्म-ऽधर्म-संस्काराश्चतुर्विंशति गुणाः ।"**

(iii) कर्म–आचार्य कणाद् ने कर्म को परिभाषित करते हुए लिखा है–**"एकद्रव्यम् अगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षं कारणमिति कर्मलक्षणम् ।"** अर्थात्–कर्म–एक द्रव्य में रहने वाला किन्तु गुण से भिन्न संयोग-विभाग में अनपेक्ष कारण है । ये कर्म पाँच प्रकार के होते हैं–1.उत्क्षेपण, 2. अपक्षेपण, 3. आकुञ्चन, 4. प्रसारण तथा 5. गमन–**"उत्क्षेपणाऽपक्षेपणाऽकुंचनप्रसारणगमनानि पंचकर्माणि ।"**

(iv) सामान्य–"नित्यमनेकानुगतं सामान्यम् ।" अर्थात् सामान्य वह है, जो नित्य है, एक है और अनेक अधिकरणों में समवाय सम्बन्ध से रहता है । परापर भेद से यह दो प्रकार का होता है जिसमें पर सामान्य सत्ता-विषयक तथा अपर सामान्य द्रव्यत्वादि विषयक होता है–**"परमपरं चेति द्विविधं सामान्यम् । परं सत्ता । अपरं द्रव्यत्वादि ।"**

(v) विशेष–"नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः ।" नित्य द्रव्यों में रहने वाले व्यावर्तकों को विशेष कहते हैं, जो एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न बनाये रखते हैं । ये विशेष, संख्या में अनन्त माने गये हैं–**"नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव ।"**

(vi) समवाय–"नित्यसम्बन्धो समवायः । अयुतसिद्धवृत्तिः ।" अर्थात् अयुतसिद्ध पदार्थों में रहने वाला नित्यसम्बन्ध समवाय है । यह एक ही होता है–**"समवायस्त्वेकएव ।"**

(vii) अभाव–"भावभिन्नः अभावः । प्रतियोगि-ज्ञानाधीनविषयत्वम्" अर्थात् जिसका ज्ञान उसके प्रतियोगी पदार्थ के ज्ञान पर आधारित हो, उसे अभाव कहा जाता है । अभाव चार प्रकार का होता है–**"अभावश्चतुर्विधः–प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावश्चेति ।"** इसमें प्रागभाव वह है जिसका अभाव अनादि काल से चला आ रहा है, परन्तु इसका अन्त सम्भव है–**"अनादिः सान्तः**

प्रागभावः ।'' प्रध्वंसाभाव वह है, जिसका आदि तो है अर्थात् उत्पन्न तो होता है, परन्तु इसका अन्त असम्भव है–**''सादिरनन्तः प्रध्वंसः ।''** जिसका त्रैकालिक अभाव पाया जाता है वह अत्यन्ताभाव है, जैसे–आकाश कुसुम या शशशृंग–**''त्रैकालिक-संसर्गावच्छिन्न-प्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः ।''** तथा तादात्म्य सम्वन्ध से किसी एक वस्तु में दूसरी वस्तु का न पाया जाना ही अन्योन्याभाव कहा जाता है, जैसे–घट में पट नहीं है तथा पट में घट नहीं है–**''तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्या-भावः । यथा घटः पटो नेति ।''**

2.3.2. कारण

कार्य की उत्पत्ति के पूर्व नियत रूप से उपस्थित रहने वाला 'कारण' कहलाता है–**''कार्य-नियतपूर्ववृत्ति कारणम् ।''** यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि–कार्योत्पत्ति के पूर्व वर्तमान कुम्भकार का पिता, वनस्थ-दण्ड, गधा, वैलगाड़ी इत्यादि घट (कार्य) के प्रति कारण नहीं हो सकते, क्योंकि वे पूर्ववर्ती तो हैं, परन्तु नियतपूर्ववर्ती नहीं हैं । इसके अतिरिक्त उपर्युक्त परिभाषा में एक दोष रह जाता है–दण्ड-रूप और दण्डत्व जाति आदि कार्योत्पत्ति के प्रति अन्यथासिद्ध हैं, जो कार्यनियतपूर्ववर्ती होने से कारण कहलाने लगेंगे, जवकि वे कारण नहीं हैं; अतः लक्षण में अन्यथासिद्ध पद जोड़ना होगा–**''अन्यथासिद्धशून्यत्वे सति कार्य-नियतपूर्ववृत्तित्वम् कारणत्वम् ।''** इस प्रकार दण्ड के साथ रहने वाली दण्डत्व जाति का परिहार (वारण) हो जायेगा । समवायि, असमवायि तथा निमित्त भेद से कारण तीन प्रकार का है; जिसका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है–

(i) समवायिकारण–''यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । यथा तन्तवः पटस्य ।'' अर्थात् जिसमें समवाय-सम्वन्ध से कार्य उत्पन्न होता है, उसे समवायि-कारण कहते हैं, जैसे–तन्तु पट के प्रति कारण हैं । यहाँ तन्तु अवयव तथा पट अवयवी है । इनका सम्वन्ध समवाय है । अतः तन्तु समवायी है तथा पट उसमें समवेत है । समवाय सम्वन्ध गुण-गुणी, अवयव-अवयवी, जाति-व्यक्ति, क्रिया-क्रियावान् तथा विशेष-नित्यद्रव्यों में पाया जाता है ।

(ii) असमवायि-कारण–''कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् कारणम् असमवायि-कारण् । यथा तन्तुसंयोगः पटस्य । तन्तुरूपं पटरूपस्य ।'' अर्थात् कार्य के साथ-साथ अथवा कारण के साथ-साथ एक पदार्थ (अधिकरण) में समवाय सम्वन्ध से रहने वाला कारण, असमवायिकारण कहलाता है । जैसे–तन्तुओं का संयोग, पट का असमवायि कारण है, इसी प्रकार तन्तुरूप, पटरूप के प्रति असमवायि कारण है ।

(iii) निमित्त-कारण–''तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणं । यथा तुरीवेमादिकम् पटस्य ।'' अर्थात् समवायि और असमवायि (इन दोनों) से भिन्न कारण, निमित्तकारण की श्रेणी में आते हैं । जैसे–तुरी-वेमादि पट के प्रति तथा दण्ड, चक्र आदि घट के प्रति निमित्त कारण हैं ।

2.3.3. प्रमाण

''प्रमाकरणं प्रमाणम्।'' अर्थात् प्रमा के करण को प्रमाण कहते हैं । यथार्थ अनुभूति का ही दूसरा नाम प्रमा है । प्रमा को अनधिगत, अबाधित तथा स्मृतिज्ञान से रहित होना चाहिए । यथार्थज्ञान जिसके द्वारा होता है, उस ज्ञान का साधन 'प्रमाण' कहलाता है । प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द भेद से यह चार प्रकार का है । इन चारों प्रमाणों का संक्षिप्त-विवेचन निम्नलिखित है–

2.3.3.1. प्रत्यक्ष-प्रमाण

''प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् ।'' अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान के करण (असाधारणकारणं करणम्) को प्रत्यक्ष प्रमाण कहा जाता है । चूँकि प्रत्यक्षज्ञान की करण इन्द्रियाँ हैं, अतः वे ही (इन्द्रियाँ ही) प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । ऐसा ही लक्षण तर्क भाषा में भी दिया गया है–**''साक्षात्कारी प्रमाकरणं प्रत्यक्षम् ।''** अर्थात् साक्षात्कारिणी प्रमा के करण को प्रमाण कहते हैं । इन्द्रिय और अर्थ के संयोग से होने वाली प्रमा ही साक्षात्कारिणी प्रमा कहलाती है । प्रत्यक्ष प्रमाण में प्रमा और प्रमाण दोनों के लिए प्रत्यक्ष शब्द ही प्रयुक्त होता है ।

सामान्य तौर पर इन्द्रियाँ ही प्रत्यक्ष के प्रति कारण हैं, परन्तु विशेषस्थलों में इन्द्रियार्थसन्निकर्ष को भी सापेक्षकारण के रूप में स्वीकार किया गया है । ये सन्निकर्ष लौकिक-अलौकिक भेद से दो प्रकार के माने गये हैं, जिसमें लौकिकसन्निकर्ष–संयुक्त, संयुक्तसमवाय, संयुक्तसमवेत-समवाय, समवाय, समवेत-समवाय और विशेषण-विशेष्यभाव के भेद से छः रूपों में विभक्त हैं, जिसका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है–

(i) चक्षु से घट का प्रत्यक्ष होने में संयोगसन्निकर्ष होता है–**"चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः सन्निकर्षः ।"**

(ii) घटरूप का प्रत्यक्ष, संयुक्त-समवाय-सन्निकर्ष से होता है; क्योंकि चक्षु से संयुक्त घट में रूप समवाय-सम्बन्ध से रहता है–**"घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्त समवायः सन्निकर्षः, चक्षुः संयुक्ते घटे रूपस्य समवायात् ।"**

(iii) रूपत्व जाति के प्रत्यक्ष में संयुक्त-समवेत-समवाय-सन्निकर्ष होता है; क्योंकि चक्षु से संयुक्त घट में रूप, समवाय सम्बन्ध से है और उसमें (घटरूप में) रूपत्व जाति समवेत है– **"रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्त-समवेत-समवायः सन्निकर्षः । चक्षुः संयुक्ते घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात् ।"**

(iv) कर्ण से शब्द का प्रत्यक्ष, समवाय-सन्निकर्ष से होता है; क्योंकि कर्णविवर आकाश है और शब्द आकाश का गुण है । गुण-गुणी का सम्बन्ध समवाय ही है । **"श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः । कर्णविवरवर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वाद् गुणगुणिनोश्चसमवात् ।"**

(v) शब्दत्व का साक्षात्कार–समवेत-समवाय-सन्निकर्ष से होता है, क्योंकि श्रोत्र में समवेत शब्द में शब्दत्व समवाय-सम्बन्ध से रहता है–**"शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेत-समवाय-सन्निकर्षः । श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात् ।"**

(vi) अभाव के प्रत्यक्ष में विशेषण-विशेष्यभाव-सन्निकर्ष होता है; क्योंकि-'घटाभाववाला भूतल है' इसमें चक्षु से संयुक्त भूतल में घटाभाव विशेषण है–**"अभावप्रत्यक्षे विशेषण-विशेष्यभावः सन्निकर्षः । घटाभाववद् भूतलमित्यत्र चक्षुः संयुक्ते भूतले घटाभावस्य विशेषणत्वात् ।"**

इस प्रकार प्रत्यक्ष-प्रमाण निकृष्ट लक्षण निम्नलिखित होगा–**"सन्निकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं तत्करणमिन्द्रियम्, तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति ।"**

2.3.3.2. अनुमान

"अनुमितिकरणम् अनुमानम् ।" अर्थात् अनुमिति के करण को अनुमान कहते हैं । यहाँ अनुमान प्रमाण (साधन) है तथा अनुमिति प्रमा (साध्य/फल) है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि–जिससे अनुमिति हो उसे अनुमान कहते हैं । यहाँ पर परामर्श से उद्भूत ज्ञान को अनुमिति कहा गया है–**"परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः ।"** जबकि–व्याप्ति से विशिष्ट पक्षधर्मताज्ञान अर्थात् हेतु के पक्षधर्मताज्ञान (पक्ष में रहने का ज्ञान) परामर्श कहलाता है–**"व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः यथा वह्निव्याप्य धूमवानयं पर्वत इति ज्ञानं परामर्शः ।"** 'यह पर्वत वह्निव्याप्य धूमवाला है ।' इस परामर्श के द्वारा हमें जो यह ज्ञान होता है कि 'पर्वत आग वाला है' यही अनुमिति है–**"तज्जन्यं पर्वतो वह्निमान् इति ज्ञानमनुमितिः ।"** अब प्रश्न यह उठता है कि व्याप्ति क्या है ? 'जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ आग है' यही साहचर्यनियम ही व्याप्ति है–**"यत्र-यत्र धूमस्तत्र-तत्राऽग्निः । इति साहचर्यनियमोव्याप्तिः ।"** तथा इस व्याप्ति-विशिष्ट धूम आदि का पर्वतादिक पक्ष में रहना ही पक्षधर्मता है–**"व्याप्यस्य पर्वतादि वृत्तित्वं पक्षधर्मता ।"**

उपर्युक्त अनुमान स्वार्थ तथा परार्थ भेद से दो प्रकार का है, जिसका संक्षिप्त निरूपण इस प्रकार है–

(i) स्वार्थानुमान–जब अनुमानकर्ता (अनुमाता) स्वयम् अनुमेय या साध्य (अग्नि आदि) का ज्ञान प्राप्त करता है, तो उसे स्वार्थानुमान कहते हैं । जैसे–अनुमाता पर्वत पर धूम को देखता है,

उसे व्याप्ति का ध्यान हो जाता है–"**यत्र-यत्र धूमस्तत्र-तत्राग्निः ।**" और वह इस व्याप्ति के सहारे जान जाता है कि–'पर्वत आग वाला है ।' इसीलिए इसे स्वार्थानुमिति हेतुक कहा गया है–"**स्वार्थं स्वार्थानुमिति-हेतुः ।**"

(ii) परार्थानुमान–जब किसी व्यक्ति को दूसरा व्यक्ति, धूम आदि हेतु से अग्नि आदि साध्य का ज्ञान (अनुमिति) कराता है, तो उस श्रोता को समझाने के लिए–प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण–उपनय तथा निगमन इन पञ्चावयववाक्यों का प्रयोग करता है । यही प्रक्रिया परार्थानुमान है । इसके द्वारा उस दूसरे व्यक्ति को भी 'पर्वत आग वाला है ।' ऐसा ज्ञान हो जाता है ।

2.3.3.3. उपमान

"**उपमितिकरणमुपमानम् ।**" अर्थात् उपमिति के करण को उपमान कहते हैं । संज्ञा तथा संज्ञी (पद तथा पदार्थ) के सम्बन्ध का ज्ञान ही उपमिति है–"**संज्ञा-संज्ञिसम्बन्धज्ञानमुपमितिः ।**" इस उपमिति का कारण सादृश्यज्ञान स्वीकार किया गया है–"**तत्करणं सादृश्यज्ञानम् ।**" यही सादृश्यज्ञान उपमान-प्रमाण कहा जाता है । उदाहरणार्थ–गवय (नीलगाय) को न जानने वाला कोई व्यक्ति (ग्रामवासी) किसी प्रामाणिक वनवासी व्यक्ति से '**गो सदृशो गवयः**' ऐसा सुनकर वन में जाता है और जब उसे वहाँ गाय के ही समान एक विशिष्ट जंगली-पशु दिखाई देता है, तो वह वनवासी व्यक्ति की पूर्वकथित बात या अतिदेश-वाक्य "**गो सदृशो गवयः**" का स्मरण करता है, तदनन्तर उस स्मरण को प्रत्यक्ष गवय से सम्बद्ध करके कहता है–"**असौ गवयपदवाच्यः**" (यह गवय है) यही उपमिति है ।

'यह गवय है' ऐसी जो उपमिति हुई, इसका कारण सादृश्यज्ञान है । अतः सादृश्यज्ञान ही उपमान-प्रमाण है । यह तीन प्रकार का होता है, जो निम्नलिखित हैं–

(i) सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञान–यह सादृश्य ज्ञान द्वारा होता है, जैसे–गो सदृशो गवयः ।

(ii) वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञान– वह ज्ञान जो वैधर्म्य द्वारा होता है, जैसे–किसी के यह पूछने पर कि ऊँट कैसा होता है ? कोई उसे बताता है–"**उष्ट्रो नाश्वादिवत्समानपृष्ठह्रस्वग्रीवशरीरः**" अर्थात् जो घोड़े के समान पीठ व छोटी गर्दन वाला नहीं है, वह ऊँट है ।

(iii) असाधारणधर्मविशिष्टपिण्डज्ञान–वह ज्ञान, जो किसी असाधारण धर्म कथन से होता है । जैसे–किसी ने पूछा कि खड्गमृग (गैंडा) कैसा होता है ? किसी व्यक्ति ने उत्तर दिया–'नाक में एक सींग वाला तथा हाथी के आकार का अतिक्रमण न करने वाला गैंडा होता है–"**नासिका-लसदेकशृंगोऽनतिक्रान्तगजाकृतिश्च**" ।

2.3.3.4. शब्द

आप्तपुरुष (यथार्थ-वक्ता) के पदसमूहात्मक वाक्य को 'शब्दप्रमाण' कहते हैं–"**आप्तवाक्यं शब्दः ।**" प्रस्तुत लक्षण में शब्द के अलावा 'आप्त' और 'वाक्य' दो शब्द और जुड़े हुए हैं । इसमें 'आप्त' का अभिप्राय–यथार्थवक्ता से है–"**आप्तस्तु यथार्थवक्ता ।**" और 'वाक्य' का अभिप्राय–पदों के समूह से है–"**वाक्यं पदसमूहः । यथा–गामानयेति ।**" पद को परिभाषित करते हुए **अन्नं भट्टजी** लिखते हैं–"**शक्तंपदम्**" अर्थात् जिसमें शक्ति हो उसे पद कहते हैं, और इस पद से यह अर्थ जानना चाहिए, ऐसा जो ईश्वर का सङ्केत है, वही शक्ति है–"**अस्मात् पदात् अयमर्थो बोधव्य इति ईश्वरसङ्केतः शक्तिः ।**" यहाँ पर ईश्वरेच्छा या ईश्वरसङ्केत को ही शक्ति बतलाया गया है । इस प्रकार प्राचीन नैयायिक ईश्वरेच्छारूप शक्ति के आश्रय को पद मानते हैं, जबकि नव्य-नैयायिक, इच्छामात्र को शक्ति मानते हैं– "**अर्थस्मृत्यनुकूलः पद-पदार्थसम्बन्धः शक्तिः ।**"

नैयायिकों का यह मानना है कि शक्ति अन्वय में होती है, अन्वितपदों में नहीं । जब आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि सहित पद, वाक्य में अन्वित होते हैं, तभी शाब्दबोध कराते हैं । अतः पदसमूह को न्यायदर्शन में वाक्य कहा गया है । जो आप्तपुरुष का वाक्य होता है, वही शब्द प्रमाण के नाम से जाना जाता है । ध्यातव्य है कि सम्पूर्ण वेदवाक्य आप्तप्रमाण स्वीकार किये गये हैं ।

विषय—सन्निविष्ट दर्शनशास्त्र

(एक सामान्य परिचय)

क्र.	दर्शनशास्त्र/ ग्रन्थ	पदार्थ	प्रमाण	प्रमुख सिद्धान्त	ईश्वर/पुरुष या आत्मा	सृष्टि-प्रक्रिया	कैवल्य/मोक्ष	विशेष-विवरण
1.	**सांख्य–दर्शन (सांख्य-कारिका)** (श्रीमदीश्वरकृष्ण)	25. पदार्थ → पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकार, एकादशेन्द्रियाँ, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत	3. प्रमाण— प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान	सत्कार्यवाद परिणामवाद	शरीरभेद से अनेक पुरुष, नित्य, चेतन, निर्गुण, निर्विकार, द्रष्टा । ईश्वर का उल्लेख नहीं है ।	प्रकृति—पुरुष-संयोग से त्रिगुणों में क्षोभ उत्पन्न होने से- **प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्मात् गणश्च षोडशकः । तस्मादपिषोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥**	प्रकृति—पुरुष-विवेक ज्ञान होने से दुःखों की ऐकान्तिक तथा **आत्यन्तिकनिवृत्ति** ही मोक्ष है ।	बुद्धि अहंकार, एकादशेन्द्रियां, तथा पञ्च तन्मात्राओं का समूह ही सूक्ष्म शरीर है ।
2.	**योग–दर्शन (योगसूत्र)** (महर्षि पतञ्जलि)	26. पदार्थ → सांख्यसम्मत समस्त 25 पदार्थ तथा ईश्वर	3. प्रमाण— प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान	सत्कार्यवाद	"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरासृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः नित्य, एक, सर्वज्ञ, चैतन्य, निर्विकार समाधि-फलदाता ही ईश्वर है ।	ईश्वरेच्छा से प्रकृति-पुरुष-संयोग से त्रिगुणों में क्षोभ पैदा होने से– **प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः । तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पंचभूतानि ॥**	विवेकज्ञान से या अष्टाङ्गयोग (समाधि) से कर्मों के क्षय होने के उपरान्त या चित्तवृत्ति निरोध से केवलीभाव होने से	सांख्यदर्शन का ही विकसित रूप योगदर्शन है । जो ईश्वर-प्रधान है ।
3.	**न्याय–वैशेषिक (तर्कसंग्रह)** (अन्नंभट्ट)	7. पदार्थ (न्याय–16.) द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव	4. प्रमाण– प्रत्यक्ष, अनुमान, } वैशेषिक उपमान, शब्द	असत्कार्यवाद	सृष्टिकर्ता, नित्य, सर्वज्ञ, ज्ञानाधिकरण, कर्मफलदाता, जीवात्मा-परमात्मा भेद से दो रूपों में विभक्त है ।	ईश्वरेच्छा से परमाणुओं की क्रियाशीलता के कारण एक दूसरे से संयोग होने से सृष्टि होती है ।	सत्कर्मों के अनुष्ठान से मिथ्याज्ञानजन्य वासनाओं के समाप्त होने से मोक्ष की अवस्था में आत्मा के ज्ञानरहित होने से आत्मा जड़ीभूत हो जाती है ।	न्यायदर्शन के आदि प्रवर्तक गौतम तथा वैशेषिक के कणाद हैं ।

4.	**वेदान्त-दर्शन (वेदान्तसार)** (योगीन्द्र सदानन्द)	2. पदार्थ → (i) ब्रह्म (ii) अविद्या/ अज्ञान/माया/ अध्यास	6. प्रमाण— प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अभाव	विवर्तवाद, परिणामवाद, अध्यास, अनिर्वचनीय ख्याति	सगुण, निर्गुण भेद से दो रूप ब्रह्म तथा ईश्वर । चेतन, सर्वयत्, सर्वज्ञ, निर्विकार, आनन्दस्वरूपवान्, मोक्षस्वरूप, अयमात्माब्रह्म, अहंब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या,	अविद्यावच्छिन्न ब्रह्म के ईश्वर स्वरूप का विलासमात्र/अज्ञान, अविद्या या अध्यास मात्र है— ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या, सर्वं खल्विदं ब्रह्म	आत्मज्ञान या स्वरूपावगति से, ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति ही मोक्ष है । या 'अहम्ब्रह्मास्मि' की अनुभूति ही मोक्ष है । मोक्षदशा में जीवात्मा और परमात्मा में भेद नहीं होता ।	विज्ञानमयकोश → पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ + बुद्धि मनोमय कोश → पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ + मन प्राणमय कोश → पञ्चकर्मेन्द्रियाँ + पंचवायु । ये तीनों कोश ही सूक्ष्म-शरीर/ लिङ्गशरीर के नाम से जाने जाते हैं ।
5.	**जैन-दर्शन**	7. पदार्थ → जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जर, बन्ध, मोक्ष	2. प्रमाण प्रत्यक्ष अनुमान	स्याद्वाद या सप्तभङ्गीनय, अनेकान्तवाद	ईश्वर का अभाव । व्यक्तिविशेष (जिन) ही काम, क्रोध, लोभ, मोहादि पर विजय प्राप्त कर परमात्मा बन जाते हैं । आत्मा- चेतन, ज्ञानस्वरूप तथा शरीरपरिमाण वाला है ।	कर्म के कारण आत्मा और पुद्गल के संयोग से सृष्टि या बन्ध होता है । पृथिव्यादि चार भूत एवं स्थावर तथा जंगम भेद से पुद्गलों की संख्या छः है ।	ज्ञान के प्रभाव से कर्म के निर्मूल होने से मोक्ष होता है ।	यह नास्तिक दर्शन है ।
6.	**बौद्ध-दर्शन**	1. पदार्थ, विज्ञान (क) आलय विज्ञान, (ख) प्रवृत्ति-विज्ञान	2. प्रमाण प्रत्यक्ष अनुमान	असत्कार्यवाद चार आर्यसत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद-वाद, क्षणिकत्व (अनित्य) वाद, अनात्मवाद, शून्यवाद	ईश्वर तथा आत्मा दोनों का ही अभाव है, विज्ञानमात्र ही आत्मा है 'नित्यविज्ञानमेवात्मा'/ भगवान् बुद्ध ने ईश्वर का कोई उल्लेख नहीं किया है ।	परमाणुओं में क्रिया के फलस्वरूप समुदायोत्पत्ति से, सृष्टि होती है । ये परमाणु–पृथ्वी, जल, तेज, वायु भेद से चार हैं ।	अविद्या, रागादि के निरोध से जन्ममरण के स्रोत का सर्वथा अभाव ही निर्वाण या मोक्ष है,	यह नास्तिक दर्शन है । इसके चार सम्प्रदाय हैं । 1. सौत्रान्तिक 2. वैभाषिक 3. योगाचार 4. माध्यमिक

7.	**चार्वाक-दर्शन**	4. पदार्थ → पृथिवी, जल, तेज, वायु	1. प्रमाण प्रत्यक्ष (एकमात्र)	देहात्मवाद/ मनसात्मवाद/ इन्द्रियात्मवाद	ईश्वर या आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है । **जड़भूतविकारेषु चैतन्यंयत्तु दृश्यते । ताम्बूल पूगचूर्णानां योगाद्राग इवोत्थितम् ॥ किण्वादिभ्यः मदशक्तिवत् चैतन्यमुपजायते ।**	ताम्बूलरागवत् या मदशक्तिवत् न्याय से पृथ्वी, जल, तेज, वायु के संयोग होने पर स्वयमेव सृष्टि हो जाती है ।	मोक्ष नाम की कोई वस्तु नहीं है । इस शरीर का विनाश ही मोक्ष है ।	यह नास्तिक दर्शनों में अग्रगण्य है । शारीरिक सुख ही इनका परम लक्ष्य है ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

2.1. साङ्ख्यकारिका

1. 'सत्कार्यवाद' के समर्थन में उल्लिखित कारण हैं—
(A) 3 (B) 5 (C) 7 (D) 9

2. 'कैवल्य' को प्राप्त करने वाला/वाली है—
(A) पुरुष (B) मन (C) प्रकृति (D) अहङ्कार

3. 'अधर्म' का अन्तर्भाव किसमें किया गया है ?
(A) अशक्ति (B) तुष्टि (C) विपर्यय (D) सिद्धि

4. 'प्राप्ते शरीर भेदे ...' प्रस्तुत कारिकांश किससे सम्बद्ध है ?
(A) सत्कार्यवाद (B) मोक्ष (C) स्वर्ग (D) कैवल्य

5. 'तुष्टि' में अन्तर्निहित है—
(A) अज्ञान (B) ज्ञान (C) धर्म (D) अधर्म

6. 'ज्ञान' का अन्तर्भाव इसमें है—
(A) विपर्यय (B) अशक्ति (C) तुष्टि (D) सिद्धि

7. 'अज्ञान' का किसमें अन्तर्भाव है ?
(A) सिद्धि (B) विपर्यय (C) तुष्टि (D) अशक्ति

8. 'विपर्ययाशक्ति तुष्टिसिद्ध्याख्यरूपः' इस कारिकांश से सम्बद्ध है—
(A) प्रकृति (B) कैवल्य (C) प्रत्ययसर्ग (D) सत्कार्यवाद

9. प्रत्ययसर्ग के कुल कितने भेद हैं ?
(A) 4 (B) 7 (C) 21 (D) 2

10. अहङ्कार से उत्पन्न है—
(A) पञ्चमहाभूत (B) महत् (C) प्रकृति (D) षोडशक गण

11. आकाश किस तन्मात्रा की विकृति है ?
(A) रूप (B) रस (C) गन्ध (D) शब्द

12. रस तन्मात्रा किसकी प्रकृति है ?
(A) पृथिवी (B) जल (C) तेज (D) आकाश

13. रूप तन्मात्रा से उत्पन्न पदार्थ है—
(A) आकाश (B) वायु (C) पृथिवी (D) तेज

14. पृथिवी किसकी विकृति है ?
(A) रूप (B) रस (C) गन्ध (D) स्पर्श

15. स्पर्श तन्मात्रा किस महाभूत को उत्पन्न करता है ?
(A) आकाश (B) तेज (C) पृथिवी (D) वायु

16. 'सत्कार्यवाद' का कारण है—
(A) प्रकृतिस्वरूप ज्ञान (B) सामीप्य (C) समानाभिहार (D) सर्वसम्भवाभाव

17. 'उपादान-ग्रहण' इसका कारण है—
(A) सृष्टिक्रम (B) प्रत्ययसर्ग (C) सत्कार्यवाद (D) कैवल्य

18. 'सत्कार्यवाद' के समर्थन में दिया गया साक्ष्य है—
(A) भोक्तृभाव (B) कारणभाव (C) सौक्ष्म्य (D) कैवल्यार्थ प्रवृत्ति

19. 'पुरुष' का लक्षण है—
(A) अचेतन (B) विवेकी (C) प्रसवधर्मी (D) पङ्ग्वन्ध

20. पुरुष का लक्षण नहीं है—
(A) विवेकी (B) अप्रधान (C) असामान्य (D) अचेतन

21. प्रकृति का लक्षण है—
(A) अप्रधान (B) प्रधान (C) त्रिगुणात्मिका (D) अव्यक्त

22. 'त्रिगुणमविवेकि विषयः' यह कारिकांश किसका लक्षण वताता है ?
(A) प्रधान (B) पुरुप (C) विकृति (D) प्रत्ययसर्ग

23. 'प्रधान' है—
(A) कैवल्य (B) पुरुप (C) प्रकृति (D) महत्

24. 'न प्रकृतिर्न विकृतिः' यह कारिकांश किसके लिए प्रयुक्त है ?
(A) अहङ्कार (B) ज्ञानेन्द्रियाँ (C) कर्मेन्द्रियाँ (D) पुरुप

25. 'अविकृति' कौन है ?
(A) तन्मात्राएं (B) महत् (C) प्रधान (D) व्यक्त

26. 'भोक्तृभाव' किसकी सत्ता का परिचायक है ?
(A) प्रकृति (B) पुरुप (C) अविवेकी (D) प्रधान

27. 'साक्षी' कौन है ?
(A) बुद्धि (B) अहङ्कार (C) व्यक्त (D) चेतन

28. 'प्रकृति' की विकृति है—
(A) महान् (B) अहङ्कार (C) मन (D) तन्मात्राएं

29. 'महान्' किसकी 'प्रकृति' है ?
(A) एकादशइन्द्रियाँ (B) मन (C) अहङ्कार (D) तन्मात्राएं

30. 'पञ्चमहाभूत' इससे उत्पन्न है—
(A) महत् (B) अहङ्कार (C) पञ्चतन्मात्राएँ (D) पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ

2.2. वेदान्तसार

1. 'अतत्त्वतोन्यथाप्रथा' क्या है ?
(A) अध्यारोप (B) प्रयोजन (C) मोक्ष (D) विवर्त

2. रज्जु का विवर्त 'सर्प' क्या है ?
(A) सर्पाभास (B) रज्जुमात्र (C) रज्जुसे भिन्न (D) वस्तुतः सर्प

3. 'असत्य' का 'सत्य' होना क्या है ?
   (A) मोक्ष (B) बन्धन (C) ईश्वरज्ञान (D) विवर्त
4. 'अखिलवन्धरहितो ब्रह्मनिष्ठः' कौन है ?
   (A) प्राज्ञ (B) अधिकारी (C) जीवन्मुक्त (D) ईश्वर
5. 'क्षीयते चाऽस्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे' यह किससे सम्वद्ध है ?
   (A) प्रमाता (B) जीवन्मुक्त (C) प्रमेय (D) पञ्चीकरण
6. जीवन्मुक्त से सम्वद्ध है—
   (A) सचक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्ण इव (B) समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं
   (C) शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यते (D) एष सर्वेश्वरः
7. 'सुषुप्तवज्जाग्रति यो न पश्यति' स्वभाववाला कौन है ?
   (A) प्राज्ञ (B) जीवन्मुक्त (C) ईश्वर (D) मुमुक्षु
8. 'अधिकारिविषयसम्वन्धप्रयोजनानि' किससे सम्वद्ध है ?
   (A) विवर्त (B) वन्ध (C) अनुवन्ध (D) प्रबन्ध
9. सन्ध्यावन्दन इत्यादि कैसा कर्म है ?
   (A) नित्य (B) नैमित्तिक (C) उपासना (D) प्रायश्चित्त
10. 'प्रायश्चित्त-कर्म' है—
    (A) सन्ध्यावन्दनादि (B) जातेष्टि आदि (C) चान्द्रायणव्रत (D) शाण्डिलविद्या आदि
11. 'साधन-चतुष्टय-सम्पन्न' किसे कहा गया है ?
    (A) प्रयोजन (B) विषय (C) सम्वन्ध (D) अधिकारी
12. 'प्रमाता' किसका विशेषण है ?
    (A) ईश्वर (B) जीवन्मुक्त (C) विषय (D) अधिकारी
13. 'जीव-ब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयम्' से संकेतिक पदार्थ है—
    (A) अधिकारी (B) विषय (C) सम्बन्ध (D) प्रयोजन
14. 'वोध्यवोधकभावलक्षणः' किसकी ओर संकेत करता है ?
    (A) अधिकारी (B) विषय (C) सम्वन्ध (D) प्रयोजन
15. 'प्रयोजन' को परिभाषित करने वाला वाक्यांश है—
    (A) साधनचतुष्टय सम्पन्नः (B) वोध्यवोधकभावलक्षणः
    (C) शुद्धचैतन्यं प्रमेयम् (D) स्वस्वरूपानन्दावाप्तिः
16. 'समष्टिव्यष्ट्यभिप्रायेण एकमनेकमिति च' किससे सम्बद्ध है ?
    (A) ईश्वर (B) मोक्ष (C) अध्यारोप (D) अज्ञान
17. निम्नलिखित 'स्वेदज' है—
    (A) पशु (B) पक्षी (C) वृक्ष (D) यूकामसकादि
18. 'मनुष्य' है—
    (A) स्वेदज (B) अण्डज (C) जरायुज (D) उद्भिज

19. पञ्चीकृतभूतों से उत्पन्न है—
(A) ईश्वर (B) प्रज्ञ (C) भ्वादि लोक (D) ब्रह्म

20. किस पञ्चीकृत पदार्थ में–शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध ये पाँचों गुण पाए जाते हैं ?
(A) तेज (B) वायु (C) जल (D) पृथिवी

21. पञ्चीकरण से वायु के अन्तर्गत उपलब्ध है—
(A) केवल स्पर्श (B) केवल शब्द (C) शब्द व स्पर्श (D) शब्द, स्पर्श, रूप

22. 'द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः' से किसकी ओर संकेत किया गया है ?
(A) अनुवन्ध (B) पञ्चीकरण (C) जीवन्मुक्ति (D) विवर्त

23. व्यष्टि उपहित चैतन्य है—
(A) सर्वज्ञ (B) प्राज्ञ (C) ईश्वर (D) ब्रह्म

24. सूक्ष्मशरीर से स्थूल ब्रह्माण्डपर्यन्त समस्त जगत् किस शक्ति से उत्पन्न है ?
(A) आवरण (B) विक्षेप (C) अपवाद (D) अध्यारोप

25. 'वस्तुन्यवस्त्वारोपः' से परिभाषित है—
(A) अपवाद (B) पञ्चीकरण (C) अध्यारोप (D) जीवन्मुक्ति

26. 'वस्तु' है—
(A) अज्ञानादि जड़समूह (B) ब्रह्म
(C) त्रिगुणात्मक (D) अनिर्वचनीय

27. 'अज्ञानादिसकलजड़समूह' है—
(A) वस्तु (B) अवस्तु (C) अधिकारी (D) विषय

28. 'रज्जु' में 'सर्प' आरोप है—
(A) विषय (B) अपवाद (C) विवर्त (D) अध्यारोप

2.3. तर्क-संग्रह

1. परामर्शजन्य-ज्ञान की संज्ञा है—
(A) शाब्द (B) प्रत्यक्ष (C) उपमिति (D) अनुमिति

2. 'अनुमिति' का करण है—
(A) शब्द (B) उपमान (C) अनुमान (D) प्रत्यक्ष

3. 'व्याप्ति' का लक्षण है—
(A) परामर्शजन्यं ज्ञानं (B) अनुमितिकरणं (C) साहचर्यव्याप्तिः (D) साहचर्यनियमः

4. 'अनुमान' के भेद हैं—
(A) 1 (B) 2 (C) 5 (D) 9

5. परार्थानुमान में प्रतिज्ञावाक्य है—
(A) पर्वतोवह्निमान् (B) यो यो धूमवान् स स वह्निमान्
(C) तस्मात्तथा (D) धूमवत्त्वात्

6. 'उपनयवाक्य' का उदाहरण है—
   (A) पर्वतोवह्निमान् (B) धूमवत्त्वात् (C) तस्मात्तथा (D) तथाचाऽयम्
7. 'तस्मात्तथा' किससे सम्वन्ध रखता है ?
   (A) प्रतिज्ञा (B) उपनय (C) उदाहरण (D) निगमन
8. लिङ्गपरामर्श है—
   (A) प्रत्यक्ष (B) अनुमान (C) उपमान (D) शाब्द
9. संज्ञा-संज्ञि-सम्वन्धज्ञान की संज्ञा है—
   (A) शाब्द (B) उपमिति (C) अनुमिति (D) प्रत्यक्ष
10. 'गो सदृशः गवयः' यह वाक्य किसका उदाहरण है ?
   (A) अनुमान (B) उपमान (C) अर्थापत्ति (D) आप्तवचन
11. 'आप्तवाक्य' है—
   (A) शब्द (B) रूप (C) अनुमिति (D) उपमिति
12. 'वह्निना सिञ्चति' क्या है ?
   (A) हेतु (B) हेतुमद् (C) हेत्वधिकरण (D) हेत्वाभास
13. 'पदार्थ' है—
   (A) रस (B) शब्द (C) संयोग (D) सामान्य
14. 'समवाय' क्या है ?
   (A) वाक्यार्थ (B) वाक्य (C) पद (D) पदार्थ
15. 'वायु' पदार्थ के किस विभाग में आता है ?
   (A) अभाव (B) गुण (C) कर्म (D) द्रव्य
16. 'द्रव्य' है—
   (A) काल (B) महाकाल (C) रूप (D) रस
17. 'उत्क्षेपण' कैसा पदार्थ है ?
   (A) द्रव्य (B) गुण (C) कर्म (D) सामान्य
18. 'कर्म' का भेद है—
   (A) पर (B) पृथिवी (C) शब्द (D) प्रसारण
19. 'विशेष' पदार्थ के कितने भेद हैं ?
   (A) 7 (B) 9 (C) अनन्त (D) इनमें से कोई नहीं
20. 'विशेषपदार्थ' की वृत्ति है—
   (A) नित्यद्रव्य (B) कर्म (C) अनित्यद्रव्य (D) गुण
21. 'समवाय' के कुल कितने भेद हैं ?
   (A) 1 (B) 2 (C) 7 (D) अनन्त
22. 'अभाव' के कितने रूप हैं ?
   (A) कोई नहीं (B) 1 (C) अनन्त (D) 4

23. 'कार्यनियतपूर्ववर्त्ति' क्या है ?
(A) कार्य (B) कारण (C) पदार्थ (D) करण

24. 'पटरूप' के प्रति 'तन्तुरूप' कैसा कारण है ?
(A) समवायि (B) असमवायि (C) निमित्त (D) उपादान

25. 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यज्ञान' क्या है ?
(A) अनुमान (B) उपमान (C) प्रत्यक्ष (D) समवेत

26. प्रत्यक्षप्रमाण के कितने भेद हैं ?
(A) 9 (B) 2 (C) 5 (D) 6

27. 'परमपरं चेति द्विविधं' यह किसका भेद प्रदर्शन है ?
(A) द्रव्य (B) गुण (C) कर्म (D) सामान्य

28. 'परिमाण' कैसा पदार्थ है ?
(A) द्रव्य (B) गुण (C) कर्म (D) विशेष

29. यह 'सामान्य' पदार्थ है—
(A) उत्क्षेपण (B) परिमाण (C) अपर (D) आकाश

30. 'तुरी' 'पट' का कैसा कारण है ?
(A) उपादान (B) समवायि (C) असमवायि (D) निमित्त

उत्तरमाला

2.1. साङ्ख्यकारिका

1. (B) 2. (A) 3. (A) 4. (D) 5. (C) 6. (D) 7. (B) 8. (C)
9. (A) 10. (D) 11. (D) 12. (B) 13. (D) 14. (C) 15. (D) 16. (D)
17. (C) 18. (B) 19. (B) 20. (D) 21. (C) 22. (A) 23. (C) 24. (D)
25. (C) 26. (B) 27. (D) 28. (A) 29. (C) 30. (C)

2.2. वेदान्तसार

1. (D) 2. (B) 3. (D) 4. (C) 5. (B) 6. (A) 7. (B) 8. (C)
9. (A) 10. (C) 11. (D) 12. (D) 13. (B) 14. (C) 15. (D) 16. (D)
17. (D) 18. (C) 19. (C) 20. (D) 21. (C) 22. (B) 23. (B) 24. (B)
25. (C) 26. (B) 27. (B) 28. (D)

2.3. तर्क-संग्रह

1. (D) 2. (C) 3. (D) 4. (B) 5. (A) 6. (D) 7. (D) 8. (B)
9. (B) 10. (B) 11. (A) 12. (D) 13. (D) 14. (D) 15. (D) 16. (A)
17. (C) 18. (D) 19. (C) 20. (A) 21. (A) 22. (D) 23. (B) 24. (B)
25. (A) 26. (B) 27. (D) 28. (B) 29. (C) 30. (D)

3 व्याकरण एवं भाषा-विज्ञान

3.1 व्याकरण

'व्याक्रियन्ते - व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति - शब्दज्ञानजनकं व्याकरणम्' अर्थात् जिससे हमें साधु शब्दों का ज्ञान होता है, उसे 'व्याकरण' कहते हैं । इसी का दूसरा नाम 'शब्दानुशासन' भी है । संस्कृत-वाङ्मय में व्याकरण को बहुत ही ऊँचा स्थान प्राप्त है । इसकी गणना वैदिक षडङ्गों में की जाती है । इतना ही नहीं इसे वेदपुरुष का मुख स्वीकार किया गया है–**"मुखं व्याकरणं तस्य...।"** व्याकरण ज्ञान के बिना वेद-वेदान्त, स्मृति-पुराण, इतिहास-काव्यादि किसी भी अन्य शास्त्र में प्रविष्टि नहीं हो सकती, जैसा कि भास्कराचार्य ने कहा है–

"यो वेदवदनं सदनं हि सम्यग्, ब्राह्म्याः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम् ।
यस्मादतः प्रथमेतदधीत्य विद्वान्, शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी ॥"

ऋक्तन्त्रकार के अनुसार–व्याकरणशास्त्र के आदिप्रवक्ता ब्रह्मा हैं । ब्रह्मा ने बृहस्पति को तथा बृहस्पति ने इन्द्र को व्याकरण का उपदेश दिया । पाणिनि के पूर्ववर्ती व्याकरणाचार्यों में आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक तथा स्फोटायन, इन दस वैयाकरणों का नाम विशेष उल्लेखनीय है । वर्तमान समय में पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी' संस्कृत-व्याकरण का प्रतिनिधि ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में कुल आठ अध्याय हैं, जिनमें से प्रत्येक चार-चार पादों में विभक्त है ।

3.1.1 परिभाषा/संज्ञा

स्वरूपनिर्वचन अथवा लक्षण कथन का ही दूसरा नाम परिभाषा है । सिद्धान्तकौमुदी के प्रारम्भ में ही संज्ञा-प्रकरण के अन्तर्गत-संहिता, गुण, वृद्धि, नदी, घि, इत्यादि विभिन्न संज्ञाओं की परिभाषाएं दी हुई हैं, क्योंकि आगे चलकर जगह-जगह इनका नामोल्लेख हुआ है । अतः ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही इनको परिभाषित करने का प्रयास सर्वथा उचित ही है ।

1. संहिता–"परः सन्निकर्षः संहिता ।" वर्णानाम् अतिशयितः सन्निधिः संहिता-संज्ञा स्यात् । अर्थात् वर्णों की अतिशय-समीपता (व्यवधानरहित उच्चारण) को 'संहिता' कहते हैं । उदाहरणतया–'सुधी + उपास्यः' में ईकार के पश्चात् बिना किसी व्यवधान के उकार आया है । अतः इन दोनों की समीपता को संहिता कहा जाता है । अर्थात् ई + उ की संहिता-संज्ञा होगी ।

2. गुण –"अदेङ् गुणः ।" अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् । अर्थात् अ, ए और ओ को गुण कहते हैं ।

3. वृद्धि–"वृद्धिरादैच् ।" आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् । अर्थात् दीर्घ आकार, ऐकार तथा औकार (आ, ऐ, औ) की वृद्धि-संज्ञा होती है ।

4. प्रातिपदिक –"अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ।" धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा अर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात् । अर्थात्–धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़कर अन्य अर्थवान्

शब्दस्वरूप की प्रातिपदिकसंज्ञा होती है । **"कृत्तद्धितसमासाश्च ।"** सूत्र से कृदन्त, तद्धितान्त तथा समास भी प्रातिपदिकसंज्ञक होते हैं ।

5. नदी –"यू स्त्राख्यौ नदी ।" ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौस्तः । यहाँ पर यू का तात्पर्य ई + ऊ से है । अर्थात् दीर्घ ईकारान्त तथा दीर्घ ऊकारान्त नित्य-स्त्रीलिङ्ग शब्द नदी संज्ञक होते हैं । नित्य-स्त्रीलिङ्ग से अभिप्राय उनसे है, जो सदैव स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयुक्त होते हैं । उदाहरणतया–गौरी, नदी, वधू आदि शब्द नित्यस्त्रीलिङ्ग हैं । अतः इनकी नदी संज्ञा होगी ।

6. घि –"शेषो घ्यसखि ।" शेष इति स्पष्टार्थम् अनदी संज्ञौ ह्स्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घि संज्ञम् । अर्थात् 'सखि' शब्द को छोड़कर नदी संज्ञकभिन्न ह्रस्व इकारान्त और ह्रस्व उकारान्त शब्द 'घि' संज्ञक होते हैं । उदाहरणतया–'हरि' शब्द नदीसंज्ञक नहीं है । अतः यह 'घि' संज्ञक है ।

7. उपधा –"अलोन्त्यात्पूर्व उपधा ।" अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधा संज्ञः । अर्थात् अन्त्य अल् (प्रत्याहार) से पूर्ववर्ण की उपधा संज्ञा होती है । उदाहरणार्थ–सखन् (सख् अन्) में अन्त्य अल् नकार है, और उसके पूर्व में ह्रस्व अकार है । अतः ह्रस्व अकार की उपधा संज्ञा होगी ।

8. अपृक्त –"अपृक्तम् एकाल् प्रत्ययः ।" एकाल् प्रत्ययो यः सोऽपृक्त–संज्ञः स्यात् ।" अर्थात् एकाल् (एक अल् = वर्ण, वाले) प्रत्यय की 'अपृक्त' संज्ञा होती है । उदाहरणार्थ–सखान् + स् में; स् प्रत्यय एक अल् (वर्ण) वाला है । अतः इस स् (प्रत्यय) की 'अपृक्त' संज्ञा होगी ।

9. गति –"गतिश्च ।" प्रादयः क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः । अर्थात् - प्र, परा, अप्, सम्, अन्वादि 22 उपसर्ग (शब्द) क्रिया के योग में गतिसंज्ञक भी होते हैं । उदाहरणतया–'प्रधी' शब्द में 'प्र' उपसर्ग का क्रिया के साथ योग होने से यहाँ पर 'प्र' गतिसंज्ञक है ।

10. पद–"सुप्तिङन्तं पदम् ।" सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात् ।" अर्थात् सुप् प्रत्ययान्त तथा तिङ् प्रत्ययान्त शब्दस्वरूप को पद कहते हैं । उदाहरणतया–प्रातिपदिक राम से सु (सुप्) प्रत्यय होकर रामः शब्द बनता है । अतः सुप् प्रत्ययान्त होने से रामः पदसंज्ञक है ।

11. विभाषा –"न वेति विभाषा ।" अर्थात् निषेध और विकल्प को 'विभाषा' कहा जाता है कहने का भाव यह है कि कहीं पर कार्य का होना तथा कहीं पर कार्य का न होना, इसी वैकल्पिक अवस्था की विभाषा संज्ञा होती है ।

12. सवर्ण –"तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् ।" "ताल्वादिस्थानमाभ्यान्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात् ।" अर्थात् समान ताल्वादि उच्चारण स्थान तथा समान आभ्यान्तर यत्न वाले वर्णों की सवर्ण संज्ञा होती है । उदाहरणतया–तकार और थकार दोनों का उच्चारण स्थान दन्त है तथा आभ्यान्तर यत्न स्पृष्ट है । अतः त और थ दोनों सवर्ण संज्ञक हैं ।

13. टि–"अचोऽन्त्यादि टि ।" अचां मध्ये योऽन्त्यः, स आदिर्यस्य तद्टिसंज्ञं स्यात् । अर्थात् अचों के मध्य में अन्त्य अच्, जिसके आदि में हो, ऐसा शब्द स्वरूप 'टि' संज्ञक होता है उदाहरणतया–मनस् का अन्त्य अच् नकारोत्तरवर्ती अकार है । यह सकार के आदि में आया हुआ है अतः प्रस्तुत सूत्र से यहाँ पर 'अस्' की 'टि' संज्ञा होगी । शक में अन्त्य अच् ककारोत्तरवर्ती अकार है अतः इस अन्त्य अच् 'अ' की ही टि संज्ञा होगी ।

14. प्रगृह्य –"ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् ।" ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञं स्यात् । हरी एतौ । विष्णू इमौ गङ्गे अमू । अर्थात् ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन प्रगृह्य संज्ञक होता है । यह प्रगृह्य संज्ञा अन्त्य ईकार, ऊकार या एकार की ही होती है । उदाहरणतया–हरी, विष्णू एवं गङ्गे क्रमशः हरि, विष्णु और गङ्गा के द्विवचन रूप हैं तथा साथ ही ईकारान्त, ऊकारान्त तथा एकारान्त भी हैं । अतः क्रमशः इनके ईकार, ऊकार एवं एकार की प्रगृह्य संज्ञा होगी ।

15. सर्वनामस्थान –"शि सर्वनामस्थानम् ।" शि इत्येतद् उक्तसंज्ञं स्यात् । अर्थात् 'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा होती है । उदाहरतया–ज्ञान + इ, में 'शि' के शेषांश इकार की सर्वनामस्थान संज्ञा

16. निष्ठा –"क्तक्तवतू निष्ठ ।" एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः । अर्थात् 'क्त' और 'क्तवतु' इन दो प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है । क्त में ककार तथा क्तवतु में ककार व उकार की इत्संज्ञा होकर क्रमशः त और तवत् रूप शेष वचता है ।

3.1.2. कारक (सिद्धान्तकौमुदी)

सिद्धान्तकौमुदीस्थ प्रस्तुत प्रकरण के अन्तर्गत कारकों के अतिरिक्त षष्ठी और उपपद विभक्तियों के भी नियम दिए गए हैं । अतः इसका विभक्त्यर्थ प्रकरण ही नाम उचित प्रतीत होता है, परन्तु चूँकि इसमें प्रधानतः कारकों के नियमों का उल्लेख हुआ है । अत एव **'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति ।'** के अनुसार इसे 'कारक-प्रकरण' ही कहना समीचीन होगा । ध्यातव्य है कि यहाँ पर प्रमुख तत्त्वों को ही सूत्रवत्रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। अधिक जानकारी के लिए 'सिद्धान्त-कौमुदी-कारकप्रकरण' को देखा जा सकता है । यहाँ पर छः कारक बताए गए हैं–

"कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च । अपादानाधिकरणमित्येवं कारकाणि षट् ॥"

कर्ता–"स्वतन्त्रः कर्ता ।" सूत्र के अनुसार–क्रिया करने में जिसकी स्वतन्त्रता विवक्षित हो उसे कर्ता कहते हैं । उदाहरणतया–'रामेण पठ्यते' में रामेण कर्ता है ।

कर्म–"कर्तुरीप्सिततमं कर्म" सूत्र के अनुसार–कर्ता अपनी क्रिया द्वारा जिसे विशेष रूप से प्राप्त करना चाहता हो, उस कारक की कर्म संज्ञा होती है । जैसे–**सः ग्रामं गच्छति** में कर्ता का ईप्सिततम 'ग्राम' है अतः ग्रामं की कर्म संज्ञा होगी । **"अनभिहिते"** सूत्र के अनुसार–जहाँ पर कर्म अनभिहित हो अर्थात् अनुक्त हो, वहाँ पर भी प्रकृति सूत्र से कर्मकारक का विधान होता है ।

करण–"साधकतमं करणम् ।" के अनुसार–क्रिया की सिद्धि में जो कर्ता को अत्यधिक सहायता पहुँचाता है, उसकी करण संज्ञा होती है । जैसे–**'रामेण बाणेन हतो वाली'** इस वाक्य में वाण, हनन क्रिया में कर्ता का सर्वाधिक उपकारक है । अतः वाण करण संज्ञक है ।

सम्प्रदान–"कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ।" इस सूत्र के अनुसार–दान, क्रिया के कर्म द्वारा जिसकी ओर विशेष रूप से जाय, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है । **'क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्'** इस वार्तिक के अनुसार–कर्ता, क्रिया के द्वारा जिसकी ओर विशेष रूप से उन्मुख होता है, वह भी सम्प्रदान कारक होता है । यथा–'पत्ये शेते' (पति के लिए सोती है) अर्थात् सम्प्रदीयतेऽस्मै इति सम्प्रदानम् । यहाँ पर दान उपलक्षण मात्र है, वस्तुतः क्रिया की सिद्धि के लिए कर्म जिसकी ओर विशेष रूप से जाए, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है । उदाहरणतया–'विप्राय गां ददाति' में विप्र पद सम्प्रदान संज्ञक है ।

अपादान–"ध्रुवमपायेऽपादानम्" के अनुसार–जो उदासीन हो तथा अपाय (विश्लेष) उत्पन्न करने वाली क्रिया का आश्रय न हो (चाहे चल हो या अचल), वह ध्रुव कहलाता है । इसी ध्रुव की अपादान संज्ञा होती है । उदाहरणतया–'ग्रामादायाति' में ग्राम से अपाय (अलग होना) पाया जाता है । अतः ग्राम ध्रुव है, जिसकी अपादान संज्ञा होगी ।

अधिकरण–"आधारोऽधिकरणम्" सूत्र के अनुसार–कर्ता या कर्म द्वारा अपने विद्यमान क्रिया का जो आधार होता है, उसकी अधिकरण संज्ञा होती है । अर्थात् जिस स्थान (आधार) पर कर्ता या कर्म द्वारा क्रिया सम्पादित हो, उसे अधिकरण कहते हैं । उदाहरणतया–'स्थाल्यां पचति' में पाक क्रिया चूँकि 'स्थाली' में हो रही है । अतः 'स्थाली' अधिकरण संज्ञक है ।

प्रथमा विभक्ति–

(i) **"प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचनमात्रे प्रथमा"** सूत्र से प्रातिपदिकार्थमात्र, लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र तथा वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति का विधान किया गया है ।

(ii) **"सम्बोधने च"** सूत्र के अनुसार–सम्बोधन के अर्थ में भी प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है ।

द्वितीया विभक्ति –

(i) द्वितीया विभक्ति, विधायक प्रमुख सूत्र **"कर्मणि द्वितीया"** है । इस सूत्र के अनुसार-अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है । जैसे-हरिं भजति ।

(ii) **"तथायुक्तं चानीप्सितम्"** के अनुसार–जब कोई पदार्थ, कर्ता द्वारा ईप्सिततम (अत्यधिक चाहा हुआ) नहीं होता है, फिर भी क्रिया से जिसका ईप्सित के समान अत्यधिक सम्बन्ध होता है, तो उस पदार्थ में भी कर्म कारक होता है । उदाहरणतया–**ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति ।**

(iii) **"अकथितं च"** सूत्रानुसार–अपादानादि कारकों से जो अविवक्षित होता है, उसकी कर्म संज्ञा होती है । उदाहरणतया–बलिं याचते वसुधाम् ।

(iv) **'अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम् ।'** प्रस्तुत वार्तिक के अनुसार–अकर्मक धातु के योग में देश, समय, भाव या दशा तथा चलकर पार करने योग्य मार्ग की कर्म संज्ञा तथा कर्म में द्वितीया होती है । उदाहरणतया–कुरून् स्वपिति (कुरुदेश में सोता है)

(v) **"गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ।"** अर्थात्–गति, बुद्धि, प्रत्यवसान अर्थवाली धातुओं का तथा शब्दकर्मक एवं अकर्मक धातुओं का जो अण्यन्त (अप्रेरणार्थक) अवस्था में कर्ता होता है, उसे जब इन क्रियाओं से प्रेरणार्थक बनाते हैं, तो कर्म कारक हो जाता है । उदाहरतया–वेदार्थं स्वान् अवेदयत् (अपनों को वेद पढ़ाया) ।

(vi) **'नीवह्योर्न'** वार्तिक के अनुसार–नी तथा वह् (ले जाना) क्रियाओं के अप्रेरणार्थक के कर्ता को प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म नहीं होता, अपितु करणकारक होता है । उदाहरणतया–नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन (भृत्य द्वारा बोझ ढोवाता है ।)

(vii) **'नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः'** वार्तिक के अनुसार–यदि वह धातु का कर्ता प्रेरणार्थक में नियन्ता हो, तो पूर्वकथित निषेध नहीं होता है । उदाहरणतया–वाहयति रथं वाहान् सूतः (सूत घोड़े से रथ खिंचवाता है ।)

(viii) **"आदिखाद्योर्न"** वार्तिक का कथन है कि–अद् तथा खाद् धातुओं के अण्यन्त अवस्था में जो कर्ता होता है, उसको प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म नहीं होना चाहिए । उदाहरणतया–आदयति खादयति वा अन्नं बटुना (बटु को अन्न खिलाता है ।)

(ix) **'भक्षेरहिंसार्थस्य न'** वार्तिक के अनुसार–भक्ष् धातु का जब हिंसा या चोट पहुँचाना अर्थ नहीं होता है, तो कर्ता को प्रेरणार्थक में कर्म संज्ञा नहीं होती है । उदाहरणतया–भक्षयत्यन्नं बटुना

(x) **'जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्'** अर्थात् जल्प् आदि धातुओं के भी विषय में जो अण्यन्त अवस्था में कर्ता हो, उसे प्रेरणार्थक दशा में कर्म होवे । उदाहरणतया–जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः (देवदत्त पुत्र को धर्म सिखलाता है ।) यहाँ पुत्र कर्म संज्ञक है ।

(xi) **'दृशेश्च'** प्रस्तुत वार्तिक से दर्शयति के साथ भी कर्मकारक होता है, यथा–दर्शयति हरिः भक्तान् (भक्तों को हरि दिखलाता है)

(xii) **'शब्दायतेन'** प्रस्तुत वार्तिक से 'शब्दाययति' क्रिया के कर्ता को प्रेरणार्थक अवस्था में कर्म संज्ञा नहीं होगी । उदाहरणतया–शब्दाययति देवदत्तेन । यहाँ देवदत्त कर्मसंज्ञक नहीं है ।

(xiii) **"ह्रक्रोरन्यतरस्याम्"** सूत्र से हृ (ले जाना) तथा कृ (करना) धातुओं के अप्रेरणार्थक में जो कर्ता होता है उसे जब इन क्रियाओं से प्रेरणार्थक बनाते हैं, तो विकल्प से कर्म होता है अर्थात् कर्म भी हो सकता है तथा करण भी । उदाहरणतया–हरति भारं भृत्यः से प्रेरणा अर्थ में–हारयति भारं भृत्यः भृत्येन वा ।

(xiv) **'अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् ।'** प्रस्तुत वार्तिक से अभि + वद् तथा दृश् धातु जब साधारण अप्रेरणार्थक रूप में रहती हैं, तो इनसे आत्मने पद में प्रेरणार्थक का रूप बनाने पर इनके कर्ता की विकल्प से कर्म संज्ञा होती है । जैसे–अभिवादयते देवं भक्तं भक्तेन वा (भक्त से देव को प्रणाम करवाता है ।)

(xv) **"अधिशीङ्स्थासां कर्म"** सूत्रानुसार–अधि उपसर्ग से युक्त शीङ् (सोना), स्था (ठहरना), तथा आस् (बैठना) धातुओं के आधार की कर्म संज्ञा होती है । यथा–अधिशेते वैकुण्ठं हरिः (हरि वैकुण्ठ में सोते हैं)

(xvi) **"अभिनिविशश्च"** प्रस्तुत सूत्र से अभि तथा नि उपसर्ग जब एक साथ विश् धातु के साथ आते हैं, तो उस धातु के आधार को कर्म संज्ञा हो जाती है । जैसे–अभिनिविशते सन्मार्गम् (सन्मार्ग में मन लगाता है) यहाँ क्रिया का आधार 'सन्मार्ग' कर्मसंज्ञक है ।

(xvii) **"उपान्वध्याङ्वसः"** सूत्रानुसार–यदि वस् (रहना) धातु के पहले उप, अनु, अधि, आङ् में से कोई भी उपसर्ग हो, तो क्रिया के आधार में कर्मकारक होगा । उदाहरणतया–उपवसति वैकुण्ठं हरिः, अनुवसति वैकुण्ठं हरिः इत्यादि में आधार वैकण्ठ कर्मसंज्ञक है ।

(xviii) **'अभुक्त्यर्थस्य न'** प्रस्तुत वार्तिक से 'उपवस' से उपवास करने (न खाने) के अर्थ में आधार में कर्म नहीं होगा । यथा–वने उपवसति (वन में उपवास करता है ।)

उपपद-द्वितीया-विभक्ति—

ध्यातव्य है कि सभी विभक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं–1. कारक विभक्ति तथा 2. उपपद विभक्ति । कारकविभक्ति, कर्म आदि कारक के अर्थ में होती है, जबकि उपपद विभक्ति किसी पद के योग में होती है । द्वितीया-विभक्ति से सम्बद्ध कुछ उपपदविभक्ति के नियम यहाँ पर दिए जा रहे हैं । ये भी कुछ तो अव्यय पदों के योग में होते हैं, तथा कुछ कर्मप्रवचनीय के योग में होते हैं । 'कर्मप्रवचनीय' उन पदों को कहा जाता है, जो न तो विशेष क्रिया के द्योतक हैं, न षष्ठी के सम्बन्ध को बताते हैं तथा न ही किसी क्रिया पद की अपेक्षा करते हैं । भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में लिखा है—

"क्रियाया द्योतको नायं सम्बन्धस्य न वाचकः । नापि क्रियापदापेक्षी सम्बन्धस्य तु भेदकः ॥ अर्थात् जो अप्रयुक्त धातु की क्रिया को कहते हैं वे कर्मप्रवचनीय हैं–'ये अप्रयुज्यमानस्य क्रियामाहुस्ते कर्मप्रवचनीयाः ।' **"अनुर्लक्षणे"** सूत्र के अनुसार–लक्षण बतलाने के अर्थ में 'अनु' कर्मप्रवचनीय होता है ।

(i) **'उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु । द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ।'** प्रस्तुत वार्तिक से उभयतः, सर्वतः, धिक् तथा उपर्युपरि, अधोऽधः, अध्यधि, तीनों आम्रेडितान्त शब्दों तथा इनसे भिन्न दूसरे शब्दों के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है । यथा–उभयतः कृष्णं गोपाः ।

(ii) **'अभितः परितः समया-निकषा-हा-प्रतियोगेऽपि ।'** इस वार्तिक के अनुसार–अभितः, परितः, समया (निकट), निकषा (समीप), हा (शोक अर्थ में), प्रति शब्दों के साथ जिस शब्द की निकटता पाई जाती है, उसमें द्वितीया विभक्ति होती है । उदाहरणतया–अभितः कृष्णम् । लङ्कां निकषा, हा कृष्णाभक्तम् इत्यादि ।

(iii) **"अन्तरान्तरेण युक्ते"** प्रस्तुत सूत्र से अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (बिना) के योग में द्वितीया विभक्ति होती है । उदाहरणतया–अन्तरा त्वां मां हरिः । अन्तरेण हरिं न सुखम् । आदि ।

(iv) **"कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया"** सूत्र के अनुसार–जिसके साथ कर्मप्रवचनीय का योग हो, उससे द्वितीया विभक्ति होती है । यथा–जपमनु प्रावर्षत (जप के कारण प्रचुर वर्षा हुई) यहाँ पर अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है । अतः जप के साथ अनु का योग होने से द्वितीया हुई ।

(v) **"तृतीयार्थे"** अर्थात् जब 'अनु' से तृतीया का अर्थ निकलता हो तो 'अनु' कर्म-प्रवचनीय होता है । ऐसी अवस्था में अनु का अर्थ साथ होता है नदीमन्ववसिता सेना (सेना नदी के साथ {किनारे} है) ।

(vi) **"हीने"** जब अनु से हीन अर्थ द्योतित हो, तो 'अनु' कर्मप्रवचनीय होता है और उसके योग में द्वितीया विभक्ति होती है । यथा–अनु हरिं सुराः (देवता हरि से नीचे है ।)

(vii) **"उपोधिके च"** सूत्र से जब 'उप' से हीन या अधिक अर्थ द्योतित होता है, तो 'उप' कर्मप्रवचनीय होता है । अधिक अर्थ में उप से सम्बद्ध शब्द में सप्तमी होती है, परन्तु हीन अर्थ में द्वितीया विभक्ति होती है । जैसे–उप हरिं सुराः (देवता हरि से नीचे हैं ।)

(viii) **"लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः"** अर्थात्-प्रति, परि अनु कर्मप्रवचनीय होते हैं यदि इनका अर्थ लक्षण, इत्थम्भूताख्यान, भाग और वीप्सा हो । उदाहरणतया–'वृक्षं-वृक्षं प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत' (लक्षण), 'भक्तो विष्णुं प्रति परि अनुवा (इत्थम्भूताख्यान), 'लक्ष्मीः हरिं प्रति परि अनु वा' (भाग), वृक्षं-वृक्षं परि प्रति अनु वा सिंचति (वीप्सा अर्थ में) ।

(ix) **"अभिरभागे"** के अनुसार–भाग या हिस्सा के अतिरिक्त किसी अन्य अर्थ में प्रयुक्त होने पर 'अभि' कर्मप्रवचनीय होता है तथा सम्वद्ध शब्द से द्वितीया का विधान होता है । यथा–हरिं अभिवर्तते (हरि की ओर है ।)

(x) **"अधिपरी अनर्थकौ"** अर्थात् 'अधि' तथा 'परि' यदि किसी विशेष अर्थ के द्योतक न हों तो कर्मप्रवचनीय होते हैं । यथा–कुतः अधि आगच्छति । या कुतः पर्यागच्छति ।

(xi) **"सुः पूजायाम्"** अर्थात् जब 'सु' का प्रयोग–प्रशंसा के अर्थ में होता है, तो 'सु' कर्मप्रवचनीय होता है । यथा सुसिक्तं । सुस्तुतम् इत्यादि ।

(xii) **"अतिरतिक्रमणे च"** अतिक्रमण तथा पूजा के अर्थ में अति कर्मप्रवचनीय होता है । उदाहरणतया–अति देवान् कृष्णः (कृष्ण देवों से वढ़कर हैं ।)

(xiii) **अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु"** अर्थात्–पदार्थ, सम्भावना, अन्ववसर्ग, निन्दा तथा समुच्चय के अर्थ में जब अपि का प्रयोग होता है, तो 'अपि' 'कर्मप्रवचनीय' होता है । उदाहरणतया–सम्भावना अर्थ में–अपि स्तुयाद्विष्णुम् ।

(xiv) **"कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे ।"** अर्थात्–अत्यन्त संयोग होने पर काल और गन्तव्य मार्ग के वतलाने वाले शब्द में द्वितीया विभक्ति होती है । यथा-मासमधीते । क्रोशं कुटिला नदी ।

तृतीया विभक्ति—

(i) **"कर्तृकरणयोस्तृतीया"** यह तृतीया विभक्ति विधायक प्रमख सूत्र है । इसके अनुसार–जब कर्ता अनभिहित अर्थात् अप्रधान हो तो कर्ता तथा करण में तृतीया विभक्ति होती है । उदाहरणतया–रामेण वाणेन हतो बाली । (राम के वाण द्वारा वाली मारा गया) ।

(ii) **'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्'** प्रस्तुत वार्तिक से–'प्रकृति' इत्यादि शब्दों में तृतीया-विभक्ति होती है । उदाहरणतया–प्रकृत्याचारु । (स्वभाव से सुन्दर ।)

(iii) **"दिवः कर्म च"** इस सूत्र के अनुसार–दिव् (जुआ खेलना) क्रिया का जो अत्यधिक सहायक कारक होता है, उसकी कर्म या करण संज्ञा होती है यथा, अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति ।

(iv) **"अपवर्गे तृतीया"** सूत्र का कथन है कि-अपवर्ग अर्थ में तृतीया विभक्ति हो । अपवर्ग का अभिप्राय फलप्राप्ति या कार्यसिद्धि से है । उदाहरणतया -अह्ना क्रोशेन व्ग अनुवाकोऽधीतः (एक दिन में या एक कोश चलते-चलते अनुवाक को पढ़ लिया)

(v) **"सहयुक्तेऽप्रधाने"** अर्थात् सह (साथ) का अर्थ बतलाने वाले शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है । यथा–पुत्रेण सहागतः पिता (पुत्र के साथ पिता आया)

(vi) **"येनाङ्गविकारः"** सूत्र के अनुसार–जिस अङ्ग के विकारयुक्त होने से व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर का विकार बतलाया जाए; उस अङ्गवाचक शब्द से तृतीया होती है । उदाहरणतया–अक्ष्णा काणः (एक आँख से काना)

(vii) **"इत्थम्भूतलक्षणे"** अर्थात्–किसी वस्तु या व्यक्ति के किसी अवस्था विशेष को प्राप्त होने की जो सूचना देता हो, उससे तृतीया विभक्ति होती है । यथा–जटाभिस्तापसः ।

(viii) **"संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि"** अर्थात्–सम् पूर्वक 'ज्ञा' धातु से कर्म में विकल्प से तृतीया होती है । यथा–पित्रा पितरं वा सञ्जानीते (पिता को पहचानता है)

(ix) **"हेतौ"** हेतु वाचक शब्द में तृतीया विभक्ति होती है । यथा–पुण्येनगौरवर्णः ।

(x) **गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका । अलं श्रमेण ।** अर्थात्–जब क्रिया, वाक्य में स्पष्टतः उक्त न हो, फिर भी यदि अर्थ मात्र से ही प्रतीति हो रही हो तो वह क्रिया भी कारकविभक्ति का हेतु होती है । यथा–अलं श्रमेण (परिश्रम अनावश्यक है ।)

(xi) **'अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया'** प्रस्तुत वार्तिक का कथन है कि अशिष्टों के व्यवहार के सम्वन्ध में दाण् धातु का प्रयोग होने पर चतुर्थी के अर्थ में (सम्प्रदान में) तृतीया विभक्ति होती है । यथा–दास्या संयच्छते कामुकः ।

चतुर्थीविभक्ति—

(i) **"चतुर्थी सम्प्रदाने ।"** प्रस्तुत सूत्र के अनुसार–सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है । उदाहरणतया–विप्राय गां ददाति । में सम्प्रदान संज्ञक विप्र में चतुर्थी विभक्ति होगी ।

(ii) **"कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्"** अर्थात् जिसके लिए दिया जाता है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है–सम्प्रदीयतेऽस्मै इति सम्प्रदानम् । यथा-विप्राय गां ददाति ।

(iii) **'क्रियया यमभिप्रैतिसोऽपि सम्प्रदानम्'** अर्थात्–कर्ता क्रिया के द्वारा जिसकी ओर विशेष रूप से उन्मुख होता है, वह भी सम्प्रदान संज्ञक होता है । यथा–पत्ये शेते ।

(iv) **'यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसंज्ञा'** प्रस्तुत वार्तिक के अनुसार–यज् धातु के साथ कर्म को करण कारक होता है, तथा सम्प्रदान को कर्म । यथा–'पशुना रुद्रं यजते' यह वाक्य पशुं रुद्राय ददाति का समानार्थक है ।

(v) **"रुच्यर्थानां प्रीयमाणः"** अर्थात् रुच् तथा इस अर्थ की धातुओं के योग में प्रीयमाण (जिसे प्रसन्न किया जा रहा हो) की सम्प्रदान संज्ञा होती है । यथा–हरये रोचते भक्तिः ।

(vi) **"श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः"** अर्थात् श्लाघ् (प्रशंसा करना), ह्नुङ् (छिपाना), स्था (रुकना), शप् (उपालम्भ देना) के योग में, जिसका बोध कराया जाए; उसमें सम्प्रदान कारक होता है । यथा–कृष्याण ह्नुते (कृष्ण को {सपत्नियों से} छिपाती है)

(vii) **"धारेरुत्तमर्णः"** धारि (उधार लेना) धातु के योग में उत्तमर्ण (कर्ज देने वाले महाजन) में सम्प्रदान कारक होता है । यथा–भक्तायधारयति मोक्षं हरिः ।

(viii) **"स्पृहेरीप्सितः"** अर्थात् स्पृह् धातु के योग में जिसके लिए स्पृहा की जाए, उसमें सम्प्रदान कारक होता है । यथा–पुष्पेभ्यः स्पृहयति (फूलों की इच्छा करता है ।)

(ix) **"क्रुधद्रुहेर्ष्यासुयार्थानां यं प्रति क्रोधः"** सूत्र से स्पष्ट है कि–क्रुध्, द्रुह, ईर्ष्या, असूया अर्थ वाली धातुओं के योग में, जिसके ऊपर क्रोधादि किया जाय; उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है । यथा–हरये क्रुध्यति, हरये द्रुह्यति, हरये ईर्ष्यति, हरये असूयति ।

(x) **"क्रुधद्रुहोरूपसृष्टयोः कर्मः"** अर्थात् जब–क्रुध्, द्रुह क्रिया में उपसर्ग लगा हो, तो जिस पर क्रोध किया जाता है, उसकी कर्म संज्ञा होती है । यथा–क्रूरमभिक्रुध्यति ।

(xi) **"राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः"** अर्थात्–राध्, ईक्ष् के साथ जिस व्यक्ति के अच्छे या बुरे भाग्य के विषय में प्रश्न (विचार) किया जाता है, उस व्यक्ति की सम्प्रदान संज्ञा होती है । यथा–कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा । (कृष्ण के लिए पक्ष में करता है या प्रश्नों पर विचार करता है)

(xii) **"प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता"** अर्थात् 'श्रु' धातु के पहले जब प्रति और आङ् उपसर्ग लगे हों और इसका अर्थ प्रतिज्ञा करना हो, तो प्रतिज्ञा करने की प्रेरणा देने वाला सम्प्रदान संज्ञक होता है । यथा–विप्राय गां प्रतिशृणोति आश्रृणोति वा ।

(xiii) **"अनुप्रतिगृणश्च"** जब 'गृ' धातु के पहले अनु या प्रति उपसर्ग हो तथा इसका अ कही हुई बात को दोहराकर उत्साहित करना हो, तो जो व्यक्ति पहली क्रिया का कर्ता होता है त जिसकी बात दोहराई जाती है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है । यथा–होत्रे अनुगृणाति प्रतिगृणा वा । (होता को उत्साहित करता है)

(xiv) **"परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्"** अर्थात्–परिक्रयण (किसी निश्चित काल के लिए कि को मजदूरी पर रखना) अर्थ में सम्प्रदान विकल्प से होता है । उदाहरणतया–शतेन शताय व परिक्रीतः (सौ पर रखा हुआ)

(xv) **'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या'** प्रस्तुत वार्तिक के अनुसर–जव प्रयोजन के लिए अर्थ होता है, त चतुर्थी विभक्ति होती है । यथा–मुक्तये हरिं भजति ।

(xvi) **'क्लृपि सम्पद्यमाने च'** वार्तिक के अनुसार–क्लृप् तथा अन्य क्रियाओं से जिसका अ फल निकलना, पूरा होना होता हो, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है । यथा–भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते सम्पद्यते, जायते । (भक्ति से ज्ञान उत्पन्न होता है)

(xvii) **'उत्पातेन ज्ञापिते च'** वार्तिक से–उत्पात जिसे सूचित करता हो, उससे चतुर्थी होती है यहाँ उत्पात का अभिप्रायः प्रकृति के विकार से है । यथा–'वाताय कपिला विद्युत ।'

(xviii) **'हितयोगे च'** वार्तिक के अनुसार–हित के योग में, जिसका हित हो, उसमें भी चतु विभक्ति होती है । यथा–ब्राह्मणाय हितम् । (ब्राह्मण का हित या भला)

(xix) **"क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः"** प्रस्तुत सूत्र के अनुसार–क्रियार्थ क्रिया जिस उपपद में हो, और तुमुन् अर्थ की क्रिया का प्रयोग न हो, तो तुमुनन्त अप्रयुज्यमान क्रिया के कर्म चतुर्थी विभक्ति होती है । यथा–फलेभ्यो याति ।

(xx) **"तुमर्थाच्च भाववचनात्"** अर्थात् किसी धातु में 'तुमुन्' प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निक है, उसी अर्थ को बताने के लिए दूसरे प्रत्यय का विधान होने पर उस प्रत्यय से अन्त होने व भाववाचक शब्द से चतुर्थी होती है । ध्यातव्य है कि भाववाचक तुमुन् प्रत्यय घञ् है । अतः घ प्रत्ययान्त शब्द से ही चतुर्थी होगी । यथा–यागाय याति । (फल के लिए जाता है)

(xxi) **"नमः-स्वस्ति-स्वाहा-स्वधा-ऽलं-वषड्योगाच्च"** के कथनानुसार–नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वध अलम् तथा वषट् के योग में चतुर्थी होती है । यथा–हरये नमः । प्रजाभ्यः स्वति । अग्नये स्वाहा पितृभ्यः स्वधा । इत्यादि ।

(xxii) **"मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु"** अर्थात्–जब अनादर दिखाया जाता है, तो 'म (समझना) दिवादिगण की धातु के कर्म में वह प्राणी न हो तो विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है यथा–न त्वां तृणं मन्ये तृणाय वा ।

(xxiii) **"गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि"** सूत्र के अनुसार–'गति' अर्थ वा धातुओं के कर्म में द्वितीया या चतुर्थी विकल्प से होती है; जब कर्म, मार्ग बतलाने वाला शब्द न तथा गति में शरीर के चलने की क्रिया का तात्पर्य हो । यथा–ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति ।

पञ्चमी विभक्ति—

(i) **"अपादाने पञ्चमी"** अर्थात् अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा–ग्रामादायाति ।

(ii) **"ध्रुवमपायेऽपदानम्"** अर्थात् जहाँ विश्लेष या अलग होना हो, वहाँ ध्रुव या अवधि कारक की अपादान संज्ञा होती है । यथा 'ग्रामादायाति' में ग्राम अपादान संज्ञक है ।

(iii) **'जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्'** प्रस्तुत वार्तिक से–जुगुप्सा (घृणा), विराम तथा प्र अर्थ की क्रिया के योग में जिसके प्रति जुगुप्सा हो, या जिससे दूर होने का अर्थ हो, उसमें पञ्च विभक्ति होती है । यथा–पापाज्जुगुप्सते विरमति वा ।

(iv) **"भीत्रार्थानां भयहेतुः"** अर्थात्–भी (भय) तथा त्रै (रक्षा करना) अर्थ की धातुओं का प्रयोग होने पर भय के हेतु में पञ्चमी होती है । यथा–चोराद्बिभेति । (चोर से डरता है)

(v) **"पराजेरसोढ़"** सूत्र के अनुसार–'परा' पूर्वक 'जि' (पराजि) धातु का थकने या असह्य होने के अर्थ में प्रयोग होने पर जो असह्य होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है । यथा–अध्ययनात् पराजयते । (अध्ययन से भागता है)

(vi) **"वारणार्थानामीप्सितः"** अर्थात् वारण (रोकने) अर्थ की धातुओं के प्रयोग में जो ईप्सित हो, उसकी अपादान संज्ञा होती है । यथा–यवेभ्यो गां वारयति ।

(vii) **"अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति"** सूत्र के अनुसार–जब व्यवधान होने पर छिपने वाला, जिससे अपने को छिपाना चाहता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है । यथा–मातुर्निलीयते कृष्णः (कृष्ण माता से छिपता है ।)

(viii) **"आख्यानोपयोगे"** जब किसी व्यक्ति या गुरु से नियमपूर्वक कुछ पढ़ा जाता है, तो पढ़ाने वाले, वक्ता या गुरु की अपादान संज्ञा होती है । यथा–उपाध्यायादधीते ।

(ix) **"जनिकर्तुः"** सूत्र के अनुसार–जन् (उत्पन्न होना) क्रिया के कर्ता का जो प्रधान और आदि कारण होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है । उदाहरणतया–ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते (ब्रह्मा से प्राणी उत्पन्न होने होते हैं ।)

(x) **"भुवः प्रभवः"** अर्थात्–प्रकट होने के कर्ता का जो प्रकट होने का स्थान होता है, वह अपादान संज्ञक होता है । यथा–हिमवतो गङ्गा प्रभवति । (हिमालय से गंगा निकलती है)

(xi) **"ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च"** वार्तिक के अनुसार–जब ल्यप् प्रत्ययान्त क्रिया का लोप हो, तो उसके कर्म और आधार में पञ्चमी होती है । यथा–प्रासादात् प्रेक्षते ।

(xii) **'यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी' (वार्तिक), तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ (वार्तिक), 'कालात् सप्तमी च वक्तव्या' (वार्तिक)** इन वार्तिकों में, प्रथम के अनुसार–जिस स्थान या समय से किसी दूसरे स्थान की दूरी या किसी दूसरे समय का अन्तर बताया जाए, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा–कार्तिक्या आग्रहायणी मासे ।

(xiii) **"अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते ।"** अर्थात्–अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिशा बताने वाले शब्द अन्य, 'अञ्चु' उत्तरपद वाले दिग्वाचक समस्त पद (प्राक् प्रत्यक् आदि) आच् या आहि प्रत्ययान्त दिग्वाची शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा–आरात् वनात् । ऋते कृष्णात् । इत्यादि ।

(xiv) **"अपपरी वर्जने ।"** सूत्र के अनुसार–जब 'अप' और 'परि' शब्द का अर्थ वर्जन करना (दूर करना) होता है, तो ये कर्मप्रवचनीय होते हैं ।

(xv) **"आङ्मर्यादावचने"** सूत्र के अनुसार–मर्यादा अर्थ में आङ् कर्मप्रवचनीय होता है । यथा–आपाटलिपुत्रात् वृष्टो देवः । इसका सम्बन्ध निम्नलिखित सूत्र (xvi) से है–

(xvi) **"पञ्चम्यपाङ्परिभिः"** अर्थात्–कर्मप्रवचनीय-अप, आङ्, परि के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा अपहरेः परिहरेः वा संसारः । आमुक्तेः संसारः । आसकलाद् ब्रह्म ।

(xvii) **"प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः"** के अनुसार–जब प्रति का प्रयोग 'प्रतिनिधि' एवं 'प्रतिदान' के अर्थ में होता है, तो प्रति कर्मप्रवचनीय होता है ।

(xviii) **"प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्"** से कर्मप्रवचनीय के योग में, जिसका प्रतिनिधि हो या जिसका प्रतिदान हो, उससे पञ्चमी विभक्ति होती है । उदाहरणतया–प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति । तिलेभ्यः प्रतियच्छतिमाषान् । (तिल से उड़द बदलता है)

(xix) **"अकर्तर्यृणे पञ्चमी"** सूत्रानुसार–कर्तृसंज्ञा से रहित ऋण यदि हेतु हो, तो उस ऋण से पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा–शताद् बद्धः । (सौ के कर्ज से बँधा है)

(xx) **"विभाषा गुणेस्त्रियाम्"** सूत्र के अनुसार–जव हेतु गुण हो, किन्तु स्त्रीलिङ्ग न हो, तो हेतु में विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा–जाड्याज्जाड्येन वा बद्धः ।

(xxi) **"पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्"** के अनुसार–पृथक्, विना और नाना के योग में तृतीया, पञ्चमी तथा द्वितीया होती है । यथा–पृथग् रामेण रामात् रामं वा ।

(xxii) **"करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य ।"** अर्थात्–स्तोक (थोड़ा), अल्प, कृच्छ्र तथा कतिपय इन चार शब्दों से तृतीया और पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा–स्तोकात् स्तोकेन वा मुक्तः । इसी तरह–अल्पात् अल्पेन वा मुक्तः ।

(xxiii) **"दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च"** सूत्र के अनुसार–दूर तथा अन्तिक अर्थवाले शब्दों से पञ्चमी, तृतीया या द्वितीया होती है । यथा– ग्रामस्य दूरं दूरात् दूरेण वा ।

षष्ठी विभक्ति—

(i) **"षष्ठी शेषे"** प्रस्तुत सूत्र के अनुसार–शेष अवस्थाओं में अर्थात् जहाँ दूसरी विभक्तियों के नियम लागू नहीं होते, वहाँ षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है अर्थात् प्रातिपदिक व कारक के अर्थों से भिन्न 'स्व-स्वामिभाव' इत्यादि सम्वन्धों को शेष कहते हैं । इसी शेष अर्थ में षष्ठी होती है । यथा राज्ञः पुरुषः । (राजा का आदमी)

(ii) **"षष्ठी हेतुप्रयोगे"** सूत्र के अनुसार–जब कोई संज्ञा किसी क्रिया का हेतु बताती हो और हेतु; हेतु शब्द के द्वारा ही द्योतित हो रहा हो तो उस हेतु में षष्ठी विभक्ति होती है । यथा अन्नस्य हेतोः वसति (अन्न के लिए रहता है ।)

(iii) **"सर्वनाम्नस्तृतीया च"** जब सर्वनाम शब्द हेतु शब्द से हेतु अर्थ का प्रकाशक हो, तो सर्वनाम शब्द में षष्ठी व तृतीया दोनों का प्रयोग होता है । उदाहरणतया–'केन हेतुना वसति' या 'कस्य हेतोः वसति ।'

(iv) **'निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्'** प्रस्तुत वार्तिक के अनुसार–निमित्तार्थक शब्द के प्रयोग में हेतुवाचक शब्द से प्रायः सभी विभक्तियाँ आती हैं । चाहे वह सर्वनाम हो या न हो । यथा–'किं कारणं', 'कस्मै निमित्ताय', इत्यादि ।

(v) **"षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन"** सूत्र के अनुसार–जिन शब्दों के अन्त में अतसर्थक प्रत्यय हों, उनके योग में षष्ठी विभक्ति होती है । ध्यातव्य है कि अतसर्थ प्रत्यय से अन्त होने वाले शब्द दिक्शब्द होते हैं । उदाहरणतया–ग्रामस्यः दक्षिणतः ।

(vi) **"एनपा द्वितीया"** अर्थात्–'एनप्' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में द्वितीया तथा षष्ठी दोनों होती हैं । यथा–दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा ।

(vii) **"दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्"** सूत्र के अनुसार–दूर, अन्तिक तथा इसके पर्यायवाची शब्दों के योग में पञ्चमी या षष्ठी विभक्ति होती है । उदाहरणतया–दूरं ग्रामस्य ग्रामाद्वा ।

(viii) **"ज्ञोऽविदर्थस्य करणे"** अर्थात् 'ज्ञा' धातु जब जानने के अर्थ में प्रयुक्त न हो, तो उसके करण में षष्ठी विभक्ति होती है । यथा–सर्पिषोज्ञानम् (घी से कार्य करना)

(ix) **"अधीगर्थदयेशां कर्मणि"** अर्थात्–अधि उपसर्ग पूर्वक 'इ' (स्मरण करना), दय् तथा ईश धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है । यथा–सर्पिषो दयनम् ।

(x) **"कृञः प्रतियत्ने"** यदि 'कृञ्' धातु का अर्थ प्रतियत्न (गुण) उत्पन्न करना हो, तो उसके कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है । यथा–एधो दकस्योपस्करणम् ।

(xi) **"रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः"** सूत्र के अनुसार–'ज्वरि' धातु को छोड़कर अन्य रुजार्थक (रोगार्थक) धातुओं के कर्म में शेष अर्थ में षष्ठी होती है । यदि वह धातु भावकर्तृक हो । यथा–चौरस्य रोगस्य रुजा । (रोग से चोर को कष्ट)

(xii) **"आशिषि नाथः"** सूत्र के अनुसार–'नाथ' धातु के आशीष या आशा रखने के अर्थ में होने पर उसके कर्म में शेषत्व की विवक्षा में षष्ठी होती है । यथा–सर्पिषो नाथनम् ।

(xiii) **"जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् ।"** अर्थात्–जासि, नि तथा प्र उपसर्ग पूर्वक् हन्, नाट, क्राथ तथा पिष् धातु का अर्थ जब मारना या हानि पहुँचाना होता है, तो इनके कर्म में शेषत्व की विवक्षा में षष्ठी होती है । यथा–चौरस्य निप्रहणनम् ।

(xiv) **"व्यवहृपणोः समर्थयोः ।"** वि, अव उपसर्ग पूर्वक 'हृ' धातु तथा 'पण' धातु जब समानार्थक होती है, तो उनके कर्म में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है । उदाहरणतया–शतस्य व्यवहरणं पणनं वा । (सौ की विक्री या दाँव)

(xv) **"दिवस्तदर्थस्य ।"** सूत्र के अनुसार–'दिव्' धातु जब जुआ खेलने या क्रय-विक्रय के अर्थ में प्रयुक्त हो, तो उसके कर्म से षष्ठी होती है । यथा–शतस्य दीव्यति । (सौ लगाता है)

(xvi) **"विभाषोपसर्गे"** अर्थात् यदि दिव् धातु के पहले उपसर्ग हो तो कर्म में षष्ठी विकल्प से होती है । यथा–शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति ।

(xvii) **"प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासम्प्रदाने"** के अनुसार–यदि 'प्रेष्य' और 'ब्रू' धातुओं का प्रयोग, देवता सम्प्रदान में हो तो इन धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है । यथा–अग्नये हविषः प्रेष्य ।

(xviii) **"कृत्वोर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे"** अर्थात् ऐसा शब्द प्रयोग, जिसके अन्त में 'कृत्वसुच्' प्रत्ययार्थक कोई प्रत्यय हो, तो उसके योग में कालवाचक–अधिकरण में शेषत्वविवक्षा में षष्ठी होती है । यथा–द्विरह्नोभोजनम् । पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम् ।

(xix) **"कर्तृकर्मणोः कृतिः ।"** सूत्र के अनुसार–जब कृत् प्रत्यय का प्रयोग होता है, तो कृत् प्रत्यय से युक्त अनुक्त कर्ता में तथा कर्म में षष्ठी होती है । यथा–कृष्णस्य कृतिः (कृष्ण का कार्य)·।

(xx) **"उभयप्राप्तौ कर्मणि ।"** अर्थात् कृत् प्रत्ययान्त के योग में यदि कर्ता और कर्म दोनों एक ही साथ आवें तो कर्म में षष्ठी होगी । 'आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन ।'

(xxi) **"क्तस्य च वर्तमाने ।"** यदि भूतकालिक 'क्त' प्रत्यय, वर्तमान के अर्थ में प्रयुक्त हो तो अनुक्त कर्ता में षष्ठी होती है । यथा–राज्ञां मतो बुद्धःपूजितो वा ।

(xxii) **"अधिकरणवाचिनश्च"** अर्थात् यदि भूतकालिक 'क्त' प्रत्यय अधिकरणबोधक हो, तो उसके योग में अनुक्त कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है । यथा–इदमेषामासितं, शयितं, गतं, भुक्तं वा । (यहाँ वे बैठे, यहाँ सोये, इधर से गये, या यहाँ से भोजन किया)

(xxiii) **"न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्"** अर्थात् लकारार्थक, उकान्त, अव्ययकृदन्त, निष्ठा, खल, प्रत्ययान्त शब्दों के योग में तथा शतृ, शानच्, शानन्, चानश्, तृन् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्ता व कर्म में षष्ठी नहीं होती । यथा–दैत्यान् घातुको हरिः । यहाँ घातुकः उक प्रत्ययान्त है ।

(xxiv) **"कमेरनिषेधः"** वार्तिक से उक प्रत्ययान्त 'कामुक' शब्द के योग में षष्ठी का निषेध नहीं होगा । यथा–लक्ष्म्याः कामुको हरिः ।

(xxv) **"अनेकोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः ।"** सूत्र के अनुसार–भविष्यत् अर्थ में 'अक' प्रत्ययान्त शब्द के योग में तथा आधमर्ण्य (ऋण लेने) के अर्थ में 'इन' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है । यथा–व्रजं गामी । शतं दायी । इत्यादि ।

(xxvi) **"कृत्यानां कर्तरि वा ।"** अर्थात् 'कृत्य' प्रत्ययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है । यथा–मया मम वा सेव्यो हरिः ।

(xxvii) **"तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयोऽन्यतरस्याम् ।"** अर्थात् 'तुला' और 'उपमा' को छोड़कर तुल्य अर्थ वाले शब्दों के योग में तृतीया व षष्ठी दोनों होती हैं । उदाहरणतया–तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा । तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति ।

(xxviii) **"चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः ।"** सूत्र के अनुसार–आशीर्वाद अर्थ में प्रयुक्त आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, हित आदि शब्दों के योग में चतुर्थी या षष्ठी होती है । यथा–आयुष्यं, चिरंजीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा ।

सप्तमी विभक्ति—

(i) **"सप्तम्यधिकरणे च"** सूत्र का तात्पर्य है कि–अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा–कटे आस्ते । यहाँ पर 'कट' अधिकरण संज्ञक है ।

(ii) **"आधारोऽधिकरणम्"** प्रस्तुत अधिकरण संज्ञाविधायक सूत्र का तात्पर्य है कि–कर्ता और कर्म द्वारा अपने विद्यमान क्रिया का जो आधार होता है, उसकी अधिकरण संज्ञा होती है । यथा–स्थाल्यां पचति । (थाली में पकाता है)

(iii) **'क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्'** वार्तिक के अनुसार–'क्त' प्रत्यय से वने भूतकालिक कृदन्तों में जब 'इन्' प्रत्यय लगता है, तो उनके कर्म में सप्तमी होती है । यथा–अधीती व्याकरणे (व्याकरण में पण्डित) ।

(iv) **'साध्वसाधुप्रयोगे च'** वार्तिक के अनुसार–साधु और असाधु शव्दों के साथ जिसके प्रति साधुता सा असाधुता वतलाई जाए, उसमें सप्तमी होगी । यथा–साधुः कृष्णो मातरि ।

(v) **'निमित्तात्कर्मयोगे'** वार्तिक का कथन है कि–निमित्त या क्रिया के फल के वाचक शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है, यदि फल का क्रिया के कर्म के साथ संयोग या समवाय सम्बन्ध हो–यथा–**"चर्मणिद्वीपिनं हन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चमरीं हन्ति, सीम्निपुष्कलोहतः ॥"**

(vi) **"यस्य च भावेन भावलक्षणम् ।"** सूत्र के अनुसार–जिसकी क्रिया से कोई दूसरी क्रिया लक्षित होती है, उसमें सप्तमी का प्रयोग होता है । यथा–गोषु दुह्यमानासु गतः ।

(vii) **'अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च'** वार्तिक के अनुसार–किसी क्रिया के सम्बन्ध में किसी योग्य व्यक्ति के कर्तृत्व तथा अयोग्य व्यक्ति के अकर्तृत्व की विवक्षा होने पर या इसके विपरीत दशा में भी सप्तमी विभक्ति होती है । यथा–सत्सु तरत्सु असन्त आसते ।

(viii) **"षष्ठी चानादरे"** अर्थात् जहाँ अनादर का अर्थ हो तथा वहाँ जिसकी क्रिया से दूसरी क्रिया लक्षित होती हो उसमें षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है । यथा–रुदति रुदतः वा प्राव्राजीत् ।

(ix) **"स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च"** सूत्र के अनुसार–स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद्, साक्षिन्, प्रतिभू तथा प्रसूत इन सात शब्दों के योग में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। यथा–गवां गोषु वा स्वामी । (गायों के स्वामी)

(x) **"आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्"** आयुक्त तथा कुशल के साथ आने वाले शब्दों के योग में षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है । यथा–आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा ।

(xi) **"यतश्च निर्धारणम्"** अर्थात् जहाँ पर किसी समुदाय से किसी विशेष को जाति, गुण, क्रिया या संज्ञा के आधार पर अलग किया जाए, 'वहाँ समुदाय वाचक शब्द से षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है । यथा–नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः ।

(xii) **"पञ्चमी विभक्ते"** सूत्र के अनुसार–जिस वस्तु की जिसके साथ विशेषता बताई जाए, वह वस्तु उससे यदि बिल्कुल भिन्न हो, तो वहाँ पञ्चमी होती है । यथा–मथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः आढ्यतराः । (मथुरा वाले पटनावों से धनी हैं)

(xiii) **"साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः ।"** अर्थात् 'साधु' तथा 'निपुण' शब्दों से जब प्रशंसा या आदर प्रकट हो तथा इसके साथ जब प्रति का प्रयोग न हो तो, इन दोनों शब्दों के योग में सप्तमी होती है । यथा–मातरि साधुर्निपुणो वा । (माता के प्रति भला)

(xiv) **"प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च"** के अनुसार–प्रसित तथा उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी दोनों होती हैं । यथा–प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा ।

(xv) **"नक्षत्रे च लुपि"** सूत्र के अनुसार–यदि 'मूल' शब्द नक्षत्रार्थक हो तथा उसके प्रत्यय का लोप हुआ हो, तो उस नक्षत्र वाचक शब्द से अधिकरण अर्थ में तृतीया या सप्तमी होती है । यथा–मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् ।

(xvi) **"सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये"** सूत्र के अनुसार–दो कारक शक्तियों के बीच में जो काल या अध्व (मार्ग की दूरी) होती है, उनके वाचक शब्दों में सप्तमो या पञ्चमी विभक्ति होती है । यथा–इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत् ।

(xvii) **"अधिरीश्वरे"** अर्थात् जव 'अधि' शब्द–स्व–स्वामिभाव बोधक के रूप में प्रयुक्त हो, तो कर्मप्रवचनीय होता है । (इसका सम्वन्ध अग्रिम सूत्र से है ।)

(xviii) **"यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ।"** अर्थात्–जिससे अधिकता बताई जाए या जिसका स्वामी होना बताया जाए; उन शब्दों में कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी होती है । यथा–उपपरार्धे हरेर्गुणाः । (हरि के गुण परार्द्ध से भी अधिक हैं)

(xix) **"विभाषा कृञि"** सूत्र के अनुसार–अधिपूर्वक कृ धातु विकल्प से कर्मप्रवचनीय हो यदि ईश्वर या स्वामी अर्थ का वोध हो रहा हो । जैसे–'यदत्र मामधिकरिष्यति' में अधि + कृ (करिष्यति) का प्रयोग स्वामी होने के अर्थ में है । अतः कर्मप्रवचनीय होकर द्वितीया विभक्ति हुई है ।

3.1.3. समास (लघुसिद्धान्त-कौमुदी)

'समास' शब्द सम् + अस् + घञ् पूर्वक 'अस्' (फेंकना) धातु से बना है, जो संक्षिप्त अर्थ का बोधक है । जव दो या दो से अधिक शब्दों को इस प्रकार जोड़ दिया जाए कि वे समस जॉय* अर्थात् उनके आकार में कमी आ जाए परन्तु अर्थ में कोई अन्तर न आवे तो, ऐसी क्रिया को 'समास' कहते हैं तथा इस क्रिया विशिष्ट पद को सामासिक-पद कहते हैं । दोनों पदों के समर्थ होने पर ही समास किया जाता है अन्यथा नहीं–समर्थः पदविधिः । उदाहरणतया–सभायाः पतिः = 'सभापतिः' में विभक्ति सूचक प्रत्यय (याः) का लोप हो जाने से सभापतिः पद, सभायाः पतिः की अपेक्षा छोटा हो गया; परन्तु अर्थों में कोई भिन्नता नहीं आई । अतः यह समास युक्त (सामासिक) पद कहा जाएगा ।

समास का वर्गीकरण–विभिन्न प्रकार के समासों को कुल मुख्यतः पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया गया है–1. केवल समास, 2. अव्ययीभाव, 3. तत्पुरुष, 4. बहुव्रीहि तथा 5. द्वन्द्व । ध्यातव्य है कि–कर्मधारय और द्विगु, इन दोनों समासों का तत्पुरुष के ही अन्तर्गत समाहर हो जाता है । अव्ययीभाव समास में प्रायः प्रथम पद प्रधान रहता है; तत्पुरुष में द्वितीय पद तथा द्वन्द्व में दोनों पद प्रधान होते हैं, जबकि बहुव्रीहि में कोई पद प्रधान नहीं होता, अपितु दोनों पद मिलकर किसी अन्य पद के विशेषण का कार्य करते हैं । इन पञ्चविध समासों का क्रमशः संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–†

1. **केवल-समास**–ऐसा समास, जिसे किसी विशेष नाम से अभिहित न किया गया हो, उसे केवल-समास की श्रेणी में रखा गया है **'विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः'** उदाहरणतया–भूतपूर्वः (जो पहले हो चुका हो ।)

---

* 'समसनं समासः

† द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः ।।
चकार-बहुलो द्वन्द्वः, स चासौ कर्मधारयः ।
यस्य येषां बहुव्रीहिः, शेषस्तत्पुरुषो मतः ।।

2. **अव्ययीभाव-समास**–'अव्ययीभाव' शब्द का यौगिक अर्थ होता है–'जो अव्यय न हो, उसका अव्यय हो जाना ।' इस समास के दोनों पदों में से प्रथम-पद प्रायः अव्यय ही होता है, जबकि दूसरा पद संज्ञा होता है । यही दोनों पद मिलकर अव्यय हो ज़ाते हैं,† यथा–'अधि हरि' (हरि में) । यहाँ पर 'अधि' अव्यय है तथा 'हरि' संज्ञा लेकिन दोनों का मिला हुआ रूप–'अधिहरि' अव्यय हो जाता है । अव्यय हो जाने से किसी भी अव्ययीभाव शब्द के रूप नहीं चलते । समस्त पद सदैव नपुंसकलिङ्ग एकवचन में प्रयुक्त होता है ।

3. **तत्पुरुष-समास**–'तत्पुरुष' द्वितीयपदप्रधान समास है । इसमें प्रथमपद द्वितीयपद के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है । 'तत्पुरुष' शब्द का विग्रह दो प्रकार से किया जा सकता है– **तस्य पुरुषः तत्पुरुषः** तथा **सः पुरुषः तत्पुरुषः** । इस द्विविधि विग्रह के अनुसार तत्पुरुष-समास के दो मुख्य भेद होते हैं–(क) **व्यधिकरण** तथा (ख) **समानाधिकरण** (कर्मधारय) ।

(क) व्यधिकरण-तत्पुरुष-समास–जिस तत्पुरुष समास में प्रथमपद तथा द्वितीयपद दोनों भिन्न-भिन्न विभक्तियों में हों, उसे 'व्यधिकरण तत्पुरुष समास' कहते हैं । उदाहरणतया–**'राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः'** में प्रथमपद राज्ञः षष्ठी विभक्ति में है, तथा द्वितीयपद पुरुषः प्रथमा विभक्ति में है । इस प्रकार दोनों पदों के भिन्न-भिन्न विभक्तियों में होने से 'व्यधिकरण-तत्पुरुष-समास' हुआ है । व्यधिकरण तत्पुरुष के छः भेद होते हैं–‡

(i) **द्वितीया-तत्पुरुष** (ii) **तृतीया-तत्पुरुष** (iii) **चतुर्थी-तत्पुरुष** (iv) **पञ्चमी-तत्पुरुष** (v) **षष्ठी-तत्पुरुष तथा** (vi) **सप्तमी-तत्पुरुष समास** । कहने का भाव यह है कि प्रथमपद जिस विभक्ति में होगा, उस विभक्ति से सम्बद्ध तत्पुरुष कहा जाएगा, जैसे–**कृष्णश्रितः** में कृष्णंश्रितः । इस विग्रह के अनुसार-प्रथमपद द्वितीया विभक्ति में है । अतः यहाँ पर द्वितीया तत्पुरुष समास कहा जाएगा ।

(ख) समानाधिकरण-तत्पुरुष-समास–जिस 'तत्पुरुष-समास' में प्रथम तथा द्वितीय दोनों पद एक ही विभक्ति में हों, उसे 'समानाधिकरण-तत्पुरुष' या 'कर्मधारय-समास' कहा जाता है । उदाहरणतया–**'कृष्णः सर्पः'** में प्रथमपद–'कृष्णः' तथा द्वितीयपद–'सर्पः' दोनों प्रथमा विभक्ति में ही हैं । अतः दोनों पदों के समान विभक्ति में होने से यहाँ पर 'समानाधिकरण-तत्पुरुष' होगा । ध्यातव्य है कि इस समास की क्रिया समास के दोनों पदों को धारण करती है, अतः इसे 'कर्मधारय' कहा जाता है । उदाहरणतया–**'कृष्णः सर्पः अपसर्पति'** (काला साँप जाता है) इस वाक्य में सर्प की गमन क्रिया के साथ-साथ कृष्णत्व भी रहता है । समानाधिकरण तत्पुरुष के तीन प्रमुख भेद हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(i) **विशेषणपूर्वपद-कर्मधारय**–जिस समानाधिकरण-तत्पुरुष में प्रथमपद विशेषण तथा दूसरापद विशेष्य होता है, उसे 'विशेषणपूर्वपद-कर्मधारय' कहते हैं । उदाहरणतया–नीलकमलम् । कृष्णसर्पः, इत्यादि ।

(ii) **उपमानपूर्वपद-कर्मधारय**–जिसमें एक पद उपमान (जिससे किसी की उपमा दी जाए) वाचक तथा दूसरापद साधारणधर्म (वह गुण जिसके आधार पर उपमा दी जाए) वाचक हो, वह समानाधिकरण-तत्पुरुष-'उपमानपूर्वपद कर्मधारय' समास कहा जाता है । उदाहरणतया–घन इव श्यामः घनश्यामः में घन उपमान है तथा श्यामवर्ण साधारण धर्म है ।

(iii) **द्विगु**–जिस 'समानाधिकरण तत्पुरुष' में प्रथमपद संख्यावाचक हो तथा दूसरापद संज्ञावाचक हो, उसे 'द्विगु' समास कहते हैं । उदाहरणतया–पञ्चानां गवानां समाहारः 'पञ्चगवम्'

---

† अनव्ययः अव्ययः सम्पद्यते इत्यव्ययीभावः ।

‡ तं पुरुषः तत्पुरुषः, द्वितीया तत्पुरुषः । तेन पुरुषः तत्पुरुषः, तृतीया तत्पुरुषः ।।
तस्मै पुरुषः तत्पुरुषः, चतुर्थी तत्पुरुषः । तस्मात् पुरुषः तत्पुरुषः, पंचमी तत्पुरुषः ।।
तस्य पुरुष तत्पुरुषः, षष्ठी तत्पुरुषः । तस्मिन् पुरुषः तत्पुरुषः, सप्तमी तत्पुरुषः ।।

(पाँच गायों का झुण्ड) । ध्यातव्य है कि समाहार (समूह या झुण्ड) अर्थ में द्विगु समास सदैव नपुङ्सकलिंग एकवचन में रहता है ।

तत्पुरुष समास के उपभेद–उपर्युक्त व्यधिकरण व समानाधिकरण के अतिरिक्त तत्पुरुष के कुछ अन्य गौड़ भेद भी होते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(i) **नञ्-तत्पुरुष-समास**–जिसका प्रथमपद नञ् (न) हो तथा द्वितीयपद कोई संज्ञा या विशेषण हो, उसे 'नञ् तत्पुरुष समास कहा जाता है । यथा–' **अब्राह्मणः = न ब्राह्मणः ।**

(ii) **प्रादि-तत्पुरुष-समास**–जिस तत्पुरुष समास का प्रथमपद 'कु' गति-संज्ञक या 'प्र' आदि होता है, उसे 'प्रादि-तत्पुरुष-समास' कहा जाता है । जैसे–**कुपुरुषः = कुत्सितः पुरुषः । प्राचार्यः = प्रगतः आचार्यः** । इत्यादि ।

(iii) **उपपद-तत्पुरुष-समास**–जिस तत्पुरुष समास का प्रथमपद उपपद तथा द्वितीयपद कृदन्त (कृत् प्रत्ययान्त) होता है, उसे 'उपपद तत्पुरुष समास' कहते हैं, जैसे–**कुम्भकारः = कुम्भं करोति ।**

4. **बहुव्रीहि-समास**–जिस समास में आए हुए दोनों (सभी) पद किसी अन्य पद के विशेषण-स्वरूप होते हैं, वह 'वहुव्रीहि समास' होता है । 'वहुव्रीहि' शब्द का अर्थ ही होता है–'जिसके पास वहुत अन्न हो वह`।' यहाँ पर वहु (बहुत) व्रीहि (अन्न) का विशेषण है, और दोनों (बहु तथा व्रीहि) मिलकर किसी अन्य पद (तीसरे पद) के विशेषण वनते हैं । उदाहरणतया–'पीताम्वरः = पीतम् अम्वरम् यस्य सः' में प्रथम पद 'पीतम्' दूसरे पद 'अम्बरम्' का विशेषण अवश्य है, परन्तु पीतम् तथा अम्वरम् दोनों पद मिलकर किसी अन्यपद (कृष्ण) का विशेषण बनते हैं ।

'तत्पुरुष' के ही समान वहुव्रीहि समास भी-व्यधिकरण तथा समानाधिकरण भेद से दो प्रकार का होता है । यह समास, प्रथमाविभक्ति को छोड़कर अन्य सभी विभक्तियों के योग में होता है । इस अर्थ को लौकिक विग्रह में यद् (जो) शब्द द्वारा प्रकट किया जाता है । इस प्रकार यद् की विभक्ति को ही देखकर जाना जाता है कि समास किस अर्थ में हुआ है । जैसे–पीतम् अम्वरं **यस्य** = पीताम्वरः (षष्ठी विभक्ति) तथा प्राप्तम् उदकं **यम्** = प्राप्तोदकः (द्वितीया विभक्ति) इत्यादि ।

5. **द्वन्द्व-समास**–यह समस्त पद प्रधान समास है । अर्थात् अव्ययीभाव व तत्पुरुष के समान इसमें पहला या दूसरा पद प्रधान नहीं होता, अपितु सभी (दोनों) पद प्रधान होते हैं । इसके अन्तर्गत 'च' शब्द से जुड़ी हुई दो या दो से अधिक संज्ञाओं का समास होता है । द्वन्द्व का अर्थ ही होता है–दो । इस समास के मुख्यतः तीन भेद हैं, जो इस प्रकार हैं–

(i) **इतरेतरद्वन्द्व**–जव समास में आई हुई संज्ञाएं अपनी प्रधानता तथा पृथक् व्यक्तित्व रखती हैं, तो इसे इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं । उदाहरणतया– **'शिवकेशवौ = शिवश्चकेशवश्च'** । ध्यातव्य है कि यदि दो संज्ञाएं हों तो समस्त पद द्विवचन में और यदि दो से अधिक संज्ञाएं हों तो समस्त पद बहुवचन में प्रयुक्त होता है तथा लिङ्ग निर्धारण उत्तर-पद के अनुसार किया जाता है ।

(ii) **समाहारद्वन्द्व**–जिस द्वन्द्व समास में आई हुई संज्ञाएं, अपना अर्थ वतलाने के साथ ही साथ प्रधानतया समाहार (समूह) का वोध कराती हैं, उसे 'समाहार-द्वन्द्व' कहा जाता है । यथा–**पाणिपादम् = पाणी च पादौ च'** । इसमें समस्तपद सदैव नपुंसकलिङ्ग एकवचन में होता है ।

(iii) **एकशेषद्वन्द्व**–जिस द्वन्द्व समास में दो या दो से अधिक पदों में से केवल एक ही शेष रह जाता है, उसे 'एकशेष-द्वन्द्व-समास' कहा जाता है । उदाहरणतया–**'पितरौ = माता च पिता च'** । समस्तपद का वचन, समास के अङ्गभूत शब्दों की संख्या के अनुसार होता है । यदि समास में पुलिङ्ग व स्त्रीलिङ्ग दोनों प्रकार के शब्द हों, तो समस्त पद पुलिंग में होता है ।

नोट–लघुसिद्धान्तकौमुदीस्थ समस्त सामासिक पदों को लौकिकालौकिकविग्रह तथा समासनिर्देश पुरःसर निम्नलिखित चार्ट के माध्यम से दर्शाया गया है–

सामासिकपद	लौकिकविग्रह	अलौकिकविग्रह	समासनिर्देश
भूतपूर्वः	पूर्वं भूतः	पूर्व अम् भूत सु	केवल समास
वागर्थाविव	वागर्थौ इव	वागर्थ औ इव	केवल समास
अधिहरि	हरौ अधि	हरि ङि अधि	अव्ययीभाव
अधिगोपम्	गोपि अधि	गोपा ङि अधि	अव्ययीभाव
उपकृष्णम्	कृष्णस्य समीपम्	कृष्ण ङस् उप	अव्ययीभाव
सुमद्रम्	मद्राणां समृद्धिः	मद्र आम् सु	अव्ययीभाव
दुर्यवनम्	यवनानां व्यृद्धिः	यवन आम् दुर्	अव्ययीभाव
निर्मक्षिकम्	मक्षिकाणामभावः	मक्षिका आम् निर्	अव्ययीभाव
अतिहिमम्	हिमस्यात्ययः	हिम ङस् अति	अव्ययीभाव
अतिनिद्रम्	निद्रा सम्प्रति न युज्यते	निद्रा सु अति	अव्ययीभाव
इति-हरि	हरिशब्दस्यप्रकाशः	हरि ङस् इति	अव्ययीभाव
अनुविष्णु	विष्णोःपश्चाद्	विष्णु ङसि अनु	अव्ययीभाव
अनुरूपम्	रूपस्य योग्यम्	रूप ङस् अनु	अव्ययीभाव
प्रत्यर्थम्	अर्थं अर्थं प्रति	अर्थ अम् प्रति	अव्ययीभाव
यथाशक्ति	शक्तिमनतिक्रम्य	शक्ति अम् यथा	अव्ययीभाव
सहरि	हरेः सादृश्यम्	हरि ङस् सह (स)*	अव्ययीभाव
अनुज्येष्ठम्	ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण	ज्येष्ठ ङस अनु	अव्ययीभाव
सचक्रम्	चक्रेण युगपत्	चक्र टा सह (स)	अव्ययीभाव
ससखि	सदृशः सख्या	सखि टा सह (स)	अव्ययीभाव
सक्षत्त्रम्	क्षत्त्राणां संपत्तिः	छत्र आम् सह (स)	अव्ययीभाव
सतृणम्	तृणमप्यपरित्यज्य	तृण अम् सह (स)	अव्ययीभाव
साग्नि	अग्निग्रन्थपर्यन्तम् (अधीते)	अग्नि टा सह (स)	अव्ययीभाव
पञ्चगङ्गम्	पञ्चानां गङ्गानां समाहारः	पञ्चन् आम् गङ्गा आम्	अव्ययीभाव
द्वियमुनम्	द्वयोः यमुनयोः समाहारः	द्वि ओस् यमुना ओस्	अव्ययीभाव
उपशरदम्	शरदः समीपम्	शरद ङस् उप, टच् = अ	अव्ययीभाव
प्रतिविपाशम्	विपासाया अभिमुखम्	विपाशा अम् प्रति	अव्ययीभाव
उपजरसम्	जरायाः समीपम्	जरा ङस् उप	अव्ययीभाव
उपराजम्	राज्ञः समीपम्	राजन् ङस् उप, टच्	अव्ययीभाव
अध्यात्मम्	आत्मनि	आत्मन् ङि अधि, टच्	अव्ययीभाव
उपचर्मम्	चर्मणः समीपम्	चर्मन् ङस् उप	अव्ययीभाव
उपसमिधम्	समिधः समीपे	समिध् ङस् उप	अव्ययीभाव
उपासमित्	समिधः समीपे	समिध् ङस उप	अव्ययीभाव
कृष्णश्रितः	कृष्णं श्रितः	कृष्ण अम् श्रित सु	तत्पुरुषसमास (द्वितीया)

* **'अव्ययीभावे चाऽकाले'** सूत्र से 'सह' को 'स' आदेश ।

सामासिकपद	लौकिकविग्रह	अलौकिकविग्रह	समासनिर्देश
दुःखातीतः	दुःखमतीतः	दुख अम् अतीत सु	तत्पुरुषसमास (द्वितीया)
नरकपतितः	नरकं पतितः	नरक अम् पतित सु	तत्पुरुषसमास (द्वितीया)
स्वर्गगतः	स्वर्गं गतः	स्वर्ग अम् गत सु	तत्पुरुषसमास (द्वितीया)
कूपात्यस्तः	कूपमत्यस्तः	कूप अम् अत्यस्त सु	तत्पुरुषसमास (द्वितीया)
सुखप्राप्तः	सुखं प्राप्तः	सुख अम् प्राप्त सु	तत्पुरुषसमास (द्वितीया)
सङ्कटापन्नः	सङ्कटमापन्नः	सङ्कट अम् प्राप्त सु	तत्पुरुषसमास (द्वितीया)
शङकुलाखण्डः	सङ्कुलया खण्डः	शङ्कुला टा खण्ड सु	तृतीया तत्पुरुष
धान्यार्थः	धान्येनार्थः	धान्य टा अर्थ सु	तृतीया तत्पुरुष
हरित्रातः	हरिणा त्रात्रः	हरि टा त्रात सु	तृतीया तत्पुरुष
नखभिन्नः	नखैर्भिन्नः	नख भिस् भिन्न सु	तृतीया तत्पुरुष
नखनिर्भिन्नः	नखैर्निर्भिन्नः	नख भिस् निर् भिन्न सु	तृतीया तत्पुरुष
यूपदारु	यूपाय दारु	यूप ङे दारू सु	चतुर्थी तत्पुरुष
द्विजार्थः	द्विजाय अर्थः	द्विज ङे अर्थ सु	चतुर्थी तत्पुरुष
भूतवलिः	भूतेभ्यो वलिः	भूत भ्यस् वलि सु	चतुर्थी तत्पुरुष
गोसुखम्	गोभ्यः सुखम्	गो भ्यस् सुख सु	चतुर्थी तत्पुरुष
गोहितम्	गोभ्यो हितम्	गो भ्यस् हित सु	चतुर्थी तत्पुरुष
गोरक्षितम्	गोभ्यो रक्षितम्	गो भ्यस् रक्षित सु	चतुर्थी तत्पुरुष
चोरभयम्	चोराद् भयम्	चोर ङसि भय सु	पञ्चमी तत्पुरुष
स्तोकान्मुक्तः	स्तोकाद् मुक्तः	स्तोक ङसि मुक्त सु	पञ्चमी तत्पुरुष
अन्तिकादागतः	अन्तिकाद् आगतः	आन्तिक ङसि आगत सु	पञ्चमी तत्पुरुष
अभ्यासादागतः	अभ्याशाद् आगतः	अभ्यास ङसि आगत सु	पञ्चमी तत्पुरुष
दूरादागतः	दूराद् आगतः	दूर ङसि आगत सु	पञ्चमी तत्पुरुष
कृच्छ्रादागतः	कृच्छ्राद् आगतः	कृच्छ्र ङसि आगत सु	पञ्चमी तत्पुरुष
राजपुरुषः	राज्ञः पुरुषः	राजन् ङस् पुरुष सु	षष्ठी तत्पुरुष
पूर्वकायः	पूर्वं कायस्य	पूर्व सु काय ङस्	षष्ठी तत्पुरुष
अपरकायः	अपरं कायस्य	अपर सु काय ङस्	षष्ठी तत्पुरुष
अर्धपिप्पली	अर्धं पिप्पल्याः	अर्ध सु पिप्पली ङस्	षष्ठी तत्पुरुष
अक्षशौण्डः	अक्षेषु शौण्डः	अक्ष सुप् शौण्ड सु	सप्तमी तत्पुरुष
अक्षधूर्तः	अक्षेषु धूर्तः	अक्ष सुप् धूर्त सु	सप्तमी तत्पुरुष

सामासिकपद	लौकिकविग्रह	अलौकिकविग्रह	समासनिर्देश
पूर्वेषुकामशमी	पूर्वा च इषुकामशमी च	पूर्वा सु इषुकामशमी सु	कर्मधारय समास
सप्तर्षयः	सप्त च ते ऋषयः	सप्तन् जस् ऋषि जस्	तत्पुरुष
पौर्वशालः	पूर्वस्यां शालायां भवः	पूर्वा ङि शाला ङि	तत्पुरुष
पूर्वशालाप्रियः	पूर्वा शाला प्रिया यस्य सः	पूर्वा सु शाला सु	तत्पुरुष
पाञ्चनापितिः	पञ्चनापिताः सन्ति अस्मिन्	पञ्चन् जस् नापित जस्	तत्पुरुष
पञ्चगवधनः*	पञ्चगावो धनो यस्य	पञ्चन् जस् गोजस् धन सु	तत्पुरुष
पञ्चगवम्	पञ्चानां गवां समाहारः	पञ्चन् ङस् गो ङस्	द्विगु समास
नीलोत्पलम्	नीलमुत्पलम्	नील सु उत्पल सु	कर्मधारय समास
कृष्णसर्पः	कृष्णः सर्पः	कृष्ण सु सर्प सु	कर्मधारय समास
घनश्यामः	घन इव श्यामः	घन सु श्याम सु	कर्मधारय समास
शाकपार्थिवः	शाकप्रियः पार्थिवः	शाकप्रिय सु पार्थिव सु	कर्मधारय समास
देवब्राह्मणः	देवपूजको ब्राह्मणः	देवपूजक सु ब्राह्मण सु	कर्मधारय समास
अब्राह्मणः	न ब्राह्मणः	नञ् ब्राह्मण सु	कर्मधारय समास
अनश्वः	न अश्वः	नञ् अश्व सु	कर्मधारय समास
कुपुरुषः	कुत्सितः पुरुषः	कुत्सित सु पुरुष सु	गति तत्पुरुष
उरीकृत्य	उरीकृत्वा	उरी कृ क्त्वा	गति तत्पुरुष
शुक्लीकृत्य	अशुक्लं शुक्लं कृत्वा	शुक्ल च्वि कृ क्त्वा	गति तत्पुरुष
पटपटाकृत्य	पटत् पटत् इति कृत्वा	पटत् पटत् कृ क्त्वा डाच्	गति तत्पुरुष
सुपुरुषः	शोभनः पुरुषः	शोभन सु पुरुष सु	प्रादि तत्पुरुष
प्राचार्यः	प्रगत आचार्यः	प्रगत सु आचार्य सु	प्रादि तत्पुरुष
अतिमालः	अतिक्रान्तो मालाम्	माला अम् अति	प्रादि तत्पुरुष
अवकोकिलः	अवक्रुष्टः कोकिलया	अव कोकिला टा	प्रादि तत्पुरुष
पर्य्यध्ययनः	परिग्लानोऽध्ययनाय	परिअध्ययन ङि	प्रादि तत्पुरुष
निष्कौशाम्बिः	निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः	निस् कौशाम्बी ङसि	प्रादि तत्पुरुष
कुम्भकारः	कुम्भं करोति	कुम्भ ङस् कार सु	उपपद तत्पुरुष
द्वयङ्गुलम्	द्वेअङ्गुलीप्रमाणमस्य	द्वि औ अंगुलि औ	द्विगु समास
निरंगुलम्	निर्गतमङ्गुलिभ्यः	निर् अंगुलि ङसि	प्रादि समास
अहोरात्रः	अहश्च रात्रिश्च	अहन् सु रात्रि सु	द्वन्द्व समास
सर्वरात्रः	सर्वाः रात्रयः च	सर्वा जस् रात्रि जस्	कर्मधारय समास
संख्यातरात्रः	संख्याता रात्र्यः	संख्याता जस् रात्रि जस्	कर्मधारय समास
द्विरात्रम्	द्वयोः रात्र्योः समाहारः	द्वि ओस् त्रि ओस्	द्विगु समास
त्रिरात्रम्	त्रयाणां रात्रीनां समाहारः	त्रि आम् रात्रि आम्	द्विगु समास

* 'पञ्चगवधनः' में पहले 'पञ्च' और 'गव' इन दोनों पदों से तत्पुरुष समास होकर 'पञ्चगव रूप' है, फिर 'धनम्' के साथ बहुव्रीहि समास होकर पञ्चगवधनः' निष्पन्न होता है ।

सामासिकपद	लौकिकविग्रह	अलौकिकविग्रह	समासनिर्देश
अतिरात्रः	अतिक्रान्तो रात्रिम्	अति रात्रि अम्	प्रादि तत्पुरुष
परमराजः	परमश्च असौ राजा च	परम सु राजन् सु	कर्मधारय
महाराजः	महान् च असौ राजा	महत् सु राजन् सु	कर्मधारय
महाजातीयः	महा प्रकारः	महत् जातीयर	कर्मधारय
द्वादश	द्वौ च दश च	द्वि औ दशन् अस्	द्वन्द्व समास
अष्टाविंशतिः	अष्ट च विंशतिश्च	अष्टन् जस् विंशति जस्	द्वन्द्व समास
कुक्कुटमयूर्यौ	कुक्कुटश्च मयूरी च	कुक्कुट सु मयूरी सु	द्वन्द्व समास
मयूरीकुक्कुटौ	मयूरी च कुक्कुटश्च	मयूरी सु कुक्कुट सु	द्वन्द्व समास
पञ्चकपालः	पञ्चसु कपालेषु संस्कृत (पुरोडाशः)	पञ्चन् सुप् कपाल सुप्	द्विगु समास
प्राप्तजीविकः	प्राप्तो जीविकाम्	प्राप्त सु जीविका अम्	तत्पुरुष
आपन्नजीविकः	आपन्नो जीविकाम्	आपन्न सु जीविका अम्	तत्पुरुष
अलंकुमारिः	अलं कुमार्यै	कुमारी ङे अलम्	तत्पुरुष
अर्धर्चः	अर्धम् ऋचः	ऋच् ङस् अर्ध सु	षष्ठी तत्पुरुष
कण्ठेकालः	कण्ठे कालः यस्य सः	कण्ठ ङि काल सु	बहुव्रीहि समास
प्राप्तोदको	प्राप्तम् उदकम् यम् सः	प्राप्त सु उदक सु	बहुव्रीहि समास
पीताम्वरः	पीतम् अम्वरम् यस्य सः	पीत सु अम्वर सु	बहुव्रीहि समास
प्रपर्णः	प्रपतितानि पर्णानि यस्मात्	प्रपतित जस् पर्ण जस्	बहुव्रीहि समास
अपुत्रः	अविद्यमानो पुत्रः यस्य	अविद्यमान सु पुत्र सु	बहुव्रीहि समास
चित्रगुः	चित्रा गावो यस्य	चित्रा जस् गो जस्	बहुव्रीहि समास
रूपवद्भार्यः	रूपवती भार्या यस्य	रुपवद् सु भार्या सु	बहुव्रीहि समास
वामोरूभार्यः	वामोरुः भार्या यस्य	वामोरू सु भार्या सु	बहुव्रीहि समास
कल्याणी पञ्चमाः	कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम्	कल्याणी सु पञ्चमी सु	बहुव्रीहि समास
स्त्रीप्रमाणः	स्त्रीप्रमाणी यस्य	स्त्री सु प्रमाणी सु	बहुव्रीहि समास
दीर्घसक्थः	दीर्घे शक्थिनी यस्य	दीर्घम् औ सक्थि औ	बहुव्रीहि समास
जलजाक्षी	जलजे इव अक्षिणी यस्याः	जलज औ अक्षि औ	बहुव्रीहि समास
द्विमूर्द्धः	द्वौ मूर्द्धानौ यस्यं	द्वि औ मूर्द्धन् औ	बहुर्व्राहि समास
त्रिमूर्द्धः	त्रयः मूर्द्धानः यस्य	त्रि जस् मूर्द्धन् जस्	बहुव्रीहि समास
अन्तर्लोमः	अन्तर्लोमानि यस्य	लोम जस् अन्तः	बहुव्रीहि समास
वहिर्लोमः	वहिर्लोमानि यस्य	लोम जस् वहिः	बहुव्रीहि समास
व्याघ्रपात्	व्याघ्रस्येव पादौ यस्य	व्याघ्र ङस पाद् औ	बहुव्रीहि समास
हस्तिपादः	हस्तिन् इव पादौ यस्य	हस्निन् ङस् पद् औ	बहुव्रीहि समास
कुसूलपादः	कुसूलस्य इव पादौ यस्य	कुसूल ङस् पाद् औ	बहुव्रीहि समास

सामासिकपद	लौकिकविग्रह	अलौकिकविग्रह	समासनिर्देश
द्विपात्	द्वौ पादौ यस्य	द्वि औ पद् औ	वहुव्रीहि समास
सुपात्	शोभनौ पादौ यस्य	शोभन औ पद औ	वहुव्रीहि समास
उत्काकुत्	उद्गतं काकुदं यस्य	उद्गत सु काकुद सु	वहुव्रीहि समास
विकाकुत्	विगतं काकुदं यस्य	विगत सु काकुद सु	वहुव्रीहि समास
पूर्णकाकुत्	पूर्णं काकुदं यस्य	पूर्ण सु काकुद सु	वहुव्रीहि समास
सुहृद्	शोभनं हृदयं यस्य सः	शोभन् सु हृद् सु	वहुव्रीहि समास
दुर्हृद्	दुष्यं हृदयं यस्य सः	दुष्ट सु हृद सु	वहुव्रीहि समास
व्यूढोरस्कः	व्यूढम् उरो यस्य	व्यूढ सु उरस् सु	वहुव्रीहि समास
प्रियसर्पिष्कः	प्रियं सर्पिः यस्य	प्रिय सु सर्पिष् सु	वहुव्रीहि समास
युक्तयोगः	युक्तो योगो येन यस्य वा	युक्त सु योग सु	वहुव्रीहि समास
महायशस्कः	महद् यशो यस्य सः	महत् सु यशस् सु	वहुव्रीहि समास
महायशाः	महत् यशः यस्य सः	महत् सु यशस् सु	वहुव्रीहि समास
धवखदिरौ	धवश्च खदिरश्च	धव सु खदिर सु	द्वन्द्व समास
संज्ञापरिभाषम्	संज्ञा च परिभाषा च	संज्ञा सु परिभाषा सु	द्वन्द्व समास
राजदन्तः	दन्तानां राजा	दन्त ङस् राजन् सु	षष्ठी समास
अर्थधर्मौ	अर्थश्च धर्मश्च	अर्थ सु धर्म सु	द्वन्द्व समास
हरिहरौ	हरिश्च हरश्च	हरि सु हर सु	द्वन्द्व समास
ईशकृष्णौ	ईशश्च कृष्णश्च	ईश सु कृष्ण सु	द्वन्द्व समास
शिवकेशवौ	शिवश्च केशवश्च	शिव सु केशव सु	द्वन्द्व समास
पितरौ	माता च पिता च	मातृ सु पितृ सु	द्वन्द्व समास
पाणिपादम्	पाणी च पादौ च	पाणि औ पद् औ	द्वन्द्व समास
मार्दङ्गिक-वैणविकम्	मार्दङ्गिकश्च वैणविकश्च	मार्दङ्गिक सु वैणविक सु	द्वन्द्व समास
रथिकाश्वारोहम्	रथिकाश्च अश्वारोहाश्च	रथिक जस् अश्वारोही जस्	द्वन्द्व समास
वाक्त्वचम्	वाक् च त्वक् च	वाक् सु त्वक सु	द्वन्द्व समास
त्वक्स्रजम्	त्वक च स्रक् च	त्वक् सु स्रक् सु	द्वन्द्व समास
शमीदृषदम्	शमी च दृशद् च	शमी सु दृशद् सु	द्वन्द्व समास
वाक्त्विषम्	वाक् च त्विष च	वाक सु त्विष सु	द्वन्द्व समास
छत्रोपानहम्	छत्रश्च उपाहनश्च	छत्र सु उपानह सु	द्वन्द्व समास
प्रावृट्शरदौ	प्रावृट् च शरच्च	पावृट् सु शरत् सु	द्वन्द्व समास
अश्वक्रीती	अश्वेन क्रीता	अश्वटा क्रीत टाप ङीष्	कारक तत्पुरुष
कच्छपी	कच्छेन पिवति	कच्छ टा पा ङीष्	उपपद तत्पुरुष
व्याघ्री	व्याजिघ्रति	वि आङ् घ्रा क ङीष्	गति तत्पुरुष
आशातीतः	आशाम् अतीतः	आशा अम् अतीत सु	द्वितीया तत्पुरुष

3.2. भाषाविज्ञान (Philology)

'भाषाविज्ञान' एक यौगिक शब्द है, जो 'भाषा' और 'विज्ञान' इन दो शब्दों के योग से वना है । इनमें से 'भाषा' उस वाणी को कहते हैं, जो वोलने और लिखने के काम में आती है, तथा 'विज्ञान' उस विशिष्ट ज्ञान को कहते हैं, जिसके नियमों में विकल्प और विप्रतिपत्ति के लिए तनिक भी अवकाश नहीं होता । जो अकाट्य एवं अतर्क्य होते हैं । अर्थात्–'भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा एवं भाषातत्त्वों का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक आधार पर वैज्ञानिक-अध्ययन किया जाता है ।'

अंग्रेजी में 'भाषाविज्ञान' के लिए प्रायः दो शब्द प्रचलित हैं—'Philology' तथा 'Linguistics' । भाषा के मर्मज्ञ Bloomfield का मन्तव्य है कि–जिसमें लिखित भाषा का अध्ययन किया जाता है, उसे 'Philology' कहते हैं, तथा जिसमें वोलचाल की भाषा का अध्ययन किया जाता है, उसे 'Linguistics' कहते हैं; जवकि डा. अम्वा प्रसाद 'सुमन' ने अपने ग्रन्थ 'भाषाविज्ञान' में लिखा है कि–जिसमें भाषाओं की आन्तरिक रचना का अध्ययन किया जाता है, उसे 'Linguistics' तथा जिसमें भाषाओं के आन्तरिक एवं वाह्य सभी रूपों का अध्ययन किया जाता है, उसे 'Philology' कहते हैं; परन्तु तार्किक दृष्टि से विचार करने पर अधिकांश विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'Philology' का वही अर्थ है, जो 'Linguistics' का है ।

3.2.1. भाषा की परिभाषा व प्रकार (परिवारमूलक & आकृतिमूलक) [Definition and types of Languages (Geneological & Morphological)]

परिभाषा—'भाषा' वह है–'जिसे वोला जाय'; क्योंकि–'भाषा' शब्द की उत्पत्ति 'भाष्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है, वोलना या कहना । विभिन्न भाषाविदों ने भाषा की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) **डा. श्यामसुन्दर दास के अनुसार**—"भाषाविज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाता है ।"

(2) **डा. बाबूराम सक्सेना के मत में**—"भाषाविज्ञान का अभिप्राय, भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन कराना है ।"

(3) **प्लेटो के अनुसार**—"विचार और भाषा में थोड़ा ही अन्तर है । विचार, आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक वातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है; तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं ।"

(4) **हैनरी स्वीट के शब्दों में**—"ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है ।" ("Language may be defined as the expression of thought by means of speech-sound."—*Henery Sweet.*)

(5) **वेन्द्रिये के शब्दों में**—"भाषा एक तरह का संकेत है संकेत का आशय, उन प्रतीकों से है, जिनके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है । ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं, जैसे–नेत्रग्राह्य, कर्णग्राह्य और स्पर्शग्राह्य । वस्तुतः भाषा की दृष्टि से कर्णग्राह्यप्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है ।"

(5A) **महर्षि पतञ्जलि के अनुसार**—"व्यक्ता वाचि वर्णा येषा त इमे व्यक्त वाचः ।।" अर्थात् "भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली-भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्वयं स्पष्ट रूप से समझ सकता है ।" **महाभाष्य/1.3.38//**

(6) ब्लाक तथा ट्रेगर के शब्दों में—"A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group cooperates."

—**Block and Trager.**

(7) स्त्रुत्वाँ के शब्दों में—"A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which members of a social group cooperate and interact."

(8) सपीर के शब्दों में—"Language is a purely human and non-instinctive method of communicating ideas, emotions and desires by means of voluntarily produced symbols."

(9) चॉम्स्की के शब्दों में—"I will consider a language to be a set (finite or infinite) of sentences, each finite in length and constructed out of a finite set of elements."

(10) इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका—"Language may be defined as an arbitrary system of vocal system by means of which, human beings as members of a social-group and participants in culture interact and communicate."

—**Encyclopaedia Britannica.**

नोट—भाषा के प्रकारों का उल्लेख अग्रिम सोपान (भाषाओं का वर्गीकरण) में किया जाएगा।

3.2.2. भाषाओं का वर्गीकरण (Classification of Languages)

सम्पूर्ण विश्व में कुल कितनी भाषाएँ वोली जाती हैं, उनकी संख्या के विषय में कुछ भी अनुमान करना अक्षरशः सत्य नहीं कहा जा सकता; परन्तु सभी विद्वान् इस तथ्य से सहमत हैं कि विश्व में लगभग कुल 3000 भाषाएँ वोली जाती हैं। भाषाविद् मेरियो पाई ने तो इन्हें ठीक-ठीक नपे-तुले शब्दों में 2796 बताने का कष्टसाध्य प्रयास किया है। हमें यह कहने में जरा भी सङ्कोच नहीं है कि पाई का यह निष्कर्ष एक कल्पना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं, क्योंकि शायद ही कोई 10-20 भाषाओं का ज्ञाता हो, ऐसी स्थिति में 2796 भाषाओं का ज्ञान रखना, अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तरों के आधार पर एक को दूसरे से पृथक् करना, इतना ही नहीं 3000 के स्थान पर 2796 वताकर मात्र 204 भाषाओं का सूक्ष्म अन्तर स्वीकारना किसी व्यक्ति-विशेष का कार्य नहीं हो सकता। फिलहाल यदि उपर्युक्त संख्या को आधार मान भी लिया जाए, तो भी अध्ययन की सुविधा के लिए वर्गीकरण की आवश्यकता स्वाभाविक है, क्योंकि वर्गीकरण से किसी वस्तु के अध्ययन में सौकर्य आता है। यही वर्गीकरण की व्यावहारिक उपयोगिता है। संसार की भाषाओं के वर्गीकरण के कई आधार हो सकते हैं, किन्तु भाषाविज्ञान की दृष्टि से निम्नलिखित दो वर्गीकरण ही महत्त्वपूर्ण हैं—(1) आकृतिमूलक वर्गीकरण तथा (2) परिवारमूलक वर्गीकरण.

1. आकृतिमूलक (Syntactical Classification)

आकृतिमूलक वर्गीकरण को रूपात्मक, रचनात्मक या पदात्मक भी कहते हैं, क्योंकि आकृति रूप का ही पर्याय है तथा भाषा में वाक्यों की रचना चूँकि पदों से होती है, अतः इसे पदात्मक भी कहना तर्कसङ्गत ही है। ध्यातव्य है कि किसी भी शब्द के निर्माण में अर्थतत्त्व (प्रकृति) एवं सम्बन्ध तत्त्व (प्रत्यय) की मुख्य भूमिका होती है। कभी-कभी एक तीसरा तत्त्व भी सम्मिलित हो जाता है, जिसे उपसर्ग कहा जाता है। इसमें प्रकृति मूलतत्त्व हैं, जो अर्थ का आधार है, प्रत्यय उसके व्यापार को स्पष्ट करने वाला अंश है, तथा उपसर्ग, प्रकृति प्रत्यय के योग से उत्पन्न शब्दार्थ का द्योतक या रूपान्तरक है। इस प्रकार प्रायः इन तीनों के योग से शब्द की निष्पत्ति होती है—

उपसर्ग (द्योतक) + प्रकृति (अर्थतत्त्व) + प्रत्यय (सम्वन्धतत्त्व) = शब्द (पद)

उदाहरणतया – प्र + चर् + घञ् (अ) = प्रचार इसी प्रकार—

प्र + हृ + घञ् (अ) = प्रहार इत्यादि शब्द बनते हैं ।

आकृतिमूलक वर्गीकरण का सम्बन्ध अर्थ से नहीं होता, अपितु शब्द की केवल वाह्य-आकृति या रूप या रचना प्रणाली से होता है । अतएव इस वर्गीकरण में उन भाषाओं को एक साथ रखा जाता है, जिनके पदों या वाक्यों की रचना का ढंग एक होता है । पद या वाक्य की रचना को ध्यान में रखकर इस वर्गीकरण को पदात्मक या वाक्यात्मक भी कहते हैं । अंग्रेजी में इसे Morphological (पदात्मक), Typical (रूपात्मक) या Syntactical (वाक्यात्मक) कहते हैं ।

भाषाओं के आकृतिमूलक वर्गीकरण के परिप्रेक्ष्य में **श्लेगल** का नाम विशेष महत्त्व रखता है, इन्होंने प्रथमतः आकृतिमूलक भाषाओं को दो वर्गों में रखा, जिसे आगे चलकर वॉप ने तीन वर्गों में तथा पाट ने चार वर्गों में विभाजित करने का प्रयास किया किन्तु प्रमुखता दो ही वर्गों–[(क) अयोगात्मक (ख) योगात्मक] को मिली; जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(क) अयोगात्मक-भाषाएँ (Isolating/Inorganic Languages)

विश्व की समस्त भाषाओं को उपर्युक्त कसौटी पर नहीं कसा जा सकता । कुछ ऐसी भी निरवयव या एकाक्षरी भाषाएँ हैं, जिनकी आकृति या रचना उपर्युक्त-प्रक्रिया से सर्वथा भिन्न होती है । ऐसी भाषाओं को अयोगात्मक (Positional या Isolating) भाषाओं की श्रेणी में रखा गया है । इस वर्ग की भाषाओं में योग नहीं रहता, अर्थात् सम्बन्ध तत्त्वों (उपसर्ग, प्रत्यय) को जोड़ करके शब्द नहीं बनाए जाते, अपितु सभी शब्द स्वतन्त्र होते हैं । उदाहरणतया–संस्कृत में 'राम' शब्द में 'टा' प्रत्यय जोड़कर 'रामेण' बनाते हैं, परन्तु हिन्दी में 'राम से' दोनों शब्द अलग-अलग हैं, लेकिन यह भी योगात्मक ही है, चलना का भूतकाल में चला हो जाता है; परन्तु चीनी भाषा में Tsen (चलना) का भूत अर्थ लेने के लिए इसके आगे (lion) रख देते हैं–lion Tsen । कहने का तात्पर्य यह है कि इस वर्ग की भाषाओं के प्रत्येक शब्द स्वयमेव प्रकृतितत्त्व एवं अर्थतत्त्व को व्यक्त करने की शक्ति रखते हैं । उन शब्दों का परस्पर सम्बन्ध, वाक्य में उनके निश्चित स्थान से व्यक्त होता है । अर्थात् वाक्य में उनका स्थान बदलने से उनका अर्थ भी बदल जाता है । इसके अन्तर्गत–अनामी, सुडानी, वर्मी, तिब्वती, स्यामी, मलय इत्यादि भाषाएँ आती हैं । चीनी भाषा, इस वर्ग की प्रतिनिधि भाषा है । इस वर्ग की भाषाओं को निपात् प्रधान, स्थान-प्रधान, एकाक्षरी, निरवयव, निर्योग आदि अनेक नामों से जाना जाता है ।

(ख) योगात्मक-भाषाएँ

इस वर्ग की भाषाओं का निर्माण अर्थतत्त्व एवं सम्बन्धतत्त्व के योग से (प्रकृति + प्रत्यय) होता है । विश्व की अधिकांश भाषाएँ योगात्मक ही हैं । इस वर्ग की भाषाओं को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अश्लिष्ट-योगात्मक, श्लिष्ट-योगात्मक तथा प्रश्लिष्ट-योगात्मक इन तीन वर्गों में रखा गया है–

(i) **अश्लिष्ट-योगात्मक** (Agglutinating)—इस वर्ग की भाषाओं में प्रकृति एवं प्रत्यय तत्त्व का योग तिल-तण्डुलवत् होता है । अर्थात् मिले हुए होने के बाद भी दोनों स्पष्ट होते हैं । इन्हें अलग-अलग किया जा सकता है । जैसे–सुन्दर + ता; बना + वट । ध्यातव्य हे कि 'तुर्की' भाषा, इस वर्ग की प्रतिनिधिभूत भाषा है; जैसा कि प्रयुक्त उदाहरण से स्पष्ट है–

एव = घर

एव-देन = घर से

एव--इम-देन = मेरे घर से इत्यादि ।

अश्लिष्टयोगात्मक वर्ग की भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) कहीं पूर्व में जुड़ता है, कहीं मध्य में, कहीं अन्त में तथा कहीं पूर्व व अन्त दोनों में जुड़ता है । इस दृष्टि से इस वर्ग के चार उपवर्ग किए गए हैं—

क–पूर्वयोगप्रत्ययप्रधान (Prefix Agglutinative)—इसके अन्तर्गत वाँटू परिवार की 'जुलु' एवं 'काफिर' भाषाओं की गणना की जाती है । उदाहरणतया–उमु (एकवचन वोधक प्रत्यय) तथा 'न्तु' (मनुष्य) को मिलाने पर उमुन्तु ('एक मनुष्य') वनता है ।

ख–मध्ययोगात्मक (Infix Agglutinative)—इन भाषाओं में अर्थतत्त्व के मध्यय में प्रत्यय जोड़े जाते हैं । संथाली इसकी प्रतिनिधि भाषा है उदाहरणतया–मंझि (मुखिया); प (बहुवचन) मपंझि = मुखिया लोग ।

ग–अन्तयोगात्मक (Suffix Agglutinative)—इनमें सम्वन्धतत्त्व (प्रत्यय) अन्त में जोड़े जाते हैं । तुर्कीभाषा का उपर्युक्त उदाहरण इसी वर्ग में आता है । इसके अन्तर्गत तुर्की, यूराल-अल्टाई तथा द्रविण परिवार की भाषाएँ आती हैं ।

घ–पूर्वान्तयोगात्मक—इस वर्ग की भाषाओं में अर्थतत्त्व के आदि व अन्त दोनों तरफ सम्बन्ध-तत्त्व जोड़े जाते हैं । उदाहरणतया–न्यूगिनी की 'मफोर' भाषा में 'म्नफ' (सुनना) प्रकृति से प्रारम्भ व अन्त में क्रमशः 'ज' तथा 'उ' जुड़कर 'ज-म्नफ-उ' (मैं तेरी बात सुनता हूँ) वनता है ।

(ii) **श्लिष्टयोगात्मक** (Inflecting)—इस वर्ग की भाषाओं में सम्वन्ध-तत्त्व को जोड़ने के कारण अर्थतत्त्व वाले भाग (प्रकृति) में भी कुछ परिवर्तन आ जाता है, परन्तु सम्वन्ध तत्त्व की झलक अलग ही मालूम पड़ती है । अर्थात् रूपविकृति हो जाने पर भी सम्वन्ध तत्त्व छिपा नहीं रहता। उदाहरणतया–अरबी में 'क़तल्' (मारना) धातु से 'कत्ल' (खून), 'कातिल' (मारने वाला), 'किल्ल' (शत्रु) तथा 'यकतुल' (वह मारता है) इत्यादि शब्द वनते हैं । इस किस्म की भाषाओं को अन्तर्मुखी व बहिर्मुखी भेद से दो वर्गों में रखा गया है । अन्तर्मुखी वर्ग की भाषाओं में जुड़े हुए भाग, अर्थतत्त्व के वीच में विल्कुल घुल-मिल जाते हैं । सेमेटिक और हेमेटिक परिवार की भाषाएँ ऐसी ही भाषाएँ हैं । इन भाषाओं को भी संयोगात्मक व वियोगात्मक भेद से पुनः दो वर्गों में विभक्त किया गया है। बहिर्मुखी वर्ग की भाषाओं में जोड़े हुए तत्त्व अर्थतत्त्व के वाद आते हैं । उदाहरणतया–बालक शब्द से बालकः, बालकौ, वालकाः, इत्यादि । इस वर्ग में–संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता इत्यादि भाषाएँ आती हैं ।

(iii) **प्रश्लिष्ट योगात्मक** (Incarporating)—इसे समासप्रधान या वहुसंहित भी कहा जाता है। इन भाषाओं में सम्वन्ध तत्त्व तथा अर्थतत्त्व का योग इतना मिला-जुला होता है कि उन्हें अलग-अलग न तो पहचाना जा सकता है और न ही एक दूसरे से अलग ही किया जा सकता है । अर्थात् इनका सम्वन्ध नीर-क्षीरवत् होता है । उदाहरणतया–संस्कृत के 'आर्तव' व 'आर्जव' शब्द को लिया जा सकता है । इनमें अर्थतत्त्व यथा सम्बन्ध तत्त्व को पहचानना कठिन कार्य है यथा–ऋतु + अण् तथा 'ऋजु' + अण् । प्रश्लिष्ट भाषाओं में संज्ञा, विशेषण, क्रिया इत्यादि समस्तपदों का एक ऐसा योग बन जाता है कि पूरावाक्य ही एक बड़े शब्द के रूप में हो जाता है ।

इस वर्ग के अन्तर्गत अमरीका की 'चेरोकी' भाषा एवं 'वास्क' परिवार की भाषाएँ, ग्रीनलैण्ड एवं मैक्सिको की कुछ भाषाएँ आती हैं । पूर्णप्रश्लिष्ट तथा आंशिक प्रश्लिष्ट भेद से इस वर्ग के भी दो उपविभाग किए जाते हैं । उदाहरणतया–

पूर्णप्रश्लिष्ट (एस्किमो भाषा)—'तकुसर-इअर्तोर-उम-गलुअरनेर्प-आ' ? अर्थात् क्या तुम सोचते कि वह वस्तुतः इसकी देखरेख करने को जाना चाहता है ?

आंशिकप्रश्लिष्ट (बास्क भाषा)—'दकार्क ओत' (मैं इसे उसके पास ले जाता हूँ)

आकृतिमूलक भाषाओं का वर्गीकरण आरेख
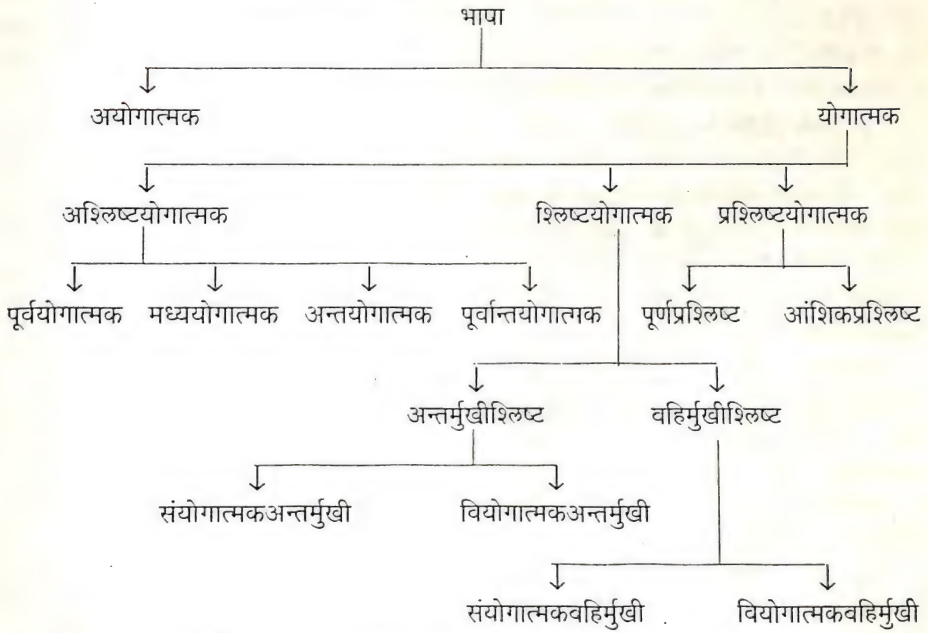
2. परिवारमूल वर्गीकरण (Geneological Classification)

पारिवारिक-वर्गीकरण का अभिप्राय है, विश्व की भाषाओं को परिवारों में विभाजित करना। 'भाषा-परिवार' का आशय–"उन समस्त भाषाओं के समूह से है, जो किसी एक प्रमुख भाषा से निकली हों या विकसित हुई हों।" पारिवारिक वर्गीकरण के अन्तर्गत भाषाओं के वाह्य (रचनातत्त्व) तथा आन्तरिक (अर्थतत्त्व) दोनों का सम्मिलित रूप से अध्ययन किया जाता है। अर्थात्-भाषाविज्ञान के चारों प्रमुख अंगों (ध्वनि, पद, वाक्य तथा अर्थ) को ध्यान में रखकर सम्यक् विवेचना के पश्चात् ही भाषाओं के परिवार का निर्धारण किया जाता है। इस निर्धारण में जिन प्रमुख समानताओं पर विचार किया जाता है, वे निम्नलिखित हैं—

1. ध्वनियों की समानता 2. शब्दों की समानता 3. पदों की समानता 4. वाक्यों की समानता 5. अर्थ की समानता तथा 6. स्थानिक निकटता का सम्बन्ध।

विश्व की भाषाओं को विभिन्न परिवारों में बाँटने के अनेक प्रयास हुए, किन्तु कोई निर्णायक मत नहीं दिया जा सका। सन् 1822 में संस्कृत-विशेषज्ञ (जर्मन) विल्हेम वॉन हम्वोल्ट ने 13 भाषा परिवार निर्धारित किया, जबकि ग्रे ने 26, फ्रेडरिख मूलर ने 100, डा. भोलानाथ तिवारी ने 13, पार्टरिज ने 13, डा. अमर बहादुर ने 12 तथा डा. देवेन्द्र नाथ शर्मा ने 18 परिवार स्वीकार किया। इनमें डा. देवेन्द्रनाथ शर्मा का निम्नलिखित वर्गीकरण अपेक्षाकृत ज्यादा व्यावहारिक प्रतीत होता है—

1. भारत-यूरोपीय परिवार	2. द्राविण परिवार	3. बुरुशस्की परिवार
4. यूराल-अल्टाई परिवार	5. काकेशी परिवार	6. चीनी परिवार
7. जापानी-कोरियाई परिवार	8. अत्युत्तरी परिवार	9. बास्क परिवार
10. सामी-हामी परिवार	11. सुडानी परिवार	12. बान्टू परिवार
13. होतेन्तो बुशमैनी परिवार	14. मलयबहुद्वीपीय परिवार	15. पापुई परिवार
16. आस्ट्रेलियाई परिवार	17. दक्षिणपूर्वएशियाई परिवार	18. अमरीकी परिवार

भौगोलिक दृष्टि से उपर्युक्त भाषा परिवारों में से 1 से 10 तक यूरेशिया खण्ड की, 10 से 13 तक अफ्रीकी खण्ड की, 14 से 17 तक प्रशान्त महासागरीय खण्ड की तथा 18वीं अमरीका खण्ड की भाषाएँ हैं । इनमें सामी-हामी भाषा परिवार यूरेशिया व अफ्रीका दोनों में उभयनिष्ठ (Common) है । इन परिवारों से सम्बद्ध-भाषाओं का संक्षिप्त-विवेचन निम्नलिखित है–

1. **भारत-यूरोपीय या 'भारोपीय' परिवार**—भारत से लेकर प्रायः समूचे यूरोप तक वोले जाने के कारण, इस परिवार को भारोपीय-परिवार कहते हैं । वस्तुतः सच तो यह है कि–इस परिवार की भाषाएँ पूरे संसार में फैली हुई हैं । कोई भी ऐसा भूभाग नहीं है, जहाँ पर इस परिवार की भाषाएँ न बोली जाती हों । जनसंख्या की दृष्टि से इस परिवार का स्थान सर्वप्रथम है । साहित्य की दृष्टि से भी, इस परिवार की भाषाएँ अग्रगण्य हैं, ठीक इसी अनुपात में सभ्यता व संस्कृति के क्षेत्र में भी इन भाषयिक क्षेत्रों का विशेष स्थान है । यदि देखा जाए तो इस परिवार में वैज्ञानिक साहित्यों का विशाल भण्डार दिखाई देता है ।

'भारोपीय' परिवार की प्राचीन-भाषाओं में–संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन-फ्रांसीसी, अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन इत्यादि तथा आधुनिक भाषाओं में–अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, स्पेनी, फ्रांसीसी, हित्ती, पुर्तगाली, इतालवी, फारसी, हिन्दी, वंगला, गुजराती, मराठी, तोखारी इत्यादि भाषाएँ आती हैं। अपने मूल रूप की दृष्टि से इन भोरोपीय परिवार की भाषाओं को श्लिष्टयोगात्मक कहा जा सकता है । इस परिवार में समास रचना की विशेष शक्ति है, जिससे शब्द व अर्थ दोनों में एक विशेष चमत्कार आ जाता है ।

'भोरोपीय' भाषाओं को मुख्य रूप से दो वर्गों (सतम् तथा केन्टुम) में विभाजित किया गया है। प्रतिनिधि भाषा के रूप में लैटिन तथा अवेस्ता को आधार वनाकर 'सौ' के वाचक शब्दों की सहायता से अपने निष्कर्ष को प्रमाणित किया गया । 'सौ' को अवेस्ता में 'सतम्' तथा लैटिन में 'केन्टुम' कहते हैं ।

सतम वर्ग	केन्टुम वर्ग
संस्कृत – शतम्	लैटिन – केन्टुम
हिन्दी – सौ	ग्रीक – हेकातोन
अवेस्ता – सतम्	जर्मनिक – हुन्द
फारसी – सत (सद्)	केल्टिक – केत
स्लाविक (रूसी) – स्तो	तोखारी – कंध
बाल्टिक – जिम्तस	आयरिश – केद
लिथुआनियन – शिम्तास	अंग्रेजी – हुण्ड/हण्ड्रेड

2. **द्राविण परिवार**—इस भाषा-परिवार का क्षेत्र–मद्रास, आन्ध्रप्रदेश, मैसूर, केरल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, विहार, उत्तर भारत, उत्तरी लंका, लक्षद्वीप, वलूचिस्तान आदि हैं । इस परिवार की प्रमुख भाषाएँ–तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, गोंडी, उराँव, ब्राहुई, तुलु, कोड़गु, टोडा, कोटा, माल्टो, कूई या कंधी, कोलामी इत्यादि हैं; परन्तु इनमें विकसित भाषाएँ–तमिल, तेलुगू, कन्नड व मलयालम ही हैं । इस परिवार की भाषाएँ अश्लिष्ट अन्तयोगात्मक हैं, तथा मूर्धन्य ध्वनियों का बाहुल्य है ।

3. **बुरुशस्की या खजुवा परिवार**—इस भाषा परिवार का क्षेत्र भारत का उत्तरी-पश्चिमी-छोर-हुंजा, नगर, गिजिरघाटी, यासिन का कुछ भाग इत्यादि स्थल शामिल हैं । यह क्षेत्र–तुर्की, तिब्बती और भारत-ईरानी, परिवार की भाषाओं से घिरा है ।

4. **यूराल-अल्टाई परिवार**—इस परिवार की भाषाओं का क्षेत्र–यूराल व अल्टाई पर्वत के बीच तुर्की, सोवियत संघ, हंगरी, फिनलैण्ड, नार्वे, एस्तोनिया, साइबीरिया, मंगोलिया, मंचूरिया आदि तक फैला हुआ है, जिसमें प्रमुख रूप से–फिनी, लापी, एस्तोनी, मग्यार, सामयेद, तुर्की, किरगिज, उज़्वेक, मंगोली, मंचुई, तुंगुजा, अजरवैजान आदि भाषाएँ वोली जाती हैं ।

5. **काकेशी परिवार**—इस परिवार का क्षेत्र कृष्णसागर और कैस्पियन-सागर के वीच में काकेशस-पर्वत का पहाड़ी क्षेत्र तथा आस-पास का भूभाग है । जिनमें प्रमुख रूप से– **उत्तरी काकेशी**–सरकसी, चेचेन, लेगी, **दक्षिणी काकेशी**–जार्जी, मिंग्रेली तथा स्वानी भाषाएँ वोली जाती हैं । इस भाषा परिवार की पद रचना अत्यन्त जटिल है । **इस परिवार की आक नामक भाषा में 30 विभक्तियाँ तथा 'चेचेन' भाषा में कुल छः लिंग हैं ।**

6. **चीनी या एकाक्षरी भाषा**—यह भाषा-परिवार–चीन, तिव्वत, वर्मा तथा स्याम तक फैला हुआ है । 'चीनी' इसकी प्रतिनिधि भाषा है । अन्य भाषाओं में तिव्वती या भोंट, वर्मी, स्यामी, मेतै, गारो, बोड़ो, नागा, इत्यादि प्रमुख हैं । इस परिवार के प्रायः सभी भाषाओं के शब्द एक अक्षर वाले हैं । व्याकरण का अभाव पाया जाता है । प्रत्येक शब्द स्वतन्त्र होते हैं, जिनमें स्थान भेद से अर्थ वदल जाता है । आर्ष, प्राचीन, मध्य व आधुनिक भेद से इस परिवार के चार विभाग किए गए हैं ।

7. **जापानी कोरियाई परिवार**—इस भाषा परिवार का क्षेत्र–जापान, कोरिया तथा आस-पास के कुछ द्वीपों (फारमोसा, मंचूको, कैरोलीन, मार्शल इत्यादि) तक फैला हुआ है । इस परिवार की मुख्य-भाषाएँ जापानी व कोरियाई हैं । इस परिवार की भाषाएँ मुख्यतः अश्लिष्ट-योगात्मक हैं । व्याकरणिक लिंग का अभाव है । जापानी क्रिया तो पूर्णतः पुरुषहीन होती है ।

8. **अत्युत्तरी (हाइपरबोरी) परिवार**—इस परिवार को पुरा एशियाई या पैलियो-एशियाटिक भी कहते हैं । यह एशिया के उत्तरी पूर्वी भाग में फैला हुआ है । इस परिवार की कुछ प्रमुख भाषाएँ निम्नलिखित हैं, जैसे–युकगिर, चुकची-कमचदल, चुकची, कोरियक, कमचदल, गिलियक, अइनू इत्यादि ।

9. **वास्क (एडस्कर) परिवार**—यह भाषा परिवार फ्रांस व स्पेन की सीमा में फैला हुआ है । यह भाषा मुख्यतः अश्लिष्ट योगात्मक है; तथा पदरचना प्रत्यय प्रधान है । लिंग व्यवस्था केवल क्रियारूपों में पाई जाती है । अभी इस परिवार की भाषाओं का सुनिश्चित व सर्वमान्य वर्गीकरण नहीं किया जा सका है ।

10. **सामी-हामी परिवार**—इस भाषा परिवार में 'सामी'–अरव, फिलीस्तीन, इराक, सीरिया, मिश्र, इथियोपिया, तुनीसिया, अल्जीरिया, मोरक्को तथा 'हामी'–लीबिया, सोमालीलैण्ड व इथियोपिया तक फैली हुई हैं । कुछ लोग सामी व हामी (सेमेटिक-हेमेटिक) को दो परिवार तथा कुछ लोग एक ही परिवार की दो शाखाएँ मानते हैं । 'एंजील' की एक पौराणिक कथा के अनुसार–हजरत 'नूह' के पुत्र–सेम और हेम के नाम पर इन दोनों भाषाओं का नाम सेमेटिक और हेमेटिक पड़ा । हिब्रू, अरवी, सुमेरियन आदि सेमेटिक तथा प्राचीन मिस्री, काप्टिक, सोमाली, गल्ला, नामा आदि हेमेटिक भाषाएँ हैं ।

11. **सुडानी परिवार**—लगभग 425 भाषाओं के इस परिवार को कुछ विद्वान् सात परिवारों का एक समूह मानते हैं । यह परिवार अफ्रीका में भूमध्यरेखा के ऊपर हेमेटिक भाषा क्षेत्र के दक्षिणपूर्व में पश्चिम तक एक पतले भाग में फैला हुआ है । हउसा, बुले, मानफू, कनूरी, सोहगइ, इवे, न्यूर्वियन, यरुवा, अशानी इत्यादि इस परिवार की प्रमुख भाषाएँ हैं । ये सभी मुख्यतः अयोगात्मक, व्याकरण लिंग तथा उपसर्ग-निपात रहित भाषाएँ हैं ।

12. **वान्टू परिवार**—लगभग 150 भाषाओं के इस परिवार की प्रायः सभी भाषाओं में 'आदमी' के लिए एक ही शब्द 'वान्टू' का प्रयोग कुछ उच्चारण भेदों के साथ प्रचलित है । अतः इन समस्त भाषाओं को 'वान्टू' परिवार नाम दिया गया है । इस परिवार की मुख्य भाषाएँ–स्वाहिली (प्रतिनिधिभाषा), काफिर, जुलु, रुआन्दा, उम्बुन्दु, कांगो, सेसुतो, हेरेरो इत्यादि हैं । इस परिवार की भाषाएँ प्रायः अश्लिष्ट योगात्मक हैं तथा संयुक्त व्यंजनों का अभाव है ।

13. **होतेन्तोत-बुशमैनी (खोमइ) परिवार**—इसका क्षेत्र दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका में आरेंज नदी से लेकर नगामी झील तक फैला हुआ है । यहाँ मुख्यतः बुशमैन जाति के लोग रहते हैं । इस परिवार

की मुख्यभाषाएँ–होतेन्तोत, नामा, हमरा, सन्दवा, ऐकवे, औकवे इत्यादि हैं । इस परिवार में अन्तः-स्फोटात्मक 'क्लिक' ध्वनिविशेष पाई जाती है ।

14. **मलय-बहुद्वीपीय (मलय-पोलिनेशियन) परिवार**—यह परिवार पश्चिम में मेडागास्कर से लेकर पूर्व में ईस्टर द्वीप तक तथा उत्तर में फारमोसा से लेकर दक्षिण में न्यूजीलैण्ड तक–जावा, सुमात्रा, वोर्नियो, वाली, फिलीजीन, न्यूजीलैण्ड, हवाईमलाया, फारसोमा आदि में फैला हुआ है । इस परिवार की मुख्य भाषाओं में पश्चिम की–मलय, इण्डोनेशियन, तगल, जावानीज, वालीनीज एवं पूर्व की–हवाइयन, समोअन, माओरी, दवक, फिजिअन, न्यूजीलैण्डी इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है ।

15. **पापुई परिवार**—लगभग 132 भाषाओं का यह परिवार न्यूगिनी, न्यू व्रिटेन, राउ, तोलो, तेरनात, तिदोर, सोलोमनद्वीप, पुंज इत्यादि क्षेत्रों तक फैला हुआ है । ये भाषाएँ प्रायः अश्लिष्ट-योगात्मक हैं ।

16. **आस्ट्रेलियाई परिवार**—लगभग 100 भाषाओं के इस परिवार का एकमात्र क्षेत्र आस्ट्रेलिया का उत्तरी व दक्षिणी भाग है । इस परिवार की अधिकांश भाषाएँ आज प्रायः लुप्त होती जा रही हैं । सैवलगल इस परिवार की मुख्यभाषा है ।

17. **दक्षिण-पूर्व एशियाई (आस्ट्रो एशियाटिक) परिवार**—इसे आस्ट्रिक अथवा आग्नेय परिवार भी कहा जाता है । इस भाषा का क्षेत्र अन्नाम, कम्वोडिया तथा स्याम से लेकर भारत और निकोवार द्वीप तक फैला हुआ है । इस परिवार की भाषाओं के वोलने वालों की संख्या तो वहुत वड़ी नहीं है, किन्तु क्षेत्र-विस्तार वहुत वड़ा है । इस परिवार के तीन प्रमुख वर्ग हैं—

(i) मुंडा या कोल (पश्चिम में) (ii) मोन ख्मेर (केन्द्र में), (iii) अन्नाम मुआंक (पूर्व में) ।

मुंडा वर्ग की भाषाओं में–धीमाल, लिम्वू, वुनान, पाटनी, कनावरी तथा संथाली मुंडारी, भूमिज, कोड़ा इत्यादि प्रमुख हैं ।

18. **अमरीकी परिवार**—अमरीका में मुख्य रूप से तो–अंग्रेजी, स्पेनिश, पुर्तगाली, जर्मन तथा इटैलियन आदि भाषाएँ वोली जाती हैं, परन्तु इनके अतिरिक्त वहाँ के आदिवासियों द्वारा व्यवहृत लगभग 1000 भाषाएँ ऐसी हैं, जो मूलतः वहीं की हैं, जिन्हें अमरीकी परिवार में रखा गया है । ये भाषाएँ उत्तरी-अमरीका, दक्षिणी-अमरीका, ग्रीनलैण्ड तथा आस-पास के द्वीपों में वोली जाती हैं । इस परिवार की भाषाओं को भौगोलिक दृष्टि से तीन वर्गों में रखा गया है–(i) कनाडा और संयुक्त राज्य-अथवस्की, अलगोनकी, होका, यूरोकवा, सिउई इत्यादि । (ii) मैक्सिको और मध्य अमरीका–अज्तेक, मय, नहुअत्ल इत्यादि । (iii) दक्षिण अमरीका–अरवक, चिवोचा, तुपी-गुअर्नी, करीव, कुइचुआ इत्यादि । ये भाषाएँ प्रायः प्रश्लिष्ट योगात्मक हैं । ग्रीनलैण्ड की ऐस्किमो भाषा भी इसी परिवार में रखी गई है ।

3.2.3. भाषा-प्रक्रिया एवं ध्वनियों का वर्गीकरण (Speech-mechanism & classification of Sounds)

भाषा-प्रक्रिया–सुप्रसिद्ध भारतीय वैयाकरण महर्षि पतञ्जलि के अनुसार—"**व्यक्ता वाचि वर्णा येषा त इमे व्यक्तवाचः ॥ महाभाष्य** / 1-3-48 // अर्थात् जो वाणी वर्णों में व्यक्त होती है, उसे भाषा (speech) कहते हैं । वस्तुतः भाषा शव्द का प्रयोग कई अर्थों में होता है; परन्तु सामान्यतः भाषा उन सभी माध्यमों का वोध कराती है, जिनसे भावाभिव्यञ्जन का काम लिया जाता है । कहने का भाव यह है कि–भाषा मुख से उच्चरित उस परम्परागत सार्थक एवं व्यक्त ध्वनिसंकेतों की समष्टि को कहते हैं, जिसकी सहायता से मानव आपस में विचारों एवं भावों का आदान-प्रदान करते हैं तथा जिसका वे स्वेच्छानुसार अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं । ये भाषाएँ–वोली, विभाषा (Dialect), परिनिष्ठितभाषा, साहित्यिकभाषा, विशिष्टभाषा, राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा इत्यादि भेद से कई स्तरों में विभक्त हैं ।

जहाँ तक भाषा की प्रकृति का प्रश्न है–भाषा के सहज स्वभाव एवं नैसर्गिक गुण को भाषा की प्रकृति कहते हैं । सुगमता की दृष्टि से इसे दस स्तरों में रखा जा सकता है–1. भाषा सामाजिक सम्पत्ति है, 2. भाषा परम्परागत वस्तु है, 3. भाषा अर्जित सम्पत्ति है, 4. भाषा परिवर्तनशील होती है, 5. भाषा का प्रवाह अविछिन्न एवं नैसर्गिक होता है, 6. भाषा अनुकरण से सीखी जाती है, 7. भाषा मानव जीवन से पोपित होती है, 8. भाषा भाव-प्रेषणीयता का सर्वश्रेष्ठ साधन है, 9. भाषासार्वजनिक सम्पत्ति है तथा 10. भाषा जटिलता से सरलता की ओर उन्मुख होती है ।

महर्षि पाणिनि ने अपने 'शिक्षा' ग्रन्थ 'पाणिनीय शिक्षा' में भाषा-प्रक्रिया (speech mechanism) को वहुत ही सुन्दर व सुस्पष्ट ढंग से प्रस्तुत किया है–

"आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम् । .... ॥
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहितो वक्त्रमापद्य मारुतः । वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः ॥"

–पाणिनीय शिक्षा / 6-9 //

अर्थात्–'वुद्धि के साथ आत्मा अर्थों (वस्तुओं) को देखकर वोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करती है तथा मन शारीरिक शक्ति पर दवाव डालता है, जिससे वायु में प्रेरणा उत्पन्न होती है । प्रेरित वायु (श्वासवायु) फेफड़े में चलती हुई कोमल ध्वनि को उत्पन्न करती है, और पुनः बाहर की ओर जाकर तथा मुख के ऊपरी भाग से अवरुद्ध होकर वह वायु मुख में पहुँचती है और पञ्चधाविभक्त ध्वनियों को उत्पन्न करती है ।' इस प्रकार हम देखते हैं कि वाणी की उत्पत्ति के लिए आत्मा (चेतना-पक्ष), वुद्धि (ज्ञान-पक्ष), मन (प्रेरणा-पक्ष) तथा वायु (संचरण, निर्गमन व अवरोध युक्त शारीरिक पक्ष) को ग्रहण करके महर्षि पाणिनि ने अत्यन्त वैज्ञानिक प्रक्रिया का अनुकरण करते हुए इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि–मानसिक प्रत्यय (कन्सेप्ट) ध्वनि के रूप में कैसे उत्पन्न होता है । मनुष्य ही एक ऐसा जीव है, जो उपर्युक्त चारों पक्षों में पूर्ण समृद्ध है अतः भाषाई दृष्टि से मनुष्य का स्थान उच्चतम है । एक व्यक्ति का मानसिक प्रत्यय दूसरे के मन में ठीक उसी प्रकार कैसे उद्भूत होता है इसे निम्न चित्र में दिखाया गया है; जहाँ–प्र. = प्रत्यय, शा. = शाव्दविम्व, ध्व. = ध्वनन, सं. = संकेत (शब्द), श्र. = श्रवण तथा ध्वा. = ध्वानिक विम्व के रूप में अंकित है । स्पष्ट है–वक्ता के मन में पहले प्रत्यय होता है, फिर वह प्रत्यय शाव्दविम्व का रूप ग्रहण करता है, वाद में वह शाव्दविम्वध्वनन में परिणत होकर श्रवण ध्वानिक विम्व का रूप ग्रहण कर श्रोता के मन में प्रत्यय उत्पन्न करता है, जैसे—

वक्ता एवं श्रोता का सम्बन्ध
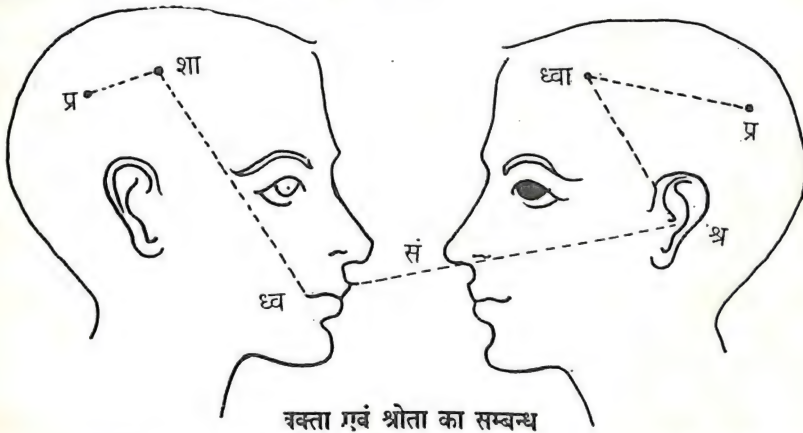
प्रत्यय → शाव्दविम्व → ध्वनन → ध्वानिकबिम्ब → प्रत्यय । यह क्रम श्रोता और वक्ता में अनवरत चलता रहता है ।

भाषा-प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक—परिवर्तन, प्रकृति का नियम है, कोई भी वस्तु जिस रूप में उत्पन्न होती है, सदैव उसी रूप में नहीं रहती । अतः परिवर्तन (changing) का ही दूसरा नाम उत्पत्ति, विकास व विनाश है । भाषा भी परिवर्तन के इस नियम का अपवाद नहीं है । किसी भी भाषा के इतिहास को देखने से स्पष्ट हो जाएगा कि भाषा में भी सतत् परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है । यहाँ पर ध्यातव्य है कि परिवर्तन का अभिप्राय केवल वाह्य आवरण में ही परिवर्तन नहीं है, अपितु भाषा के चारों अंगों—ध्वनि, शब्द, वाक्य तथा अर्थ में हुए परिवर्तन से है । परिवर्तन सम्वन्धी समस्त कारकों को मुख्यतः दो वर्गों में रखा जा सकता है—1. वाह्यकारक तथा 2. आभ्यन्तरकारक ।

1. **वाह्यकारक**—इसके अन्तर्गत मुख्यतया–भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा वैयक्तिक कारकों को रखा जा सकता है ।

2. **आभ्यन्तरकारक**—आभ्यन्तरकारक से तात्पर्य, परिवर्तन की उन शक्तियों से है, जो स्वयं उस भाषा के ही अन्तर्गत निहित होती हैं । इनमें कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं—

(क) प्रयत्नलाघव—'प्रयत्नलाघव' का अर्थ है, श्रम की अल्पता या उच्चारणसौकर्य । इससे उच्चारण में सुविधा व समय की वचत होती है । इसके भी कई स्तर हैं—

(i) **आगम**—उदाहरणतया–स्कूल, स्नान, स्पष्ट, स्थिर इत्यादि में उच्चारण सौकर्य की दृष्टि से आगम होकर–इस्कूल, अस्नान, अस्पष्ट, अस्थिर आदि हो जाता है ।

(ii) **लोप**—उदाहरणतया–स्थल > थल, दुग्ध > दूध, ज्येष्ठ > जेठ, श्रेष्ठ > सेठ इत्यादि लोप होने से ही वने हैं ।

(iii) **विकार**—जैसे–हस्त का हाथ, गम्भीर = का गहिर, शाक का साग तथा स्तन का थन हो गया है ।

(iv) **विपर्यय**—विपर्यय का अर्थ है उल्टा, जैसे–पहुँचना = चहुँपना, डूवना = वूड़ना, पिशाच = पिचास, ह्रद = दह इत्यादि ।

(v) **समीकरण**—जव दो भिन्न ध्वनियाँ पास रहने से सम हो जाती हैं, तो इस प्रक्रिया को समीकरण कहते हैं, जैसे–दुग्ध → दूध, कर्म → काम, दूर्वा → दूव, अग्नि → आग, रात्रि → रात, पुत्र → पूत, पत्र → पत्ता, निद्रा → नींद इत्यादि ।

(vi) **विषमीकरण**—दो निकटस्थ ध्वनियों में कठिनाई का अनुभव होने से कुछ परिवर्तन कर दिए जाते हैं, जैसे—लाला → लार, काक → काग, कंकण → कंगन, प्रकट → प्रगट इत्यादि ।

(vii) **स्वरभक्ति**—संयुक्त व्यञ्जनों के उच्चारण में होने वाली असुविधा को दूर करने के लिए यदा-कदा दो व्यञ्जनों के वीच में स्वर को रख देने से यह असुविधा दूर हो जाती है । यथा–भ्रम → भरम, कर्म → करम, धर्म → धरम, मूर्ति → मूरत, राजेन्द्र → रजिन्दर, प्राण → परान, स्मरण → सुमिरन इत्यादि ।

(ख) बल—कभी-कभी किसी वात पर जोर देकर कहने पर भी उसके स्वरूप में अन्तर आ जाता है । जैसे–है ही → हयी है, करेंगे → करवै करेंगे, जायेंगे → जइवै करेंगे, संख्यावाचक शब्दों में–दो → दो ठे या दू गो, पाँच → पान्हो या पाँचगो इत्यादि ।

(ग) भावातिरेक—करुणा, प्रेम, क्रोध इत्यादि के आधिक्य से भी शब्दों में विकृति देखी जाती है, जैसे–वेटी → विटिया, वावू → ववुआ, वहन → वहिनियाँ, राजा → रजवा, लघु → लहुरा (देवरवा), प्राण → परनवा इत्यादि ।

(घ) अपूर्ण अनुकरण—अपूर्ण अनुकरण भी भाषयिक परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारण है । आज M.A., Ph.D. की डिग्री वाले व्यक्ति भी दन्त्य-तालव्य, व–ब, ण–न, र–ड तथा य–ज इत्यादि में भेद नहीं कर पाते हैं ।

ध्वनि (Sounds)

भाषा का प्रारम्भ ध्वनि से ही होता है। ध्वनि के अभाव में भाषा की कल्पना भी नहीं की जा सकती; क्योंकि ध्वनि चिह्नों की समष्टि को ही 'भाषा' कहते हैं। यह ध्वनि वाक्-इन्द्रिय से उत्पन्न होती है तथा मुख-विवर से होती हुई वायु तरंग के द्वारा श्रोता के कर्णविवर तक पहुँचती है।

उत्पादन, संवहन तथा ग्रहण भेद से ध्वनि के तीन पक्ष हैं। इनमें से उत्पादन और ग्रहण का सम्वन्ध शरीर से है तथा संवहन का सम्वन्ध, वायुतरंगों से है। इन ध्वनितरंगों की उत्पत्ति कैसे होती है, या इनका कैसा स्वरूप होता है, यह जानने के लिए आवश्यक है कि हम मानवशरीरस्थ वाग्यन्त्र (Vocal Apparatus) के स्परूप को अच्छी तरह से समझ लें, जो निम्नलिखित चित्रांकन से स्पष्ट है—

वाग् यंत्र
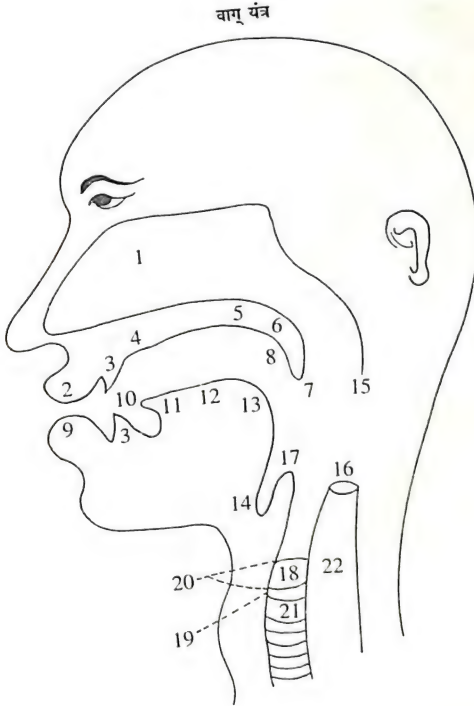
1. नासिका विवर (Nasal-cavity),
2. ऊपरी होंठ (Upper lip),
3. ऊपरी दाँत (Upper teeth),
4. वर्त्स (Alveola),
5. कठोरतालु (Hard palate),
6. कोमल तालु (Soft palate),
7. अलिजिह्वा या शुण्डिका (घण्टी) (Uvula),
8. मुख विवर (Mouth cavity),
9. नीचे का होंठ (Lover lip),
10. जिह्वा नोक (Tip of the tounge),
11. जिह्वा फलक (Blade of tounge),

12. जिह्वाग्र (Front of the tounge),
13. जिह्वापश्च (Back of the tounge),
14. जिह्वामूल (Root of the tounge),
15. ग्रसनिका की पिछली दीवार,
16. ग्रसनिका या गलबिल (Pharynx),
17. अभिकाकल या कण्ठच्छद या स्वरयन्त्रमुखआवरण (Epiglottis),
18. स्वरतन्त्रियाँ (Vocal cords),
19. काकल या स्वरयन्त्रमुख (Glottis),
20. स्वरयन्त्र (Larynx),
21. श्वास-नलिका (Wind pipe),
22. भोजन-नलिका (Gullet),

उपर्युक्त अवयवों के समूह को ही वागिन्द्रिय या वाक्तन्त्र की संज्ञा दी गई है । इन्हीं के समन्वित सहयोग से विभिन्न भाषिक ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं । अतः इन सभी अवयवों को स्पष्टीकरण हेतु एक साथ प्रस्तुत वाग्यन्त्र चित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

ध्वनियों का वर्गीकरण (Classification of Sounds)

'ध्वनि' का तात्पर्य 'स्वन' (Phone/sound) से है । सम्पूर्ण सृष्टि में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसके कण्ठ में अनन्त ध्वनियों के उत्पादन की सामर्थ्य है, जिससे प्रायः सभी लोग परिचित ही हैं । इन ध्वनियों के वर्गीकरण के तीन प्रमुख आधार माने गए हैं—(क) स्थान, (ख) प्रयत्न तथा (ग) करण (इन्द्रिय) ।

1. **स्थान**—निःश्वास वायु को जहाँ अवरुद्ध या वाधित करते हैं वह 'स्थान' है । ओष्ठ से लेकर कण्ठच्छद पर्यन्त अनेक स्थान हैं, जिनमें से कुछ मुख्य स्थान निम्नलिखित हैं—(i) काकल, (ii) कण्ठ, (iii) तालु, (iv) मूर्द्धा, (v) वर्त्स, (vi) दन्त, (vii) ओष्ठ तथा (viii) जिह्वा मूलीय । लघुसिद्धान्त कौमुदी के अनुसार विभिन्न वर्णों व स्वरों के उच्चारण स्थान निम्नलिखित हैं—

(1) अ कु ह विसर्जनीयानां कण्ठः (कण्ठ्य → अ, क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, ह)
(2) इ चु यशानां तालुः (तालव्य → इ, च् छ् ज् झ् ञ् य् तथा श्)
(3) ऋटुरषाणां मूर्द्धा (मूर्द्धन्य → ऋ, ट् ठ् ड् ढ् ण् र् ष्)
(4) लृतु ल सानां दन्ताः (दन्त्य → लृ, त् थ् द् ध् न् ल् स्)
(5) उ पूपध्मानीयानामोष्ठौ (ओष्ठ्य → उ प् फ् ब् भ् म् उपध्मानीय)
(6) ञ म ङ ण नानां नासिका (अनुनासिक → ञ् म् ङ् ण् न्)
(7) एदैतोः कण्ठतालुः (कण्ठतालव्य → ए ऐ)
(8) ओदौतोः कण्ठोष्ठम् (कण्ठोष्ठ → ओ औ)
(9) वकारस्य दन्तोष्ठम् (दन्तौष्ठ्य → व्)
(10) जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् (जिह्वामूलीय → ≍)

2. **प्रयत्न**—किसी भी ध्वनि के उच्चारण में मुखविवर से लेकर कण्ठ पर्यन्त जो प्रयास करना पड़ता है; उसे प्रयत्न के नाम से जाना जाता है । यह प्रयत्न दो प्रकार का होता है–(क) आभ्यन्तर, (ख) बाह्य ।

(क) आभ्यन्तर—आभ्यन्तर प्रयत्न–स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत्, विवृत तथा संवृत भेद से 5 प्रकार का होता है—

(1) स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् (स्पृष्ट → क् से म् पर्यन्त)

(2) ईषत्स्पृष्टमन्तस्थानाम् (ईषत्स्पृष्ट → य् र् ल् व्)

(3) ईषद्विवृतमूष्माणाम् (ईषद्विवृत → श् ष् स् ह्)

(4) विवृतं स्वराणाम् (विवृत → सभी स्वर)

(5) ह्रस्वस्य अवर्णस्य प्रयोगे संवृतम् (संवृत → ह्रस्व अकार)

(ख) बाह्य—बाह्यप्रयत्न–विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित भेद से ग्यारह प्रकार का होता है—

(1) खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च (विवार, श्वास, अघोष → ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स)

(2) हशः संवारा नादा घोषाश्च (संवार, नाद, घोष → ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द)

(3) वर्गाणां प्रथम-तृतीय-पञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः (अल्पप्राण → क ग ङ च ज ञ ट ड ण त द न प ब म)

(4) वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः (महाप्राण → ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ श ष स ह)

(5) उच्चैरुदात्तः (उदात्त → ऊपर उठा हुआ या आरोही स्वर)

(6) नीचैरनुदात्तः (अनुदात्त → नीचे गिरा हुआ या अवरोही स्वर)

(7) समाहारस्वरितः (स्वरित → सम अर्थात् आरोही व अवरोही के बीच का स्वर)

(ग) करण—'करण' उन इन्द्रियों को कहते हैं, जो सतत् गतिशील रहकर ध्वनियों के उच्चारण में सहायता पहुँचाती हैं । स्थान व करण में मात्र क्रमशः स्थिरता व गतिशीलता का अन्तर है । इस दृष्टि से–अधरोष्ठ, जिह्वा, कोमलतालु तथा स्वरतन्त्री को करण कहा जाता है ।

ध्वनियों के भेद—'स्वर' और 'व्यञ्जन' के भेद से ध्वनियाँ दो प्रकार की पाई जाती हैं—इनमें 'स्वर' वे ध्वनियाँ हैं, जिनका उच्चारण करते समय निःश्वास में कहीं कोई अवरोध नहीं उत्पन्न होता, जवकि व्यञ्जनों के उच्चारण में निःश्वास में कहीं न कहीं अवरोध पाया जाता है ।

स्वरों का वर्गीकरण—स्वर-स्वनों (ध्वनियों) के मुख्यतः चार आधार दिखाई पड़ते हैं– 1. जिह्वा की ऊँचाई की दृष्टि से, 2. जिह्वा के उत्थापित भाग की दृष्टि से, 3. ओष्ठों की स्थिति के आंधार पर, 4. मात्रा की दृष्टि से ।

1. **जिह्वा की ऊँचाई के अनुसार**—प्रत्येक स्वर के उच्चारण में, जिह्वा एक निश्चित सीमा तक उठकर निःश्वास के निर्गम-मार्ग को कुछ संकरा कर देती है, जो कहीं-कम व कहीं ज्यादा होता है । इस दृष्टि से स्वरों के चार विभाग हो जाते हैं–जिसे–विवृत (खुला हुआ), अर्धविवृत, संवृत (अत्यन्तसंकीर्ण), तथा अर्धसंवृत । उदाहरणतया आ, विवृत; ऐ, औ अर्धविवृत; इ, ई (अग्र) तथा उ, ऊ (पश्च) संवृत और ए (अग्र) ओ (पश्च) अर्धसंवृत स्वर हैं ।

2. **जिह्वा के उत्थापित भाग की दृष्टि से**—जिह्वा के अग्र, मध्य व पश्च भागों की सक्रियता के आधार पर मुख्यतः तीन स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं—

(i) **अग्रस्वर**—जिह्वा के अग्रभाग को उठाकर जिन स्वरों का उच्चारण किया जाता है; जैसे–इ, ई, ए तथा ऐ ।

(ii) **मध्यस्वर**—जिह्वा के मध्य या केन्द्रीयभाग से उच्चरित स्वर, जैसे–'अ' ।

(iii) **पश्चस्वर**—वे स्वर, जो जिह्वा के पश्चभाग के सहयोग से उच्चरित होते हैं । जैसे–उ, ऊ, ओ, औ तथा आ ।

3. **ओष्ठों की स्थिति के अनुसार**—विभिन्न स्वरों के उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति का भी अपना विशेष महत्त्व है । ओष्ठों की यह स्थिति मुख्यतया तीन प्रकार की होती है—

(i) **प्रसृत**—इस स्थिति में ओष्ठ, स्वाभाविक रूप में स्थित रहते हुए खुले रहते हैं । उदाहरणतया–इ, ई, ए तथा ऐ के उच्चारण के समय जो स्थिति होती है ।

(ii) **वर्तुल**—ओठों को थोड़ा आगे निकालकर जब गोलाकार कर लेते हैं, तो यह वर्तुल स्थिति होती है, और उ, ऊ, ओ तथा औ वर्णों का उच्चारण होता है ।

(iii) **अर्धवर्तुल**—जब ओष्ठ पूर्ण गोलाकार न होकर आधे गोलाकार ही होते हैं; जैसे–दीर्घ आकार के उच्चारण की स्थिति ।

4. **मात्रा की दृष्टि से**—स्वरों के उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं । एक मात्रिक स्वर ह्रस्व, द्विमात्रिक-दीर्घ तथा त्रिमात्रिक-प्लुत कहा जाता है–**"एकमात्रो भवेद्ह्रस्वो, द्विमात्रो दीर्घ उच्यते । त्रिमात्रस्तु तु प्लुतो ज्ञेयो ॥"**

व्यञ्जनों का वर्गीकरण—स्थान एवं प्रयत्न भेद से व्यञ्जनों के वर्गीकरण के दो प्रमुख आधार हैं । इनमें स्थान के आधार पर पूर्वकथित काकल्य (ह), कंठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य, वर्त्स्य (न्ह), दन्त्य, ओष्ठ्य तथा जिह्वा मूलीय भेद से व्यञ्जन ध्वनियों के आठ प्रकार हैं तथा प्रयत्न के आधार पर वाह्य प्रयत्न भेद से पूर्वकथित–विवार, संवार, श्वास, नाद, अघोष, घोष, अल्पप्राण तथा महाप्राण हैं, जबकि आभ्यन्तर प्रयत्न के आधार पर 8 हैं; जो निम्नलिखित हैं—

(i) **स्पर्श**—जिन व्यञ्जनों के उच्चारण में जिह्वा कण्ठ से लेकर ओष्ठ पर्यन्त सम्बन्धित स्थानों का स्पर्श करती है, उन्हें 'स्पर्श-व्यञ्जन' कहते हैं । इस दृष्टि से कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग स्पर्श-व्यञ्जन ध्वनियाँ हैं ।

(ii) **स्पर्श-संघर्षी**—जिन व्यञ्जनों के उच्चारण में स्पर्श के साथ-साथ निःश्वास के निकलने में हल्का सा संघर्षण भी होता है; उन्हें स्पर्श-संघर्षी-व्यञ्जन कहते हैं; जैसे–च, छ, ज, झ स्पर्श-संघर्षी-व्यञ्जन-ध्वनियाँ हैं ।

(iii) **संघर्षी**—'संघर्षी-ध्वनियों' में निःश्वास वायु के निर्गम का मार्ग जिह्वा के द्वारा अत्यन्त संकीर्ण कर दिया जाता है, और वायु रगड़ खाती हुई सर्प के सीत्कार जैसी बाहर निकलती है । रगड़ या संघर्ष की प्रधानता के कारण ही इन ध्वनियों को संघर्षी कहा जाता है । उदाहरणतया–श, ष, स, ज इत्यादि ।

(iv) **पार्श्विक**—'पार्श्विक-ध्वनि' के उच्चारण में जिह्वा की नोक मूर्द्धा को छूती है, और निःश्वास वायु दोनों पार्श्वों से बाहर निकलती है; जैस–'ल' ।

(v) **लुण्ठित या लोड़ित**—जिन व्यञ्जनों के उच्चारण में जिह्वा की नोक वेलन की तरह लपेट खाकर तालु का स्पर्श करती है और जिह्वा की नोक वर्त्स पर बार-बार ठोकर मारती है, वे लुण्ठित क़हलाते हैं, जैसे–'र' ।

(vi) **उत्क्षिप्त**—जिन व्यञ्जनों के उच्चारण में जिह्वा, तालु के किसी भाग को झटके से छूकर हट जाती है, उन्हें 'उत्क्षिप्त-व्यञ्जन' कहते हैं । जैसे–'ड़' और 'ढ़' उत्क्षिप्त व्यञ्जन हैं ।

(vii) **अन्तस्थ या अर्धस्वर**—जिन वर्णों के उच्चारण में जिह्वा से न तो पूरी तरह स्पर्श ही होता है और न स्वरों के उच्चारण के समान पार्थक्य ही रहता है । उदाहरणतया–य, व; इन दोनों वर्णों में स्वर व व्यञ्जन दोनों का वैशिष्ट्य रहने से इन्हें अन्तस्थ या अर्धस्वर कहते हैं ।

(viii) **अनुनासिक**—जिन व्यञ्जनों के उच्चारण में निःश्वासवायु मुखविवर के साथ-साथ नासिकाविवर से भी निकला करती है; उन्हें अनुनासिक व्यञ्जन कहते हैं; जैसे–ङ, ञ, ण, न तथा म ।

मान-स्वर या आदर्श-स्वर (Cardinal Vowels)

'मानस्वर' की कल्पना, लन्दन-विश्वविद्यालय (भाषाविज्ञानविभाग) के प्रोफेसर 'सर डेनियल जॉन्स' ने की । ये 'मान स्वर' किसी भाषा-विशेष से सम्बद्ध नहीं हैं, अपितु काल्पनिक हैं, जिन्हें 'मेय स्वर' आदर्श-स्वर या 'मानक-स्वर' भी कहा जाता है । इनकी व्यावहारिक उपयोगिता यह

कि—इनकी सहायता से किसी भाषा की स्वर-ध्वनियों की उच्चारण प्रक्रिया का सम्यक् और समुचित निर्धारण किया जा सकता है । ये स्वर संसार की सभी भाषाओं में पाए जाते हैं, किन्तु किसी एक भाषा-विशेष में नहीं मिलते । इनका निर्धारण मुख की संवृति तथा विवृति और जिह्वा के अग्र, मध्य व पश्च भाग के उठने के आधार पर किया जाता है । इनमें चार अग्रस्वर व चार पश्चस्वर कहलाते हैं । इनका विवरण अग्रांकित है—
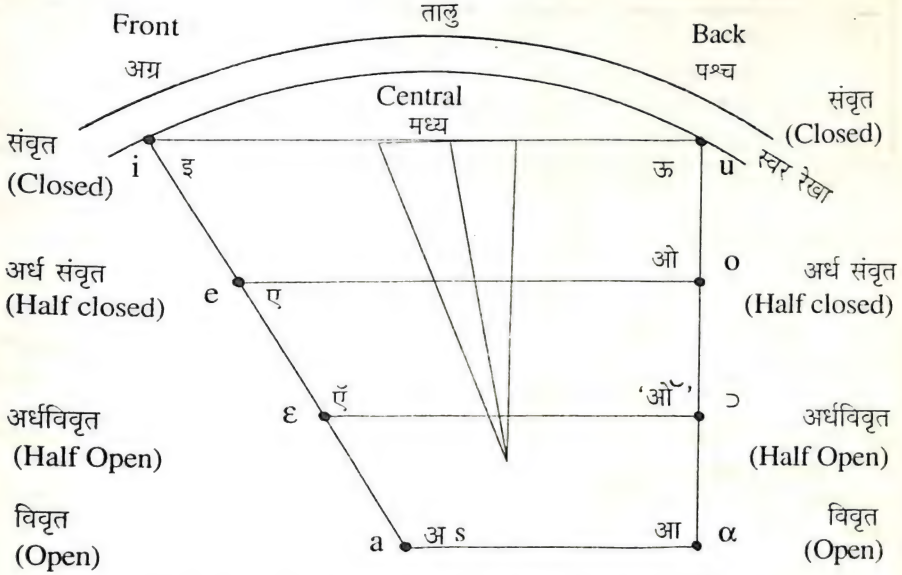
अग्रस्वर—उपर्युक्त विवरण से सुस्पष्ट है कि–ई (i), ए (e), ऍ (ε) तथा अ ऽ (a) ये चार अग्रस्वर हैं । इनमें 'इ', संवृत है; 'ए' अर्धसंवृत; 'ऍ' अर्धविवृत तथा 'अ ऽ' विवृत है ।

पश्चस्वर—आ (a), ऑ (ɔ), ओ (o) तथा ऊ (u) ये चार पश्च स्वर हैं । इनमें 'आ' विवृत, 'ऑ' अर्धविवृत, 'ओ' अर्धसंवृत तथा 'ऊ' संवृत स्वर है ।

3.2.4. ध्वनि सम्बन्धी नियम (Phonetic Laws)

किसी भाषा की विशिष्ट ध्वनियों में, विशेष काल तथा विशेष परिस्थितियों में, जो ध्वनि-विकार होते हैं; उन 'ध्वनि-विकारों' को आधार बनाकर जो नियम निर्धारित किए जाते हैं; उनको ही 'ध्वनि-नियम' की संज्ञा दी गई है । कुछ प्रमुख ध्वनि-नियम निम्नलिखित हैं—

1. ग्रिम-नियम (Grimm's Law), 2. ग्रासमन-नियम (Grassman's Law), 3. वर्नर-नियम (Verner's Law), 4. तालव्य नियम (Palatal Law) तथा 5. मूर्द्धन्य-नियम (Cerebral Law) ।

1. **ग्रिम-नियम** (Grimm's Law)—'ग्रिम-नियम' ध्वनि नियमों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नियम है । यद्यपि ध्वनि-परिवर्तन सम्बन्धी नियमों का सम्बन्ध 'ग्रिम' से जोड़ा जाता है; परन्तु उसका सूत्र 'रास्क' और 'ईरे' ने पहले ही ढूँढ़ निकाला था । इसे व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय जैकब ग्रिम (Jacob-Grimm-1785-1863) नामक जर्मन विद्वान् को है । सन् 1822 में ग्रिम ने अपने 'जर्मनव्याकरण' के द्वितीय संस्करण में इस नियम को प्रकाशित किया । तब से यह नियम, '**ग्रिम नियम**' के नाम से जाना जाता है । इस नियम को ग्रिम ने प्रथम ध्वनि परिवर्तन तथा द्वितीय-ध्वनि परिवर्तन इन दो वर्गों में स्पष्ट किया; जो अग्रलिखित हैं—

प्रथम ध्वनि परिवर्तन—ग्रिम महोदय के अनुसार–मूल-भारत-यूरोपीय भाषा की ध्वनियाँ–संस्कृत, ग्रीक, लैटिन में सुरक्षित हैं । सर्वाधिक व्यञ्जन-ध्वनियाँ, संस्कृत में सुरक्षित हैं, किन्तु जर्मनिक शाखा में कुछ ध्वनियाँ भिन्न रूप में प्रयुक्त हुई हैं । ग्रिम नियमानुसार जर्मनिक शाखा में उक्त परिवर्तन निम्नलिखित रूप में हुआ—

मूल-भारत-यूरोपीय-शाखा (संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि)		**जर्मनिक-शाखा** (गाथिक, अंग्रेजी, डच, निम्न जर्मन आदि)
(अघोष अल्पप्राण) क, त, प.	→	(अघोष महाप्राण) ख (ह), थ, फ. या (घोष महाप्राण) घ, ध, भ.
(घोष महाप्राण) घ, ध, भ.	→	(घोष अल्पप्राण) ग, द, व.
(घोष अल्पप्राण) ग, द, व.	→	(अघोष अल्पप्राण) क, त, प.

इसे निम्नलिखित रेखाचित्र से और भी स्पष्ट ढंग से समझा जा सकता है—
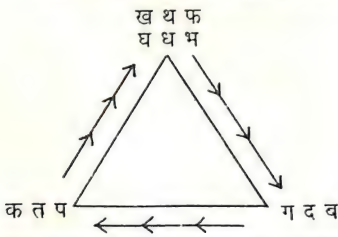
इन विवरणों से सुस्पष्ट है कि–संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भारोपीय शाखा वर्ग की अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ, जर्मनिक शाखा में अघोष महाप्राण या घोष महाप्राण में बदल गई । इसी प्रकार - घोष महाप्राण → घोष अल्पप्राण में तथा घोष अल्पप्राण → अघोष अल्पप्राण में बदल गई । कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं—

भारत-यूरोपीय (संस्कृत)		**जर्मनिक (अंग्रेजी)**
क से ह	कः	Who (हू)
	कद् (कत्)	What (ह्वात्)
त से थ	त्रि	Three (थ्री)
	तनु	Thin (थिन)
प से फ	पद	Foot (फुट)
	पत्र	Feather (फीदर)
ह से ग	हंस	Goose (गुस)
	दुहिता	Daughter (डा [गृ] टर)
ध से द	विधवा	Widow (विडोउ)
	वन्ध	Band (वॅन्द)
भ से व	भ्रातर्	Brother (ब्रादर)
	भ्रू	Brow (ब्राउ)
ग से क	गो	Cow (काउ)
	युग	Yoke (योक)
द से त	द्वौ	Two (ट्वो)
	स्वेद	Sweat (स्वेत)
ब से प	तुर्वा (Turba = लैटिन)	Thorp (थोर्प)

(ध्यातव्य है कि ब से प के ध्वनि परिवर्तन का उदाहरण संस्कृत में अब तक नहीं मिला है)

द्वितीय ध्वनि परिवर्तन—प्रथम ध्वनि परिवर्तन में जर्मन भाषा, भारोपीय भाषा से अलग हुई थी, परन्तु द्वितीय ध्वनि परिवर्तन स्वयं जर्मनिक भाषाओं की ही दो शाखाओं में हुआ, जिन्हें निम्न जर्मन व उच्च जर्मन कहते हैं । इस परिवर्तन में क्रमशः ग द व का क त प; क त प का ख थ फ तथा ख थ फ का ग द व हो गया; जैसा कि निम्नलिखित रेखाचित्र से स्वतः स्पष्ट है—
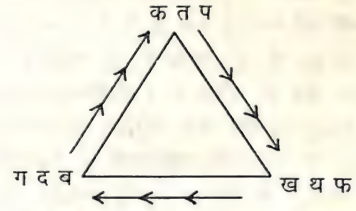
द्वितीय-ध्वनि परिवर्तन के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नांकित हैं—

	निम्न जर्मन (अंग्रेजी)	उच्च जर्मन (आधुनिक जर्मन)
क से ख	बुक (Book)	बुख़ (Buch)
	मेक (Make)	माखेन (Machen)
त से थ (स)	वाटर (Water)	ह्वासर (Wasser)
		(जर्मन में थ का उच्चारण स होता है)
प से फ	स्प्रिंग (Spring)	फ्रयूलिंग (Fruling)
	स्लिप (Slip)	श्लाइफेन (Schleifen)
	डीप (Deep)	टीफ (Tief)
	शीप (Sheep)	शाफ (Schap)
थ से द	थ्रि (Three)	ड्रेइ (Drei)
	नार्थ (North)	नोरदेन (Northen)
द से त	गुड (Good)	गूट (Guht)
	डे (Day)	टाक (Tag)

उपर्युक्त दोनों ही ध्वनि परिवर्तन देखने में काफी हद तक स्पष्ट व सुलझा हुआ प्रतीत होता है, परन्तु स्वयं ग्रिम महोदय को वहुत सारे अपवाद मिले, जिसका वे समाधान न कर सके । आगे चलकर ग्रासमैन व वर्नर ने इन्हीं नियमों में संशोधन करके अपना नियम प्रस्तुत किया ।

2. **ग्रासमन-नियम** (Grassman's Law)—'ग्रासमन' ने उपर्युक्त ग्रिम नियम में संशोधन करते हुए, अपना नियम प्रस्तुत किया कि–दो सन्निकृष्ट महाप्राण ध्वनियाँ एक साथ नहीं रहतीं, उनमें प्रथम अल्पप्राण हो जाती है । उदाहरणतया–'संस्कृत' में 'धा' धातु से 'धधाति' रूप बनता है, जिसमें प्रथम ध का अल्पप्राण होकर दधाति हो जाता है । इसी प्रकार 'भृ' धातु से 'भिभर्ति' के वदले 'बिभर्ति' रूप वनता है ।

3. **वर्नर-नियम** (Verner's Law)—'वर्नर' ने पूर्वकथित ग्रिम नियम में संशोधन करते हुए, अपना नियम प्रस्तुत किया कि–क त प के पूर्ववर्ती स्वर पर बलाघात रहने पर ग्रिम-नियम के अनुसार 'क त प' का 'ख थ फ' होता है; परन्तु यदि बलाघात पूर्ववर्ती स्वर के बदले, परवर्ती स्वर पर हो तो 'क त प' का 'ग द ब' हो जाता है । जैसे–संस्कृत भाषा के–युवशस्, शतम् तथा सप्तन् का गाथिक भाषा में क्रमशः युंग्स (Juggs), हुन्द (Hund) तथा सिबुन (Sibun) हो गया । यहाँ पर क्रमशः श का ग; त का द तथा प का ब हो गया है । ध्यातव्य है कि उच्चारण भेद से डा. देवेन्द्र नाथ शर्मा ने 'वर्नर नियम' (Verner's Law) को 'फ़ेर्नर नियम' लिखा है ।

4. **तालव्य-नियम** (Palatal Law)—इस नियम के अनुसंधानकर्ताओं में विल्हेम थाम्सन (Wilhem Thomsen); जोहेन्सश्मिट (Johannes Schmidt); एच. कालिज (H. Collitze)

तथा दिसास्यूर (De Saussure) का नाम लिया जाता है । इस नियम के अनुसार--मूल भारोपीय भाषा की कण्ठ्य (क ख ग घ) तथा कण्ठोष्ठ्य (क्व, ख्व, ग्व, घ्व) के पश्चात् यदि कोई तालव्य स्वर (इ, ई, ए) आता है, तो भारत-इरानी शाखा में कण्ठ्य ध्वनि (क, ग) परिवर्तित होकर तालव्य (च, ज) हो जाती है । उदाहरणतया–मूल भारोपीय भाषा के शब्द–क्विंक्वे (Quinque), अउगेस् (Auges) तथा किद् (Qid) का भारत-ईरानी भाषा (संस्कृत) में क्रमशः पञ्च, ओजः तथा चिद् हो गया है । उपर्युक्त उदाहरणों में 'क्विंक्वे' में कण्ठोष्ठ्य 'क्व्' के वाद 'ए' स्वर आया है, इसी तरह 'अउगेस्' में कण्ठ्य 'ग्' के पश्चात् 'ए' आया है तथा 'किद्' में क् (कण्ठ्य) के वाद स्वर इ आया है । अतः तालव्य होकर क्रमशः च्, ज तथा च् हो गया है ।

5. **मूर्द्धन्य-नियम** (Cerebral Law)—'मूर्द्धन्य नियम' का संकेत मूलतः पाणिनि अष्टाध्यायी में उपलब्ध होता है । इसी को आधार वनाकर प्रो. पाट (Prof. Patt) तथा रूसी भाषावैज्ञानिक प्रो. फोर्तनातोव (Porf. Fortunatov) ने संस्कृत भाषा में मूर्द्धन्य ध्वनियों के विकास का क्रम ढूँढ़ने का सराहनीय प्रयास किया, जिसके आधार पर उन्होंने अपने मूर्द्धन्य नियम को प्रस्तुत किया । इस नियम के अनुसार 'र' तथा 'ल' के वाद तवर्ग आने पर उसका 'टवर्ग' हो जाता है ।

3.2.5. भारतीय आर्यभाषा की तीन अवस्थाएँ (Characteristics of the three types of Indo-Aryan Language)

समय की दृष्टि से भारतीय आर्यभाषा की तीन प्रमुख अवस्थाएँ हैं---(1) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (ई. पू. 1500 से 500 ई. तक); (2) मध्य भारतीय आर्य भाषा (500 से 1000 ई. तक) तथा (3) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (1000 ई. से अब तक).

1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा समूह का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद में देखने को मिलता है; जिसका समय अनिश्चित है । वैदिक साहित्य के अन्तर्गत-संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् ग्रन्थ आते हैं । वैदिक भाषा स्वर प्रधान तथा शिलष्ट योगात्मक है । इसकी रूप रचना में जटिलता व विविधता है ।

2. मध्य भारतीय आर्य भाषा को 'प्राकृत-काल' भी कहा जाता है । इसके मुख्यतः तीन स्तर हैं—(i) 'प्रथम प्राकृत' में पालिसाहित्य व अशोक के अभिलेख (ई.पू. 500 से ईसवी के प्रारम्भ तक), (ii) 'द्वितीय प्राकृत' (1 ई. से 500 ई. तक) में महाराष्ट्री इत्यादि साहित्यिक प्राकृते तथा (iii) 'तृतीय प्राकृत' (500 ई. से 1000 ई. तक) में अपभ्रंश साहित्यों की गणना की जाती है ।

3. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का विकास अपभ्रंश अथवा तृतीय प्राकृत से हुआ है । आधुनिक भा. आ. भाषाएँ लगभग पूर्णतः अयोगात्मक हो गयीं । इनमें शौरसेनी से पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती; अर्धमागधी से पूर्वी हिन्दी; मागधी से भोजपुरी, मैथिली, मगही, बंगला, असमी, उड़िया; खस से पहाड़ी; ब्राचड़ से पंजाबी, सिन्धी तथा महाराष्ट्री से मराठी भाषा का विकास हुआ ।

(इनके विस्तार का कोई औचित्य न होने से इन्हें संक्षिप्त रूप में ही सूत्रवत् दिया गया है ।)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

3.1. व्याकरण

1. 'श्री' शब्द षष्ठी विभक्ति वहुचन में कौनसी संज्ञा विकल्प से होती है ?
(A) घि (B) पद (C) नदी (D) प्रातिपदिक

2. 'भूपति' शब्द की 'घि' संज्ञा का विधायक सूत्र है—
(A) शेषोध्यसखि (B) अच्च घः (C) घेर्ङिति (D) पतिः समास एव

3. समास में 'पति' शब्द की कौन संज्ञा होती है ?
(A) नदी (B) भ (C) (घ) (D) घि

4. 'भवत + छन् = भवदीयः' में भवत् शब्द की किस सूत्र से पद संज्ञा होती है ?
(A) सुप्तिङन्तं पदम् (B) नः क्ये
(C) सिति च (D) स्वादिस्वसर्वनामस्थाने

5. अष्टाध्यायी में सर्वनाम संज्ञा विधायक-सूत्रों की संख्या है—
(A) 1 (B) 2 (C) 3 (D) 4

6. 'सम्प्रसारण' संज्ञा विधायक सूत्र है—
(A) त्रेः सम्प्रसारणं च (B) इग्यणः सम्प्रसारणम्
(C) ह्वः सम्प्रसारणम् (D) न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्

7. 'स्वप् + क्त = सुप्तः' यहाँ 'स्वप्' धातु में कौनसा कार्य हुआ है ?
(A) संहिता (B) संयोग (C) सम्प्रसारण (D) लोप

8. कृदन्त की संज्ञा है—
(A) प्रत्यय (B) धातु (C) संयोग (D) प्रातिपदिक

9. पाणिनि के मत में 'वधू' शब्द की संज्ञा है—
(A) अपृक्त (B) तद्धित (C) गुण (D) नदी

10. 'मुनि' शब्द की संज्ञा है—
(A) नदी (B) घि (C) इत् (D) टि

11. क्रिया के योग में प्रादि की संज्ञा है—
(A) सर्वनाम (B) निष्ठा (C) गति (D) अपृक्त

12. 'उप-भुज् + तुमुन् = उपभोक्तुम्' में धातु के किस अंश को गुण हुआ है ?
(A) आदि (B) अन्त (C) उपधा (D) उपसर्ग

13. 'भिद् + तव्य = भेतव्यम्' में गुण-विधायक सूत्र है—
(A) आद गुणः (B) अदेङ् गुणः (C) गुणोऽपृक्ते: (D) पुगन्तलघूपधस्य

14. 'स्मृ + अनीय = स्मरणीयम्' में गुण विधायक सूत्र है—
(A) पुगन्त लघूपधस्य च (B) सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः
(C) आद्गुणः (D) गुणोऽपृक्ते:

15. 'हे प्रभो' में 'प्रभु' शब्द में कौनसी विधि है ?
(A) सम्प्रसारण (B) दीर्घ (C) वृद्धि (D) गुण

16. 'पठ् + घञ् = पाठः' में धातु में कौनसी विधि प्रयुक्त है ?
(A) पूर्वरूप (B) गुण (C) वृद्धि (D) सम्प्रसारण

17. 'दशरथ + इञ् = दाशरथिः' में आदिस्वरवृद्धि विधायक सूत्र है—
(A) तद्धितेष्वचामादेः (B) किति च (C) अचो ञ्णिति (D) अत उपधायाः

18. 'डित्थ' की प्रातिपदिक संज्ञा विधायक सूत्र है—
(A) अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् (B) कृततद्धितसमासाश्च
(C) ङ्याप्प्रातिपदिकम् (D) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण वचनमाते प्रथमा

19. 'रम् + घञ् = रामः' में धातु के अकार की संज्ञा है—
(A) पद (B) गुरु (C) टि (D) उपधा

20. 'पठ् + ण्वुल् = पाठकः' में धातु की उपधा को किस सूत्र से वृद्धि होती है ?
(A) अतो गुणे (B) अत उपधायाः
(C) पुगन्त लघूपधस्य च (D) अचोञ्णिति

21. 'राजन् + सु(स्) = राजा' में 'स्' का लोप क्यों होता है ?
(A) यह एक व्यंजन है (B) यह सुप् है
(C) यह अपृक्त है (D) यह ऊष्मवर्ण है

22. 'च्वि' प्रत्ययान्त की संज्ञा होती है—
(A) उपसर्ग (B) कर्मप्रवचनीय (C) गति (D) गुण

23. 'डाच्' प्रत्ययान्त की संज्ञा होती है—
(A) गति (B) गुरु (C) उपसर्ग (D) अंग

24. 'क्रियायोग' में अनिति पर अनुकरण की संज्ञा क्या है ?
(A) भ (B) संयोग (C) गति (D) प्रातिपदिक

25. 'अनादर' अर्थ में गति संज्ञक है—
(A) सत् (B) असत् (C) अन्तर (D) पुर

26. 'आदरानादरयोः सदसती' सूत्र से सम्बद्ध संज्ञा है—
(A) निष्ठा (B) उपसर्ग (C) अव्यय (D) गति

27. 'अलम्' की किस अर्थ में 'गति' संज्ञा होती है ?
(A) भूषण (B) अपरिग्रह (C) आदर (D) अनादर

28. 'अपरिग्रह' अर्थ में गति-संज्ञक है—
(A) असत् (B) अन्तर (C) अलम् (D) तिरस्

29. गति संज्ञक अव्यय है—
(A) पुरः (B) पुरा (C) अहो (D) अर्थ

30. 'अस्तं च' सूत्र से संकेतित है—
(A) उपसर्ग (B) गति (C) निपात (D) कर्मप्रवचनीय

31. 'विभाषा कृञि' सूत्र से संकेतित संज्ञा है—
    (A) विभाषा (B) धातु (C) उपसर्ग (D) गति
32. 'पद-संज्ञा' विधायक सूत्र है—
    (A) तसौ मत्वर्थे (B) भीत्रार्थानां भयहेतुः
    (C) दीर्घ च (D) सिति च
33. 'नियतोपस्थिक' क्या है ?
    (A) हेतु (B) कर्ता (C) प्रातिपदिकार्थ (D) वचन
34. 'सम्वोधने च' सूत्र से विभक्ति होती है—
    (A) सप्तमी (B) चतुर्थी (C) द्वितीया (D) प्रथमा
35. 'कारके'–यह कैसा सूत्र है ?
    (A) विधि (B) अधिकार (C) नियम (D) परिभाषा
36. कर्ता का इष्टतम कारक क्या है ?
    (A) कर्म (B) करण (C) सम्प्रदान (D) सम्बन्ध
37. 'अनुक्त-कर्म' में विभक्ति होती है—
    (A) प्रथमा (B) द्वितीया (C) तृतीया (D) चतुर्थी
38. 'गतिवुद्धि ...... स णौ' सूत्र से संज्ञा का निर्देश है—
    (A) कर्तृ (B) करण (C) कर्म (D) अधिकरण
39. 'अभितः' या 'सर्वतः' के योग में कौनसी विभक्ति होती है ?
    (A) षष्ठी (B) पञ्चमी (C) तृतीया (D) द्वितीया
40. 'अन्तरा' के योग में आने वाली विभक्ति है—
    (A) द्वितीया (B) तृतीया (C) चतुर्थी (D) पञ्चमी
41. क्रियासिद्धि में प्रकृष्ट उपकारक–कारक है—
    (A) कर्ता (B) कर्म (C) करण (D) अधिकरण
42. 'इत्थंभूत लक्षण' से सम्बद्ध विभक्ति है—
    (A) द्वितीया (B) तृतीया (C) चतुर्थी (D) पञ्चमी
43. 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रतिकोपः' से सम्बद्ध संज्ञा है—
    (A) करण (B) कर्म (C) कर्ता (D) सम्प्रदान
44. 'उत्पातेन ज्ञापिते च'–इस वार्तिक से सम्बद्ध विभक्ति है—
    (A) द्वितीया (B) तृतीया (C) चतुर्थी (D) पञ्चमी
45. 'परार्थाभिधान' क्या है ?
    (A) कारक (B) विग्रहं (C) क्रिया (D) वृत्ति
46. 'वृत्यर्थावबोधकवाक्य' क्या है ?
    (A) विग्रह (B) प्रातिपदिक (C) कारक (D) निपात

47. समासशास्त्र में प्रथमा निर्दिष्ट की संज्ञा है—

(A) नपुंसक (B) उपसर्जन (C) उपसर्ग (D) अव्ययीभाव

48. 'तत्पुरुषः' यह कैसा सूत्र है ?

(A) विधि (B) परिभाषा (C) नियम (D) अधिकार

49. इसके साथ द्वितीयान्त का समास नहीं होता है—

(A) श्रित (B) पतित (C) भय (D) प्राप्त

50. चतुर्थी-तत्पुरुष-समास युक्त पद है—

(A) शङ्कुलाखण्डः (B) कृष्णाश्रितः (C) राजपुरुषः (D) गोरक्षितम्

51. 'सप्तर्षयः' में कौनसा समास है ?

(A) तत्पुरुष (B) वहुव्रीहि (C) द्विगु (D) द्वन्द्व

52. 'सप्त च ते ऋषयः = सप्तर्षयः' में समास विधायक सूत्र है—

(A) तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च (B) तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः

(C) विशेषणं विशेष्येण वहुलम् (D) दिक्संख्ये संज्ञायाम्

53. 'पौर्वशालः' का विग्रह है—

(A) पौर्व एव शालः (B) पूर्वस्यां शालायां भवः

(C) शालायाः पूर्वम् (D) पूर्वा शाला यस्य सः

54. 'प्राचार्यः' में समास है—

(A) ष. तत्पुरुष (B) च. तत्पुरुष (C) प्रादितत्पुरुष (D) वहुव्रीहि

55. 'महाराजः' में समास है—

(A) द्विगु (B) द्वन्द्व (C) कर्मधारय (D) बहुव्रीहि

56. 'द्वादश' पद में समास है—

(A) बहुव्रीहि (B) तत्पुरुष (C) अव्ययीभाव (D) द्वन्द्व

57. द्वन्द्व तथा तत्पुरुष समासों का लिङ्ग कैसा होता है ?

(A) पूर्ववत् (B) परवत् (C) उभयवत् (D) अन्यवत्

58. बहुव्रीहि में निष्ठा प्रत्ययान्त को क्या होता है ?

(A) पूर्वप्रयोग (B) परप्रयोग (C) दीर्घविधि (D) लोप

59. यह अन्यतम 'चाऽर्थ' है—

(A) निष्ठा (B) संयोग (C) समुच्चय (D) संहिता

60. द्वन्द्व समास में इसका पूर्व-प्रयोग होता है—

(A) नदी संज्ञक (B) निष्ठा संज्ञक (C) भ संज्ञक (D) घि संज्ञक

61. 'व्याघ्रस्येव पादावस्य' से संकेतित है—

(A) व्याघ्रपद् (B) व्याघ्रपादः (C) व्याघ्रपदः (D) व्याघ्रपात्

62. 'द्वौ पादौ यस्य सः' किसका विग्रह है ?

(A) द्विपादः (B) द्विपात् (C) द्विपदः (D) द्विपदी

3.2. भाषा-विज्ञान

1. संस्कृत-वाङ्मय में 'ध्वनि-विज्ञान' का प्राचीन नाम है—
   (A) शिक्षा (B) व्याकरण (C) निरुक्त (D) स्वन
2. अनुनासिक वर्णों की संख्या है—
   (A) 5 (B) 8 (C) 10 (D) 2
3. किस यन्त्र में कृत्रिम-तालु का प्रयोग किया जाता है—
   (A) आसिलोग्राफ (B) पैलेटोग्राफ (C) पैलेट स्पेक्ट्रम (D) काइमोग्राफ
4. घोष-अघोष ध्वनियों में होने वाले कम्पनगत भेद से सम्बद्ध यन्त्र है—
   (A) स्पेक्ट्रोग्राफ (B) पैलेटोग्राफ (C) काइमोग्राफ (D) आसिलोग्राफ
5. आवृत्ति एवं उच्चारण समय का बोधक यन्त्र है—
   (A) क्रोमोग्राफ (B) पैलेटोग्राफ (C) सीस्मोग्राफ (D) स्पेक्ट्रोग्राफ
6. 'ध्वनि-परिवर्तन' का आन्तरिक कारण है—
   (A) प्रयत्न लाघव (B) बोलने की शीघ्रता
   (C) ध्वनियों का परिवेश (D) बलाघात
7. 'ध्वनि-परिवर्तन' का बाह्य कारण है—
   (A) ध्वनियों की अपनी प्रकृति (B) सहजीकरण
   (C) शब्दों की असाधारण लम्बाई (D) ध्वनियों का परिवेश
8. 'शाक = साग' इस ध्वनि-परिवर्तन का कारण है—
   (A) घोषीकरण (B) अल्पप्राणीकरण (C) अघोषीकरण (D) महाप्राणीकरण
9. 'स्वरतन्त्रियों' के बीच में जो खुला अंश रहता है, उसका नाम है—
   (A) कोमलतालु (B) काकल (C) कठोरतालु (D) मूर्द्धा
10. श्वाँस लेने (Inhalation) की स्थिति में स्वरतन्त्रियों की स्थिति होती है—
    (A) तनी हुई (B) बन्द (C) अधखुली (D) पूर्णतः खुली
11. 'नासिका-विवर' का अभिप्राय है—
    (A) श्वास नली
    (B) भोजन और श्वास नली के बीच की दीवार
    (C) नाक के बाहर से दिखने वाला छिद्र
    (D) नासिका और मुख के छत के बीच का रिक्त स्थान
12. जिसके उच्चारण में वायु मुखविवर से निर्बाध बाहर निकलती है, वह है—
    (A) व्यञ्जन (B) स्वर (C) अन्तस्थ (D) ऊष्म
13. 'बाह्यप्रयत्न' 'श्वास' का दूसरा नाम क्या है ?
    (A) अघोष (B) घोष (C) नाद (D) संवार
14. बाह्यप्रयत्न 'नाद' का दूसरा नाम है—
    (A) अघोष (B) घोष (C) श्वास (D) संवार

15. 'श' का ध्वनि-वर्ग है—
(A) पार्श्विक (B) स्पर्श (C) संघर्षी (D) स्पर्शसंघर्षी

16. 'अन्तस्थ' का दूसरा नाम है—
(A) स्वर (B) अर्धस्वर (C) पूर्णस्वर (D) उत्क्षिप्त

17. 'पाणिनीय-शिक्षा' में ध्वनियाँ कितने वर्गों में विभक्त हैं ?
(A) 5 (B) 10 (C) 9 (D) 4

18. 'क्' का घोष रूप है—
(A) स् (B) द् (C) ख् (D) ग्

19. 'अ' कौनसा स्वर है ?
(A) वर्तुलस्वर (B) पश्चस्वर (C) केन्द्रीयस्वर (D) अग्रस्वर

20. 'ऊ' कौनसा स्वर है ?
(A) अग्र (B) पश्च (C) केन्द्रीय (D) अर्धविवृत

21. 'ऐ' कौनसा स्वर है ?
(A) अर्धविवृत (B) विवृत (C) संवृत (D) अर्धसंवृत

22. 'ओ' कौनसा स्वर है ?
(A) संवृत (B) अर्धसंवृत (C) अर्धविवृत (D) विवृत

23. 'ई' से संकेति स्वर है—
(A) वर्तुल (B) केन्द्रीय (C) पश्च (D) अग्र

24. 'ल्' किस वर्ग का है ?
(A) पार्श्विक (B) स्पर्श (C) संघर्षी (D) अर्धस्वर

25. 'ग्रिम-नियम' के अनुसार घोषमहाप्राण का परिवर्तित रूप है—
(A) अघोषमहाप्राण (B) घोष अल्पप्राण
(C) अघोषअल्पप्राण (D) संघर्षी अघोष महाप्राण

26. 'ग्रिम-नियम के अनुसार निम्न-जर्मन के 'Book' का उच्च जर्मन में परिवर्तित स्वरूप है—
(A) BOOT (B) FOOT (C) BUCH (D) BUSH

27. 'ग्रिम' मत में निम्न जर्मन 'THREE' का उच्च जर्मन में परिवर्तित रूप है—
(A) DREE (B) THREI (C) THRI (D) DREI

28. 'ग्रासमन' नियम के अनुसार संस्कृत–दधामि तथा बभार का मूल-भारोपीय रूप रहा होगा—
(A) धधामि/भभार (B) ददामि/बबार (C) दाधामि/बाभार (D) इनमें से कोई नहीं

29. 'फेर्नर' के अनुसार 'शतम्' का गोथिक में परिवर्तित रूप है—
(A) शादम् (B) सुन्द (C) हुन्द (D) हुतम्

30. 'खरोष्ठी-लिपि' का प्राचीनतम लेख कहाँ प्राप्त हुआ है ?
(A) मनसेरा (B) मुर्सिदाबाद (C) वाराणसी (D) छत्तीसगढ़

31. प्राचीन 'नागरी-लिपि' ब्राह्मी लिपि की किस शैली से विकसित है ?
(A) दक्षिणी (B) उत्तरी (C) पूर्वी (D) पश्चिमी

32. प्राचीन 'नागरी-लिपि' की किस शैली से बँगला-लिपि विकसित हुई ?
(A) दक्षिणी (B) उत्तरी (C) पूर्वी (D) पश्चिमी

33. 'रोमन-लिपि' क्या है ?
(A) चित्रलिपि (B) शून्यलिपि (C) भावलिपि (D) ध्वनिलिपि

34. 'अरवी-लिपि' किस लिपि से उद्भूत मानी जाती है ?
(A) सामी (B) यूरोपीय (C) चीनी (D) भारतीय

35. 'यूरोपीय-लिपियाँ' किसकी रूपान्तर हैं ?
(A) चीनीलिपि (B) ग्रिकलिपि (C) सामीलिपि (D) भारतीय लिपि

36. अन्तर्राष्ट्रीय-ध्वन्यात्मक-लिपिचिन्ह बनाने में किसका विशेष योगदान है ?
(A) सुनीति चटर्जी (B) कार्ल वर्नर (C) डेनियल जोन्स (D) याकोब ग्रिम

37. 'विवृत' किसकी संज्ञा है ?
(A) अन्तस्थ (B) स्पर्श (C) पारिपार्श्विक (D) स्वर

38. 'ऐ' का ह्रस्व स्वर होता है—
(A) ए (B) इ (C) अ (D) कोई नहीं

39. 'माध्यन्दिनि-शिक्षा' के अनुसार ट वर्गीय ध्वनियों से भिन्न ध्वनियों से युक्त 'ष' का उच्चारण होता है—
(A) ख् (B) श् (C) स् (D) ट्

40. 'अघोष-दन्त्य-संघर्षी' व्यञ्जन है—
(A) ग् (B) स् (C) च् (D) फ्

41. अंग्रेजी के e वर्ण का उल्टा आकार (ə) किसका संकेतक है ?
(A) मान स्वर (B) अर्ध स्वर (C) केन्द्रीय स्वर (D) संयुक्त स्वर

42. 'संस्कृत के 'भरसि' का अवेस्ता रूप है—
(A) भआसि (B) बारासी (C) भरहि (D) बरहि

43. अवेस्ता 'ववइति' का संस्कृत रूप है—
(A) भवति (B) ब्रवीति (C) वह्नीति (D) वदति

44. वर्णमाला रहित लिपियाँ हैं—
(A) चीनी/क्रीटी (B) चीनी/रोमन
(C) सिन्धुघाटी/खरोष्ठी (D) ब्राह्मी/खरोष्ठी

45. 'मक्का-मदीना' में विकसित अरबी लिपि का नाम है—
(A) कूफी (B) नस्खी (C) हिब्रू (D) आर्मेइक

46. 'अरवी-लिपि' में कुल कितने अक्षर हैं ?
(A) 35 (B) 56 (C) 28 (D) 49

47. 'उर्दू-भाषा' की लिपि है—
(A) हिब्रू (B) सामी (C) यूनानी (D) अरबी

48\. 'ग्रीक-लिपि' में कितने चिन्ह हैं ?
(A) 24 (B) 12 (C) 50 (D) 45

49\. 'एत्रुस्कन' भाषा से लैटिन में कितने अक्षर लिए गए हैं ?
(A) 24 (B) 21 (C) 10 (D) 15

50\. 'रोमन-लिपि' में ग्रीक से कौनसे दो अक्षर लिए गए हैं ?
(A) b, c (B) e, f (C) Y, Z (D) t, u

51\. बौद्धग्रन्थ 'ललितविस्तर' में कितनी लिपियों का नाम है ?
(A) 50 (B) 44 (C) 54 (D) 64

52\. जैनग्रन्थ 'समवामांग-सूत्र' में कितनी लिपियों का नाम है ?
(A) 18 (B) 64 (C) 15 (D) 22

53\. प्रो. व्यूलर के मत में ब्राह्मी लिपि में कितने अक्षर थे ?
(A) 50 (B) 41 (C) 34 (D) 24

54\. 'वट्टलुत्तु' किस लिपि का घसीट रूप है ?
(A) मध्यप्रदेशी (B) तेलुगू (C) तमिल (D) कलिंग

55\. आधुनिक 'गुरुमुखी-लिपि' किस लिपि से निकली है ?
(A) कुटिल (B) खरोष्ठी (C) नागरी (D) शारदा

56\. 'नेपाली-भाषा' की लिपि है—
(A) नेवारी (B) वंगाली (C) असमियाँ (D) नागरी

57\. "A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a Social group co-operates." यह किसकी परिभाषा है ?
(A) Bloch & Trager (B) Bloomfield
(C) P.D. Gune (D) Jesperson

58\. 'De Saussure' के अनुसार, भाषा के किस पक्ष का नाम Language है ?
(A) सामाजिक (B) सार्वभौमिक (C) वैयक्तिक (D) यादृच्छिक

59\. "उच्चरित ध्वनि-संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्व अभिव्यक्ति भाषा है"-यह किसका मत है ?
(A) भोला शंकर व्यास (B) देवेन्द्रनाथ शर्मा
(C) कामता प्रसाद गुरु (D) डा. जे. जी. रटाटे

60\. भाषाओं के वर्गीकरण का श्रेय किसको है ?
(A) T. Burrow (B) Otto Jesnerson
(C) F. Schlegel (D) L. Bloomfield

61\. 'अंग्रेजी-भाषा', भारोपीय परिवार की किस शाखा से सम्बद्ध है ?
(A) इटालिक (B) केल्टिक (C) ग्रीक (D) जर्मनिक

62\. 'अवेस्ता' भारोपीय-परिवार की किस शाखा से सम्बद्ध है ?
(A) भारत-इरानी (B) ग्रीक (C) हित्ती (D) तोखारी

63. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का काल है—
(A) 500 B.C. to 1000 A.D. (B) 600 B.C. to 500 A.D.
(C) 1500 B.C. to 500 B.C. (D) 1000 A.D. to 1500 A.D.

64. मध्यकालीन भारतीय-आर्यभाषा का काल माना गया है—
(A) 1500 B.C. to 500 B.C. (B) 1000 B.C. to 100 A.D.
(C) 500 A.D. to 1000 A.D. (D) 500 B.C. to 1000 A.D.

65. आधुनिक भारतीय-आर्यभाषा का काल माना गया है—
(A) 1000 A.D. से अब तक (B) 500 A.D. to 1000 A.D.
(C) 1 A.D. to 1000 A.D. (D) 1000 A.D. to 1500 A.D.

66. वैदिक-संस्कृत के साथ अत्यधिक साम्य रखने वाली इरानी-भाषा है—
(A) पश्तो (B) फारसी (C) पहलवी (D) अवेस्ता

67. केवल वैदिक-संस्कृत में पाया जाने वाला लकार है—
(A) लट् (B) लृङ् (C) लुट् (D) लेट्

68. 'पालि-भाषा' में यह सन्धि नहीं है—
(A) विसर्ग (B) स्वर (C) व्यञ्जन (D) अनुस्वार

उत्तरमाला

3.1. व्याकरण

1. (C)	2. (D)	3. (D)	4. (C)	5. (B)	6. (B)	7. (C)	8. (D)
9. (D)	10. (B)	11. (C)	12. (C)	13. (D)	14. (B)	15. (D)	16. (C)
17. (A)	18. (A)	19. (D)	20. (B)	21. (C)	22. (C)	23. (A)	24. (C)
25. (B)	26. (D)	27. (A)	28. (B)	29. (A)	30. (B)	31. (D)	32. (D)
33. (C)	34. (D)	35. (B)	36. (A)	37. (B)	38. (C)	39. (D)	40. (A)
41. (C)	42. (B)	43. (D)	44. (C)	45. (D)	46. (A)	47. (B)	48. (D)
49. (C)	50. (D)	51. (A)	52. (D)	53. (B)	54. (D)	55. (C)	56. (D)
57. (B)	58. (A)	59. (C)	60. (D)	61. (D)	62. (B)		

3.2. भाषा-विज्ञान

1. (A)	2. (A)	3. (B)	4. (C)	5. (D)	6. (C)	7. (B)	8. (A)
9. (B)	10. (D)	11. (D)	12. (B)	13. (A)	14. (B)	15. (C)	16. (B)
17. (A)	18. (D)	19. (C)	20. (B)	21. (A)	22. (B)	23. (D)	24. (A)
25. (B)	26. (C)	27. (D)	28. (A)	29. (C)	30. (A)	31. (B)	32. (C)
33. (D)	34. (A)	35. (B)	36. (C)	37. (D)	38. (D)	39. (A)	40. (B)
41. (C)	42. (D)	43. (A)	44. (A)	45. (B)	46. (C)	47. (D)	48. (A)
49. (B)	50. (C)	51. (D)	52. (A)	53. (B)	54. (C)	55. (D)	56. (A)
57. (A)	58. (A)	59. (B)	60. (C)	61. (D)	62. (A)	63. (C)	64. (D)
65. (A)	66. (D)	67. (D)	68. (A)				

4 संस्कृत-साहित्य तथा काव्यशास्त्र
(Sanskrit Literature and Poetic)

4.1. संस्कृत-साहित्य

1. **रघुवंशम्**—महाकवि कालिदासकृत 'रघुवंशम्' समग्र संस्कृत-वाङ्मय में एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसके 19 सर्गों में सूर्यवंश के 31 राजाओं का वर्णन समाहित है। प्रारम्भिक नौ सर्गों में राम के चार पूर्वजों–दिलीप, रघु, अज तथा दशरथ का वर्णन है। 10 से 15 सर्ग तक रामचरित्र तथा 16 से 19वें सर्ग पर्यन्त राम के वंश का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में कालिदास की परिपक्व-प्रज्ञा तथा प्रौढ़ प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन होता है। इसमें महाकाव्य के सभी लक्षण घटित हो जाते हैं। यही कारण है कि आलंकारिकों ने 'रघुवंश' को लक्षित महाकाव्य का सर्वोत्तम निदर्शन माना है। महाकवि ने वैदर्भी रीति का आश्रय लिया है, जैसी कि उक्ति भी प्रचलित है–"**वैदर्भी रीति सन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते ॥**" प्रसाद गुण के साथ-साथ माधुर्य का भी अच्छा परिपाक हुआ है, यद्यपि ओज गुण का सर्वथा अभाव है। इसमें शृंगार, वीर, करुण तथा शान्त चारों रसों का सम्यक् प्रयोग हुआ है। यथा–अग्निवर्ण के विलास–वर्णन में–शृंगार; रघु, अज व राम के युद्ध प्रसंगों वीर रस; अज-विलाप में करुण रस तथा वाल्मीकि, वशिष्ठ व सर्वस्वत्यागी रघु के वर्णन में शान्तरस का प्राधान्य है। मुख्य रूप से संयोग शृंगार तथा विप्रलम्भ शृंगार का प्रयोग समुचित रूप में प्रदर्शित किया गया है। कथानक का मूल श्रोत–'रामायण' है। जहाँ तक इस ग्रन्थ के रचनाकाल का प्रश्न है, विद्वानों में मतैक्य नहीं है, परन्तु अधिकांश विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि ई. पू. 150 से 475 ई. के बीच ही कालिदास का समय निर्धारित किया जा सकता है।

महाकवि कालिदास के जिस श्लोक पर रीझकर कवियों ने उन्हें **'दीपशिखा कालिदास'**, की उपाधि से अलंकृत किया है, वह रघुवंश महाकाव्य के ही इन्दुमती–स्वयम्वर में उल्लिखित है, जो इस प्रकार है–

"संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ, यं यं व्यतीयाय पतिवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥" रघुवंश / 6 / 67.

ध्यातव्य है कि 'रघुवंश' महाकाव्य का प्रारम्भ दिलीप के वर्णन से तथा समाप्ति अग्निवर्ण के वर्णन से होती है।

2. **मेघदूतम्**—महाकविकालिदासरचित 'मेघदूतम्' एक 'खण्डकाव्य' है, जिसे आधुनिक विद्वानों (खास करके मैक्डोनल) ने 'गीतिकाव्य' (Lyric) की संज्ञा दे रखी है। सम्पूर्ण ग्रन्थ दो भागों–पूर्वमेघ और उत्तरमेघ; में विभक्त है; जिसमें बल्लभदेव की टीका के अनुसार कुल 111 पद्य हैं जबकि आचार्य मल्लिनाथ ने अपनी टीका में कुल 118 पद्य दिए हैं; जिनमें एक विरही यक्ष के द्वारा, विरहानलसन्तप्त अपनी कान्ता (प्रिया) के पास मेघ के द्वारा सन्देश भेजने की एक मौलिक कल्पना की गई है, यद्यपि कुछ लोग, 'मेघदूत' की उपजीव्यता का श्रेय 'रामायण' को देते हैं।

पूर्वमेघ में–रामगिरि आश्रम में स्थित अभिशप्त यक्ष, आषाढ़ के प्रथम दिन आकाश में मेघ को देखकर विरह व्यथा से पीड़ित हो उठता है, और मेघ से प्रार्थना करता है कि–तुम मेरा सन्देश मेरी पत्नी के पास पहुँचा दो, इसी सन्दर्भ में वह रामगिरि से अलकापुरी पर्यन्त मार्ग का बहुत ही ललित शब्दों में वर्णन करता है । उत्तरमेघ में–यक्ष, अलकापुरी का अभिराम वर्णन करने के पश्चात् 'सन्देश कथन' करता है ।

सम्पूर्ण ग्रन्थ 'मन्दाक्रान्ता' छन्द में निवद्ध है; जो वियोग–शृंगार का एक अप्रतिम उदाहरण है । इस ग्रन्थ पर अव तक लगभग 20 भाषाओं में कुल 50 टीकाएँ–प्रटीकाएँ लिखी जा चुकी हैं । ध्यातव्य है कि–समस्यापूर्ति कलाकोविद 'जिनसेन' (आठवीं शताब्दी) ने स्वरचित 120 पद्यों वाले सम्पूर्ण मेघदूत को–जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवनवृत्त में परिवर्तित कर दिया, जो आज भी एक तिव्वती अनुवाद के रूप में तञ्जूर (Tanjur) में विद्यमान है ।

3. **किरातार्जुनीयम्** —महाकवि भारवि (600 ई. लगभग) की एकमात्र कृति 'किरातार्जुनीयम्' 18 सर्गों का एक महाकाव्य है; जिसकी गणना 'वृहत्त्रयी' के अन्तर्गत की जाती है । ग्रन्थ का शुभारम्भ "श्री" शव्द से होता है, तथा प्रत्येक सर्ग के अन्त में "लक्ष्मी" शव्द का प्रयोग किया गया है । कथानक का आधार 'महाभारत-वनपर्व' है । इसमें अस्त्र-प्राप्ति के लिए तपस्या करने वाले अर्जुन और किराताधिपति के रूप में भगवान् शङ्कर का परस्पर युद्ध होता है । इन दोनों के इस युद्ध की प्रधानता के कारण ('प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति') ही इस ग्रन्थ का नाम 'किरातार्जुनीयम्' पड़ा है, जैसा कि इस शव्द के विग्रह से स्वतः स्पष्ट है–**'किरातश्च अर्जुनश्च किरातार्जुनौ (द्वन्द्वः), किरातार्जुनौ अधिकृत्य कृतं काव्यं किरातार्जुनीयम् ।'** यहाँ पर 'छ' प्रत्यय होकर **(किरातार्जुन + 'छ')** **"आयन्-एय्-ईन-ईय्-इयः फ-ढ-ख-घां प्रत्ययादीनाम्"** सूत्र से 'छ' को ईय् आदेश होकर 'किरातार्जुनीय' शव्द वना है ।

'भारवि' 'वैदर्भी-रीति' के कवि हैं । शैली ओजपूर्ण व अर्थगाम्भीर्य से युक्त है । इसे अलंकृत कलापक्ष-प्रधान-शैली कहा जा सकता है । ग्रन्थ का मुख्य रस–'वीर' है तथा अलङ्कारों में उपमा, श्लेष, यमक तथा अनुप्रास आदि के प्रयोग का सुन्दर समन्वय है । जिस श्लोक के कारण विद्वानों ने इन्हें **'आतपत्रभारवि'** की उपाधि से विभूषित किया, वह इस प्रकार है—

"उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादुष्मा,–दुद्धूतः सरसिजसम्भवः परागः ।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादु, आधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ॥" 5 / 39 //

महाकवि भारवि की सवसे प्रधान विशेषता उनकी शब्दयोजना व अर्थगाम्भीर्य है (–'भारवेऽर्थगौरवम्) कहीं-कहीं तो चित्रकाव्य के प्रदर्शन में इतने श्लिष्ट व चित्रश्लोकों का प्रयोग हुआ है कि रस की धारा ही अवरुद्ध हो गयी है । 15वाँ सर्ग तो पूर्णतः चित्रकाव्य ही है । कुछ पद्यों में प्रत्येक पंक्ति उल्टे तरफ से ठीक उसी प्रकार से पढ़ी जाती है, जैसे–आगे वाली पंक्ति या पूरा पद्य ही उल्टा पढ़ा जाने पर अगले पद्य के समान हो जाता है । कुछ पद्य ऐसे भी हैं कि उन्हें चाहे उल्टा पढ़िए या सीधा; उनके अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । कुछ पद्यों में केवल दो ही तथा कुछ में तो केवल एक ही व्यञ्जन का प्रयोग हुआ है । यथा–

"न नोनन्नुनो नुन्नोनो नाना नानानना ननु । नुन्नोऽनुन्नो न नुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥"
॥ किरातार्जुनीयम् ॥ 15 / 14 //

4. **शिशुपालवधम्**—'शिशुपालवधम्' महाकवि **'घण्टा माघ'*** (675 ई. लगभग) की एकमात्र कृति है, जिसकी गणना 'वृहत्त्रयी' के अन्तर्गत की जाती है । 20 सर्गों व 1650 छन्दों से समन्वित इस ग्रन्थ की उपजीव्यता का श्रेय 'महाभारत' को प्राप्त है । किरातार्जुनीयम् व शिशुपालवधम् के

* उदयति विततो ध्र्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥ 4 / 20 //

तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि महाकवि 'माघ' काफी हद तक 'भारवि' के अनुगामी जान पड़ते हैं । छन्द योजना में तो शायद एक भी ऐसा प्रचलित छन्द नहीं होगा, जिसका माघ ने प्रयोग न किया हो । भारवि के 16 छन्दों के मुकाविले में इन्होंने कुल 22 छन्दों का प्रयोग किया है ।

'किरातार्जुनीयम्' के ही समान प्रस्तुत ग्रन्थ का भी प्रारम्भ "श्री" शब्द से होता है । द्वारिकापुरी में भगवान् श्रीकृष्ण के राजप्रासाद में देवर्षि नारद का आगमन होता है, जो इन्द्र के कथनानुसार पापाचारी चेदिनरेश 'शिशुपाल' के वध की प्रेरणा देते हैं । वलरामजी तत्काल ही शिशुपाल पर चढ़ाई करने की वात कहते हैं; परन्तु उद्धवजी उनकी वात का विरोध करते हुए, किसी दूसरे वहाने से उसका वध करने की वात कहते हैं । उद्धवजी की वात मान ली जाती है । महाराज युधिष्ठर राजसूय यज्ञ का आयोजन करते हैं । वहाँ शिशुपाल भी आता है । यज्ञ में श्रीकृष्ण की अग्रिम पूजा करके सम्मानित किया जाता है । शिशुपाल इसका विरोध करते हुए श्रीकृष्ण को गालियाँ देने लगता है । श्रीकृष्णजी अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा के अनुसार उसकी सौ गालियाँ सहन करते हैं, तदनन्तर सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का सिर उसके धड़ से अलग कर देते हैं और शिशुपाल के शरीर से एक तेजपुंज निकलकर भगवान् श्रीकृष्ण में ही समाहित हो जाता है ।

यहाँ पर अंगीरस वीर है तथा शृंगार, हास्यादि अङ्ग रस हैं । शैली, माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुण समन्वित है । अलङ्कार योजना में उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति तथा अर्थान्तरन्यास प्रमुख हैं । अनुप्रास की योजना में माघ; भारवि के ही जुड़वाँ भाई जान पड़ते हैं । चित्रकाव्य-निरूपण की इनकी शैली-ठीक भारवि के ही समान है । इन्होंने एक पद्य ऐसा लिखा है, जिसमें मात्र एक ही वर्ण 'दकार' का प्रयोग किया है–

"दाददो दुद्दुदुद्दी दादादो दूददीददोः । दुदूदादं ददे दुदुदे ददाऽददददोऽददः ॥"

शिशु / 19 / 144

पाण्डित्य-प्रदर्शन के क्षेत्र में महाकवि 'माघ' का अपना विशिष्ट स्थान है । लगता है कि नये शब्दों के प्रयोग की पच्चीकारी का उन्हें एक व्यसन था । एक कहावत भी है–**"नवसर्गे माघे नव शब्दो न विद्यते ।"** वस्तुतः प्रस्तुत महाकाव्य में कालिदास के समान काव्यसौन्दर्य, भारवि के समान अर्थगाम्भीर्य, दण्डी के समान पदलालित्य तथा भट्टि के समान व्याकरणपरख इन चारों का यदि कहीं एकत्र समन्वित रूप है, तो वह 'शिशुपालवधम्' ही है ।

5. **नैषधीयचरितम्**—महाकवि श्रीहर्ष (12वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) विरचित 'नैषधीयचरतिम्' की गणना 'वृहत्त्रयी के अन्तर्गत की जाती है । सम्पूर्ण महाकाव्य 22 सर्गों में निबद्ध है, जिसकी उपजीव्यता का श्रेय 'महाभारत-नलोपाख्यान' को प्राप्त है । इनकी शैली–वैदर्भी तथा गौड़ी रीति समन्वित है तथा प्रसाद एवं ओज गुण का सम्यक् परिपाक हुआ है । मुख्य रस शृंगार (संयोग विप्रलम्भ) है, जवकि वीर, करुण, हास्यादि अङ्गभूत हैं । अलङ्कारयोजना के क्षेत्र में 'श्लेष' का वाहुल्य है । वस्तुतः इस ग्रन्थ में प्रयुक्त लगभग प्रत्येक पद शिलष्ट है, परन्तु उनकी पहचान करना आसान नहीं है । उत्प्रेक्षा व अतिशयोक्ति भी महाकवि को विशेष प्रिय है ।

इस ग्रन्थ के नायक व नायिका के रूप में महाकवि ने क्रमशः 'नल' व 'दमयन्ती' को प्रस्तुत किया है, जवकि प्रतिनायक के रूप में इन्द्र, यम, अग्नि तथा वरुण हैं, जो आगे चलकर नल के सहायक सिद्ध होते हैं । अन्य सामान्य पात्रों में विदर्भनरेश भीम, स्वयम्बर में आए हुए अनेक राजा, दमयन्ती की सखियाँ, देवी सरस्वती तथा दूतकार्य में कुशल पक्षी विशेष 'हंस' है । इस प्रकार पर मानव, देव व मानवेतर प्राणियों का मृदुल सामञ्जस्य समन्वित है । परम्परानुसार नल सद्वंशोत्पन्न कुलीन क्षत्रिय हैं, तथा दमयन्ती एक कुलीना नायिका है । ध्यातव्य है कि प्रतिपाद्य विषय के अतिरिक्त महाकवि ने शिलष्ट पदों के द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में व्याकरण, बौद्ध, चार्वाक दर्शनों, षड्आस्तिक दर्शनों, सामुद्रिकशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, प्राणिविज्ञान, शिल्पविज्ञान तथा वेदांग पुराणेतिहासादि अन्यान्य विषयों का सांकेतिक निरूपण किया है ।

6. **बुद्धचरितम्** —बौद्ध दार्शनिक महाकवि अश्वघोष (प्रथम शताब्दी लगभग) रचित 'बुद्धचरितम्'; भगवान् बुद्ध के जीवन के महत्तर विषय से सम्बद्ध 28 सर्गों का एक महाकाव्य-ग्रन्थ है । वस्तुतः महाकवि अश्वघोष रचित मात्र 13 सर्ग ही उपलब्ध होते हैं । 19वीं शताब्दी के 'अमृतानन्द' ने इसमें चार सर्ग जोड़ दिए, इस प्रकार कुल 17 सर्ग उपलब्ध हैं । म. म. हरप्रसाद शास्त्री को यह ग्रन्थ चौदहवें सर्गपर्यन्त उपलब्ध हुआ है, यद्यपि बुद्धचरित के चीनी व तिब्बती भाषान्तर में 28 सर्ग उपलब्ध हैं । श्री रामचन्द्र दास शास्त्री ने 15 से 28वें सर्ग तक इसका छन्दोबद्ध अनुवाद किया है, जो 1988 में चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी से प्रकाशित भी है ।

'बुद्धचरितम्' प्रथम सर्ग में भगवान् बुद्ध का जन्म; द्वितीय सर्ग में अन्तःपुर विहार; तृतीय में संवेगोत्पत्ति; चतुर्थ में स्त्रीनिवारण; पञ्चम में अभिनिष्क्रमण; षष्ठम में छन्दकविसर्जन; सप्तम में तपोवन-प्रवेश; अष्टम में अन्तःपुर विलाप; नवम में कुमारान्वेषण; दशम में बिम्बिसारागमन; एकादश में कामनिन्दा; द्वादश में अराड-दर्शन; त्रयोदश में कामविजय तथा चतुर्दश सर्ग में बुद्धत्व-प्राप्ति का निरूपण है । शेष 15 से 28वें सर्ग पर्यन्त क्रमशः बुद्ध का काशीगमन, शिष्यों को दीक्षा दान, महाशिष्यों का संन्यास लेकर जाना अनाथपिण्डद की दीक्षा, पिता-पुत्र का समागम, जेतवन की स्वीकृति, संन्यास का झरना, आम्रपाली के उपवन में, आयु का निर्णय, लिच्छिवियों पर अनुकम्पा, निर्वाण मार्ग में, महापरिनिर्वाण, निर्वाण की प्रशंसा तथा धातुविभाजन निरूपित किया गया है ।

भगवान् बुद्ध-सम्बद्ध उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त महाकवि अश्वघोष ने वैदिक वाङ्मय, पुराणों तथा शास्त्रों का भी समुचित उपयोग किया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में–भृगु-अंगिरा-शुक्र-बृहस्पति (1/41); वाल्मीक-च्यवन-अत्रि आत्रेय (1/43); कुशिक-सगर (1/44); पुरन्दर-गौतम-अहल्या (4/72); अगस्त्य-रोहिणी-लोपामुद्रा (4/73); उतथ्य-ममता-भरद्वाज (4/74); जुह्वती-बुध-चन्द्रमा (4/75); काली-पराशर (4/76); कपिञ्जलाद-वशिष्ठ (4/77) इत्यादि का भी उल्लेख हुआ है ।

7. **दशकुमारचरितम्**—आचार्य दण्डी (600 ई. लगभग) कृत 'दशकुमारचरितम्' एक उत्कृष्ट कथा ग्रन्थ है । वर्तमान समय में दशकुमारचरितम्–तीन भागों में–[(i) पूर्वपीठिका (ii) दशकुमार चरित तथा (iii) उत्तरपीठिका] उपलब्ध होता है । अधिकांश विद्वानों का मानना है कि इनमें (ii) दशकुमार चरित ही आचार्य दण्डी की रचना है; जिसमें कुल 8 उच्छवास हैं । कीथ महोदय के अनुसार–इस कथा ग्रन्थ का आधार गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' है । कथा का प्रारम्भ पुष्पपुरी (पटना) के राजा 'राजहंस' से होता है, जो मानसार से पराजित हो जाने के कारण वन में चले जाते हैं, वहीं राजा के राजवाहन नामक पुत्र होता है तथा अन्य मन्त्रियों के भी पुत्र होते हैं । ये दशों राजकुमार बड़े होने पर यात्रा के निमित्त परदेश जाते हैं जो भाग्यवशात् अलग-अलग देशों में पहुँच जाते हैं तथा विचित्र संकटपूर्ण जीवन बिताते हैं । राजवाहन से पुनः भेट होने पर सभी आपबीती कहानी कह सुनाते हैं । इन्हीं कहानियों (घटनाओं) का समन्वित रूप दशकुमारचरित कथा है । प्रस्तुत ग्रन्थ में आचार्य दण्डी ने दस राजकुमारों के पर्यटन, अनुभव तथा विचारादि साहसिक कार्यों के माध्यम से सामान्य जीवन की कथाओं व समाज की दूषित दशा का; माधुर्यव्यञ्जक वर्णों से युक्त समासरहित या स्वल्पसमासों वाली ललित वैदर्भी रीति में सरल-सरस-आलङ्कारिक व प्रासंगिक प्रणाली में विवेचन किया है । इस उपदेशात्मक नीतिशास्त्रीय ग्रन्थ की मुख्य रोचकता इसकी प्रतिपाद्य वस्तु में है; जिसमें निम्नस्तरीय जीवन और वृत्तान्त का, ऐन्द्रजालिक व मायावी साधुओं का, राजकुमारियों व विपन्न राजाओं का, वेश्याओं, चोरों व उन अनुरक्त प्रेमियों का जो स्वप्न में अथवा भविष्यवाणी द्वारा अपने प्रेमी को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित होते हैं; इन तथ्यों का स्पष्ट व चित्रात्मक वर्णन पाया जाता है । यहाँ पर देव, पुरोहित आदि नैतिक विचारों की प्रायः उपेक्षा की गई है । एक राजकुमार दूसरे की पत्नी को हथियाने के प्रयत्न में तथा अभीष्ट-प्राप्ति हेतु किए गए प्राणिवध में अपने कृत्य के लिए नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर अपने को आश्वस्त करता है । धर्म, अर्थ, काम इन त्रिविध पुरुषार्थों में से किसी एक का परित्याग न्यायसंगत है, यदि उससे अन्य दो की प्राप्ति में सहायता मिल रही हो ।

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ-राजकुमारों के साहसिक कार्यों में, अभीष्ट-प्राप्ति हेतु उनके दृढ़ निश्चय में, स्वप्नयुक्त साधनों की नैतिकता के प्रति उनकी विचारहीन उपेक्षा में अभिव्यक्त सूक्ष्म हास्य से व्याप्त है । इसके प्रमुख पात्रों के रूप में–राजवाहन, पुष्पोद्भव, अर्थपाल, वैश्रवण, सिन्दुदक्त, पद्मोद्भव, अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, प्रमति, विश्रुत, सोमदत्त, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त, कान्तिमती, तारावली, कामपाल, सुमति, सुमन्त्र, चण्डवर्मा, मातंग, सुरतमञ्जरी, राजहंस, मानसार, शाम्ब, मरीचि, वसुपालित, काममंजरी, कान्तक, शृंगालिका, अनन्तवर्मा, वसुरक्षित, विहारभद्र, वसुन्धरा, चन्द्रसेना, विकटवर्मा, कल्पसुन्दरी, धूमिनी, गोमिनी, निम्ववती, नितम्ववती इत्यादि उल्लेखनीय हैं । वस्तुतः आचार्य दण्डी की प्रस्तुत ग्रन्थ के सन्दर्भ में मुख्य विशेषता पात्रों का चयन व उनका चरित्र-चित्रण है, जिसके माध्यम से सौन्दर्य, ध्वनि व रस के सामंजस्य की प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति हुई है ।

8. **हर्षचरितम्**—महाकवि वाणभट्ट (सातवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध) कृत 'हर्षचरितम्' एक आदर्श आख्यायिका ग्रन्थ है । सम्पूर्ण ग्रन्थ आठ उच्छवासों में विभक्त है, जिसमें प्रारम्भिक तीन उच्छ्वासों में बाणभट्ट की अपनी आत्मकथा वर्णित है तथा शेष 5 उच्छवासों में हर्ष के जीवन के प्रारम्भिक अंशों का वर्णन मिलता है ।

प्रथम-उच्छ्वास में अपने वंश के अवतरण तथा अपने असंयत-यौवन-पर्यन्त अपनी जीवनी का वर्णन करते हैं । **द्वितीय-उच्छ्वास** में संदेश की प्राप्ति तथा राजसन्निवेश के लिए वाण की यात्रा का वर्णन है । **तृतीय-उच्छ्वास** में वाण के अपने घर वापस लौटने पर दूसरे लोगों की हर्षचरित सुनने की प्रार्थना को स्वीकृति देने का वर्णन है । तदनन्तर हर्ष के वंश, उनकी राजधानी स्थाणीश्वर तथा प्रसंगप्राप्त पुरावृत्ताख्यानगत नृपति पुष्यभूति की प्रशस्ति व उनके मित्र एवं साहसिक कार्यों में उनके साथी भैरवाचार्य का प्रयत्न-साध्य वर्णन मिलता है । **चतुर्थ-उच्छ्वास** में पुष्यभूति से उत्पन्न यशस्वी राजाओं के अस्पष्ट निर्देश के अनन्तर प्रभाकर वर्धन के महान् कार्यों का संक्षिप्त वर्णन है; जबकि कथा प्रवाह की तीव्रता में प्रथमतः महाराज्ञी के प्रथम शिशु की उत्पत्ति की अवस्था, राज्यवर्द्धन, हर्षवर्द्धन व राज्यश्री के जन्मोत्सव तथा ग्रहवर्मा मौखरी के साथ राज्यश्री के विवाह का निरूपण किया गया है । **पञ्चम-उच्छ्वास** में राज्यर्द्धन का हूणों पर आक्रमण व हर्ष के लौटने पर पिता की गम्भीर वीमारी के चलते मृत्यु तथा माता के द्वारा आत्महत्या करने की वात सुनकर अत्यन्त दुःखी होना । **षष्ट-उच्छ्वास** में मालवनृपति के द्वारा राज्यश्री के प्रति ग्रहवर्मा की हत्या व राज्यश्री के बन्दी वनाए जाने का समाचार है । तत्पश्चात् 10,000 अश्वारोहियों के साथ राज्यवर्द्धन के द्वारा मालव नरेश पर चढ़ाई करने का वर्णन है । मालवनृपति पर राज्यवर्द्धन की विजय के साथ-साथ गौड़नृपति के द्वारा राज्यवर्द्धन की हत्या के समाचार से हर्षवर्द्धन के शोक की गम्भीरता और भी बढ़ जाती है और वह स्कन्दगुप्त के परामर्श के अनुसार युद्ध की तैयारी में लग जाते हैं । **सातवें उच्छ्वास** में अत्यन्त अव्यस्था के कारण उत्पन्न विविध समस्याओं व **हर्ष के दिग्विजय** का विवरण है । आसाम के राजा के एक राजदूत का भी उल्लेख मिलता है, जो हर्ष के सामने एक अत्यन्त सुन्दर छत्र का उपहार उपस्थित करता है । **अष्टम-उच्छ्वास** में हर्ष को सूचना मिलती है कि उसकी बहन 'राज्यश्री' कारागृह से भाग कर कहीं विन्ध्य प्रदेश के जंगलों में छिपी हुई है । हर्ष तुरन्त उसके अन्वेषण में लग जाता है, और अग्निप्रवेश करने को उद्यत 'राज्यश्री' को इस शर्त पर घर वापस लाता है कि लक्ष्यपूर्ति के अनन्तर वह भी राज्यश्री के साथ काषाय वस्त्र ग्रहण कर संन्यास ले लेगा । निशा के आगमन व राज्यश्री की पुनः प्राप्ति के साथ-साथ पुस्तक एकाएक अपूर्ण रूप में ही समाप्त हो जाती है । अधिकांश विद्वानों का मत है कि किसी कारणवश ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया, परन्तु कुछ विद्वान 'राज्यश्री' की प्राप्ति को लक्ष्य मानकर ग्रन्थ की पूर्णता स्वीकार करते हैं ।

9. **कादम्बरी**—महाकवि बाणभट्ट विरचित कादम्बरी, केवल बाण की ही नहीं अपितु समग्र संस्कृत-वाङ्मय की सर्वोत्कृष्ट गद्य रचना है । यह कथा ग्रन्थ है, जिसकी उपजीव्यता का श्रेय गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' को प्राप्त है । इसकी प्रधान नायिका कादम्बरी है, जिसका उल्लेख कथा के मध्य भाग में हुआ है । महाश्वेता की प्रणयकथा को, कादम्बरी की प्रणयकथा की भूमिका कहा जा

सकता है । यह कथा चन्द्रापीड तथा पुण्डरीक के तीन जन्मों से सम्वन्ध रखती है ।* शूद्रक (जो पूर्वजन्म में चन्द्रापीड था) को नायक जानकर अद्‌भुत रस का संचार हो उठता है । वैशम्पायन (पुण्डरीक = शुक) की माता का नाम लक्ष्मी (चाणलकन्या) है, जो शुक को लाकर शूद्रक के हाथों में सौंपती है । यह शुक ही पूर्वजन्म का पुण्डरीक है, तथा इसके साथी कपिंजल ने ही शापवशात् इन्द्रायुध घोड़े के रूप में जन्म लिया है । इस इन्द्रायुध अश्व के विशिष्ट वर्णन के ही कारण बाण को कवियों ने **"तुरंगवाण"** की पदवी से अलंकृत किया । इस ग्रन्थ का मुख्य रस शृंगार है, गद्य की शैली पाञ्चाली है, जिसमें अर्थों के अनुरूप ही शव्दों का गुंफन किया गया है । ध्यातव्य है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है । इसमें से पूर्वार्द्ध ही वाण की रचना माना जाता है । शेष भाग वाणभट्ट के पुत्र पुलिनभट्ट ने पूरा किया । महाकवि ने प्रस्तुत कथा का मुख्य आख्यान वस्तुतः जावालिमुनि के मुख से कहलाया है, जो अपनी तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि से तीनों कालों का ज्ञान रखते हैं । इस कथा के प्रमुख पात्रों के रूप में–पुण्डरीक, कपिञ्जल, महाश्वेता, शूद्रक, शुक, जावालि, हारीत, चाण्डालकन्या-लक्ष्मी, जरठशवर, तारापीड, शुकनास, विलासवती, चन्द्रापीड, वैशम्पायन, इन्द्रायुध, पत्रलेखा, कादम्वरी, किन्नरयुगल, गन्धर्व, मेघनाद, द्रविडधार्मिक, वैमानिक, श्वेतकेतु इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जवकि विशिष्ट स्थान में अच्छोदसरोवर, हेमकूट, विदिशा तथा उज्जयिनी का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है । कथा का प्रारम्भ विदिशा के राजा शूद्रक से तथा अन्त चन्द्रापीड व कादम्वरी के पुनर्मिलन से होता है ।

10. **स्वप्नवासवदत्तम्**—भासकृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' इतिहास-प्रसिद्ध एक उत्कृष्ट 'नाटक' ग्रन्थ है । आचार्य वलदेव उपाध्याय ने विभिन्न पुष्ट साक्ष्यों के आधार पर इस ग्रन्थ का रचनाकाल ई. पू. 500 से 400 के वीच स्वीकार किया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में भास की नाट्यकुशलता का चूड़ान्त निदर्शन होता है । 'स्वप्नवासवदत्तम्' इस शीर्षक का रहस्य यह है कि एक दिन राजा उदयन का वासवदत्ता के साथ स्वप्न-मिलन होता है । यही कारण है कि भास ने इसे 'स्वप्नवासवदत्तम्' इस शीर्षक से अलंकृत किया है ।

शृंगार-रस-प्रधान प्रस्तुत नाटक कुल छः अङ्कों में विभक्त है । नायक वत्सराज उदयन तथा प्रधान नायिका वासवदत्ता है । राजा प्रद्योत के महल से वासवदत्ता का हरण करके लाने के पश्चात् राजा उदयन, काम-क्रीड़ा में मग्न हो जाता है; फलतः राज्य के क्रिया-कलापों से वेसुध हो जाता है; जिससे उसके शत्रुभूत आरुणि को आक्रमण करने का अवसर मिल जाता है; परन्तु वत्सराज उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण अपनी सूझ-वूझ व राजनीतिक कुशलता से आरुणि को परास्त करने के लिए मगध के राजा दर्शक की सहायता लेना चाहता है; एतदर्थ वह वासवदत्ता को अपने पक्ष में लेकर लावाणक में वासवदत्ता के जल मरने की झूठी खबर फैला देता है तथा उसे ले जाकर मगध के राजा दर्शक की लड़की पद्मावती के पास धरोहर के रूप में छोड़ आता है । तदनन्तर उदयन का दर्शक की पुत्री पद्मावती के साथ विवाह हो जाता है । एक दिन दैववशात् वासवदत्ता; सोये हुए राजा उदयन को पद्मावती समझ कर, राजा के बगल में लेट जाती है; परन्तु राजा को पहचान कर तुरन्त उठ वैठती है । राजा भी उसी समय स्वप्न में वासवदत्ता को देखता है, और उसकी स्मृति ताजी हो जाती है । वासवदत्ता लोकापवाद के भय से वहाँ से भागना चाहती है, परन्तु राजा जाग जाता है, और उसका पीछा करता है, लेकिन तव तक वासवदत्ता अदृश्य हो जाती है । षष्ठ अङ्क में रानी पद्मावती को वासवदत्ता का चित्र देखकर ध्यान आता है कि ऐसे ही रूप रंग वाली तो एक स्त्री यहीं रहती है । राजा उस स्त्री (वासवदत्ता) को लाने का आदेश देता है । वासवदत्ता पहचान ली जाती है तथा सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा जाता है; उधर उदयन का सेनापति रूमण्यवान् आरुणि को युद्ध में परास्त करता है । इस प्रकार इस नाटक का सुखमय अन्त होता है ।

---

* पुण्डरीक → वैशम्पायन → शुक ।। चन्द्रमा → चन्द्रापीड → शूद्रक ।।

प्रमुख पात्र

1. **उदयन**—वत्सराज 'उदयन' ही इस नाटक का नायक है, जो अत्यन्त रूपवान व वीणावादन की कला में निपुण है । यद्यपि राजा, वासवदत्ता को बहुत प्यार करता है, तथा उसके जल मरने की खबर पाकर स्वयं अग्नि प्रवेश करना चाहता है, परन्तु निःसन्तान होने के कारण किसी तरह दूसरी शादी करने पर राजी हो जाता है । इस प्रकार उदयन एक धीर ललित नायक सिद्ध होता है । **(निश्चिन्तोमृदुरनिशं मलापरो धीरललितः // साहित्यदर्पण //)**

2. **वासवदत्ता**—'वासवदत्ता' इस नाटक की प्रधान-नायिका है । वह उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की लड़की है । वत्सराज उदयन ने इसे क्षत्रिय परम्परानुसार विवाह से पूर्व ही पिता के घर से अपहृत कर लिया है । यह दूसरों के गुणों का बखान करने वाली एक सती नारी तथा एक आदर्श सौत (सपत्नी) है, जिसे पद्मावती से जरा भी ईर्ष्या नहीं है, तथा राजा के प्रति अगाध प्रेम भरा पड़ा है ।

3. **पद्मावती**—'पद्मावती' मगध नरेश दर्शक की बहन है, जो अत्यन्त सुन्दर युवती है । यह बुद्धिमती, सत्यव्रती तथा वासवदत्ता की ही भाँति एक आदर्श सौत है । यह राजा उदयन की दूसरी विवाहिता पत्नी है ।

4. **यौगन्धरायण** —'यौगन्धरायण' वत्सराज उदयन का मन्त्री है; जो बहुत बुद्धिमान् व नीतिनिष्णात् तथा स्वामिभक्त है ।

उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त 'वसन्तक' (राजा का साथी विदूषक है), रूमण्यवान् (उदयन का मन्त्री), अवन्तिका (छद्मवेशधारी वासवदत्ता), अंगारवती (प्रद्योत की पत्नी/वासवदत्ता की माँ), धात्री (पद्मावती की उपमाता), बसुन्धरा (वासवदत्ता की धात्री), विजया (वत्सराज की प्रतिहारी), तापसी (मगधराज के तपोवन में निवास करने वाली), मधुरिका, पद्मिनिका इत्यादि पात्रों की भी प्रस्तुत नाटक में प्रमुख भूमिका रही है । **ध्यातव्य है कि इस नाटक में नान्दी की योजना का अभाव पाया जाता है ।**

11. **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**—महाकवि 'कालिदास' कृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' संस्कृत-साहित्य की ही नहीं विश्वसाहित्य की एक अमूल्यनिधि है । इस ग्रन्थ के विषय में बहुत से दैशिक व वैदेशिक विद्वानों ने बहुत सी प्रशंसाएँ लिखी हैं । वस्तुतः इसकी प्रशंसा में जो कुछ भी कहा जाय सब थोड़ा ही है । महाकवि ने व्यावहारिक धरातल पर उतरकर जिन शाश्वतसत्य-मानवमूल्यों को प्रस्तुत किया है, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं, यद्यपि विदेशी कवि शेक्सपीयर के साथ कालिदास का साम्य स्थापित करने का प्रयास किया जाता है ।

सप्त अङ्क समन्वित, शृंगार-रस-प्रधान इस नाटक का नायक हस्तिनापुर का पुरुवंशी राजा दुष्यन्त तथा नायिका, विश्वामित्र-मेनका से उद्भूत परमसुन्दरी शकुन्तला है । इस नाटक की कथावस्तु राजा के द्वारा शकुन्तला को दिए गए अभिधान (अंगूठी) के इर्द-गिर्द चक्कर काटती है । फलतः ग्रन्थाकार ने इसे–'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' इस शीर्षक से अलंकृत किया है ।* इसकी उपजीव्यता का श्रेय 'महाभारत-शाकुन्तलोपाख्यान' को प्राप्त है ।

राजा दुष्यन्त कृष्णमृग का पीछा करते हुए महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश करता है; जहाँ शकुन्तला से उसकी प्रथम मुलाकात होती है । प्रथम दर्शन में ही शकुन्तला व दुष्यन्त एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं, तथा तीर्थयात्रा पर गए महर्षि कण्व के अभाव में गान्धर्व-विवाह कर लेते हैं तथा राजा शकुन्तला को अपना एक अभिधान (स्वनामअंकित अंगूठी) देकर चला जाता है । इधर शकुन्तला अनायास ही दुर्वासा ऋषि का कोपभाजन बनती है । दुर्वासा ऋषि शाप देते हैं कि दुष्यन्त इसे भूल जाएगा; परन्तु किसी आभूषण को दिखलाने पर उसे पुनः याद आ जाएगा । तीर्थयात्रा से

---

* अभिज्ञायते अनेन इति अभिज्ञानं (पहचान/अंगूठी), शकुन्तलामधिकृत्य कृतं नाटकम् शाकुन्तलम् अर्थात् 'अभिज्ञानप्रधानं शाकुन्तलम् इति अभिज्ञानशाकुन्तलम्' अथवा 'अभिज्ञानेन स्मृता शकुन्तला यत्र तत् अभिज्ञानशाकुन्तलम् ।'

लौटने पर महर्षि शकुन्तला को सादर अपने शिष्यों के साथ दुष्यन्त के पास भेजते हैं, परन्तु शाप वशात् दुष्यन्त उसे भूल जाने से शकुन्तला का तिरस्कार करता है; शकुन्तला की अंगूठी रास्ते में ही शचीतीर्थ जलाशय में गिर गई है । फलतः शकुन्तला ऋषि मारीच के आश्रम में रहने लगती है, जहाँ उसे भरत नामक एक अत्यन्त तेजस्वी (दुष्यन्त-पुत्र) पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है । इधर दुष्यन्त भी मछली के पेट से प्राप्त अंगूठी को देखकर शकुन्तला को याद करता है । इसी समय इन्द्रसारथि मातलि द्वारा देवासुर-संग्राम में राजा से सहायता की याचना की जाती है । सातवें अङ्क में असुर विजय के पश्चात् इन्द से सत्कृत राजा दुष्यन्त इन्द्र के रथ से लौटते हुए, मार्ग में हेमकूट पर महर्षि कश्यप (मारीचि) के आश्रम में मारीचि दर्शन हेतु उतरते हैं; यहीं पर बालक भरत व शकुन्तला से दुष्यन्त की भेंट होती है । दुष्यन्त शकुन्तला को स्वीकार करता है. अन्ततः महर्षि से विदा लेकर राजा दुष्यन्त अपनी पत्नी शकुन्तला व पुत्र भरत के साथ अपनी राजधानी हस्तिनापुर को प्रस्थान करता है । अन्त में 'भरतवाक्य' की मंगलकामना के साथ ग्रन्थ की समाप्ति होती है ।

प्रमुख पात्र

1. **दुष्यन्त**—चन्द्रवंशीय क्षत्रिय राजा दुष्यन्त एक धीरोदात्त नायक है, जो मधुरभाषी, मृगयाप्रेमी, मातृभक्त, कुलाभिमानी, आत्मसंयमी, कुशाग्रवुद्धि, पराक्रमी, अत्यन्त सुन्दर, ऋषियों के प्रति उदात्त भाव वाला, एक कुशलपति व सच्चाप्रेमी होने के साथ-साथ पुत्रवत्सल तथा एक आदर्श राजा है ।

2. **शकुन्तला**—शकुन्तला एक आदर्श नायिका है, जो ऋषि विश्वामित्र तथा मेनका की पुत्री है, जिसका पालन-पोषण महर्षि कण्व ने किया है । यह क्रमशः मुग्धाबाला, कामविह्वला, वासकसज्जा, लब्धसमागमा, विप्रलब्धा, विरहिणी व पट्टमहिषी के पद को अलंकृत करती है । **(शकुन्तभिः पक्षिभिः लाता लालिता-पालिता इति शकुन्तला)**

3. **कण्व**—महर्षि 'कण्व' आश्रम के कुलपति, एक नैष्टिक ब्रह्मचारी, शकुन्तला के धर्मपिता, नैत्यिक कर्मकाण्डी, त्रिकालज्ञ, तपोबल–समन्वित लोकव्यवहार निपुण ऋषि हैं ।

इन पात्रों के अतिरिक्त विदूषक (राजा का विनोदप्रिय सहचर् माढव्य), मारीच (कश्यप ऋषि), प्रियंवदा, अनुसूया, सानुमती, गौतमी, गौतम, शार्ङ्गरव, शारद्वत, वसुमती (दुष्यन्त की प्रथम पटरानी), मातलि (इन्द्रसारथी), भरत (दुष्यन्त-पुत्र), रैवतक इत्यादि की भी इस नाटक में अपनी विशिष्ट भूमिका है । ध्यातव्य है कि ग्रन्थ का प्रारम्भ 'नान्दीपाठ' तथा अन्त 'भरतवाक्य' से होता है । धीरोदात्त रक्षण हेतु महाकवि ने दुर्वासा शाप की योजना की है ।

12. **मृच्छकटिकम्**—दश अङ्कों से समन्वित शृंगार-रस-प्रधान सम्भवतः शूद्रक कृत 'मृच्छकटिकम्'* एक प्रकरण-ग्रन्थ है । इसकी उपजीव्यता का श्रेय भासकृत नाटक 'चारुदत्तम्' को है । शूद्रक-काल यद्यपि अनिश्चित है, फिर भी विभिन्न विद्वानों ने ईषा पूर्व 300 से 600 के मध्य स्वीकार किया है ।

प्रस्तुत प्रकरणग्रन्थ–चारुदत्त एवं बसन्तसेना की कल्पित प्रेमकथा पर आधारित है । 'चारुदत्त' उज्जयिनी का एक दरिद्र परन्तु सम्मानित ब्राह्मण है तथा 'बसन्तसेना' उज्जयिनी की एक गणिका (वेश्या) है, जो चारुदत्त से प्रेम करती है । **प्रथम अङ्क का नाम 'अलंकार-न्यास'** है । इसमें उज्जयिनी की सुप्रसिद्ध गणिका 'बसन्तसेना' को राजा का श्यालक 'शकार' हस्तगत करना चाहता है, एतदर्थ वह अंधेरी रात में विट व चेट के साथ बसन्तसेना का पीछा करता है । बसन्तसेना रात्रि का लाभ उठाती हुए रास्ते में चारुदत्त के घर में छिप जाती है, तथा शकार से बचने हेतु अपने गहनों को

---

* **मृद् + शकटिका = मृच्छकटिका/मृच्छकटकमत्यस्मिन्निति मृच्छकट + ठन् (इक) अथवा 'मृदः शकटिका यस्मिन्'** इस अर्थ में बहुव्रीहि समास होकर 'मृच्छकटिक' शब्द बना है । षष्ठ अंक में वर्णित चारुदत्त-पुत्र रोहसेन के पड़ोसी बालक की सोने की गाड़ी तथा रोहसेन की मिट्टी की गाड़ी इस प्रकरण की कथावस्तु के विकास में एक विशेष मोड़ दे देती है । अतः इस मिट्टी की गाड़ी की प्रधानता के कारण- 'मृच्छकटिक' ऐसा नामकरण दिया गया है ।

चारुदत्त के घर पर रख देती है । **दूसरे अङ्क** का नाम **'द्यूतक-संवाहक'** है । इस अङ्क में चारुदत्त का सेवक 'संवाहक' जुवे के व्यसन से त्रस्त होकर बौद्धभिक्षु बन जाता है । इसी दिन दैववशात् वसन्तसेना का उन्मत्त हाथी बौद्धभिक्षु को पकड़ लेता है तथा वसन्तसेना का सेवक कर्णपूरक उसे हाथी से छुड़ाता है । फलतः चारुदत्त, कर्णपूरक को एक दुशाला इनाम देता है । **तीसरा अङ्क 'संधिच्छेद'** संज्ञक है । इस अङ्क में ब्राह्मण 'शर्विलक' अपनी प्रेमिका तथा वसन्तसेना की दासी 'मदनिका' को दासता से मुक्ति दिलाने हेतु 'चारुदत्त' के घर में सेंध लगाकर वसन्तसेना के गहने चुरा लेता है, जिससे चारुदत्त को वहुत कष्ट होता है । चारुदत्त लोकापवाद से वचने हेतु अपनी पत्नी धूता का वहुमूल्य हार वसन्तसेना के घर भेज देता है । **'मदनिका-शर्विलक'** संज्ञक **चौथे अङ्क** में शर्विलक स्वर्णाभूषण लेकर अपनी प्रेमिका मदनिका के पास (वसन्तसेना के घर) आता है । मदनिका अपनी मालकिन के गहने पहचान जाती है, और शर्विलक मदनिका के कहने पर वे आभूषण चतुराईपूर्वक यह कहकर वसन्तसेना को दे देता है कि आर्य चारुदत्त ने आपके पास भेजा है । उधर मैत्रेय (विदूषक) के द्वारा स्वर्णाभूषणों के वदले रत्नमाला भी वसन्तसेना के पास पहुँच जाती है । वसन्तसेना, मदनिका व शर्विलक के व्यवहार से प्रसन्न होकर मदनिका को सेवामुक्त करके वधू के रूप में शर्विलक को सौंप देती है । **पाँचवें अङ्क** का नाम **'दुर्दिन'** है । इसमें 'वसन्तसेना' विट तथा चेटी के साथ चारुदत्त के घर पहुँचती है । तेज झंझावात के साथ वर्षा हो रही है । चारुदत्त पहले से ही उसकी प्रतीक्षा में बैठा है । वसन्तसेना वहाँ पहुँचकर स्वर्णाभूषण की प्राप्ति का सारा वृत्तान्त चारुदत्त को सुनाती है, तथा रात्रि में चारुदत्त के साथ विश्राम करती है । **'प्रवहण विपर्यय'** नामक **छठवें अङ्क** में वसन्तसेना, चारुदत्त से मिलने के लिए पूर्वनिर्धारित पुष्पकरण्डक उद्यान में जाना चाहती है, परन्तु भ्रमवशात् पास में खड़ी शकार की गाड़ी में बैठ जाती है । इधर कारागार से भागा हुआ गोपालपुत्र आर्यक चारुदत्त के द्वारा भेजी गयी (वसन्तसेना की) गाड़ी में बैठ जाता है । रास्ते में रक्षक चन्दनक व वीरक गाड़ी की तलाशी लेने के लिए गाड़ी रोकते हैं । चन्दनक आर्यक को पहचान लेता है, फिर भी आर्यक की रक्षा हेतु नीचे खड़े दूसरे सिपाही वीरक से झूँठ वोलता है कि गाड़ी में बसन्तसेना बैठी है । इस प्रकार वह आर्यक की रक्षा करता है । **सातवाँ अङ्क 'आर्यकापहरण'** संज्ञक है । इस अङ्क में आर्यक पुष्पकरण्डक उद्यान में पहुँचता है । चारुदत्त उसे वसन्तसेना की गाड़ी से नीचे उतारने आता है, परन्तु आर्यक को देख व उसकी कथा सुन उसे प्रेमपूर्वक विदा कर देता है । **बसन्तसेना-मोचन** संज्ञक **आठवें अङ्क** में भ्रमवशात् शकार की गाड़ी में बैठी हुई बसन्तसेना उद्यान में गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे शकार के पास पहुँच जाती है । आश्चर्यान्वित शकार बसन्तसेना से प्रणय निवेदन करता है; परन्तु वसन्तसेना उसे अस्वीकार कर देती है । अन्ततः शकार बसन्तसेना का गला घोंट देता है, तथा उसे सूखे पत्तों से ढक कर मृत समझकर भाग जाता है । भाग्यवशात् पूर्वकथित बौद्धभिक्षु (संवाहक) बसन्तसेना को पहचान लेता है और उठाकर वौद्धविहार में लाता है, जहाँ बसन्तसेना पुनः स्वस्थ हो जाती है । **नवम् अङ्क 'व्यवहार'** संज्ञक है । इसमें शकार बसन्तसेना को मृत समझकर उसकी हत्या का आरोप चारुदत्त के सिर पर मढ़ता है । न्यायालय में दुर्भाग्यवशात् अभियोग सिद्ध हो जाता है और 'चारुदत्त' को मृत्युदण्ड की सजा दी जाती है । **'संहार'** नामक अन्तिम व **दशवें अङ्क** में चाण्डाल लोग चारुदत्त को श्मशान में ले जाते हैं । फाँसी लगने ही वाली है कि भिक्षु बसन्तसेना को लेकर वहाँ पहुँच जाता है । इधर पालक को मारकर आर्यक राजा बन जाता है और उसका मित्र शर्विलक भी श्मशान में पहुँच जाता है । अन्ततः चारुदत्त के स्थान पर शकार को फाँसी की सजा होती है, परन्तु चारुदत्त उसे क्षमा कर देता है । बसन्तसेना के साथ चारुदत्त के वैवाहिक-प्रेम-मिलन के साथ इस प्रकरण का 'भरतवाक्य' के साथ पर्यबसान होता है ।

प्रमुख पात्र

चारुदत्त, बसन्तसेना, मैत्रेय (विदूषक), धूता, शकार, शर्विलक, रदनिका, मदनिका, आर्यक, पालक इत्यादि मुख्यपात्र हैं । इनके अतिरिक्त-विट, चेट, संवाहक, माथुर, दर्दुरक, वर्धमानक, बन्धुल, वीरक, चन्दनक, कुम्भीलक, रोहसेन, शोधनक, अधिकरणिक, श्रेष्ठी, कायस्थ, चाण्डाल, जूर्णवृद्ध,

रेभिल इत्यादि इस 'प्रकरण' के पात्र हैं । प्रकरण का प्रारम्भ 'नान्दीपाठ' व अन्त 'भरतवाक्य' से होता है । इसका नायक चारुदत्त एक धीरप्रशान्त नायक है । (**सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तोद्विजादिकः**) । इसकी कुलस्त्री नायिका धूता तथा गणिका बसन्तसेना है ।

13. **उत्तररामचरितम्**—महाकवि भवभूति (650 ई. से 750 ई. के मध्य) के तीनों नाटकों में 'उत्तररामचरितम्' उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है–**'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।'** इसकी उपजीव्यता का श्रेय 'रामायण' को प्राप्त है । इस ग्रन्थ में चूँकि रामायण (रामकथा) का उत्तरार्द्ध प्रदर्शित है; अतः 'महाकवि' ने इसे 'उत्तररामचरितम्' इस संज्ञा से सम्बोधित किया है । इसके नायक राम (धीरोदात्त) तथा नायिका सीताजी हैं । भवभूति के अन्य नाटकों के समान इस नाटक में भी खलनायक, खलनायिका तथा विदूषक का अभाव है । नाटक का प्रारम्भ द्वादशपदा 'नान्दीपाठ' व अवसान 'भरतवाक्य' से होता है । करुण-रस-प्रधान इस नाटक में कुल सात अङ्क हैं । सातवें अङ्क में गर्भाङ्क* (गर्भ नाटक) की योजना की गई है । संक्षिप्त कथावस्तु निम्नलिखित है–

प्रथम अङ्क में राज्याभिषेक के पश्चात् श्रीरामचन्द्र प्रजानुरञ्जन में संलग्न हो जाते हैं । कुछ काल के अनन्तर लक्ष्मणजी चित्रकारों द्वारा तैयार की गई चित्राकार-रामकथा-दर्शन हेतु राम व सीता को आलेख्यवीथिका में ले जाते हैं । चित्रदर्शन से सीता के मन में वनविहार व भागीरथी दर्शन की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होती है, तव तक 'दुर्मुख' नामक दूत के द्वारा राम को सीता-विषयक लोकापवाद की सूचना मिलती है । अन्ततः राम के आदेशानुसार लक्ष्मण सीता को रथ में वैठा कर वाल्मीकि आश्रम (वन) में छोड़ आते हैं । **द्वितीव अङ्क** में वासन्ती तथा आत्रेयी के सम्वाद से सीता के दो पुत्रों की उत्पत्ति, वाल्मीकि के द्वारा पोषण तथा शिक्षण आदि का परिचय मिलता है । इसी वीच रामचन्द्रजी अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करते हैं, परन्तु वीच में ही ब्राह्मण-वालक की अकाल मृत्यु के कारण शम्बूक वध हेतु दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं, तथा पूर्वदृष्ट दृश्यों को देखकर मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं । शम्बूक-वध के अनन्तर रामचन्द्रजी पुष्पकविमान से अगस्त्याश्रम को प्रस्थान करते हैं । **तृतीय अङ्क** में श्रीरामचन्द्रजी पञ्चवटी में प्रवेश करते हैं । तमसा तथा मुरला नामक दो नदी-देवताओं के संवाद द्वारा तथा वासन्ती नामक वनदेवता से लव-कुश व सीता विषयक वार्ता को सुनकर राम मूर्छित हो उठते हैं । तव तक देव प्रसाद से गुप्त रूपधारिणी सीता अपने प्रयत्नों से राम को होश में लाती हैं, तथा अपने प्रति रामचन्द्र का अनुराग देख प्रसन्नता का अनुभव करती हैं । एक लम्बी विरह-व्यथा के वाद रामचन्द्र अश्वमेध-सम्पादन हेतु अयोध्या लौट जाते हैं; तथा सीताजी पुत्रों की मंगलग्रन्थि-सम्पादन हेतु गंगा के पास लौट जाती हैं । सीता के प्रत्यक्षतः प्रकट न होने से इस अङ्क को **छायाङ्क** कहा जाता है । **चतुर्थ अङ्क** में वशिष्ठ-अरुन्धती, राम की माताएँ तथा जनकजी अतिथिरूप में वाल्मीकि आश्रम में पदार्पण करते हैं । यहाँ पर 'भवभूति' ने जनक, अरुन्धती तथा कौशल्या के बीच सीता-परित्याग से उत्पन्न स्थिति का वहुत ही मर्मभेदी वर्णन किया है । इस अङ्क के अन्त में लव-कुश के द्वारा राम के अश्वमेधीय घोड़े को पकड़ने की घटना वर्णित है । **पञ्चम अङ्क** में रामचन्द्रजी की अश्वानुगामी सम्पूर्ण सेना की पराजय के पश्चात् सेनापति लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु तथा लव के बीच काफी लम्बा संवाद चलता है, तदनन्तर भीषण संग्राम प्रारम्भ हो जाता है । इस अङ्क में वीररस का बहुत ही सुन्दर निदर्शन होता है । **षष्ठम् अङ्क** में लव-चन्द्रकेतु-संग्राम में श्रीरामचन्द्रजी पदार्पण करते हैं । युद्ध वन्द होता है । लव तथा चन्द्रकेतु दोनों श्रीराम को प्रणाम करते हैं, तव तक कुश भी उपस्थित होता है । लव तथा कुश दोनों कुमारों में सीता की आकृति की समता पाकर राम प्रसन्न होते हैं, तथा तत्क्षण उपस्थित, वशिष्ठ, वाल्मीकि, जनक, कौशल्यादि को प्रणाम करते हैं । **सप्तम अङ्क** में गर्भनाटक की योजना है । प्रजा के सामने नाटक खेला जाता है, जिसमें गंगा तथा पृथिवी देवता सीता को निर्दोष सिद्ध कर रामचन्द्र को समर्पित करती हैं । जृम्भकास्त्र सिद्धि से लव-कुश का राम का पुत्र होना सिद्ध होता है तथा सार्वत्रिक सौख्य के साथ भारतवाक्य से नाटक का पर्यवसान होता है ।

---

* नाटक के मध्य प्रसंग प्राप्त किसी अन्य नाटक की योजना गर्भांक कहलाता है ।

प्रमुख पात्र

श्रीरामचन्द्र (नायक), सीता (नायिका), लक्ष्मण, शत्रुघ्न, जनक, अष्टावक्र, वशिष्ठ, वाल्मीकि, सौधातकि तथा दाण्डायन (वाल्मीकि के शिष्य), लव, कुश, चन्द्रकेतु, सुमन्त्र, विद्याधर (देवयोनि), कञ्चुकी, दुर्मुख (गुप्तचर), शाम्बूक, शृंगीऋषि, वासन्ती (वनदेवता), आत्रेयी, तमसा तथा मुरला (दो नदी देवता), भागीरथी (गंगाजी), कौशल्या, पृथिवी, अरुन्धती, विद्याधरी, प्रतिहारी, शान्ता (दशरथपुत्री) इत्यादि इस नाटक के पात्र हैं ।

ध्यातव्य है कि अयोध्या, दण्डकारण्य व पञ्चवटी प्रसंग प्राप्त विशेष स्थल हैं । श्याम नामक किसी वट वृक्ष का उल्लेख हुआ है । प्रथम तथा द्वितीय अङ्क के बीच पूरे बारह वर्षों का अन्तराल है । पद्म पुराणस्थ रामचरित्र इस कथा के ज्यादा सन्निकट प्रतीत होता है ।

14. **मुद्राराक्षसम्**—विशाखदत्त (300 से 400 ई. लगभग) कृत मुद्राराक्षसम्; प्रणयप्रसंगाश्रित परम्परागत नाट्यपरम्परा के विपरीत ऐतिहासिक व भारतीय कूटनीति से ओत-प्रोत एक अनुपम नाटक है । नायिका व विदूषक-रहित सप्ताङ्क-समन्वित यह नाटक चाणक्य व आमात्यराक्षस की बुद्धि-कौशल का अनुपम निदर्शन है । आमात्य राक्षस की 'मुद्रा' से यह कथा विशेष मोड़ ले लेती है, जो राक्षस की पराजय का कारण बनती है । फलतः 'मुद्राराक्षसम्' ऐसा नामकरण किया गया है ।

प्रथम अङ्क में चाणक्य को राक्षस के तीन विश्वासपात्र सम्बन्धियों क्षपणक जीवसिद्धि, कायस्थ शकटदास तथा मणिकार श्रेष्ठी चन्दनदास के सम्बन्ध में गुप्तचरों से सूचना मिलती है तथा राक्षस की एक मुद्रा (मुहर) भी उपलब्ध होती है, जो राक्षस की पराजय का प्रधान कारण बनती है । **द्वितीय अङ्क** राक्षस की कूटनीतिक पराजय का प्रथम निदर्शन है । चाणक्य की जागरूकता के चलते चन्द्रगुप्त की हत्या की राक्षस की योजना नाकाम हो जाती है । **तृतीय अङ्क** में कौमुदी-महोत्सव निषेध की ललितकथा वर्णित है; जिसमें शारदीपूर्णिमा को कौमुदीमहोत्सव मनाने की राजाज्ञा का अनुकूल समय पर चाणक्य जानवूझकर निषेध कर देता है, जिसमें चन्द्रगुप्त चाणक्य से कपटविग्रह खड़ा करता है । **चतुर्थ अङ्क** में राक्षस को अपनी योजना की विफलता का पता चलता है । राक्षस पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु से सम्पर्क स्थापित कर उसे चन्द्रगुप्त के स्थान पर नन्दवंश के सिंहासन पर बैठाने की योजना बनाता है । **पञ्चम अङ्क** इस नाटक की गर्भसन्धि है, जिसे इस कथावस्तु का क्लाइमेक्स कहा जा सकता है । मुद्रित लेख तथा आभूषण पेटिका के साथ सिद्धार्थक के पकड़े जाने से (जो चाणक्य की कूटनीति थी) मलयकेतु का विश्वास राक्षस से हट जाता है, और वह राक्षस का विरोधी बन जाता है । राक्षस से विरोध के परिणामस्वरूप मलयकेतु अपने सहयोगियों के साथ, पकड़ लिया जाता है तथा राक्षस को पकड़ने का प्रयास जारी है । **षष्ठम अङ्क** में राक्षस चन्दनदास की प्रवृत्ति जानने के लिए कुसुमपुर में लौट आता है, जहाँ उसे चन्दनदास की भावी मृत्युदण्ड (फाँसी) की सजा की सूचना मिलती है । **सप्तम् अङ्क** में चन्दनदास को फाँसी हेतु वध स्थान पर ले जाया जाता है, जहाँ उसकी पत्नी व पुत्र करुण-क्रंदन कर रहे हैं । अपने को इस विपत्ति से बचाने हेतु उसका मित्र राक्षस स्वयं उपस्थित होता है तथा चाणक्य की दोस्ती स्वीकार करते हुए चन्द्रगुप्त का आमात्य बनना स्वीकार कर लेता है । इसी घटना के साथ इस नाटक का पर्यवसान होता है । यह अन्तिम घटना चाणक्य की विशाल कूटनीति, गहरीचाल तथा असाधारण बुद्धि के ऊपर तक मनोरंजक व्याख्या प्रस्तुत करती है । चाणक्य ही एक ऐसा नायक है, जो राजा अथवा राजवंश का न होने के बाद भी भारतीय इतिहास के सर्वप्रथम सर्वप्रसिद्ध सम्राट का निर्माता तथा उसके वंश के साम्राज्य का संस्थापक है । वीर रस प्रधान इस नाटक की कथावस्तु का आधार विष्णुपुराण व श्रीमद्भागवत् है ।

प्रमुख पात्र

चाणक्य (नायक), राक्षस (नन्द का आमात्य), चन्द्रगुप्त (मौर्य सम्राट), मलयकेतु, शार्ङ्गरव (चाणक्यशिष्य), शकटदास, चन्दनदास, क्षपणक जीवसिद्धि (राक्षस का प्रिय पात्र व चाणक्य का गुप्तचर), विराधगुप्त, भागुरायण, करभक इत्यादि इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं । विदूषक व स्त्रीपात्रों की योजना का अभाव है । अपवाद रूप में एकमात्र स्त्रीपात्र चन्दनदास की पत्नी का प्रवेशमात्र दिखलाया गया है ।

15. **रत्नावली**—हर्ष (सातवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध) रचित 'रत्नावली' संस्कृत-साहित्य की प्रथम नाटिका है । शास्त्रीय पद्धति के अनुसार यह नाटक तथा प्रकरण के मिश्रण से उद्भूत एक ललित नाटकीय रचना है । इसका नायक इतिहास तथा परम्परा प्रख्यात है; यद्यपि कथा योजना कवि कल्पित है ।

शृंगार-रस-प्रधान प्रस्तुत नाटिका में कुल चार अङ्क हैं । **प्रथम अङ्क** के प्रारम्भ में सिद्ध-पुरुष की भविष्यवाणी के आधार पर नीतिकुशल मन्त्री यौगन्धरायण षड्यन्त्र से सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की कन्या 'रत्नावली' को वत्सराज उदयन के यहाँ मँगवा लेता है तथा रत्नावली प्रच्छन्न रूप से सागरिका के नाम से दासी बनकर अन्तःपुर में रानी वासवदत्ता के साथ रहने लगती है । उसके रूप लावण्य से सशंकित वासवदत्ता उसे सदैव राजा से दूर रखने का प्रयास करती है, परन्तु दैववशात् मदनोत्सव प्रसंग में पेड़ों की झुरमुट से 'कामवपुः' राजा उदयन के प्रथम दर्शन में सफल हो जाती है । **द्वितीय अङ्क** में 'सागरिका' अपनी सखी सुसंगता के साथ चित्तविनोद हेतु राजा का चित्र बनाती है; जिसके पास सुसंगता सागरिका का भी चित्र बना देती है । सुसंगता तथा सागरिका के प्रेमालाप को एक सारिका सुन लेती है, और उन्हीं शब्दों को दोहराने लगती है, जिसे वासवदत्ता के साथ मकरन्दोद्यान में प्रवेश करते हुए उदयन सुन लेता है; तब तक किसी बन्दर की तुफानी-हरकतों से हल्ला होता है । सुसंगता व सागरिका दोनों भागती हैं । जल्दी में चित्रफलक वहीं छूट जाता है, जो राजा के हाथ में पहुँचकर गुप्त-प्रणय को प्रकट करता है, परन्तु वासवदत्ता इस घटना से क्षुब्ध हो जाती है, और ईर्ष्यावश वहाँ से सिरदर्द के बहाने अन्तःपुर में चली जाती है । **तृतीय अङ्क** इस नाटिका का हृदय कहा जाता है । सागरिका खचित चित्रफलकदर्शन के उपरान्त राजा उदयन, सागरिका पर आसक्त हो जाता है । पूर्वयोजना के अनुसार सागरिका, वासवदत्ता का तथा सुसंगता दासी काञ्चनमाला का वेश धारण करके निश्चित स्थान पर मिलने के लिए आती है, परन्तु उदयन-सागरिका की योजना की पूर्वसूचना प्राप्त कर लेने वाली असली वासवदत्ता सागरिका के आने के पहले ही पहुँच जाती है । उदयन, वासवदत्ता को सागरिका समझकर, सागरिका विषयक प्रेमालाप करने लगता है । वासवदत्ता अपने को प्रकट कर देती है । राजा उदयन लज्जित होकर वासवदत्ता से क्षमायाचना करता है; परन्तु क्रुद्ध वासवदत्ता वहाँ से चली जाती है । इधर जब सागरिका वासवदत्ता के रूप में वहाँ पहुँचती है, तो भेद खुल जाने से अपमानभय से आत्महत्या का प्रयास करती है; परन्तु उदयन उसे बचा लेता है । दोनों प्रेमालाप करते हैं, तब तक वासवदत्ता पुनः आती है, और सागरिका को किसी अज्ञात स्थान पर कैद कर, उसके उज्जयिनी चले जाने का झूठा प्रचार करती है । **चतुर्थ अङ्क** में एक ऐन्द्रजालिक (जादूगर) आता है । उदयन तथा वासवदत्ता उसकी कला देखते हैं, तब तक सिंहलेश्वर के आमात्य वसुभूति तथा बाभ्रव्य कञ्चुकी के आ जाने से राजा ऐन्द्रजालिक से खेल बन्द करने को कहते हैं । ऐन्द्रजालिक बाहर जाता है, उदयन, वासवदत्ता व वसुभूति परस्पर बातें कर रहे हैं, तब तक आमात्य यौगन्धरायण की योजना के अनुसार–भयङ्कर अग्निदाह का दृश्य उपस्थित हो जाता है । वासवदत्ता अन्तःपुर में कैद सागरिका को इस भीषण अग्निज्वाला से बचाने हेतु प्रार्थना करती है । राजा उदयन, सागरिका को उस अग्निपुञ्ज से बाहर लाता है, जहाँ उसके पिता के मन्त्री वसुभूति तथा कञ्चुकी बाभ्रव्य उसे पहचान लेते हैं । यौगन्धरायण क्षमा याचना करते हुए भविष्यवाणी की पूर्ति हेतु अपनी सारी योजना का उद्घाटन करता है । वासवदत्ता सागरिका को अपनी बहन के रूप में स्वीकार कर लेती है, तथा राजा उदयन के साथ उसके वैवाहिक सम्बन्ध को पूर्ण करा देती है । इस प्रकार इस नाटिका का मंगलमय अवसान होता है ।

प्रमुख पात्र

कौशाम्बी नरेश वत्सराज उदयन (एक धीर ललित नायक), रत्नावली {(सागरिका) नायिका}, वासवदत्ता (उदयन की पटरानी), यौगन्धरायण (आमात्य), विदूषक, विजयवर्मा, बाभ्रव्य, वसुभूति, ऐन्द्रजालिक, काञ्चनमाला, सुसंगता, चूतलतिका, निपुणिका, वसुन्धरा इत्यादि प्रस्तुत नाटिका के पात्र हैं । ध्यातव्य है कि नाटिका का प्रारम्भ 'नान्दीपाठ' तथा समापन 'भरतवाक्य' के साथ होता है ।

16. **वेणीसंहारम्**—भट्टनारायण (750 ई. लगभग) कृत वीर-रस-प्रधान 'वेणीसंहारम्' छः अङ्कों का एक नाटक-ग्रन्थ है । कदाचित् इसके नायक भीम तथा नायिका द्रौपदी हैं । नाटक का कथानक विश्व-प्रसिद्ध महाभारतीय इतिवृत्त पर आधृत है । द्यूतसभा में दुःशासन द्वारा केशपरामृष्टा द्रौपदी ने दुःशासन व दुर्योधन के वध के उपरान्त ही केश बाँधने की प्रतिज्ञा की थी । इस नाटक की कथावस्तु का मुख्य आधार द्रौपदी की यही प्रतिज्ञा ही है । कथावस्तु संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित है :

प्रथम अङ्क में भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर एक दूत के रूप में धृतराष्ट्र के राजदरवार में जाते हैं, परन्तु दुर्योधन कृष्ण के सन्धि प्रस्ताव का मजाक उड़ाते हुए तथा अभद्रता का प्रदर्शन करते हुए कृष्ण को वन्दी वनाना चाहता है । कृष्ण के इस अपमान से युधिष्ठिर समेत भीमादि का क्रोध पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है । **द्वितीय अङ्क** अभिमन्यु वध के अनन्तर दुर्योधन अपनी प्राणप्रिया भानुमती से मिलता है । भानुमती अपशकुन-सूचक स्वप्नदर्शन से व्यथित है । दुर्योधन अपनी विभिन्न कामक्रीडाओं की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न करता है । तव तक भावी अमंगल की सूचक भयङ्कर आँधी आती है, दुर्योधन के रथ की ध्वजा टूट जाती है । इसी समय अर्जुन की जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा से घवराई जयद्रथ की माँ व पत्नी दुर्योधन के पास आकर जयद्रथ की प्राणरक्षा की प्रार्थना करती हैं तथा दुर्योधन उन्हें रक्षा का आश्वासन देता है । **तृतीय अङ्क** में रुधिरप्रिय राक्षस व उसकी स्त्री वसागन्धा के सम्वाद से द्रुपद, भूरिश्रवा, सोमदत्त, भगदत्त, प्रभृति अनेक योद्धाओं रामेत द्रोणाचार्य के वध की सूचना मिलती है । द्रोणवध से अश्वत्थामा आग-ववूला हो जाता है । कर्ण के व्यंग्यवाणों से आहत हो अश्वत्थामा, कर्ण-वध को उद्यत हो जाता है, कर्ण भी ईंट का जवाव पत्थर से देता है । अन्ततः दुर्योधन किसी तरह दोनों को समझा-वुझाकर दूर करता है । **चतुर्थ अङ्क** में दुःशासन के खून का प्यासा भीम अवसर पाकर दुःशासन पर आक्रमण करता है, उधर दुर्योधन भी कर्ण को सेनापति वनाकर स्वयं दुःशासन की रक्षा हेतु आता है, परन्तु भीम के प्रवल प्रहार से मूर्छित हो जाता है । मूर्छा दूर होने पर कर्ण के सेवक 'सुन्दरक' से उसे दुःशासन की दुःखद मृत्यु का समाचार मिलता है । **पंञ्चम अङ्क** में धृतराष्ट्र तथा गान्धारी दुर्योधन को सांत्वना देते हुए सन्धि कर लेने का आग्रह करते हैं; परन्तु दुर्योधन का उदात्त अहङ्कार सन्धि करने के लिए सहमत नहीं होता है । इसी समय युद्धभूमि में भयङ्कर कोलाहल होता है, तथा शल्य के मुख से कर्णवध की सूचना प्राप्त होती है । इस पीड़ा से दुर्योधन मूर्छित हो जाता है । इसी समय दुर्योधन को ढूँढ़ते हुए भीम वहाँ पर पहुँचते हैं, तथा दुर्योधन-उरुभंग की प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं । वीच में अश्वत्थामा मृत कर्ण पर आक्षेप करते हुए भीम से युद्ध करने की दुर्योधन से अनुमति माँगता है, परन्तु दुर्योधन यह कहते हुए वहाँ से चला जाता है कि अव मेरे मरने के वाद अपनी अभिलाषा पूरी करना । **षष्टम अङ्क** में धर्मराज युधिष्ठिर सायंकालपर्यन्त दुर्योधनवध अथवा स्वयंमेव आत्महत्या कर लेने की भीम की कठोर प्रतिज्ञा तथा दुर्योधन के कहीं छिप जाने से अत्यन्त चिन्तित हैं; तव तक पाञ्चालक आ करके युधिष्ठिर व द्रौपदी को सूचना देता है कि सरोवर में छिपे हुए दुर्योधन को भीम ने अपने व्यंग्यवाणों से उत्तेजित करके वाहर निकालकर भयङ्कर गदायुद्ध प्रारम्भ कर दिया है । तव तक दुर्योधन का मित्र चार्वाक राक्षस वहाँ उपस्थित होता है और युधिष्ठिर को वताता है कि गदायुद्ध में भीम मारे गए । इस दुःखद समाचार से युधिष्ठिर विलाप करते हुए अग्नि में प्रवेश करना ही चाहते हैं कि तब तक दुर्योधन-लहूँ से सरावोर भीम उपस्थित होते हैं । द्रौपदी की प्रतिज्ञा पूर्ण होती है । सभी प्रसन्न हो उठते हैं तथा श्रीकृष्ण के आशीर्वादात्मक वचनों के साथ नाटक का अवसान होता है ।

प्रमुख पात्र

भीम (नायक), द्रौपदी (नायिका), युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, कृष्ण, दुर्योधन, धृतराष्ट्, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, संजय, सुन्दरक, जयन्धर, विनयन्धर, चार्वाक, अश्वसेन, रुधिरप्रिय, सूत, वुधक, पांचालक, भानुमती, गान्धारी, दुःशला, वुद्धिमतिका, चेटी, सुवदना, तरलिका, विहङ्गिका, वसागन्धा इत्यादि इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं । इनके अतिरिक्त भीष्म, द्रोण, अभिमन्यु, वलराम, धृष्टद्युम्न, दुःशासन, जयद्रथ, विदुर, शल्य आदि का भी कतिपय संकेत मात्र हुआ है ।

संस्कृत-साहित्य (एक सामान्य-परिचय)

क्र.	ग्रन्थ/ग्रन्थकार	काव्यविधा	सर्ग/अंङ्क	मुख्यरस	नायक/नायिका	प्रमुख-पात्र	आधारग्रन्थ	समय	विशेष
1.	रघुवंशम् (कालिदास)	महाकाव्य (लघुत्रयी)	19. सर्ग	शृंगार	श्रीराम/सीता	दिलीप, सुदक्षिणा, वशिष्ठ, नंदिनी (गाय), रघु, कौत्स, कुबेर, अर्ज, इन्दुमती, दशरथ, नारद, श्रवण, रावण, राम, सीता, विश्वामित्र, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, लवणासुर, लव, कुश, वाल्मीकि, कुमुद्वती, अतिथि, अग्निवर्ण ।	रामायण	150 B.C. से 475 A.D.	कुल 31 राजाओं का चरित्र-चित्रण, 40 संस्कृत टीकाएँ ।
2.	कुमारसम्भवम् (कालिदास)	महाकाव्य (लघुत्रयी)	17. सर्ग (मूलतः 8)	शृंगार	शिव/पार्वती	हिमालय, मेना, शिव, पार्वती, नारद, तारकासुर, ब्रह्मा, इन्द्र, कामदेव, रति, सप्तर्षि, कुमारकार्तिकेय इत्यादि ।	श्रीमद्भागवत	150 B.C. से 475 A.D.	36 संस्कृत टीकाओं के साथ एक उच्च कोटि का ग्रन्थ है ।
3.	किरातार्जुनीयम् (भारवि)	महाकाव्य (बृहत्त्रयी)	18. सर्ग	वीर	अर्जुन/द्रौपदी	अर्जुन, कृष्ण, इन्द्र, शिव (किरात), पञ्चपाण्डव, वनेचर, दुर्योधन, द्रौपदी, व्यास, यक्ष, मूक (शूकर वेशधारी दानव) इत्यादि ।	महाभारत (वनपर्व)	600 A.D. (लगभग)	अर्जुन के द्वारा इन्द्र व शिव की तपस्या वर्ण्य विषय है ।
4.	शिशुपालवधम् (माघ)	महाकाव्य (बृहत्त्रयी)	20. सर्ग	वीर	श्रीकृष्ण/	श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, द्रौपदी, भीष्म, शिशुपाल, दुर्योधन... ।	महाभारत (सभापर्व)	675 A.D. (लगभग)	1645 श्लोक हैं। 39 प्रक्षिप्त हैं ।
5.	नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)	महाकाव्य (बृहत्त्रयी)	22. सर्ग	शृंगार	नल/दमयन्ती	नल, दमयन्ती, भीम, हंस (पक्षी), नारद, इन्द्र, वरुण, यम, अग्नि, सरस्वती, कलि-सेना, वैतालिक इत्यादि ।	महाभारत (नलोपाख्यान)	12वीं शदी (उत्तरार्द्ध)	मूलतः कदाचित् 120 सर्ग थे । 22 सर्ग/2830 श्लोक उपलब्ध ।

6.	बुद्धचरितम् (अश्वघोष)	महाकाव्य	28. सर्ग (मूलतः 14)	शान्त	भगवान बुद्ध	शुद्धोदन, मायादेवी, सिद्धार्थ (बुद्ध), श्रमण' छन्दक, यशोधरा, बिंबिसार, अराडमुनि, नंदबाला, कामदेव इत्यादि ।	इतिहास प्रसिद्ध	78 ईसवी (लगभग)	काव्य के माध्यम से बौद्धधर्म का प्रतिपादन ।
7.	मेघदूतम् (कालिदास)	खण्डकाव्य/ गीतिकाव्य (लघुत्रयी)	2. खण्ड (पूर्व व उत्तर)	शृंगार (वियोग)	यक्ष/यक्षिणी (हेममाली/ विशालाक्षी)	यक्ष, मेघ (बादल) ।	रामायण (कथानक का आधार 'ब्रह्म-वैवर्तपुराण है)	150 B.C. से 475 A.D.	प्रतिनिधि दूतकाव्य के रूप में एक गीति-काव्य ।
8.	हर्षचरितम् (बाणभट्ट)	आख्या-यिका	8.उच्छ्-वास	वीर	हर्षवर्द्धन	हर्षवर्द्धन, राज्यवर्द्धन, राज्यश्री, प्रभाकर वर्द्धन, शशांक, ग्रहवर्मा, भैरवाचार्य इत्यादि ।	इतिहास प्रसिद्ध	7वीं शदी	सप्तम् शदी विन्ध्योत्तरभारत का चित्राङ्कन है ।
9.	कादम्बरी (बाणभट्ट)	कथा	2. खण्ड (मूलतः एक खण्ड)	शृंगार	चन्द्रापीड/ कादम्बरी	चन्द्रमा, चन्द्रापीड, पुण्डरीक, कपिंजल, वैशम्पायन, शूद्रक, शुक, चाण्डालकन्या (लक्ष्मी), जाबालि, हारीत, तारापीड, विलासवती, शुकनास, कादम्बरी, महाश्वेता, पत्रलेखा, इन्द्रायुध, किन्नर, युगल, गन्धर्व ।	बृहत्कथा (गुणाढ्य)	7वीं शदी	चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन के तीन जन्मों की कथा ।
10.	दशकुमार-चरितम् (दण्डी)	कथा	3. खण्ड	शृंगार	राजवाहन/ अवंतिसुंदरी	राजहंस, मानसार, राजवाहन, पुष्पोद्भव, अर्थपाल, वैश्रवण, सिन्धुदत्त, पद्मोद्भव, अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, प्रमति, विश्रुत, सोमदत्त, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त, कांतिमती, तारावली, कामपाल, सुमति, सुमन्त्र, चण्डवर्मा, मातंग इत्यादि ।	बृहत्कथा	600 A.D. (लगभग)	दश राजकुमारों का विविध इतिवृत्त वर्णित है । अष्ट उच्छ्वासात्मक द्वितीय खण्ड मूल भाग है ।

11.	अभिज्ञान-शाकुंतलम् (कालिदास)	नाटक	7. अङ्क	शृंगार	दुष्यन्त/ शकुंतला	दुष्यन्त, शकुंतला, कण्व, अनुसूया, प्रियंवदा, शार्ङ्गरव, शारद्वत, माढव्य (विदूषक), भरत, मारीच, दुर्वासा, गौतमी, मेनका, मातलि, वसुमती इत्यादि ।	महाभारत/ पद्मपुराण	150 B.C. से 475 A.D.	सर्वोत्कृष्ट नाटक, लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवादित ।
12.	विक्रमोर्वशीयम् (कालिदास)	नाटक/ त्रोटक	5. अङ्क	शृंगार	पुरुरवा/ उर्वशी	पुरुरवा, उर्वशी, इन्द्र, केशी (दैत्य), कुवेर, भरतमुनि, औशीनरी, वनवासिनी स्त्री, कुमार (उर्वशी पुत्र), नारद ।	ऋग्वेद/ महाभारत	150 B.C. से 475 A.D.	गर्भनाटक योजना, वियोग-शृंगाराधिक्य है ।
13.	उत्तरराम-चरितम् (भवभूति)	नाटक	7. अङ्क	करुण	श्रीराम/ सीता	श्रीराम, सीता, वाल्मीकि, लव, कुश, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, चन्द्रकेतु, अष्टावक्र, सौधातकि, दाण्डायन, सुमन्त्र, विद्याधर, दुर्मुख, शाम्बूक, वासंती, आत्रेयी, तमसा, मुरला, गंगा, पृथ्वी, अरुंधती, विद्याधरी, प्रतिहारी, जनक, कौशल्या, कन्चुकी, गुप्तचर इत्यादि ।	रामायण	650 से 750 A.D.	गर्भनाटक की योजना/चित्रवीथी की योजना व समयान्वितिअभाव विदूषक रहित ।
14.	महावीरचरितम् (भवभूति)	नाटक	7. अङ्क	वीर	श्रीराम/ सीता	श्रीराम, सीता, दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, जनक, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, रावण, शूर्पणखा, विश्वामित्र, उर्मिला, कुशध्वज, ताड़का, अहल्या, परशुराम, मन्थरा, जटायु, बालि, सुग्रीव, हनुमानादिक रामायण के पात्र ।	रामायण	650 से 750 A.D.	विदूषक-रहित, महावीर के रूप में श्रीराम का चित्रण ।

15.	स्वप्नवासवदत्तम् (भास)	नाटक	6. अङ्क	शृंगार	उदयन/ वासवदत्ता, पद्मावती	उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती, यौगन्धरायण, महासेन, वसन्तक, रूमण्यवान्, ब्रह्मचारी, अंगारवती, तापसी, धात्री, वसुन्धरा, विजया, अवन्तिका, परिव्राजक इत्यादि ।	इतिहास प्रसिद्ध तथा कविकल्पित	200 से 500 A.D.	नांदी की योजना का अभाव है ।
16.	वेणीसंहारम् (भट्टनारायण)	नाटक	6. अङ्क	वीर	भीम/द्रौपदी	भीम, द्रौपदी, युधिष्ठिर, अर्जुन, दुर्योधन, कृष्ण, भानुमती, जयद्रथ, दुःशला, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, सुन्दरक, धृतराष्ट्र, गांधारी ।	महाभारत	8वीं शदी (उत्तरार्द्ध)	नाटक का उद्देश्य द्रौपदी की वेणी का संहार है ।
17.	रघुवंशम् (जीव न्यायतीर्थ)	नाटक	6. अङ्क	शृंगार	श्रीराम/सीता	कालिदास कृत रघुवंश महाकाव्य के ही पात्र हैं ।	रघुवंशम् (कालिदास)	1894 ई. (जन्म)	प्रणवपारिजात में प्रकाशित, कालिदास समारोह में अभिनीत ।
18.	कुमारसम्भवम् (जीव न्यायतीर्थ)	नाटक	5. अङ्क	शृंगार	शिव/पार्वती	कालिदास कृत कुमार सम्भवम् के ही पात्र हैं ।	श्रीमद्भागवत/ कुमारसम्भवम्/ (कालिदास)	1894 ई. (जन्म)	प्रणवपारिजात में प्रकाशित, का. स. में अभिनीत ।
19.	कर्पूरमञ्जरी (राजशेखर)	सट्टक	4. जवनिका	शृंगार	चन्द्रपाल/ कर्पूरमञ्जरी	चन्द्रपाल, कर्पूरमञ्जरी, विदूषक (कपिंजल), रत्नचण्ड, कांचनचण्ड, भैरवानन्द, विभ्रमलेखा, विचक्षणा, प्रतिहारी, कुरंगिका, सारंगिका, चर्चरी इत्यादि ।	कल्पनाप्रसूत	880 से 920 ईसवी	दोषपूर्ण कृति है नायक धीरललित व नायिका मुग्धा है ।

20.	मुद्राराक्षसम् (विशाखदत्त)	नाटक	7. अङ्क	वीर	चाणक्य/ नायिका का अभाव	चाणक्य, नन्द, राक्षस, चन्द्रगुप्त, मलयकेतु, क्षपणक, चन्दनदास, शार्ङ्गरव, विराधगुप्त, निपुणक, शकटदास, सिद्धार्थक, पर्वतक, करभक, भागुरायण ।	विष्णुपुराण/ श्रीमद्भागवत	300 से 400 A.D.	राजनैतिक छलकपट का नाटक है । विदूषक व नायिका रहित ।
21.	प्रसन्नराघवम् (जयदेव)	नाटक	7. अङ्क	वीर	श्रीराम/सीता	श्रीराम, सीता, मंजीरक, नुपूरक, जनक, रावण, वाणासुर, विश्वामित्र, लक्ष्मण, परशुराम, गंगा, यमुना, सरयू, दशरथ, हंस, हनुमान, प्रहस्त, विभीषण, सुग्रीव व रामायणस्थ अन्य पात्र ।	रामायण	13वीं शताब्दी	गीतगोविन्दकार जयदेव 1000 ई. से भिन्न ।
22.	प्रबोधचन्द्रोदयम् (कृष्णमिश्र)	नाटक (प्रतीकात्मक)	6. अङ्क	शान्त	प्रबोधचन्द्र	मन, मोह, विवेक, काम, लोभ, तृष्णा, क्रोध, हिंसा, शांति, श्रद्धा, मति, प्रबोध, शम, दम, तीर्थ, उपनिषद्, मिथ्यादृष्टि, सरस्वती, वैराग्य, विद्या, प्रबोधचन्द्र ।	कल्पना प्रसूत	11वीं शती (उत्तरार्द्ध)	सुप्रसिद्ध प्रतीक नाटक है ।
23.	मालविकाग्निमित्रं (कालिदास)	नाटक/ नाटिका	5. अङ्क	शृंगार	अग्निमित्र/ मालविका	अग्निमित्र, मालविका, गणदास, हरदत्त, बकुलावलिका, इरावती, धारिणी, वसुमित्र, माधवसेन, कौशिकी ।	इतिहास प्रसिद्ध	150 B.C. से 475 A.D.	कथावस्तु की दृष्टि से एक नाटिका है ।
24.	नागानन्दम् (हर्षवर्द्धन)	नाटक	5. अङ्क	वीर	जीमूतवाहन/ मलयवती	जीमूतकेतु, आत्रेय, जीमूतवाहन, मलयवती, देवी (गौरी), संन्यासी, मित्रवसु, सर्पमाता, गरुड, शंखचूड़ (सर्प) ।	कथासरित्सागर (12वाँ तरंग)	7वीं शदी पूर्वार्द्ध	बुद्धा के आह्वान रूप नान्दी से प्रारम्भ व भरत-वाक्य से अन्त ।

25.	मृच्छकटिकम् (शूद्रक)	प्रकरण	10. अङ्क	शृंगार	चारुदत्त/ बसन्तसेना	चारुदत्त, बसन्तसेना, मैत्रेय (विदूषक), शकार, शर्विलक, आर्यक, भिक्षु, मदनिका, रोहसेन, रेमिल, विट, चेट, कर्णपूरक, चन्दनकं, श्रेष्ठी, वृद्धा, अधिकारणिक, ... ।	इतिहास व कल्पना प्रसूत	5वीं शदी या प्रथमसदी (लगभग)	यह एक सामाजिक रूपक है ।
26.	शास्पुित्रप्रकरणम् (अश्वघोष)	प्रकरण	9. अङ्क	शांत	शारिपुत्र/	बुद्ध, मौद्गल्यायन, शारिपुत्र, बुद्धि, कीर्ति, धृति इत्यादि अमूर्त कल्पनाएँ ।	इतिहास प्रसिद्ध	78 A.D. (लगभग)	बौद्ध दीक्षा का विवरण है ।
27.	मालतीमाधवम् (भवभूति)	प्रकरण	10. अङ्क	शृंगार	माधव/ मालती	माधव, मालती, कलहंस, भूरिवसु, नन्दन, कामन्दकी, लवंगिका, कपालकुंडला, अघोरघंट, मकरन्दक, मदयन्तिका, सौदामिनी ।	कल्पना प्रसूत	650 से 750 A.D.	विदूषक रहित ।
28.	रत्नावली (हर्षवर्द्धन)	नाटिका	4. अङ्क	शृंगार	उदयन/ रत्नावली (सागरिका)	उदयन, सागरिका, विदूषक (वसन्तक), यौगन्धरायण, वाभ्रव्य, विजयवर्मा, वसुभूति, ऐन्द्रजालिक, वासवदत्ता, कांचनमाला, सुसंगता, चूतलतिका, निपुणिका, वसुन्धरा इत्यादि ।	इतिहास प्रसिद्ध कल्पना प्रसूत	7वीं शदी पूर्वार्द्ध	नायक धीर ललित व नायिका मुग्धा है ।
29.	प्रियदर्शिका (हर्षवर्द्धन)	नाटिका	4. अङ्क	शृंगार	वत्स/ आरण्यका	वत्स, आरण्यका, दृढ़वर्मा, प्रियदर्शिका, वासवदत्ता ।	कल्पना प्रसूत	7वीं शदी पूर्वार्द्ध	नायक धीर ललित व नायिका मुग्धा है ।

4.1.18. कुछ प्रमुख ग्रंथों से संकलित महत्त्वपूर्ण सूक्तियाँ

शिशुपालवधम्

1. गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः ॥ 1/14 ॥
2. ग्रहीतुमर्थान् परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः ॥ 1/17 ॥
3. ऋतेरवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः ॥ 1/38 ॥
4. सदाभिमानैक धना हि मानिनः ॥ 1/67 ॥
5. सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि ॥ 1/72 ॥
6. शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो निपातनीया हि सतामसाधवः ॥ 1/73 ॥
7. उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता ॥ 2/10 ॥
8. ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि ॥ 2/12 ॥
9. ...... महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः ॥ 2/13 ॥
10. अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा ॥ 2/27 ॥
11. तृप्तियोगः परेणापि महिम्ना न महात्मनाम् ॥ 2/31 ॥
12. समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः ॥ 2/33 ॥
13. विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ॥ 2/34 ॥
14. ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत् कुतः सुखम् ॥ 2/35 ॥
15. उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा ॥ 2/37 ॥
16. बद्धमूलस्य मूलं हि महद्वैरतरो स्त्रियः ॥ 2/38 ॥
17. कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः ॥ 2/40 ॥
18. तेजस्वि मध्ये तेजस्वी दवीयानपि गण्यते ॥ 2/51 ॥
19. चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ॥ 2/54 ॥
20. सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपकाः ॥ 2/55 ॥
21. समानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः ॥ 2/62 ॥
22. सर्वः स्वार्थं समीहते ॥ 2/65 ॥
23. निर्धारितेऽर्थे लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम् ॥ 2/70 ॥
24. उपायमास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः ॥ 2/80 ॥
25. तेजः क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपतेः ॥ 2/83 ॥
26. नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः ॥ 2/83 ॥
27. मृदुव्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते ॥ 2/85 ॥
28. बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ॥ 2/100 ॥
29. महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानान् रिपूनपि ॥ 2/104 ॥
30. छन्दानुवृत्ति दुःसाध्याः सुहृदो विमनीकृताः ॥ 2/105 ॥
31. अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति ॥ 2/107 ॥
32. तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धिः कर्मशान्तं प्रतापवत् ।
    नोपतापि मनः सोष्म वागेका वाग्मिनः सतः ॥ 2/109 ॥

33. अनेकशः संस्तुतमप्यनल्पा नवं नवं प्रीतिरहो करोति ॥ 3/31 ॥
34. क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः ॥ 4/17 ॥
35. सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः ॥ 5/6 ॥
36. सर्वो हि नोपगतमप्यपचीयमानं वर्धिष्णुमाश्रयमनागतमभ्युपैति ॥ 5/14 ॥
37. सङ्र्षिणा सह गुणाभ्यधिकैर्दुरासम् ॥ 5/19 ॥
38. दानं ददत्यपि जलैः सहसाधिरूढे को विद्यमानगतिरासितुमुत्सहेत ॥ 5/37 ॥
39. आक्रान्तितो न वशमेति महान् परस्य ॥ 5/41 ॥
40. नान्यस्य गन्धमपि मानभृतः सहन्ते ॥ 5/42 ॥
41. नैवात्मनीनमथवा क्रियते मदान्धैः ॥ 5/44 ॥
42. शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति ॥ 5/47 ॥
43. मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः ॥ 5/49 ॥
44. समय एव करोति वलावलम् ॥ 6/44 ॥
45. परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः ॥ 6/45 ॥
46. उपचितेषु परेष्वसमर्थतां व्रजति कालवशाद्वलवानपि ॥ 6/63 ॥
47. स्फुटमभिभूषयति स्त्रियस्त्रपैव ॥ 7/38 ॥
48. भवति हि विक्लवता गुणोऽङ्गनानाम् ॥ 7/43 ॥
49. त्वरयति रन्तुमहो जनं मनोभूः ॥ 7/50 ॥
50. किमिव न शक्तिहरं ससाध्वसानाम् ॥ 7/52 ॥
51. न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् ॥ 7/61 ॥
52. मृदुतरतनवोऽलसाः प्रकृत्याचिरमपि ताः किमुत प्रयासभाजः ॥ 7/68 ॥
53. बुद्ध्वा वा जितमपरेण काममाविष्कुर्वीत स्वगुणमपत्रपः क एव ॥ 8/7 ॥
54. औचित्यं गणयति को विशेषकामः ॥ 8/10 ॥
55. उद्वृत्तः क इव सुखावहः परेषाम् ॥ 8/18 ॥
56. विपदि न दूषिताऽतिभूमिः ॥ 8/20 ॥
57. लब्धस्पर्शानां भवति कुतोऽथवा व्यवस्था ॥ 8/22 ॥
58. क्षुभ्यन्ति प्रसभमहो विनापि हेतोर्लीलाभिः किमु सति कारणे तरुण्यः ॥ 8/24 ॥
59. युक्तानां विमलतया तिरस्क्रियायै नाक्रामन्नपि हि भवत्यलं जलौघः ॥ 8/28 ॥
60. कस्मिन् वा सजलगुणे गिरां पटुत्वम् ॥ 8/45 ॥
61. शोभायै विपदि सदाश्रिता भवन्ति ॥ 8/55 ॥
62. चक्षुष्यः महतां परैरलङ्घ्यः ॥ 8/57 ॥
63. अवधीरितानामप्युच्चैर्भवति लघीयसां हि धाष्ट्र्यम् ॥ 8/60 ॥
64. नैवाहो विरमति कौतुकं प्रियेभ्यः ॥ 8/69 ॥
65. .... अस्तसमयेऽपि सतामुचितं खलूच्चतरमेव पदम् ॥ 9/5 ॥
66. प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता ॥ 9/6 ॥
67. अपदोषतैव विगुणस्य गुणः ॥ 9/12 ॥
68. चपलाजनं प्रति न चोद्यमदः ॥ 9/16 ॥

69. .... लघवः प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः ॥ 9/23 ॥
70. दधति ध्रुवं क्रमशः एव न तु द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम् ॥ 9/29 ॥
71. अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥ 9/33 ॥
72. समये हि सर्वमुपकारि कृतम् ॥ 9/43 ॥
73. भजते विदेशमधिकेन जितस्तदनुप्रवेशमथवा कुशलः ॥ 9/48 ॥
74. क्षममस्य वाढमिदमेव हि यत्प्रियसङ्गमेष्वनवलेपमदः ॥ 9/51 ॥
75. किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृतः कृतिनो भवन्ति सुहृदः सुहृदाम् ॥ 9/57 ॥
76. सुहृदर्थमीहितमजिह्मधियां प्रकृतेर्विराजति विरुद्धमपि ॥ 9/62 ॥
77. विषतां निषेवितमपक्रियया समुपैति सर्वमिति सत्यमदः ॥ 9/68 ॥
78. विदितेङ्गिते हि पुर एव जने सपदीरिताः खलु लगन्ति गिरः ॥ 9/69 ॥
79. भ्रान्तिभाजि भवति क्व विवेकः ॥ 10/5 ॥
80. स्वां मदात्प्रकृतिमेति हि सर्वः ॥ 10/18 ॥
81. दुस्त्यजः खलु सुखादपि मानः ॥ 10/21 ॥
82. निर्वृत्तिर्हि मनसो मदहेतुः ॥ 10/28 ॥
83. न क्षमं भवति तत्त्वविचारे मत्सरेण हत संवृत्तिचेतः ॥ 10/35 ॥
84. आनुकूलिकतया हि नराणामाक्षिपन्ति हृदयानि तरुण्यः ॥ 10/79 ॥
85. ...... कानिनां मण्डनश्रीर्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन ॥ 11/33 ॥
86. हतविधिलसितानां हि विचित्रो विपाकः ॥ 11/64 ॥
87. दाक्ष्यं हि सद्यः फलदम् ॥ 12/32 ॥
88. प्रायेण नीचानपि मेदिनीभृतो जनः समेनैवपथाऽधिरोहति ॥ 12/46 ॥
89. मदमूढ़बुद्धिषु विवेकिता कुतः ॥ 13/6 ॥
90. महतां हि सर्वमथवा जनातिगम् ॥ 13/17 ॥
91. महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः सुजनो न विस्मरति जातुकिञ्चन ॥ 13/68 ॥
92. लज्जते न गदितः प्रियं परोवक्तुरेव भवति त्रपाधिका ॥ 14/2 ॥
93. तोषमेति वितथैः स्तवैः परस्ते च तस्य सुलभाः शरीरिभिः ॥ 14/3 ॥
94. को विहन्तुमलमास्थितोदये वासरश्रियमशीतदीधितौ ॥ 14/8 ॥
95. किं परस्य स गुणः समश्नुते पथ्यवृत्तिरपि यद्यरोगितां ॥ 14/13 ॥
96. उद्धृतौ भवति कस्य वा भुवः श्रीवराहमपहाय योग्यता ॥ 14/14 ॥
97. वर्षुकस्य किमपः कृतोन्नतेरम्बुदस्य परिहार्यमूषरम् ॥ 14/46 ॥
98. परवृद्धिमत्सरि मनो हि मानिनाम् ॥ 15/1 ॥
99. याति विकृतिमपि संवृत्तिमत्किमु यन्निसर्गनिरवग्रहं मनः ॥ 15/11 ॥
100. दयितं जनः खलु गुणीति मन्यते ॥ 15/14 ॥
101. तव कर्मणैव विकसत्यसत्यता ॥ 15/16 ॥
102. स्फुटमापदां पदमनात्मवेदिता ॥ 15/22 ॥
103. हासकरमघटते नितरां शिरसीव कङ्कतमपेतमूर्द्धजे ॥ 15/33 ॥
104. ननु सर्व एव समवेक्ष्य कमपि गुणमेति पूज्यताम् ॥ 15/प्रक्षिप्त/1 ॥

105. चपलात्मिका प्रकृतिरेव हीदृशी ।। 15/प्रक्षिप्त/14 ।।
106. सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते ।। 15/40 ।।
107. प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते ।। 15/41 ।।
108. स्मर्तुमधिगतगुणस्मरणाः पटवो न दोषमखिलं खलूत्तमाः ।। 15/43 ।।
109. न्यसनाय ससौरभस्य कस्तरुसूनस्य शिरस्यसूयति ।। 16/20 ।।
110. अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ।। 16/25 ।।
111. वचनैरसतां महीयसो न खलु व्येति गुरुत्वमुद्धतैः ।। 16/27 ।।
112. महतस्तरसा विलङ्घयन्निजदोषेण कुधीर्विनश्यति ।। 16/35 ।।
113. विविनक्ति ने बुद्धिदुर्विधः स्वयमेव स्वहितं पृथग्जनः ।। 16/39 ।।
114. उपदेशपराः परेष्वपि स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः ।। 16/41 ।।
115. अथवाऽभिनिविष्टबुद्धिषु व्रजति व्यर्थकतां सुभाषितम् ।। 16/43 ।।
116. अनपेक्ष्य गुणागुणौ जनः स्वरुचिं निश्चयतोऽनुधावति ।। 16/44 ।।
117. प्रियमांसमृगाधिपोज्झितः किमवद्यः करिकुम्भजोमणिः ।। 16/45 ।।
118. क्रियते धवलः खलूच्चकैर्धवलैरेव, सितेतरैरधः ।। 16/46 ।।
119. सहसि प्लवगैरुपासितं न हि गुञ्जाफलमेतिसोष्मताम् ।। 16/47 ।।
120. प्रलयोल्लसितस्य वारिधेः परिवाहो जगतः करोति किम् ।। 16/51 ।।
121. न परेषु महौजसश्छलादपकुर्वन्ति मलिम्लुचा इव ।। 16/52 ।।
122. भजते कुपितोऽप्युदारधीरननीतिं नतिमात्रकेण सः ।। 16/55 ।।
123. घनाम्बुभिर्बहुलितनिम्नगाजलैर्जलं न हि व्रजति विकारमम्बुधेः ।। 17/18 ।।
124. पयस्यभिद्रवति भुवं युगावधौ सरित्पतिर्नहि समुपैति रिक्तताम् ।। 17/40 ।।
125. सुसंहतैर्दधदपि धाम नीयते तिरस्कृतिं बहुभिरसंशयं परैः ।। 17/59 ।।
126. कर्मोदारं कीर्तये कर्तुकामान् किं वा जात्याः स्वामिनो हेपयन्ति ।। 18/23 ।।
127. का च लोकानुवृत्तिः ।। 18/64 ।।
128. योग्येनार्थः कस्य न स्याज्जनेन ।। 18/66 ।।
129. दानेषु स्थूललक्ष्यत्वं नहि तस्य शरानने ।। 19/99 ।।
130. शुद्ध्या युक्तानां वैरिवर्गस्य मध्ये भर्त्रा क्षिप्तानामेतदेवानुरूपम् ।। 19/119 ।।
131. भवति स्फुटमागतो विपक्षान्न सपक्षोऽपि हि निर्वृतेर्विधाता ।। 20/29 ।।
132. ननु वारिधरोपरोधमुक्तः सुतरामुत्तपते पतिः प्रभाणाम् ।। 20/40 ।।
133. उपकृत्य निसर्गतः परेषामुपरोधं न हि कुर्वते महान्तः ।। 20/74 ।।

किरातार्जुनीयम्

1. न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ।। 1/2 ।।
2. हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।। 1/4 ।।
3. सः किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपम् ।। 1/5 ।।
4. वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ।। 1/8 ।।
5. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ।। 1/23 ।।

6. व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृत्ताङ्गान्निशिता इवेषवः ।। 1/30 ।।
7. पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ।। 1/41 ।।
8. शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः ।। 1/42 ।।
9. विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः ।। 2/3 ।।
10. ननु वक्तृविशेषनिःस्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः ।। 2/5 ।।
11. निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः ।। 2/15 ।।
12. न महानिच्छति भूतिमन्यतः ।। 2/18 ।।
13. प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यथा ।। 2/21 ।।
14. स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ।। 2/27 ।।
15. सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।। 2/30 ।।
16. सुकृतः परिशुद्ध आगमः कुरुते दीप इवार्थदर्शनम् ।। 2/33 ।।
17. विधिहेतुरहेतुरागसां विनिपातोऽपि समः सुमुन्नतेः ।। 2/34 ।।
18. अविभिद्य निशाकृतं तमः प्रभया नांशुमताऽप्युदीयते ।। 2/36 ।।
19. असुरक्षा हि वहुच्छलाः श्रियः ।। 2/39 ।।
20. न तितिक्षा सममस्ति साधनम् ।। 2/43 ।।
21. सहते न जनोऽप्यधः क्रियां किमु लोकाधिकधाम राजकम् ।। 2/47 ।।
22. प्रभवन्त्यभिमानशालिनां मदमुत्तम्भयितुं विभूतयः ।। 2/48 ।।
23. नयहीनादपरज्यते जनः ।। 2/49 ।।
24. विपदन्ता ह्यविनीत-सम्पदः ।। 2/52 ।।
25. भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः ।। 3/12 ।।
26. मोहं विधत्ते विषयाभिलाषः ।। 3/13 ।।
27. प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः ।। 3/17 ।।
28. विश्वासयत्याशु सतां हि योगः ।। 3/31 ।।
29. सुदुर्लभे नार्हति कोऽभिनन्दितुं प्रकर्षलक्ष्मीमनुरूपसङ्गमे ।। 4/4 ।।
30. न हीङ्गितज्ञोऽवसरेवसीदति ।। 4/20 ।।
31. न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम् ।। 4/23 ।।
32. गुणाः प्रियत्वेऽधिकृताः न संस्तवः ।। 4/25 ।।
33. मुखरताऽवसरे हि विराजते ।। 5/16 ।।
34. प्रायेण सत्यपि हितार्थकरे विधौ हि श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनान्तरायैः ।। 5/49 ।।
35. संधत्ते भृशमरतिं हि सद्वियोगः ।। 5/51 ।।
36. वशिनां न निहन्ति धैर्यमनुभाव-गुणः ।। 6/28 ।।
37. नयवर्त्मगाः प्रभवतां हि धियः ।। 6/38 ।।
38. सम्भावना ह्यधिकृतस्य तनोति तेजः ।। 6/46 ।।
39. रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति ।। 7/5 ।।
40. नाल्पीयान्बहुसुकृतं हिनस्ति दोषः ।। 7/15 ।।

41. महोदयानामुच्छ्रायं नयति यदृच्छयापि योगः ॥ 7/27 ॥
42. सा लक्ष्मीरूपकुरुते यया परेषाम् ॥ 7/28 ॥
43. यथोत्तरेच्छा हि गुणेषु कामिनः ॥ 8/4 ॥
44. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ॥ 8/37 ॥
45. अकृत्रिम-प्रेमरसाहितैर्मनो हरन्ति रामाः कृतकैरपोहितैः ॥ 8/46 ॥
46. लंघ्यते न खलु कालनियोगः ॥ 9/13 ॥
47. वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः ॥ 9/16 ॥
48. दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम् ॥ 9/30 ॥
49. आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः ॥ 9/64 ॥
50. प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि ॥ 9/70 ॥
51. उपहितपरमप्रभावधाम्नां न हि जयिनां तपसामलंघ्यमस्ति ॥ 10/6 ॥
52. हरति मनो मधुरा हि यौवनश्रीः ॥ 10/17 ॥
53. न हि महतां सुकरः समाधिभङ्गः ॥ 10/23 ॥
54. दुरधिगमा हि गतिः प्रयोजनानाम् ॥ 10/40 ॥
55. वदति हि संवृत्तिरेव कामितानि ॥ 10/44 ॥
56. युवतिजनः खलु नाप्यतेऽनुरूपः ॥ 10/50 ॥
57. प्रभवति मण्डयितुं वधूरनङ्गः ॥ 10/59 ॥
58. ज्वलयति महतां मनांस्यमर्षे न हि लभतेऽवसरं सुखाभिलाषः ॥ 10/62 ॥
59. अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मनः ॥ 11/8 ॥
60. ह्रियते विषयैः प्रायो वर्षीयानपि ॥ 11/10 ॥
61. सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् ॥ 11/11 ॥
62. आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः ॥ 11/12 ॥
63. भव्यो मुक्तावुत्तिष्ठते जनः ॥ 11/13 ॥
64. तपस्विनो हि वसते केवलाजिनवल्कले ॥ 11/15 ॥
65. मूढ़ा वामशीला हि जन्तवः ॥ 11/24 ॥
66. साधुवृत्तानपि क्षुद्रा विक्षिपन्त्येव सम्पदः ॥ 11/25 ॥
67. विप्रलम्भोऽपि लाभाय सति प्रियसमागमे ॥ 11/27 ॥
68. न्यायाधारा हि साधवः ॥ 11/30 ॥
69. कामाः कष्टा हि शत्रवः ॥ 11/35 ॥
70. नभसः स्फुटतारस्य रात्रेरिव विपर्ययः ॥ 11/44 ॥
71. सुलभो हि द्विषां भङ्गो दुर्लभा सत्स्ववाच्यता ॥ 11/53 ॥
72. असन्मैत्री हि दोषाय कूलच्छायेव सेविता ॥ 11/55 ॥
73. जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समागतिः ॥ 11/59 ॥
74. न जहाति महौजस्कं मानप्रांशुमलंघ्यता ॥ 11/63 ॥
75. विविक्तं ब्रह्मणः पदम् ॥ 11/66 ॥
76. निर्वाणमपि मन्येऽहमन्तरायं जयश्रियः ॥ 11/69 ॥
77. महतां हि धैर्यमविभाव्यवैभवम् ॥ 12/3 ॥

78. अमृतायते हि सुतपः सुकर्मणाम् ॥ 12/4 ॥
79. तत्त्वविदां किमिवास्ति यन्न सुकरं मनस्विभिः ॥ 12/6 ॥
80. गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः ॥ 12/10 ॥
81. किमिवास्ति यन्न तपसामदुष्करम् ॥ 12/29 ॥
82. परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् ॥ 13/7 ॥
83. परमं लाभमरातिभङ्गमाहुः ॥ 13/12 ॥
84. शीलयन्ति यतयः सुशीलताम् ॥ 13/43 ॥
85. योगिनां परिणमन् विमुक्तये केन नास्तु विनयः सतां प्रियः ॥ 13/44 ॥
86. मित्रलाभमनुलाभसम्पदः ॥ 13/52 ॥
87. अर्थितस्तु न महान्समीहते जीवितं किमु धनं धनायितुम् ॥ 13/56 ॥
88. प्रार्थनाऽधिकबले विपत्फला ॥ 13/61 ॥
89. संवृणेति खलु दोषमज्ञता ॥ 13/63 ॥
90. क्षोभयन्त्यनभिभृता गुरूनपि ॥ 13/66 ॥
91. सुदुर्ग्रहान्तः करणा हि साधवः ॥ 14/1 ॥
92. प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥ 14/3 ॥
93. सुदुर्लभा सर्वमनोरमा गिरः ॥ 14/5 ॥
94. दिशत्यपायं हि सतामतिक्रमः ॥ 14/9 ॥
95. सतां हि वाणी गुणमेव भाषते ॥ 14/11 ॥
96. व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया ॥ 14/14 ॥
97. भवत्यपाये परिमोहिनी मतिः ॥ 14/19 ॥
98. प्रकृत्यमित्रा हि सतामसाधवः ॥ 14/21 ॥
99. सहायसाध्याः प्रदिशन्ति सिद्धयः ॥ 14 ॥ 44 ॥
100. मुह्यत्येव हि कृच्छ्रेषु संभ्रमज्वलितं मनः ॥ 15/2 ॥
101. व्यक्तिमायाति महतां माहात्म्यमनुकम्पया ॥ 15/4 ॥
102. नातिपीडयितुं भग्नानिच्छन्ति हि महौजसः ॥ 15/6 ॥
103. ज्वलितान्यगुणैर्गुर्वी स्थिता तेजसि मानिता ॥ 15/21 ॥
104. वेषः प्रच्छन्नमप्यूहयते हि चेष्टा ॥ 16/19 ॥
105. निद्रा निरासं प्रतिभागुणस्य ॥ 16/27 ॥

नैषधीयचरितम्

1. अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्करोति सुप्तिर्जनदर्शनाऽतिथिम् ॥ 1/39 ॥
2. त्यजन्त्यसूञ्शर्म च मानिनो वरं त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् ॥ 1/50 ॥
3. स्मरः स रत्यामनिरुद्धमेव यत्सृजत्ययं सर्गनिसर्ग ईदृशः ॥ 1/54 ॥
4. क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः ॥ 1/102 ॥
5. विगर्हितं धर्मधनैर्निवर्हणं विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि ॥ 1/131 ॥
6. तरुणीस्तन एव दीप्यते मणिहारावलिरामणीयकम् ॥ 2/44 ॥

7. ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् ॥ 2/48 ॥
8. धनिनामितरः सतां पुनर्गुणवत्सन्निधिरेव सन्निधिः ॥ 2/53 ॥
9. स्वत एव सतां परार्थता ग्रहणानां हि यथा यथार्थता ॥ 2/61 ॥
10. कार्यनिदानाद्धि गुणानधीते ॥ 3/17 ॥
11. विधेरपि स्वारसिकः प्रयासः परस्परं योग्यसमागमाय ॥ 3/48 ॥
12. सन्दर्भ्यते दर्भगुणेन मल्लीमाला न मृद्वी भृशकर्कशेन ॥ 3/49 ॥
13. ह्रदे गम्भीरे हृदि चावगाढ़े शंसन्ति कार्यावतरं हि सन्तः ॥ 3/53 ॥
14. अशक्यशङ्कव्यभिचारहेतुर्वाणी न वेदा यदि सन्तु के तु ॥ 3/78 ॥
15. अहेलिना किं नलिनी विधत्ते सुधाकरेणापि सुधाकरेण ॥ 3/80 ॥
16. गुरूपदेशं प्रतिभेव तीक्ष्णा प्रतीक्षते जातु न कालमार्तिः ॥ 3/91 ॥
17. अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा ॥ 3/93 ॥
18. आत्यन्तिकाऽसिद्धिविलम्बिसिद्धयो कार्यस्य काऽऽर्यस्य शुभा विभाति ॥ 3/96 ॥
19. इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति ॥ 3/116 ॥
20. प्रियमनु सुकृतां हि स्वस्पृहाया विलम्बः ॥ 3/134 ॥
21. तदुदितः स हि यो यदनन्तरः ॥ 4/3 ॥
22. त्रसति कः सति नाश्रयवाधने ॥ 4/16 ॥
23. क्व सहतामवलम्बलवच्छिदामनुपपत्तिमतीमपि दुःखिता ॥ 4/110 ॥
24. झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः ॥ 4/118 ॥
25. साधने हि नियमोऽन्यजनानां योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः ॥ 5/3 ॥
26. कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते ॥ 5/6 ॥
27. यावदर्हकरणं किल साधोः प्रत्यवायधुतये न गुणाय ॥ 5/9 ॥
28. आकरः स्वपरभूरिकथानां प्रायशो हि सुहृदोः सहवासः ॥ 5/12 ॥
29. पूर्वपुण्यविभवव्ययलब्धाः सम्पदो विपदा एव विमृष्टाः ।
पात्रपाणिकमलाऽर्पणंमासां तासु शान्तिकविधिर्विधिदृष्टाः ॥ 5/17 ॥
30. उत्तरोत्तर शुभो हि विभूनां कोऽपि मञ्जुलतमः क्रमवादः ॥ 5/37 ॥
31. वर्त्म कर्षतु पुरः परमेकस्तद्गतानुगतिको न महाऽर्घः ॥ 5/55 ॥
32. द्यौर्न काचिदथवाऽस्ति निरूढ़ा सैव सा चरति यत्र हि चित्तम् ॥ 5/57 ॥
33. तं धिगस्तु कलयन्नपि वाञ्छामर्थिवागवसरं सहते यः ॥ 5/83 ॥
34. याचमानजनमानसवृत्तेः पूरणाय वत ! जन्म न यस्य ।
तेन भूमिरतिभारवतीयं, न द्रुमैर्न गिरिभिर्न समुद्रैः ॥ 5/88 ॥
35. किं ग्रहा दिवि न जाग्रति ते ते ? भास्वतस्तु कथमस्तुलयाऽऽस्ते ? ॥ 5/100 ॥
36. आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः ॥ 5/103 ॥
37. ह्रीर्गिराऽस्तु वरमस्तु पुनर्मास्वीकृतैव परवागपरास्ता ॥ 5/105 ॥
38. दुर्जया हि विषया विदुषाऽपि ॥ 5/109 ॥
39. हास्यतयैव सुलभा न तु साध्यं, तद्विधित्सुभिरनौपयिकेन ॥ 5/115 ॥
40. शंसति द्विनयनी दृढ़निद्रां द्राङ्निमेषमिषघूर्णनपूर्णा ॥ 5/126 ॥
41. स्वतः सतां ह्रीः परतोऽपि गुर्वी ॥ 6/22 ॥

42. पलालजालैः पिहितः स्वयं हि प्रकाशमासादयतीक्षुडिम्भः ॥ 8/2 ॥
43. मुग्धेषु कः सत्यमृषा-विवेकः ? ॥ 8/18 ॥
44. वाग्जन्यवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाधिके वस्तुनि मौनिता चेत् ।
    खलत्वमल्पीयसि जल्पितेऽपि तदस्तु वन्दिभ्रमभूमितैव ॥ 8/32 ॥
45. बिम्वानुबिम्वौ हि विहाय धातुर्न जातु दृष्टाऽतिसरूपसृष्टिः ॥ 8/46 ॥
46. द्विषन्मुखेऽपि स्वदते स्तुतिर्या, तन्मिष्टता नेष्टमुखे त्वमेया ॥ 8/51 ॥
47. विवेकधाराशतधौतमन्तः सतां न कामः कलुषी करोति ॥ 8/54 ॥
48. नामाऽपि जागर्ति हि यत्र शत्रोस्तेजस्विनस्तं कतमे सहन्ते ॥ 8/74 ॥
49. पिपासुता शान्तिमुपैति वारिणा, न जातु दुग्धान्मधुनोऽधिकादपि ॥ 9/5 ॥
50. गुरौ गिरः पल्लवनाऽर्थ लाघवे मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता ॥ 9/8 ॥
51. जनः किलाचारमुचं विगायति ॥ 9/13 ॥
52. स्वभावभक्तिप्रवणं प्रतीश्वराः कया न वाचा मुदमुद्गिरन्ति वा ॥ 9/26 ॥
53. ह्रदस्य हंसावलिमांसलश्रियो वलाकयेव प्रवला विडम्वना ॥ 9/27 ॥
54. अकाञ्चनेऽकिञ्चन नायिकाऽङ्कके किमारकूटाभरणेन न श्रियः ॥ 9/28 ॥
55. पृषत्किशोरी कुरुतामसङ्गतां कथं मनोवृत्तिमपि द्विपाऽधिपे ॥ 9/29 ॥
56. मृणालतन्तुच्छिदुरा सतीस्थितिर्लवादपि त्रुट्यति चापलात्किल ॥ 9/31 ॥
57. निषिद्धमप्याचरणीयमापदि सती क्रिया नाऽवति यत्र सर्वथा ।
    घनाम्बुना राजपथेऽतिपिच्छिले क्वचिद्बुधैरप्यपथेन गम्यते ॥ 9/36 ॥
58. क्व वा निधिर्निधनमेति किं च तम् स वा कपाटं घटयन्निरस्यति ? ॥ 9/39 ॥
59. अयोऽधिकारे स्वरितत्वमिष्यते कुतोऽयसां सिद्धरसस्पृशामपि ॥ 9/42 ॥
60. मुखं विमुच्य श्वसितस्य धारया वृथैव नासापथ धावनश्रमः ॥ 9/44 ॥
61. ...... न्याय्यमुपेक्षते हि कः ॥ 9/46 ॥
62. विजृम्भितं यस्य किल ध्वनेरिदं विदग्धनारीवदनं तदाकरः ॥ 9/50 ॥
63. चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः ॥ 9/56 ॥
64. सुरेषु विघ्नैकपरेषु को नरः करस्थमप्यर्थमवाप्तुमीश्वरः ? ॥ 9/83 ॥
65. जनाऽऽनने कः करमर्पयिष्यति ? ॥ 9/125 ॥
66. न वस्तु दैवस्वरसाद्विनश्वरं सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वरः ॥ 9/126 ॥
67. सतां हि चेतः शुचिताऽऽत्मसाक्षिका ॥ 9/129 ॥
68. विचार्य कार्यं सृज मा विधान्मुधा कृताऽनुतापस्त्वयि पार्ष्णिविग्रहम् ॥ 9/134 ॥
69. न मोघ-सङ्कल्पधराः किलाऽमराः ॥ 9/145 ॥
70. स्वते रवेरप्सु कृतप्लवैः कृते न मुद्वती जातु भवेद् कुमुद्वती ॥ 9/148 ॥

कुमारसम्भवम्

1. अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा ॥ 1/27 ॥
2. अनपायिनि संश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी ॥ 4/31 ॥
3. अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥ 5/73 ॥
4. अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधारणमेव कर्म ॥ 3/19 ॥

5. अभ्यर्थनाभङ्गभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्वतेऽर्थे ।। 1/52 ।।
6. अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ।। 5/75 ।।
7. अशनेरमृतस्य चोभयोर्वशिनश्चाम्वुधराश्च योनयः ।। 4/43 ।।
8. अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ।। 6/79 ।।
9. आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति ।। 3/40 ।।
10. ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ।। 1/51 ।।
11. एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ।। 1/3 ।।
12. कः करं प्रसारयेत् पन्नगरत्नसूचये ? ।। 5/43 ।।
13. क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ।। 5/5 ।।
14. कठिनाः खलु स्त्रियः ।। 4/5 ।।
15. कं नाभिनन्दयत्येषा दृष्टा पीयूषवाहिनी ? ।। 10/48 ।।
16. कस्य मनो न हि क्षुभ्यति धामधाम्नि ? ।। 12/22 ।।
17. कार्येष्ववश्यकार्येषु सिद्धये क्षिप्रकारिता ।। 10/25 ।।
18. कालप्रयुक्ता खलु कार्यविद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति ।।. 7/63 ।।
19. क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम् ।। 6/13 ।।
20. क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ।। 5/86 ।।
21. क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्त्वमुच्चैः शिरसां सतीव ।। 1/12 ।।
22. दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने ।। 4/28 ।।
23. दावानलप्लोषविपत्तिमन्यो महाम्वुदात् किं हरते वनानाम् ।। 12/41 ।।
24. धिङ्महत्त्वमसतां हतान्तरम् ।। 8/57 ।।
25. ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च ।। 5/19 ।।
26. ध्रुवमभिमते पूर्णे को वा मुदा न हि माद्यति ? ।। 12/60 ।।
27. न कस्य वीर्याय परस्य सङ्गतिः ? ।। 15/51 ।।
28. न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ।। 5/83 ।।
29. न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।। 5/16 ।।
30. नन्दनालोकनमङ्गलेषु क्षणं-क्षणं तृप्यति कस्य चेतः ? ।। 11/20 ।।
31. न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।। 5/45 ।।
32. नववैधव्यमसह्यवेदनम् ।। 4/1 ।।
33. न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ।। 5/9 ।।
34. न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः ।। 5/77 ।।
35. न हीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम् ।। 3/63 ।।
36. नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता वेधसा हि गुणदोषयोर्गतिः ।। 8/66 ।।
37. पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्त्रिणः ।। 5/4 ।।
38. पराभिभूता वद किं क्षमन्ते कालातिपातं शरणार्थिनोऽमी ।। 9/10 ।।
39. पुत्रोत्सवे माद्यति का न हर्षात् ? ।। 11/17 ।।
40. प्रभुप्रसादो हि मुदे न कस्य ? ।। 12/32 ।।

41. प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु ॥ 3/1 ॥
42. प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः ॥ 6/20 ॥
43. प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः ॥ 6/85 ॥
44. प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः ॥ 3/28 ॥
45. प्रायेणैवं-विधे कार्ये पुरन्ध्रीणां प्रगल्भता ॥ 6/32 ॥
46. प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥ 5/1 ॥
47. भर्तृवल्लभतया हि मानसीं मातुरस्यति शुचं वधूजनः ॥ 8/12 ॥
48. भवत्प्रणीतमाचारमामनन्ते हि साधवः ॥ 6/31 ॥
49. भवन्ति वाचोऽवसरे प्रयुक्ता ध्रुवं फलाविष्टमहोदयाय ॥ 12/42 ॥
50. भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां वपुर्विशेषेष्वति गौरवाः क्रियाः ॥ 5/31 ॥
51. भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे प्रतिव्रता ॥ 6/86 ॥
52. मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥ 5/64 ॥
53. महतां वृथा भवेदसद्ग्रहान्धस्य हितोपदेशनम् ॥ 15/26 ॥
54. मुदे न हृद्या किमु बालकेलिः ? ॥ 11/40 ॥
55. यतः सतां सन्नतगात्रि ! सङ्गतंमनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ॥ 5/39 ॥
56. यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते ॥ 6/56 ॥
57. येन पूर्वमुदये पुरस्कृता नानुयास्यति कथं तमापदि ? ॥ 8/44 ॥
58. रत्नाकरे युज्यत एव रत्नम् ॥ 11/11 ॥
59. रवीपीतजला तपात्यये पुनरोघेण हि युज्यते नदी ॥ 4/44 ॥
60. विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥ 1/59 ॥
61. विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मलप्रकृतिषु स्थिरोदया ॥ 8/65 ॥
62. विनियोगप्रसादा हि किंकराः प्रभविष्णुषु ॥ 6/62 ॥
63. विपत्तिरपि संश्लाघ्योपकारव्रतिनः ॥ 10/23 ॥
64. विपदा परिभूताः किं व्यवस्यन्ति विलम्बितुम् ॥ 10/35 ॥
65. विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं क्षेत्तुमसाम्प्रतम् ॥ 2/55 ॥
66. वृत्तं हि महितं सताम् ॥ 6/12 ॥
67. व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः ॥ 3/13 ॥
68. शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम् ॥ 5/33 ॥
69. शशिना सह याति कौमुदी ॥ 4/33 ॥
70. साम्येत्प्रत्युपकारेण नोपकारेण दुर्जनः ॥ 2/40 ॥
71. समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य ? ॥ 3/21 ॥
72. सर्वथैव पितृभक्तिरतानामेष एव परमः खलु धर्मः ॥ 12/58 ॥
73. सह मेघेन तडित् प्रलीयते ॥ 4/33 ॥
74. सागरादनपगा हि जाह्नवी, सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक् ॥ 8/16 ॥
75. सुतविक्रमे सति न नन्दति का खलु वीरसूः ॥ 12/59 ॥
76. स्तोत्रं कस्य न तुष्टये ? ॥ 10/9 ॥
77. स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः ॥ 7/22 ॥
78. स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ॥ 4/26 ॥

मेघदूतम्

1. आपन्नार्ति प्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ।। पू./53 ।।
2. आशावन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां ।
   सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रूणद्धि ।। पू./10 ।।
3. कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा ।
   नीचैः गच्छत्युपरि च दशाचक्रनेमिक्रमेण ।। उ./46 ।।
4. कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः ।। उ./37 ।।
5. कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।। पू./5 ।।
6. के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ।। पू./54 ।।
7. ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ।। पू./41 ।।
8. न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय ।
   प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किंपुनर्यस्तथोच्चैः ।। पू./17 ।।
9. प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ।। उ./51 ।।
10. प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ।। उ./30 ।।
11. मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ।। पू./38 ।।
12. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः ।
    कण्ठाश्लेष-प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।। पू./3 ।।
13. याच्ञा मोघा वरंमधिगुणे नाऽधमे लब्धकामा ।। पू./6 ।।
14. रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ।। पू./20 ।।
15. वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ।। उ./4 ।। प्रक्षिप्त ।।
16. सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ।। उ./17 ।।
17. स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ।। पू./28 ।।
18. धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः ।। पू./5 ।।
19. स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा–
    दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ।। उ./49 ।।

रघुवंशम्

1. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा । (1/10)
2. सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः । (1/18)
3. प्रतिबद्ध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः । (1/79)
4. स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः । (2/4)
5. भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरः फलानि । (2/22)
6. न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य । (2/34)
7. शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति । (2/40)

8. स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन । (2/56)
9. सम्वन्धमाभाषणपूर्वमाहुः । (2/58)
10. भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् । (3/14)
11. क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति । (3/29)
12. पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् । (3/46)
13. यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः । (3/48)
14. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते । (3/62)
15. प्राणिपातप्रतीकारः संरम्भो हि महात्मनाम् । (4/64)
16. आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव । (4/86)
17. सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा । (5/13)
18. पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः । (5/16)
19. निर्गलिताम्वुगर्भं शरद्धनं नार्दति चातकोऽपि । (5/17)
20. उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य । (5/54)
21. प्रतिप्रियं चेद्भवतो न कुर्यां वृथा हि मे स्यात्स्वपदोपलब्धिः । (5/56)
22. नक्षत्रताराग्रहसंकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः । (6/22)
23. भिन्नरुचिर्हि लोकः । (6/30)
24. न हि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं कांक्षति षट्पदाली । (6/69)
25. रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन । (6/79)
26. मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम् । (7/15)
27. धूमो निवर्त्येत समीरणेन यतस्तु कक्षस्तत एव वह्निः । (7/55)
28. न हि तेन पथा तनुत्यजस्तनयावर्जितपिण्डकांक्षिणः । (8/26)
29. ननु तैलनिषेकविन्दुना सह दीपार्चि रूपैति मेदिनीम् । (8/38)
30. प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते । (8/40)
31. अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु । (8/43)
32. विषमप्यसृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया । (8/46)
33. धिगिमां देहभृतामसारताम् । (8/51)
34. वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः । (8/83)
35. परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्नपथा हि देहिनाम् । (8/85)
36. स्वजनाश्रु किलातिसन्ततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते । (8/86)
37. मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवनमुच्यते बुधैः । (8/87)
40. द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः । (8/90)
41. अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः । (9/74)
42. कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति । (9/80)
43. अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम् । (10/6)
44. याथार्थ्यं वेद कस्तव । (10/24)
45. स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते । (10/30)

46. स्वयमेव हि वातोऽग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते । (10/40)
47. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते । (11/1)
48. अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता । (11/2)
49. किं महोरगविसर्पि-विक्रमो राजिलेषु गरुडः प्रवर्तते । (11/27)
50. सद्य एव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि कांक्षितम् । (11/50)
51. पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलयति सागरेऽपि यः । (11/75)
52. खातमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम् । (11/76)
53. केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः किम्पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः । (11/80)
54. निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्त्तये । (11/89)
55. अत्यारूढ़ो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः । (12/33)
56. काले खलु समारब्धाः फलं बध्नन्ति नीतयः । (12/69)
57. अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्यशोधनानां हि यशो गरीयः । (14/35)
58. छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः । (14/40)
59. अमर्षणः शोणितकांक्षया किं पदा स्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः । (14/41)
60. आज्ञा गुरुणामविचारणीया । (14/46)
61. त्राणाभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम् । (15/3)
62. धर्मसंरक्षणार्थैव प्रवृत्तिर्भुवि शार्ङ्गिणः । (15/4)
63. संमुखीनो हि, जयो रन्ध्रप्रहारिणाम् । (15/17)
64. प्रह्वेष्वनिर्वन्धरुषो हि सन्तः । (16/80)
65. वयोरूप विभूतीनामेकैकं मदकारणम् । (17/43)
66. न हि सिंहो गजास्कन्दी भयाद्गिरिगुहाशयः । (17/52)
67. समीरणसहायोऽपि नाम्भः प्रार्थी दवानलः । (17/56)
68. अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते । (17/60)
69. सुखोपरोधि वृत्तं हि राज्ञामुपरुद्धवृत्तम् । (18/18)
70. स्वादुभिस्तु विषयैर्हतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते । (19/49)

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

1. अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ॥ अङ्क/2 ॥
2. अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेत् ॥ अङ्क/6 ॥
3. अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम ॥ अङ्क/5 ॥
4. अतिस्नेहः पापशङ्की ॥ अङ्क/4 ॥
5. अत्यारूढ़िर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा (प्रक्षिप्त)
6. अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि ॥ 7 ॥
7. अनार्यः परदारव्यहारः ॥ 7 ॥
8. अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम ॥ 1 ॥
9. अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् ॥ 5 ॥
10. अर्थो हि कन्या परकीय एव ॥ 4 ॥

11. अवश्यम्भाव्यचिन्तनीयः समागमो भवति ॥ 6 ॥
12. अवसरोपसर्पणीया राजानः ॥ 6 ॥
13. अविश्रमो लोकतन्त्राधिकारः ॥ 5 ॥
14. आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ॥ 2 ॥
15. आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम् ॥ 3 ॥
16. इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ 4 ॥
17. उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणीयोगम् ॥ 7 ॥
18. उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥ 5 ॥
19. उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिः, तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः ॥ 6 ॥
20. उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना ॥ 7 ॥
21. उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः ॥ 6 ॥
22. उचितं नः पर्युपासनमतिथीनाम् ॥ 1 ॥
23. एवमादिभिरात्मकार्यनिवर्तिनीनाममृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः ॥ 5 ॥
24. एवमात्माभिप्राय-सम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्वते ॥ 2 ॥
25. ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः ॥ 4 ॥
26. औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा ॥ 5 ॥
27. कदापि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्या न भवन्ति ॥ 6 ॥
28. कष्टं खल्वनपत्यता ॥ 6 ॥
29. कामी स्वतां पश्यति ॥ 2 ॥
30. किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते ॥ 3 ॥
31. किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ 1 ॥
32. किमीश्वराणां परोक्षम् ॥ 7 ॥
33. कुतः किल स्वयमक्षिणी आकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि ॥ 2 ॥
34. को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति ॥ 4 ॥
35. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति ॥ 4 ॥
36. गण्डस्योपरि पिण्टकः संवृत्तः ॥ 2 ॥
37. गुणवते कन्यका प्रतिपादनीया ॥ 4 ॥
38. गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति
39. ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः ॥ 3 ॥
40. चूतलतिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति ॥ 6 ॥
41. छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ॥ 7 ॥
42. ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
    प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः ॥ 6 ॥
43. तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ॥ 5 ॥
44. दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ॥ 1 ॥
45. धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता ॥ 4 ॥

46. न खलु मातापितरौ भर्तृवियोग दुःखितां दुहितरं द्रष्टुं पारयतः ॥ 6 ॥
47. न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥ 1 ॥
48. ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः ॥ 6 ॥
49. न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम ॥ 4 ॥
50. ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति ॥ 6 ॥
51. निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत् ॥ 3 ॥
52. पूर्वापरविरोध्यपूर्व एवं विरहमार्गः ॥ 6 ॥
53. वहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते ॥ 3 ॥
54. वलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ 1 ॥
55. भवितव्यता खलु वलवती ॥ 6 ॥
56. भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥ 1 ॥
57. भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः, नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनोघनाः ॥ 5 ॥
58. मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ॥ 1 ॥
59. यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति तत्किं आत्मनः प्रभावेण ॥ 2 ॥
60. राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम ॥ 1 ॥
61. राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव ॥ 5 ॥
62. रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः ॥ 6 ॥
63. लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत् ॥ 3 ॥
64. विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति ॥ 3 ॥
65. विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वानारम्भः प्रतीकारस्य ॥ 3 ॥
66. विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः ॥ 3 ॥
67. विनीत-वेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम ॥ 1 ॥
68. श्रुतं श्रोतव्यम् ॥ 3 ॥
69. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण प्रवृत्तयः ॥ 1 ॥
70. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं ॥ 1 ॥
71. सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति ॥
72. सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तुः ॥ 5 ॥
73. सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति ॥ 5 ॥
74. सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृति विशेषाणाम् ॥ 6 ॥
75. सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति ॥ 3 ॥
76. स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति ॥ 3 ॥
77. स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहि शङ्कया ॥ 7 ॥
78. स्वाधीन कुशलाः सिद्धिमन्तः ॥ 5 ॥
79. सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां, जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते, प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ 5 ॥
80. सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ॥ 6 ॥

81. सिद्ध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः, सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
    किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता, तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥ 7 ॥
82. हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥ 6 ॥
83. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु, संदृश्यते किमुत या प्रतिबोधवत्यः ।
    प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात, मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥ 5 ॥

मुद्राराक्षसम्

प्रथम अङ्क

1. अत्यादर शङ्कनीयः ।
2. अनुभूयतां चिरं विचित्रो राजप्रसादः ।
3. अनुचितः उपचारो हृदयस्य परिभवादपि दुःखमुत्पादयति ।
4. कायस्थ इति लघ्वी मात्रा ।
5. कीदृशस्तृणानामग्निना सह विरोधः ।
6. चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः ।
   न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते ॥
7. दिष्ट्या मित्रकार्येण मे विनाशो न पुरुष-दोषेण ।
8. प्रज्ञा-विक्रम-भक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये ।
   ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे सम्पत्सु चापत्सु च ॥
9. फलेन संवादितमस्य विकत्थनम् ।
10. नहि सर्वः सर्वं जानाति ।
11. न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम् ।
12. शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतिकारः ।
13. श्रोत्रियाक्षराणि प्रयत्नलिखितानि अपि नियतमस्फुटानि भवन्ति ।

द्वितीय अङ्क

14. प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला ।
    पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणावज्ञानविमुखी ॥
15. पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमे स्थितः ।
16. किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येष यत् ।
    किंवा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः ॥
    किन्त्वङ्गीकृतमुत्सृजन् कृपणवच्छ्लाघ्यो जनो लज्जते ।
    निर्व्यूढं प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम् ॥
17. नन्वयुक्ततरः सुहृद्द्रोहः ।
18. भव्यं रक्षति भवितव्यता ।
19. सौहार्दात् कृतकृत्यव नियतं लब्धान्तरा भेत्स्यति ।
20. भगवति कमलालये भृशमगुणज्ञासि ।
21. अमन्त्रौषधिकुशलो व्यालग्राही प्रमत्तो मत्तमतङ्गजारोही लब्धाधिकारो ।
    जितकाशी राजसेवक इत्येते त्रयोऽप्यवश्यं विनाशमनुभवन्ति ॥

22. प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः, प्रारभ्य विघ्नविहिता विरमन्ति मध्याः ।
    विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः, प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति ।।

तृतीय अङ्क

23. राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम् ।
24. परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः ।
25. दुराराध्या हि राजलक्ष्मीरात्मवभ्दिरपि राजभिः ।
26. श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्चा भृशम् ।
27. सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः ।
28. निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कार विषयः ।
29. न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभुभिराहूयन्ते ।
30. दैवम् अविद्वांसः प्रमाणयन्ति ।
31. विद्वांसोऽप्यविकत्थना भवन्ति ।

चतुर्थ अङ्क

32. अवीभत्सदर्शनं कृत्वा प्रवेशय ।
33. त्वद्वाञ्छान्तरितानि सम्प्रति विभो तिष्ठन्ति साध्यानि नः ।
34. प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः ।

पञ्चम अङ्क

35. मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि ।
36. तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येदधुना । विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति ।
37. अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापि पुरुषस्य महदाशङ्कास्थानम् ।
38. गतिः सोच्छायाणां पतनमनुकूलं कलयति ।
39. स्वार्थे कस्मिन् समीहा पुनरधिकतरे त्वामनार्य करोति ।
40. अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः ।
41. वयमिदानीमनार्याः संवृत्ताः ।

षष्ठ अङ्क

42. तत्किं निमित्तं कुकविकृतनाटकस्येवान्वयमुखेऽन्यन्निर्वहणम् ।
43. देवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति ।
44. अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति ।
45. अभूमिः खल्वेषोऽविनयस्य ।
46. एतत्तदपावृतमस्मच्छोकदीक्षां द्वारं दैवेन ।
47. कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तव सति वणिकत्वेऽपि वणिजः ।
48. सोऽयमभ्यर्णः शोकवज्रपातो हृदयस्यः ।

सप्तम अङ्क

49. स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः ।
50. सम्पन्नास्ते सर्वाशिषः ।
51. सर्वथा स्थाने यशस्वी चाणक्यः ।

52. कार्याणां गतयो विधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वं चिरात् ।
53. किं भूयः प्रियमुपकोमि ।
54. किं कर्त्तव्यमतः परम् ।

उत्तररामचरितम्

प्रथम अङ्क

1. अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं, सर्वास्ववस्थासु यद् ।
   विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा, यस्मिन्नरौर्योरसः ।।
   कालेनावरणात्ययात्यपरिणते, यत्प्रेमसारे स्थितं ।
   भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थयते ।। 1/39.
2. अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।। 1/28.
3. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता । यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ।। 1/5.
4. सङ्कटा ह्याहिताऽग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ।। 1/8.
5. सन्तापकारिणो वन्धुजन विप्रयोगा भवन्ति ।। 1/8/ गद्य.
6. लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते । ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति ।। 1/10.
7. तीर्थोदकं च वह्निश्च नाऽन्यतः शुद्धिमर्हतः । 1/13.
8. नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा । मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ।। 1/14.

द्वितीय अङ्क

9. न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।। 2/19.
10. सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति ।। 2/1.
11. वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे ।। 2/4.
12. प्रियप्रायावृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः । प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।।
    पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसम् । रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ।। 2/2.

तृतीय अङ्क

13. आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते ।। 3/17.
14. एको रसः करुण एव निमित्तभेदाभ्दिन्नः ।। 3/47.
15. पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया । शोकक्षोभे च हृदयम् प्रवालैरवधार्यते ।। 3/29.
16. अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकास्तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिनः ।। 4/3/ गद्य.

चतुर्थ अङ्क

17. सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सद्बन्धुवियोगजानि ।
    दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते ।। 4/8.
18. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ।। 4/11.
19. पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति ।। 4/12.
20. सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां प्रथममेकरसामनुकूलताम् ।
    पुनरकाण्डविवर्तनदारुणो विधिरहो विशिनष्टि मनोरुजम् ।। 4/15.
21. आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्यवहारास्तेषु मा संशयो भूत् ।
    भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति ।। 4/18.

पञ्चम अङ्क

22. अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः ॥ 5/25.
23. तेजस्तेजसि शाम्यतु ॥ 5/7.
24. तारामैत्रकं चक्षूरागः ॥ 5/16/ गद्य.
25. अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नाऽस्ति प्रतिक्रिया ।
    स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति ॥ 5/17.
26. वीराणां समयो हि दारुण-रसः स्नेहक्रमं बाधते । 5/19.

26.A. लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्यौद्भवः कुतः ॥ 5/20.

27. न रथिनः पादचारमभियुञ्जन्ति ॥ 5/20/ गद्य.
28. ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः ।
    सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निष्कृतिः ॥ 5/29.
29. कामान्दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं कीर्तिं सूते दुर्हृदो निष्प्रलाति ।
    शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥ 5/30.
30. सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानां बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम् ॥ 5/32.

षष्ठ अङ्क

31. न किञ्चदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
    तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियोजनः ॥ 6/5.
32. सर्वमतिमात्रं दोषाय ॥ 6/5/ गद्य.
33. महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः । 6/11.
34. स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिसिद्धमेतत् ॥ 6/11/ गद्य.
35. व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु–,
    र्न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।
    विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं,
    द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चंद्रकान्तः ॥ 6/12.
36. न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते,
    स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः ।
    मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः,
    किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति ॥ 6/14.
37. प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति ॥ 6/30.
38. चिरं ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः,
    प्रवासे चाश्वासं स खलु न करोति प्रियजनः ।
    जगज्जीर्णाऽरण्यं भवति च कलत्रेऽप्युपरते,
    कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ॥ 6/38.
39. हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥ 6/32.

सप्तम अङ्क

40. साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः ॥ 7/1/ गद्य.
41. को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ॥ 7/4.

42. अव्याहतान्तः प्रकाशा हि देवताः सत्त्वेषु ।। 7/6/ गद्य.
43. आपातदुःसहः स्नेहसंवेगः ।। 7/6/ गद्य.
44. साऽनुषङ्गाणि कल्याणानि ।। 7/20/ गद्य.

मृच्छकटिकम्

1. शून्यमपुत्रस्य गृहं, चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम् ।
   मूर्खस्य दिशः शून्याः, सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ।। 1/8 ।।
2. अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ।। 1/11 ।।
3. भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति च ।। 1/13 ।।
4. नष्टधनाश्रयस्य सौहृदादपि जनाः शिथिली भवन्ति ।। 1/13 ।।
5. निर्बुद्धिः क्षयमेति ।। 1/14 ।।
6. अहो निर्धनता सर्वापदामास्पदम् ।। 1/14 ।।
7. निस्तेजाः परिभूयते 1/14 ।।
8. मुमूर्षुर्यो भवति न स खलु जीवति ।। 1/30 ।।
9. न पुष्पमोषमर्हति उद्यानलता ।। 1 ।।
10. गुणः खलु अनुरागस्य कारणम् न पुनर्वलात्कारः ।। 1 ।।
11. रत्नं रत्नेन सङ्गच्छते ।। 1 ।।
12. मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम् ।। 1/37 ।।
13. स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावत् चण्डो भवति ।। 1 ।।
14. चारित्र्येण विहीन आढ्योपि च दुर्गतो भवति ।। 1/43 ।।
15. आलाने गृह्यते हस्ती वाजी वल्गासु गृह्यते ।
    हृदये गृह्यते नारी यदीदं नास्ति गम्यताम् ।। 1/50 ।।
16. यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां नरः कृतान्तोपहितां प्रपद्यते ।
    तदाऽस्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रतां चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जनः ।। 1/53 ।।
17. पुरूषेषु न्यासानिक्षिप्यन्ते न पुनर्गेहेषु ।। 1 ।।
18. बहुदोषा हि शर्वरी ।। 1/58 ।।
19. सुमेरुशिखर-पतनसन्निभं द्यूतम् ।। 2/6 ।।
20. य आत्मवलं ज्ञात्वा भारं तुलितं वहति मनुष्यः ।
    तस्य स्खलनं न जायते न च कान्तारगतो विपद्यते ।। 2/14 ।।
21. अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति ।। 2 ।।
22. सत्कारधनः खलु सज्जनः ।। 2/15 ।।
23. वासपादपविसष्ठुलतया पक्षिणः इतस्ततोऽपि अहिण्डन्ते ।। 2 ।।
24. अनतिक्रमणीया भगवती गोकाम्या, बाह्मणकाम्या च ।। 3 ।।
25. शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता ।। 3/24 ।।
26. स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ।। 4/2 ।।
27. साहसे श्रीः प्रतिवसति ।। 4 ।।

28. रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति ॥ 4/13 ॥
29. वेश्या श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः ॥ 4/14 ॥
30. न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति, न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति ।
यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो, न वेशजाताः शुचयस्तथाङ्गना ॥ 4/17 ॥
31. स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः ।
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते ॥ 4/19 ॥
32. न चन्द्रादातपो भवति ॥ 4 ॥
33. निशायां नष्टचन्द्रायां दुर्लभो मार्गदर्शकः ॥ 4/21 ॥
34. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम् ।
गुणप्रकर्षादुडुपेन शम्भोरलंघ्यमुल्लंघितमुत्तमाङ्गम् ॥ 4/23 ॥
35. दैवी च सिद्धिरपि लंघयितुं न शक्या ॥ 6/2 ॥
36. वंलवता सह को विरोधः ॥ 6/2 ॥
37. वरं व्यापञ्छतो मृत्युर्नगृहीतस्य बन्धने ॥ 6/17 ॥
38. न कालमपेक्षते स्नेहः ॥ 7 ॥
39. विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसञ्चितं धर्मम् । 8/1 ॥
40. मूर्खैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा ॥ 8/6 ॥
41. हंसी हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता ॥ 8/16 ॥
42. दुष्करं विषमोषधीकर्तुम् ॥ 8 ॥
43. न लताः पल्लवच्छेदमर्हन्त्युपवनोद्भवाः ॥ 8/21 ॥
44. विविक्तविस्रम्भरसो हि कामः ॥ 8/30 ॥
45. सूर्योदये उपरागो महापुरुषविनिपातमेव कथयति ॥ 9 ॥
46. छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ 9/26 ॥
47. मूलेछिन्ने कुतः पादपस्य पालनम् ॥ 9 ॥
48. पुरुषभाग्यानामचिन्त्याः खलु व्यापाराः ॥ 10 ॥
49. सर्वः खलु भवति लोके-लोकः सुखसंस्थितानां चिन्तायुक्तः ।
विनिपतितानां नराणां प्रियकारी दुर्लभो भवति ॥ 10/15 ॥
50. परोऽपि बन्धुः समसंस्थितस्य मित्रं न कश्चिद्विषमस्थितस्य ॥ 10/16 ॥
51. गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्तिं लभेते ॥ 10 ॥
52. सर्वत्रार्जवं शोभते ॥ 10 ॥

वेणीसंहारम्

1. अकुशलदर्शनाः अपि स्वप्नाः देवतानां प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्ति ॥ 2/2-3 ॥
2. अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम् ॥ 6/11-12 ॥
3. अनुल्लङ्घनीयः समुदाचारः ॥ 5/26-27 ॥
4. अप्रमत्तसंचरणीयानि रिपुबलानि श्रूयन्ते ॥ 1/26-27 ॥
5. अहो मुग्धत्वमबलानाम् ॥ 2/24-25 ॥

6. आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ॥ 5/23 ॥
7. उपक्रियमाणाभावे किमुपकरणेन ! ॥ 5/3-4 ॥
8. उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्त्वैरवज्ञया । अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ॥ 3/43 ॥
9. कालानुरूपं प्रतिविधातव्यन् ! ॥ 5/9-10 ॥
10. कुतस्तस्य विजयादन्यद् यस्य भगवान् पुराणपुरुषो नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते ॥ 6/42-43 ॥
11. को हि नाम भगवता संदिष्टं विकल्पयति ॥ 6/11-12 ॥
12. गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः । करोति महतीं प्रीतिमपाकारोऽपकारिणाम् ॥ 2/3 ॥
13. ग्रहाणां चरितं स्वप्नोऽनिमित्तान्युपयाचितम् । फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञा न विभ्यति ॥ 2/15 ॥
14. तेजस्वी रिपुहतबन्धुदुःखपारं बाहुभ्यां व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम् ॥ 3/27 ॥
15. दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ॥ 3/37 ॥
16. न घटस्य कूपपाते रज्जुरपि तत्र प्रक्षेप्तव्या ॥ 5/3-4 ॥
17. न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम् ॥ 5/26-27
18. न युक्तं पराक्रमवतां वाङ्मात्रेणापि विरागमुत्पादयितुम् ॥ 5/37-38 ॥
19. न युक्तं बन्धु-व्यसनं विस्तरेणावेदयितुम् ॥ 6/14-15 ॥
20. न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुं ॥ 6/18-19 ॥
21. पर्ययेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः ॥ 2/14 ॥
22. पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति ॥ 4/10-11 ॥
23. प्रकृतिर्दुस्त्यजा ॥ 3/27-28 ॥
24. यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमितियुक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ।
    अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥ 3/6 ॥
25. यद्देवस्त्रिभुवननाथो भणति तत्कथमन्यथा भविष्यति ॥ 6/12-13 ॥
26. यावत्क्षत्रं तावत् समरविजयिनो जिता हताश्च वीराः ॥ 5/28-29 ॥
27. यावत् प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम् ॥ 5/5-6 ॥
28. यावदयं संसारस्तावत्प्रसिद्धैवेयं लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया ॥ 3/17-18 ॥
29. वक्तुं सुकरमिदं दुष्करमध्यवसितुम् ॥ 3/34-35 ॥
30. वन्दनीया गुरवः ॥ 5/26-27 ॥
31. विश्राव्य नामकर्मणः वन्दनीया गुरवः ॥ 5/26-27 ॥
32. स एव स्निग्धो जनो यः पृष्टः परुषमपि हितं भणति ॥ 2/13-14 ॥
33. स्त्रीणां हि साहचर्याद् भवन्ति चेतांसि भर्तृसदृशानि ।
    मधुरापि हि मूर्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली ॥ 1/20 ॥
34. स्वपञ्जनः किं न खलु प्रलपति ॥ 2/2-3 ॥
35. हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः संदधते परान् ॥ 5/6 ॥

रत्नावली

1. अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः ।
2. आत्मा किल दुःखमालिख्यते ।
3. आनीय झटिटि घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ।
4. इयमनभ्रा वृष्टिः ।
5. ईदृशमत्यन्तमाननीयेष्वपि निरनुरोधवृत्तिस्वामिभक्तिव्रतम् ।
6. ईदृशं रूपं मनुष्यलोके न पुनर्दृश्यते ।
7. एषा खलु त्वयाऽपूर्वा श्रीः समासादिता ।
8. कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः ।
9. कस्मात् परिहासशीलतयेमं जनं लघु करोषि ।
10. किं पुनः साहसिकानां पुरुषाणां न सम्भाव्यते ।
11. किमिदमकारणमेव पतङ्गवृत्तिः क्रियते ।
12. ग्राम्यो यथाऽहं कृतः ।
13. घुणाक्षरमपि कदापि सम्भवत्येव ।
14. तत्कस्मादत्रारण्यरुदितं करोषि ।
15. तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णजलागमो दिवसः ।
16. दिष्ट्या वर्धसे समीहिताभ्यधिकया कार्यसिद्ध्या ।
17. दुरवगाहा गतिर्दैवस्य ।
18. न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते ।
19. न खलु सखीजने युक्त एवं कोपानुवन्धः ।
20. निःशेषं यान्तु शान्ति पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः ।
21. प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविसह्यं हि भवति ।
22. भोः किमेतैर्वक्रभणितैः ।
23. मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ।
24. मनश्चलं प्रकृत्यैव ।
25. रमयतितरां सङ्केतस्था तथापि कामिनी ।

स्वप्नवासवदत्तम्

1. अनतिक्रमणीयो हि विधिः ॥ अङ्क 4 ॥
2. अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनम् ॥ अङ्क 3 ॥
3. अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ॥ 6/13 ॥
4. अनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ॥ 1 ॥
5. अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति ॥ 4 ॥
6. आगमप्रधानानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ॥ 2 ॥
7. कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले ॥ 6/10 ॥
8. कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ॥ 1/4 ॥

9. गुणानां वा विशालानाम्, सत्काराणां च नित्यशः ।
   कर्तारः सुलभा लोके, विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ 4/9 ॥
10. तपोवनानि नामातिथिजनस्य स्वगेहम् ॥ 1 ॥
11. दत्तं वेतनं परिखेदस्य ॥ 4 ॥
12. दुःखं त्यक्तुं वद्धमूलोऽनुरागः, स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ॥ 4/6 ॥
13. न परुषाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ॥ 1/5 ॥
14. न हि सिद्धवाक्यानुत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥ 5/11 ॥
15. परस्परगता लोके दृश्यते रुपतुल्यता ॥ 6/14 ॥
16. प्रद्वेषो वहुमानो वा संकल्पादुपजायते ॥ 1/7 ॥
17. प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥ 6/7 ॥
18. सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति ॥ 4 ॥
19. सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम ॥ 2 ॥
20. सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ॥ 1 ॥
21. सविज्ञानमस्य दर्शनम् ॥ 1 ॥
22. साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः ॥ 6 ॥
23. स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥ 4/8 ॥
24. अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसंजातरागौ ॥ 2 ॥
25. दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥ 1/10 ॥
26. सुखमर्थोभवेद्दातुं, सुखं प्राणाः सुखं तपः ॥ 1/10 ॥

मालविकाग्निमित्रम्

प्रथम अङ्क

1. अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढ़मूलत्वात् ।
   नवसंरोहणशिथिलस्तरूरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ॥ 1/8.
2. अतिमात्रभासुरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः ।
   अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिगृहीतः ॥ 1/13.
3. अनातुरोत्कण्ठितयोः प्रसिध्यता समागमेनापि रतिर्न मां प्रति ।
   परस्परप्राप्तिनिराशयोः वरं शरीरनाशोऽपि समानुरागयोः ॥ 3/15.
4. अन्योन्यकलहितयोर्मत्तहस्तिनोरेकतरस्मिन्ननिर्जिते कुतः उपशमः ॥
5. अर्थं सप्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।
   दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि ॥ 1/9.
6. अहो दुरासदो राजमहिमा ।
7. कामं खलु सर्वस्यापि कुलविद्या बहुमता ।
8. न हि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतङ्गजः ।
9. पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा ।

10. पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।
    जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ।। 1/6.
11. पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
    सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ़ परप्रत्ययनेयवुद्धिः ।। 1/2.
12. प्रायः समानविद्या परस्परयशः पुरोभागाः ।
13. लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम् ।
    यस्यागमः केवलजीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ।। 1/17.
14. विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति ।
15. शिलष्टाक्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।
    यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ।। 1/16.
16. सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय ।
17. सुशिक्षितोऽपि सर्व उपदेशदर्शने न निपुणो भवति ।

द्वितीय अङ्क

18. अहो सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभान्तरं पुष्यति ।
19. उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः । श्यामायते न युष्मासु यः काञ्चनमिवाग्निषु ।। 2/9.
20. पण्डित परितोषप्रत्यया ननु मूढ़ा जाति : ।
21. मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः । पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः ।। 2/7.

तृतीय अङ्क

22. अनुरागोऽनुरागेण परीक्षितव्यः ।
23. अहो अविश्वसनीयाः पुरुषाः ।
24. कर्मगृहीतेन कुम्भीलकेन सन्धिच्छेदनं शिक्षितोऽस्मीति वक्तव्यं भवति ।
25. आम्रांकुरं विचिन्वत्योरावयोः पिपीलिकाभिर्दष्टम् ।
26. न शोभते प्रणयिजने निरपेक्षता ।
27. निसर्गनिपुणा स्त्रियः ।
28. भ्रमर-संबाध इति वसन्तावतार-सर्वस्वभूतः कि नाम्रप्रसवोऽवतंसनीयः ।
29. स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः ।। 3/14.

29.A. मदः किल स्त्रीजनस्य विशेषमण्डनम् ।

चतुर्थ अङ्क

30. अहो कुम्भीलकैः कामुकैश्च परिहरणीया खलु चन्द्रिका ।
31. कार्त्स्न्येन निवर्णयितु च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागमानाम् ।
    न च प्रियेष्वायतलोचनानां समग्रपातीनि विलोचनानि ।। 4/8.
32. किं नु खलु दर्दुरा व्याहरन्तीति देवः पृथिवीं विस्मरन्ति ।
33. कुतूहलवानपि निसर्गशालीनः स्त्रीजनः ।
34. नहि बुद्धिगुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम् । कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते ।। 4/6.
35. बन्धनभ्रष्टो गृहकपोतको विडालिकालोले पतितः ।।
36. रमणीयः खलु नवाङ्गनानां मदनविषयावतारः ।।

पञ्चम अङ्क

37. अहो परिभवोऽपहारिणो विनिपाताः ।
38. आगामि सुखं वा दुःखं वा हृदयं समर्थीकरोति ।
39. चन्दनं खलु मया पादुका परिभोगेण दूषितम् ।
40. तनुभृतामीदृशी लोकयात्रा ।
41. न शोच्यस्तत्र भवान् सफलीकृतभर्तृपिण्डः ।
42. प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः ।
    अन्यसरितां शतानि हि समुद्रगाः प्रापयन्त्युदधिम् ॥ 5/19.
43. सर्वोऽपि नववरो लज्जातुरो भवति ।
44. नन्वाकृतिविशेषेष्वादरः पदं करोति । (प्रथम अङ्क)
45. साधुत्वं द्ररिद्र आतुर इव वैद्येनोपमीयमानमौषधमिच्छसि ॥ (द्वितीय अङ्क)
46. मयानाम मुग्धचातकेनेव शुष्कघनगर्जितेऽन्तरिक्षेजलपानमिष्टम् ॥ (द्वितीय अङ्क)

कर्पूरमञ्जरी

1. अकाण्डकष्माण्डपतनम् ।
2. अङ्गना हृदयान्नापसरन्ति ।
3. अधिदेवतेव निवसति तथापि खलु तारुण्ये लक्ष्मीः ।
4. कन्दर्पो जातदर्पो युवजन जयेन पूर्णलक्ष्यो विभाति ।
5. कुमारत्वे मानुषस्यामनोज्ञमे तस्मिन्तारुण्ये किमपि सौन्दर्यमारोहयति ।
6. कोऽन्यश्चन्द्रात् समुद्रवर्धनविदग्धः ?
7. तुरगस्य शीघ्रत्वे किं सक्षिणः पृच्छ्यन्ते ?
8. दयितानि कण्ठे रञ्जन्ति छेदाः समसङ्गमे ।
9. दासत्वं करोति पञ्चशरो वधूनाम् ।
10. द्राक्षारसो न मधुरीयते शर्करया ।
11. न खलु मृगाङ्कलाञ्छनमन्तरेण शेफालिका कुसुमोत्करं विकसति ।
12. न कस्तूरिका कुग्रामे वने वा विक्रीयते ।
13. निसर्ग-चङ्गस्यापि मानुषस्य शोभा समुन्मीलति भूषणैः ।
14. नेदं सुवर्णं कषपट्टिकां विना कष्यते ।
15. भृष्टष्ठक्कुरः, क्षुधाक्लान्तो ब्राह्मणः, अविनीतहृदया बालरण्डा, विरहितश्च मानुषो मनोरथमोदकैरात्मानं विडम्बयति ।
16. मदिरा पञ्चगव्यं चैकस्मिन् भाण्डे क्रियते, कश्चित् माणिक्यं च सममाभरणे प्रयुज्यते ।
17. युज्यते चम्पकलतायाः कस्तूरीकर्पू रैरालवालपरिपूरणम् ।
18. स पुत्रो यः, कुलमुज्ज्वलयति ।
19. शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्यः ।
20. हस्ते कङ्कणं किं दर्पणेन ।
21. हृदयहरणयन्त्रं यौवनं कामिनीनाम् ।

4.2. काव्यशास्त्र (साहित्यदर्पण)

'साहित्यशास्त्र' का ही दूसरा नाम 'काव्यशास्त्र' है । काव्य के अन्तर्गत दृश्यकाव्य एवं श्रव्यकाव्य दोनों का समाहार होने से काव्यशास्त्र को समस्त काव्यों की कसौटी माना जाता है । काव्यशास्त्र के अध्ययन के बिना हमें किसी काव्य अथवा कवि के गुण-दोषों का पता नहीं चल सकता और न ही काव्यगत वास्तविक आनन्द की अनुभूति ही होगी । अतः काव्य के मर्म को समझने के लिए काव्यशास्त्र का ज्ञान होना अनिवार्य है । इसे अलङ्कारशास्त्र अथवा नाट्यशास्त्र के भी नाम से जाना जाता है । काव्यप्रकाश, काव्यादर्श, काव्यालङ्कार, ध्वन्यालङ्कार, साहित्यदर्पण इत्यादि की गणना काव्यशास्त्र के अन्तर्गत की जाती है ।

सन्धिविग्रहिक-महापात्र-श्री विश्वनाथ कविराज (13वीं–14वीं शताब्दी) प्रणीत 'साहित्यदर्पण' संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि है । यह काव्यशास्त्र के विशाल वाङ्मय को साङ्गोपाङ्ग अत्यन्त सरल-सुस्पष्ट शैली में तथा थोड़े से ललित शब्दों में स्पष्ट कर देने की अद्भुत क्षमता रखता है । कुछ महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग प्राप्त विषयों का साहित्यदर्पण की धारा में संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है—

4.2.1. काव्य की परिभाषा

आचार्य विश्वनाथ कविराज ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है–**"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"** अर्थात् रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहते हैं । इस परिभाषा में समन्वित 'रसात्मकम्' तथा 'वाक्यम्' दोनों का विवेचन इस प्रकार है—

1. **रसात्मकम्**—रसात्मक का अभिप्राय है–'रस ही है आत्मा जिसकी'–**'रस एवात्मा साररूपतया जीवनधायको यस्य ।'** अर्थात् ऐसा वाक्य, जिसका प्राणभूत (आत्मा) रस है; उस वाक्य को रसात्मक कहते हैं । यहाँ पर 'रस' का अभिप्राय है–'जो आस्वादित होता है, उस सबको रस कहते हैं'–**'रस्यते इति रसः'** । इससे (i) रस (ii) रसाभास (iii) भाव तथा (iv) भावाभास का भी ग्रहण होता है–

रस का उदाहरण–

"शून्यं वासगृहं विलोक्य, शयनादुत्थाय किञ्चित्छनैर्;
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम् ।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं;
लज्जानम्रमुखी प्रयेण हसता बाला चिरं चुम्बिता ॥"

रसाभास–'तिर्यग्विषयत्वाद्रसाभासः' अर्थात् अनौचित्य से प्रवृत्त तथा पशु-पक्षी विषयक रस (शृंगार) को रसाभास (शृंगाराभास) कहते हैं, उदाहरणतया–

"मधुद्विरेकः कुसुमैकपात्रे, पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृंगेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥ कालिदास ॥

भाव–'भगवद्विषया रतिर्भावः' अर्थात् देवादि विषयक रति और सञ्चारीभाव यदि व्यञ्जित हो, तो उसे 'भाव' कहते हैं । उदाहरणतया–

"यस्यालीयत शल्कसीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलम्;
दंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी ।

क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो;

ध्याने विश्वम् असावधार्मिक कुलं कस्मैचिदस्मै नमः ॥

2. **वाक्यम्**– वाक्य का लक्षण करते हुए विश्वनाथ जी लिखते हैं–"**वाक्यं स्याद्योग्यताकांक्षा-सत्तियुक्तः पदोच्चयः ।**" अर्थात् योग्यता, आकांक्षा, आसत्ति से युक्त पदसमूह को वाक्य कहते हैं । यहाँ पर 'पदार्थानां परस्पर सम्बन्धे बाधाभावः योग्यताः'; 'प्रतीतिपर्यवसानविरहः आकाक्षा' तथा 'बुद्ध्यविच्छेदः आसत्ति' समझना चाहिए ।

4.2.2. काव्य की अन्य परिभाषाओं का खण्डन

आचार्य विश्वनाथ कविराज ने काव्यस्वरूप निरूपित करते हुए मम्मट, कुन्तक, भोज, आनन्दवर्द्धन तथा वामन की परिभाषाओं का खण्डन किया है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

1. **आचार्य मम्मट–"तददोसौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।**" अर्थात् "दोषरहित, गुणसहित तथा अलङ्कारों से विभूषित शब्द एवं अर्थ को काव्य कहते हैं, किन्तु यदि कहीं अलङ्कार स्फुट न हो तो भी कोई हानि नहीं होती है ।" आचार्य मम्मट की इस परिभाषा के खण्डन में कविराज विश्वनाथ जी अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं कि–काव्य में किसी दोष की उपस्थिति से उस काव्य का मूल्य (कोटि) भले कमं (निम्न) हो जाय, परन्तु उसका काव्यत्व नष्ट नहीं होता हैं; जिस प्रकार कि कीटानुविद्ध रत्न का रत्नत्व नष्ट नहीं होता है–

"कीटानुविद्धरत्नादि साधारण्येन काव्यता ।

दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः ॥"

इसके अतिरिक्त 'शब्दार्थौ' का 'सगुणौ' विशेषण उचित नहीं है; क्योंकि गुण केवल रस में ही रहते हैं, शब्द और अर्थ में नहीं–

"ये रसस्याङ्गिनो धर्माः सौर्यादय इवात्मनः । उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥"

2. **आचार्य कुन्तक–"वक्रोक्तिः काव्यजीवितम् ।**" अर्थात् 'वक्रोक्ति ही काव्य है।' वक्रोक्ति-जीवितकार आचार्य कुन्तक की प्रस्तुत परिभाषा का खण्डन करते हुए विश्वनाथ जी कहते हैं–वक्रोक्ति तो एक अलङ्कार मात्र है । काव्य के एक अङ्ग अलङ्कार का एक उपविभाग है । इसके अतिरिक्त अलङ्कार काव्य का स्वरूप नहीं होता है, अपितु काव्य में केवल उत्कर्ष पैदा करता है । अतः यह लक्षण भी स्वतः निरस्त हो जाता है ।

3. **भोज–"अदोषं गुणवत्काव्यम् अलङ्कारैरलङ्कृतम् । रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ॥"** अर्थात्–"दोषरहित, गुणसहित, अलङ्कारों से विभूषित तथा रस से युक्त काव्य को बनाता हुआ कवि कीर्ति और प्रीति का पात्र बनता है ।" आचार्य भोज के इस लक्षण के खण्डन में आचार्य विश्वनाथ का कहना है कि–दोष-गुणादिकों का स्वरूप में निवेश न हो सकने से यह लक्षण भी ख़ण्डित हो जाता है ।

4. **आचार्य आनन्दवर्द्धन–"काव्यस्यात्मा ध्वनिः ।**" अर्थात् "ध्वनि ही काव्य की आत्मा है ।" आनन्दवर्द्धनाचार्य की इस परिभाषा के खण्डन में मम्मटाचार्य का कथन है कि–"यदि वस्तुमात्र के व्यंग्य होने पर काव्यत्व मानने लगें तो–'**राजा देवदत्त गाँव को जाता है ।**' इत्यादि वाक्य भी काव्य हो जाएंगे, क्योंकि इस वाक्य में देवदत्त के भृत्य का पीछे-पीछे जाना ध्वनित हो रहा है ।"

5. **आचार्य वामन–"रीतिरात्मा काव्यस्य ।**" अर्थात् "काव्य की आत्मा रीति है ।" आचार्य वामन की इस परिभाषा के खण्डन में विश्वनाथ जी कहते हैं–"वामन का यह कथन ठीक नहीं है,

क्योंकि रीति तो संघटना (रचना) रूप है । संघटना शरीर के अङ्ग विन्यास के तुल्य होती है । वह आत्मा नहीं हो सकती । आत्मा तो शरीर से भिन्न होती है ।"

इस प्रकार उपर्युक्त पाँचों परिभाषाओं का खण्डन करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने सिद्धान्त-पक्ष के रूप में काव्य की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए–**"वाक्यं रसात्मकं काव्यं ।"** ऐसा लिखा है ।

4.2.3. शब्दशक्ति

जिसके द्वारा शब्द और अर्थ के वीच वाचक वाच्य से सम्वन्धित होता है, अर्थात् पद से पदार्थ का वोध कराने वाला तत्त्व विशेष ही शक्ति के नाम से जाना जाता है । अभिधा, लक्षणा तथा व्यञ्जना भेद से तीन शक्तियाँ पाई जाती हैं ।

(क) संकेतग्रह–'अभिधा' वृत्ति से जिस अर्थ का वोध होता है, उसे 'संकेतग्रह' कहते हैं । संकेतित शब्द का अर्थ ही होता है–'मुख्य' । इस प्रकार–लक्ष्य और व्यङ्ग्यं अर्थों के पूर्व जो मुख्य अर्थ उपस्थित होता है, उसे संकेतित अर्थ या 'संकेतग्रह' कहते हैं । संकेतग्रह के आठ प्रमुख साधन (उपाय) बताए गए हैं–

"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च ।
वाक्यस्यशेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ॥"

अर्थात्–1. व्याकरण, 2. उपमान, 3. कोश, 4. आप्तवाक्य, 5. लोकव्यवहार, 6. वाक्यशेष, 7. विवृति (व्याख्या), 8. सान्निध्य (संसर्ग), ये आठ शक्तिग्रह के विशेष साधन हैं ।

शक्तिग्रह के विषय–'संकेतोगृह्यते जातौ गुणद्रव्य क्रियासु च' अर्थात् संकेतग्रह द्रव्य (द्रव्यशब्दा एक व्यक्तिवाचिनो हरि-हर-डित्थ-डवित्थादयः), गुण (गुणो विशेषाधान हेतुः सिद्धो वस्तुधर्मः) क्रिया (क्रिया साध्यरूपा वस्तुधर्माः पाकादयः) तथा जाति (जातिर्गोपिण्डादिषु गोत्वादिका) इन चारों में पाया जाता है; जवकि मीमांसकों के अनुसार–जाति में; नैयायिकों के अनुसार जाति-विशिष्ट व्यक्ति में तथा वैयाकरणों एवं मम्मट आदि आलङ्कारिकों के मत में उपाधि में संकेतग्रह मानना चाहिए। आचार्य विश्वनाथ को भी उपाधि ही अभीष्ट है; क्योंकि जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य; सभी पदार्थों की उपाधियाँ ही हैं।

(ख) अभिधा–"तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा ।" अर्थात्–संकेतित अथवा मुख्य अर्थ का बोध कराने वाली शब्द की अग्रगण्य (प्राथमिक) शक्ति को 'अभिधावृत्ति' के नाम से जाना जाता है । अर्थात्–जो संकेतित अर्थ है, वही मुख्यार्थ है और उस मुख्य अर्थ के बोधन में शब्द का जो व्यापार होता है, वह अभिधा है । इस प्रकार शब्द व्यापर से जो अर्थ अव्यवहित रूप में सर्वप्रथम उपस्थित होता है, वह मुख्यार्थ कहलाता है । जिस प्रकार हस्तपादादि समस्त अवयवों में मुख प्रधान है और सर्वप्रथम दिखलाई पड़ता है; उसी प्रकार समस्त अर्थों में जो अर्थ सबसे पहले उपस्थित होता है, मुख के समान होने से उसे मुख्यार्थ कहते हैं । **मुखमिव मुख्यः** इस अर्थ में 'मुख' शब्द में–**'शाखादिभ्यो यः'** इस सूत्र से 'य' प्रत्यय होकर 'मुख्य' शब्द बनता है । इसी मुख्य अर्थ की बोधिका शक्ति मुख्या (अभिधा) है । इसी को शक्ति भी कहते हैं ।

(ग) लक्षणा– "मुख्यार्थबाधे तद्युक्तोययाऽन्योर्थः प्रतीयते ।
रूढ़ेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता ॥"

अर्थात्–मुख्य अर्थ का बोध होने पर तथा उस मुख्य अर्थ से युक्त (सम्बद्ध) रूढ़ि अथवा प्रयोजन से, जिसके द्वारा अन्य अर्थ की प्रतीति होती है, उसे 'लक्षणा' कहते हैं । यह शक्ति 'अर्पित' अर्थात् कल्पित (गौड = अमुख्य) है ।

इस प्रकार उपर्युक्त कारिका से लक्षणा के चार कारण सिद्ध होते हैं–1. मुख्यार्थ वाध, 2. मुख्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ सम्वन्ध, 3. रूढ़ि तथा 4. प्रयोजन । इनमें से प्रथम दो, तो सर्वत्र आवश्यक हैं, परन्तु उत्तरवर्ती दो में से किसी एक की (रूढ़ि या प्रयोजन) आवश्यकता होती है । उदाहरणतया– **'कलिङ्गः साहसिकः'** तथा **'गङ्गायां घोषः'** में देशादि का वाचक कलिङ्ग शब्द तथा प्रवाहादि का वाचक गङ्गा शब्द अपने मुख्यार्थ के द्वारा अन्तय में अनुपपन्न होकर जिस शब्दशक्ति से अपने अर्थ देशविशेष तथा प्रवाह के साथ संयुक्त होकर प्ररुष एवं तटादि की प्रतीति कराते हैं; वही अर्पित अर्थात् अस्वाभाविक शब्द शक्ति 'लक्षणा' कहलाती है । यहाँ कलिङ्गः साहसिकः में रूढ़िलक्षणा तथा गङ्गायां घोषः में प्रयोजनवती लक्षणा है ।
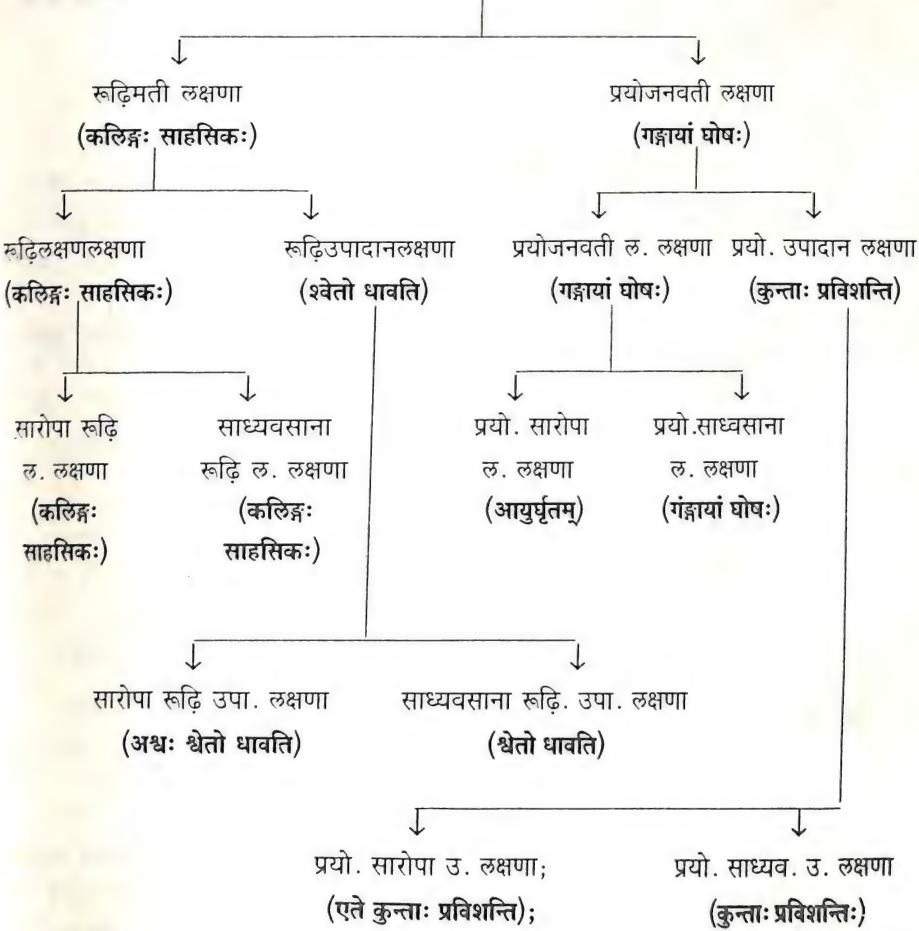
रूढ़िमती	**प्रयोजनवती**
1. रूढ़िमती शुद्धा सारोपा उपादान लक्षणा	1. प्रयोजनवती शुद्धा सारोपा उपादान लक्षणा
2. रूढ़िमती शुद्धा साध्यवसाना उपादान लक्षणा	2. प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना उपादान लक्षणा
3. रूढ़िमती शुद्धा सारोपा लक्षण लक्षणा	3. प्रयोजनवती शुद्धा सारोपा लक्षण लक्षणा
4. रूढ़िमती शुद्धा साध्यवसाना लक्षण लक्षणा	4. प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षण लक्षणा
5. रूढ़िमती गौड़ी सारोपा उपादान लक्षणा	5. प्रयोजनवती गौड़ी सारोपा उपादान लक्षणा
6. रूढ़िमती गौड़ी साध्यवसाना उपादान लक्षणा	6. प्रयोजनवती गौड़ी साध्यवसाना उपादान लक्षणा
7. रूढ़िमती गौड़ी सारोपा लक्षण लक्षणा	7. प्रयोजनवती गौड़ी सारोपा लक्षण लक्षणा
8. रूढ़िमती गौड़ी साध्यवसाना लक्षण लक्षणा	8. प्रयोजनवती गौड़ी साध्यवसाना लक्षण लक्षणा
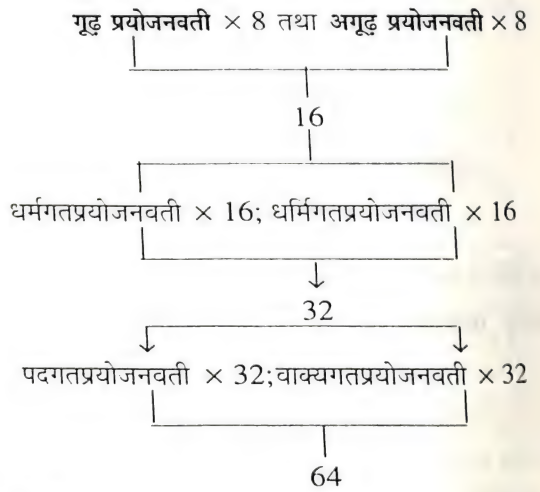
कुल संख्या = 64 + 16 = 80

(घ) व्यञ्जना– **"विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यतेऽपरः ।**
सा वृत्तिर्व्यञ्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च ॥"

अर्थात्–अभिधा आदि (लक्षणा) वृत्तियों के विरत होने पर जिस वृत्ति से अन्य अर्थ का बोध होता है, वह शब्द तथा अर्थादि में रहने वाली वृत्ति 'व्यञ्जना' कहलाती है । इस वृत्ति से होने वाला ज्ञान व्यंग्य या व्यंग्यार्थ कहलाता है । इसी को ध्वनि की कहा जाता है । काव्यों में इसे सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त है । व्यञ्जना (ध्वनि) प्रधान काव्य को उत्तमकाव्य के नाम से जाना जाता है ।

व्यञ्जना के भेद
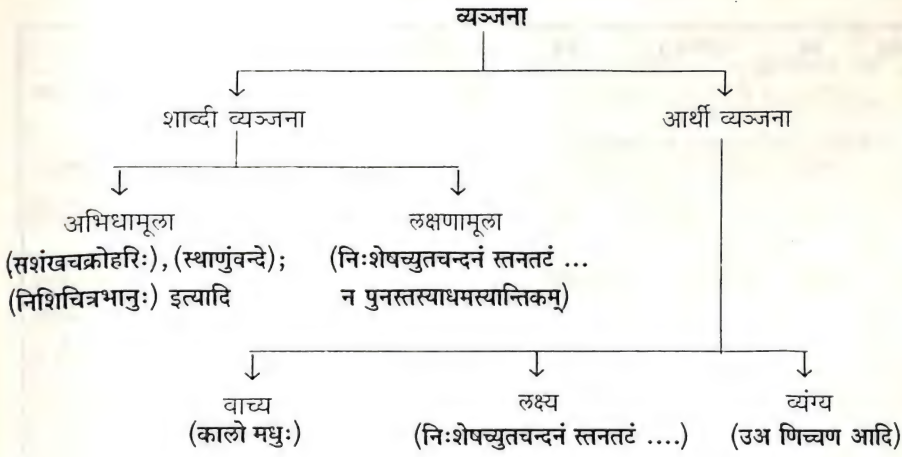
4.2.4. रस (रसभेद–स्थायी भावों सहित)

"विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा । रसतामेति रत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम् ॥" अर्थात् विभाव, अनुभाव, संचारीभाव से व्यञ्जनावृत्ति से अभिव्यक्त सहृदयों के हृदय में विद्यमान रति आदि स्थायीभाव रस के स्वरूप में परिणत होता है । अर्थात्–आस्वादित होता है–**'रसः स्वाद्यते ।'** अर्थात्–**'रस्यते इति रसः ।'** (जो आस्वादित होता है, उस सबको रस कहते हैं ।) यह रस ज्ञानकाल में ही रहता है । अज्ञानकाल में इसकी सत्ता न होने से, इसे (रस को) अनित्य माना गया है । प्रत्यक्षतः आनन्दमय तथा प्रकाशस्वरूप होने से रस भविष्यत् काल में होने वाला भी नहीं है ।

स्थायीभाव– "अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः ।
आस्वादांकुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संगतः ॥"

अर्थात्–अविरुद्ध (अनुकूल) या विरुद्ध (प्रतिकूल) भाव जिसे तिरोहित करने में असमर्थ हो जाते हैं, रस के अनुभव का मूलरूप वह स्थायीभाव माना गया है । यह रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय तथा शम भेद से कुल नौ प्रकार का होता है । यथोक्तम्–

"रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा । जुगुप्सा विश्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च ॥"

इनमें मनोनुकूल पदार्थों में मन की तत्परता को **'रति'**; वचन आद के विकारों से चित्त के विकास को **'हास'**; इष्टनाशादि से चित्त की विह्वलता को **'शोक'**; शत्रु आदि प्रतिकूल विषयों में प्रतिकार की इच्छा को **'क्रोध'**; कार्यारम्भ में अत्यन्त स्थिर आवेश को **'उत्साह'**; रौद्र की शक्ति से उत्पन्न चित्त की विह्वलता से उत्पन्न भाव को **'भय'**; दोषानुदर्शन से विषय में होने वाली घृणा को **'जुगुप्सा'**; लोकसीमातिक्रमित अनेक पदार्थों में चित्त के विस्तार को **'विस्मय'**; तथा निस्पृह अवस्था में आत्मदर्शन में होने वाले विश्राम से उत्पन्न सुख को **'शम'** कहते हैं ।

रस-भेद—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त भेद से कुल नौ रस पाए जाते हैं–

"शृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः । वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः ॥"

सुविधा की दृष्टि से स्थायीभावों सहित रसभेद निरूपण निम्नलिखित रूप में दिया जा रहा है—

क्रमांक	रस	स्थायीभाव	वर्ण	देवता	विशेष
1.	शृंगार	रति	श्याम	विष्णु	नायक, नायिकादि आलम्बन तथा उद्यानादि उद्दीपन विभाव हैं ।
2.	हास्य	हास	शुक्ल	प्रमथ	आकार, वाणी इत्यादि चेष्टाएं आलम्बन हैं तथा उसकी चेष्टा उद्दीपन है ।
3.	करुण	शोक	कपोतवर्ण	यमराज	इसमें शोचनीय वस्तु विनष्टबन्धु आदि आलम्बन हैं तथा शोचनीय की दाह आदि अवस्था उद्दीपन है ।
4.	रौद्र	क्रोध	लाल	रुद्र	इसमें आलम्बन विभाव शत्रु होता है, चेष्टा उद्दीपन है ।
5.	वीर	उत्साह	सुवर्णवत्	महेन्द्र	जीतने योग्य शत्रु आलम्बन विभाव तथा उनकी चेष्टाएं उद्दीपन विभाव हैं ।
6.	भयानक	भय	कृष्ण	यमराज (काल)	भय उत्पन्न करने वाली वस्तु आलम्बन तथा भयङ्कर चेष्टाएं उद्दीपन हैं ।
7.	वीभत्स	जुगुप्सा	नील	महाकाल	रक्त, माँस, चर्बी इत्यादि आलम्बन हैं तथा इनमें कीड़े इत्यादि पड़ना उद्दीपन है ।
8.	अद्‌भुत	विस्मय	पीला	गन्धर्व	अलौकिक वस्तु आलम्बन है तथा उसके गुणों की महिमा उद्दीपन है ।
9.	शान्त	शम	कुन्दपुष्पवत् (चन्द्रवत्)	श्रीनारायण	परमात्मा का स्वरूप आलम्बन है तथा नैमिषारण्यादि पवित्र स्थान उद्दीपन हैं ।

4.2.5. रूपक के प्रकार

'रूपारोपात्तुरूपकम्' अर्थात् दृश्यकाव्य के अन्तर्गत अभिनयकर्ता नट में रामादि के स्वरूप का आरोप होने से दृश्यकाव्य को रूपक कहा जाता है; अभिनय के योग्य होता है । इस रूपक के कुल 10 भेद हैं इनके अतिरिक्त नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश तथा भाणिका भेद से कुल 18 उपरूपक भी बताए गए हैं ।

रूपक के दश भेद— **"नाटकमथप्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।**
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥"

अर्थात्–1. नाटक, 2. प्रकरण, 3. भाण, 4. व्यायोग, 5. समवकार, 6. डिम, 7. ईहामृग, 8. अङ्क, 9. वीथी तथा 10. प्रहसन भेद से कुल दश रूपक बताए गए हैं । क्रमशः इनका यथावश्यक विवेचन निम्नलिखित है–

1. **नाटक**—आचार्य विश्वनाथ कविराज के अनुसार नाटक का निर्दुष्ट लक्षण निम्नलिखित है—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धिसमन्वितम् । विलासद्‌र्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ॥
सुखदुःखसमुद्‌भूति नानारसनिरन्तरम् । पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्तः प्रतापवान् । दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥
एक एव भवेदङ्गी शृंगारो वीर एव वा । अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्‌भुतः ॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः । गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ॥"

अर्थात्–नाटक का वृत्त (चरित्र) इतिहास पुराणादि में प्रसिद्ध होना चाहिए । वह मुखादि पञ्चसन्धियों से तथा अनेक विभूतियों से युक्त होना चाहिए । शृंगारादि अनेक रसों से अव्यवहित होता हुआ सुख-दुःखादि की अनुभूति कराने वाला अधिकतम दश तथा कम से कम पाँच अङ्कों वाला नाटक होता है । इसका नायक प्रख्यातवंश का राजर्षि, धीरोदात्त, प्रतापी, दिव्य (कृष्णवत्) अथवा अदिव्य (रामादिवत्) होना चाहिए । शृंगार या वीर में से कोई एक प्रधान रस होता है, अन्य सभी रस गौड़ होते हैं तथा निर्वहण सन्धि में अद्‌भुत रस होता है । नाटक में कुल चार या पाँच मुख्य पुरुष कार्य में संलग्न होते हैं । गोपुच्छ के अग्रभाग के समान अङ्कों को समायोजित करना चाहिए ।

नाटक से सम्बन्धित कुछ प्रमुख तथ्य

(i) अङ्कों की संख्या न्यूनतम 5 व अधिकतम 10 होनी चाहिए ।

(ii) शृंगार तथा वीर में से कोई एक अङ्गीरस होता है; यद्यपि 'उत्तररामचरित्' में अङ्गीरस 'करुण' है ।

(iii) निर्वहण सन्धि में अद्‌भुत-रस की योजना होनी चाहिए ।

(iv) नाट्‌यशाला के विघ्नध्वंश हेतु सर्वप्रथम पूर्वरङ्गः की योजना करनी चाहिए ।
"पूर्वं रज्यतेऽस्मिन्निति पूर्वरङ्गः ।"

(v) पूर्वरङ्ग के 22 प्रकारों में नान्दी सर्वप्रमुख है–
"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥"
'नान्दी' में 12 या 8 पाद होना चाहिए । अष्टपदानान्दी का उदाहरण, अनर्घराघव में (**"नित्यप्रत्यूहमुपास्महे .... कम्बोः सपत्नीकृतः**) तथा द्वादशपदानान्दी का उदाहरण, पुष्पमाला में–(**शिरसि धृतसुरापगे ....**) में प्राप्त होता है ।

(vi) संस्थापक, वर्णनीय वस्तु की सूचना को लेकर काव्य की स्थापना करता है । इसके द्वारा वस्तु, बीज, मुख या पात्र की सूचना दी जाती है ।

(vii) कथावस्तु इतिहासप्रसिद्ध होनी चाहिए ।

(viii) जिस किसी अङ्क के अन्तर्गत किसी अन्यअङ्क की अथवा अन्य अभिनय की योजना की जाती है, उसे गर्भाङ्क या गर्भनाटक कहा जाता है । उदाहरणतया–बालरामायण में 'सीतास्वयंम्वर' नामक अभिनय की योजना तथा उत्तररामचरितम् सप्तम् अङ्क में लवकुश के द्वारा राम-सीता विषयक गर्भाङ्क अभिनय की योजना ।

(ix) दानी, कुशल, कुलीन, सम्पत्ति, सौन्दर्य-जवानी तथा उत्साह से युक्त शीघ्र कर्म करने वाला, लोक को अनुरक्त करने वाला, प्रताप, निपुणता और सच्चरित्र से युक्त पुरुष नायक होता है–
"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनात्साही । दक्षोऽनुरक्त लोकस्तेजोवैदग्ध्य शीलवान्नेता ॥"

(x) धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीर प्रशान्त भेद से नायक के चार भेद होते हैं–

(1) **"अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः । स्थेयान्निगूढ़मानो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः कथितः ॥"**

(2) **"मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहङ्कारदर्पभूयिष्ठः । आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः ॥"**

(3) **"निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात् ॥"**

(4) **"सामान्य गुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरशान्तः स्यात् ॥"**

(xi) नायक के पूर्वोक्त त्याग आदि यथासम्भव सामान्यगुणों से युक्त लक्षणों वाली नायिका होती है । स्वकीया, परकीया तथा साधारणा (वेश्या) भेद से यह तीन प्रकार की होती है । इनमें स्वकीया नायिका–मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा भेद से तीन प्रकार की होती है।

(xii) विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षसम्' नायिका रहित रचना है ।

(xiii) उत्तररामचरितम्, महावीरचरितम्, मालतीमाधवम् तथा मुद्राराक्षसम् ये चारों विदूषक रहित रचनाएं हैं ।

(xiv) दस अङ्कों से युक्त 'वालरामायण' (राजेशेखर) की गणना महानाटक के अन्तर्गत की जाती है।

प्रतीकात्मक नाटक—प्रतीक नाटकों में अमूर्तभावों को मूर्त रूप में चित्रित किया गया है । मानव के हृद्गतभाव, जो अमूर्त हैं, उनको जव तक मूर्त रूप में प्रकट नहीं किया जाता है, तव तक वे सूक्ष्म ही होते हैं तथा उन्हें स्थूल इन्द्रियों के द्वारा देखा नहीं जा सकता; परन्तु जव उन्हें प्रतीक शैली के माध्यम से मूर्त रूप में ला दिया जाता है, तो वे ही अमूर्तभाव अद्भुत प्रभावशक्ति से युक्त सजीव रूप में अनुभूत होने लगते हैं । इस प्रकार के नाटकों में न केवल श्रद्धा, विवेक, क्षमा, संतोष, लोभ, मोह, पाप, अहङ्कार इत्यादि अमूर्त भावनाओं को मानवरूप में चित्रित किया गया है, अपितु–न्याय, आन्वीक्षिकी, इत्यादि शास्त्रों को; यक्ष्मा, विषूची, पण्डु इत्यादि रोगों को; तथा संजीवनी आदि औषधियों को भी मानव रूप में चित्रित किया गया है । संस्कृत साहित्य में इन प्रतीक नाटकों की वहुत प्राचीन परम्परा रही है । फलतः अव तक शताधिक प्रतीक नाटकों की विशाल शृंखला प्राप्त हो चुकी है । इनमें से कुछ प्रमुख प्रतीक नाटक निम्नलिखित हैं—

(i) प्रवोधचन्द्रोदयम् (श्रीकृष्णमिश्र कृत)
(ii) मोहराजपराजयम् (यशःपाल कृत)
(iii) सङ्कल्पसूर्योदयम् (वेंकटनाथ कृत)
(iv) चैतन्य चन्द्रोदयम् (कविकर्णपूर कृत)
(v) धर्मविजय नाटकम् (भूदेव शुक्ल कृत)
(vi) अमृतोदयम् (गोकुलनाथ कृत)
(vii) जीवानन्दनम् (आनन्दरायमखी कृत)
(viii) विद्यापरिणयम् (आनन्दरायमखी कृत)
(ix) पुरञ्जनचरितम् (श्रीकृष्णदत्तमैथिल कृत)
(x) जीवन्मुक्ति कल्याणम् (नल्लाध्वरी कृत)
(xi) यतिराजविजयनाटकम् (श्रीवत्स्यवरदाचार्य कृत)
(xii) जीवसञ्जीविनीनाटकम् (वेंकटरमणाचार्य)
(xiii) ज्ञानसूर्योदयनाटकम् (वारिचन्द्रसूरि कृत)
(xiv) चित्तवृत्तिकल्याणम् (नल्लाध्वरी कृत)
(xv) मिथ्याज्ञानखण्डनम् (रविदास कृत)
(xvi) शिवलिङ्ग सूर्योदयम् (मल्लारि आराध्य)
(xvii) मुक्तिपरिणयम् (सुन्दरदेव कृत)
(xviii) प्रचण्डराहूदयम् (घनश्याम कृत) इत्यादि ।

2. **प्रकरण**—

**"भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् । शृंगारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ॥
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः । नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित् ॥
तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः । कितवद्यूतकारादिचेटकसंकुलः ॥"**

अर्थात्–प्रकरण रूपक की वह विधा है, जिसकी कथावस्तु लौकिक एवम् कविकल्पित होती है । इसका प्रधान रस शृंगार होता है तथा नायक–ब्राह्मण, मन्त्री अथवा वैश्य होता है, जो विघ्नपूर्ण धर्म, अर्थ तथा काम में तत्पर धीरप्रशान्त होता है । उदाहरणतया–ब्राह्मण नायक–मृच्छकटिकम् में; अमात्य नायक–मालतीमाधवम् में; तथा वैश्यनायक–पुष्पभूषितम् में पाया जाता है । प्रकरण की नायिका कुलीना, वेश्या अथवा दोनों हो सकती है । उदाहरणतया–कुलीना नायिका–पुष्पभूषितम् में; वेश्या नायिका–रंगवृत्तम् में तथा दोनों प्रकार की नायिका–मृच्छकटिकम् में पाई जाती है । अङ्कों की संख्या दश होती है । संक्षेप में हम कह सकते हैं–"**कविकल्पितलौकिकवृत्तान्तजन्यत्वे सति विनाश शालिधर्मकामार्थतत्परधीरप्रशान्तविप्रामात्यवणिकन्यतमनायकवच्छृङ्गाररसप्रधानदृश्यकाव्यत्वम् प्रकरणत्वम् ।**"

3. **भाण**—

"भाणः स्याद् धूर्तचरितो नानावस्थान्तरात्मकः । एकाङ्क एक एवात्र निपुणः पण्डितो विटः ॥
रङ्गे प्रकाशयेत्स्वेनानुभूतमितरेण वा । सम्बन्धनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः ॥
सूचयेद्वीरशृंगारौ शौर्यसौभाग्यवर्णनैः । तत्रेतिवृत्तमुत्पाद्यं वृत्तिः प्रायेण भारती ॥
मुखनिर्वहणे संधी लास्याङ्गानिदशापि च ॥"

अर्थात्–धूर्तों के चरित्र से युक्त अनेक अवस्थाओं से व्याप्त 'भाण' एक अङ्क वाला ही होता है। अकेला विट ही जो निपुण व पण्डित होता है–रङ्ग में अपनी अथवा दूसरों की अनुभूत बातों को प्रकाशित करता है । सम्बोधन तथा उक्ति-प्रत्युक्ति 'आकाशभाषित' के द्वारा होती है । सौभाग्य और शौर्य के वर्णन से वीर और शृंगार रस को सूचित किया जाता है । इसकी कथावस्तु कविकल्पित तथा वृत्ति प्रायः 'भारती' होती है । मुख और निर्वहण सन्धियों के साथ-साथ गेयपदादिक दसो लास्याङ्ग होते हैं । इसका सर्वप्रमुख उदाहरण **'लीलामधुकरम्'** है ।

4. **व्यायोग**—

"ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः । हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः ॥
एकाङ्कश्च भवेदस्त्रीनिमित्तसमरोदयः । कैशिकीवृत्तिरहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः ॥
राजर्षिरथ दिव्यो वा भवेद्धीरोद्धतश्च सः । हास्यशृंगारशान्तेभ्य इतरेऽत्रांगिनो रसाः ॥"

अर्थात्–'व्यायोग' की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है । स्त्रियों की संख्या स्वल्प होती है । पुरुषों की संख्या अधिक तथा गर्भ व विमर्श सन्धियों का अभाव होता है । अङ्क की संख्या एक होती है । युद्ध स्त्री के लिए नहीं होता है तथा इसकी वृत्ति भी कैशिकी नहीं होती है । इसका नायक–प्रख्यात धीरोद्धत राजर्षि अथवा दिव्यपुरुष होता है । हास्य, शृंगार तथा शान्त के अतिरिक्त कोई अन्य रस प्रधान होता है । **'सौगन्धिकाहरणम्'** इसका प्रमुख उदाहरण है ।

5. **समवकार**—

"वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम् । संधयो निर्विमर्शास्तु त्रयोऽङ्कास्तत्र चादिमे ॥
संधी द्वावन्त्ययोस्तद्वदेक एको भवेत्पुनः । नायका द्वादशोदात्ताः प्रख्याता देवमानवाः ॥
फलं पृथक्-पृथक्तेषां वीरमुख्योऽखिलो रसः । वृत्तयो मन्दकैशिक्यो नात्र विन्दुप्रवेशकौ ॥
वीथ्यङ्गानि च तत्र स्युर्यथालाभं त्रयोदश । गायत्युष्णिङ्मुखान्यत्र छन्दांसि विविधानि च ॥
त्रिशृंगारस्त्रिकपटः कार्यश्चायं त्रिविद्रवः । वस्तु द्वादशनालीभिर्निष्पाद्यम् प्रथमाङ्गम् ॥
द्वितीयेऽङ्के चतसृभिर्द्वाभ्यामङ्के तृतीयके । धर्मार्थ कामैस्त्रिविधः शृंगारः कपटः पुनः ॥
स्वाभाविकः कृत्रिमश्च दैवजो विद्रवः पुनः । अचेतनैश्चेतनैश्च चेतनाचेतनैः कृतः ॥"

अर्थात्–'समवकार' के अन्तर्गत–इतिहास-पुराणादि प्रसिद्ध देवासुर–सम्बन्ध-विषयक कथा निबद्ध की जाती है । इसमें विमर्श सन्धि का अभाव होता है, तथा अङ्कों की संख्या तीन होती है । इसमें से प्रथम अङ्क में दो सन्धियाँ तथा दूसरे व तीसरे अङ्क में एक-एक सन्धि होती है । नायकों की संख्या 12 होती है, जो देवता तथा मनुष्य होते हैं । वीर रस मुख्य होता है तथा बिन्दु प्रवेशक व

कैशिकी वृत्ति का अभाव होता है; परन्तु यथासम्भव 13 वीथ्यङ्ग होते हैं । गायत्री, उष्णिक् आदि अनेक प्रकार के छन्द होते हैं । तीन प्रकार का शृंगार (धर्म-अर्थ-कामशृंगार), तीन प्रकार का कपट (स्वाभाविक-कृत्रिम-दैवजकपट) तथा तीन प्रकार का विद्रव (चेतन-अचेतन-चेतनाचेतनविद्रव) होता है । प्रथम अङ्क की कथा 12 नाड़ियों (24 घड़ी) में, द्वितीय अङ्क की कथा चार नाड़ी में; तथा तृतीय अङ्क की कथा दो नाड़ी में सम्पन्न होनी चाहिए । **'समुद्रमन्थनम्'** इसका सर्वोत्तम उदाहरण है ।

6. **डिम**—

"मायेन्द्रजालसङ्गामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः । उपरागैश्च भूयिष्ठो डिमः ख्यातेतिवृत्तिकः ॥
अङ्गीरौद्ररसस्तत्र सर्वेऽङ्गानि रसाः पुनः । चत्वारोऽङ्का मता नेह विष्कम्भकप्रवेशकौ ॥
नायका देवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः । भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यन्तमुद्धताः ॥
वृत्तयः कैशिकीहीना निर्विमर्शाश्च संधयः । दीप्ताः स्युः षड्रसाः शान्तहास्यशृंगारवर्जिताः ॥"

अर्थात्–जिसकी कथा इतिहास प्रसिद्ध हो । वह माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध और उन्मत्तादिकों की चेष्टाओं तथा उपरागों के वृत्त से व्याप्त हो । ऐसा रूपक डिम कहलाता है । इसका प्रधान रस 'रौद्र' होता है तथा अङ्कों की संख्या चार होती है । विष्कम्भक, प्रवेशक, कैशिकी वृत्ति तथा शान्त, हास्य, शृंगार (तीनों) रसों का अभाव पाया जाता है । इसके नायकों की संख्या 16 होती है; जो देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महोरग, भूत, प्रेत-पिशाचादिक होते हैं । इसका सर्वोत्तम उदाहरण–**'त्रिपुरदाह'** है ।

7. **ईहामृग**—

"ईहामृगो मिश्रवृत्तश्चतुरङ्कः प्रकीर्तितः । मुखप्रतिमुखे संधी तत्र निर्वहणं तथा ॥
नरदिव्यावनियमौ नायकप्रतिनायकौ । ख्यातौ धीरोद्धतावन्यो गूढ़भावदयुक्तकृत् ॥
दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीमपहारादिनेच्छतः । शृंगाराभासमप्यस्य किञ्चित्किञ्चित्प्रदर्शयेत् ॥
पताकानायका दिव्या मर्त्या वापि दशोद्धताः । युद्धमानीय संरम्भं परं व्याजान्निवर्तते ॥
महात्मानो वधप्राप्ता अपि वध्याः स्युरत्रनो । एकाङ्कोदेव एवात्र नेतेत्याहुः परे पुनः ॥
दिव्यस्त्रीहेतुकं युद्धं नायकाः षडितीतरे ॥"

अर्थात्–चार अङ्कों से युक्त 'ईहामृग' की कथावस्तु ऐतिहासिक व कविकल्पित दोनों (मिश्र) होती है तथा मुख, प्रतिमुख व निर्वहण ये तीन सन्धियाँ होती हैं । इसमें नायक व प्रतिनायक प्रसिद्ध धीरोदात्त मनुष्य अथवा देवता होते हैं । दिव्य अथवा अदिव्य दश उद्धत पुरुष पताका के नायक होते हैं **(व्यापि प्रासाङ्गिकं वृत्तं पताकेत्याभिधीयते)** । क्रोधावेश में युद्ध की तैयारी तो हो जाती है, परन्तु वह किसी बहाने टल जाती है । महापुरुषों अथवा प्रतिनायक का वध इतिहास प्रसिद्ध होने पर भी इसमें नहीं दिखाया जाता है । कुछ अन्य आचार्यों के मत में ईहामृग में–अङ्क एक ही होता है तथा देवता ही नायक होता है; जबकि कुछ लोगों के मत में नायकों की संख्या छः होती है, जिनमें किसी दिव्य स्त्री के कारण युद्ध होता है । ध्यातव्य है कि मृग के तुल्य अलभ्य कामिनी को नायक चाहता है । अतः इसे ईहामृग कहते हैं । यथा–**'कुसुमशेखरविजयादिः'** ।

8. **अङ्क**—

"उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः ॥
रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम् । प्रख्यातमितिवृत्तं च कविर्बुद्ध्या प्रपंचयेत् ॥
भाणवत्संधिवृत्याङ्गान्यस्मिञ्जयपराजयौ । युद्धं च वाचा कर्तव्यं निर्वेदवचनं बहु ॥"

अर्थात्–'उत्सृष्टाङ्क' अथवा 'अङ्क' में एक ही अङ्क होता है । कोई साधारण पुरुष इसका नायक होता है । स्त्रियों के अत्यधिक विलाप से युक्त करुण स्थायीरस होता है । कथा इतिहास प्रसिद्ध होती है । सन्धि, वृत्ति तथा अङ्क 'भाण' के समान होते हैं । जयपराजय के साथ-साथ वाक्कलह और निर्वेदपरक बहुत से वचन होते हैं । **'शर्मिष्ठाययातिः'** इसका सर्वोत्तम उदाहरण है । ध्यातव्य है कि अङ्क नाटकादि में भी होते हैं, अतः उस अङ्क विशेष से भेद प्रदर्शित करने के लिए 'उत्सृष्टाङ्क' कहा गया है ।

9. **वीथी**—

"वीथ्यामेको भवेदङ्कः कश्चिदेकोऽत्र कल्प्यते । आकाशभाषितैरुक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः ॥
सूचयेद् भूरिशृंगारं किञ्चिदन्यान्रसान्प्रति । मुखनिर्वहणे सन्धी अर्थप्रकृतयोऽखिलाः ॥"

अर्थात्–इसमें एक ही अङ्क होता है तथा एक पुरुष को नायक के रूप में कल्पित कर लिया जाता है । उक्ति-प्रत्युक्ति की योजना आकाशभाषित के द्वारा होती है । शृंगाराधिक्य के साथ अन्य रसों की भी सूचना दी जाती है । इसमें मुख व निर्वहण सन्धियाँ होती हैं; परन्तु अर्थ प्रकृतियाँ सभी होती हैं । शृंगाराधिक्य के कारण कैशिकीवृत्ति की प्रधानता होती है । 1. उद्घात्यक, 2. अवलगित, 3. प्रपञ्च, 4. त्रिगत, 5. छल, 6. वाक्केलि, 7. अधिवल, 8. गण्ड, 9. अवस्यन्दित, 10. नालिका, 11. असत्प्रलाप, 12. व्यवहार तथा 13. मृदव भेद से वीथी के कुल 13 अङ्ग वताए गए हैं । वीथी का सर्वोत्तम उदाहरण–'**मालविका**' है ।

10. **प्रहसन**—

"भाणवत्सन्धिसन्ध्यङ्गलास्यांगाङ्कैर्विनिर्मितम् ॥
भवेत्प्रहसनं वृत्तं निन्द्यानां कविकल्पितम् । अङ्गी हास्यरसस्तत्र वीथ्यंगानां स्थितिर्नवा ॥"

अर्थात्–'भाण' के समान सन्धि, सन्ध्यङ्ग, लास्याङ्ग और अङ्कों के द्वारा सम्पादित, निन्दनीय पुरुषों का कविकल्पित वृत्तान्त प्रहसन कहलाता है । आरभटी, विष्कम्भक व प्रवेशक का अभाव होता है । हास्य रस प्रधान होता है । वीथ्यङ्ग कहीं होते हैं, कहीं नहीं भी होते हैं । शुद्ध **(कन्दर्पकेलिः)**, संकीर्ण **(धूर्तचरितम्)** तथा विकृत भेद से प्रहसन तीन प्रकार का होता है ।

नाटकादि दशरूपक एक नजर में

रूपकविधा	अङ्क	नायक	कथावस्तु	रस	विशेष	उदाहरण
1. नाटक	5-10	1. धीरोदात्त	इतिहास प्रसिद्ध	शृंगार/वीर	समस्त उत्तम गुणों से युक्त	अभिज्ञान-शाकुंतलम्
2. प्रकरण	10	1.धीरप्रशान्त	लौकिक व कल्पित	शृंगार	मन्त्री/वैश्य/ ब्राह्मण नायक	मृच्छकटिकम्
3. भाण	1	1. विट	कविकल्पित	वीर/शृंगार	धूर्तों के चरित्र से युक्त	लीलामधुकरम्
4. व्यायोग	1	1. धीरोदात्त	इतिहास प्रसिद्ध	हास्य/शृंगार/ शान्त के अतिरिक्त अन्य	स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषाधिक्य	सौगन्धिका-हरणम्
5. समवकार	3	12. देवता/ मानव	इतिहास पुराणादि प्रसिद्ध	वीर	गायत्री, उष्णिकादि छन्द	समुद्रमन्थनम्
6. डिम	4	16. विविध	इतिहास प्रसिद्ध	रौद्र	माया, इन्द्रजालादि युक्त	त्रिपुरदाहः
7. ईहामृग	4 या 1	1. या 6.	ऐतिहासिक व कल्पित	शृंगार	दिव्य नायिका हेतु कलह	कुसुमशेखर-विजयादिः
8. अङ्क	1	1. साधारण	इतिहास प्रसिद्ध	करुण	स्त्री विलाप का अधिक्य	शर्मिष्ठाययातिः
9. वीथी	1	1. साधारण	कविकल्पित	शृंगार	13 अङ्ग होते हैं	मालविका
10. प्रहसन	1	1. निन्दनीय पुरुष	कविकल्पित	हास्य	भाण के समान	कन्दर्पकेलिः/ धूर्तचरितम्

4.2.6. महाकाव्य के लक्षण

"सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ॥
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः । एकवंशभवाभूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥
शृंगारवीरशान्तानामेकोंऽगी रस इष्यते । अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक-संधयः ॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् । चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा । क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः । नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते । सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः । प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तुवनसागराः ॥
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः । रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ॥
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह । कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ॥"

अर्थात्–जिसमें सर्गों का निवन्धन हो, उसे महाकाव्य कहते हैं । इसमें धीरोदात्तादि गुणों से युक्त एक देवता अथवा कुलीन क्षत्रिय नायक होता है । कहीं-कहीं एक ही वंश के कुलीन वहुत से राजा नायक होते हैं । शृंगार, वीर तथा शान्त में से कोई एक रस अङ्गी होता है । अन्यरस अङ्ग (गौण) होते हैं । नाटक की प्रायः मुख प्रतिमुखादि सभी सन्धियाँ होती हैं । कथावस्तु–ऐतिहासिक अथवा लोकप्रसिद्ध सज्जन सम्वन्धिनी होती है । धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से कोई एक फल (प्रधान-प्रयोजन) होता है ।

कथा का प्रारम्भ आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्यवस्तु का निर्देश होता है । कहीं-कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुण-वर्णन होता है । न वहुत छोटे न ही वहुत वड़े कम से कम आठ सर्ग अवश्य होते हैं । प्रत्येक सर्ग एक ही छन्द में निवद्ध होता है; परन्तु प्रत्येक सर्ग का अन्तिम छन्द भिन्न होता है । कहीं-कहीं एक ही सर्ग में अनेक छन्दों का भी प्रयोग हो जाता है । सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना प्रायः दे दी जाती है ।

जहाँ तक महाकाव्य के वर्णनीय विषयों का प्रश्न है, इसमें–सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया (शिकार), पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, सम्भोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए । इसका नाम कवि के नाम से (यथा-माघ), चरित्र के नाम से (यथा-कुमारसम्भवम्) अथवा चरित्रनायक के नाम से (यथा-रघुवंशम्) होना चाहिए । कहीं-कहीं इनके अतिरिक्त भी नामकरण देखा जाता है । सर्ग की वर्ण्यवस्तु के अनुसार सर्ग का नामकरण किया जाता है । ध्यातव्य है कि-आर्षकाव्य में सर्ग को 'आख्यान' प्राकृतमहाकाव्य में 'आश्वास' अपभ्रंश भाषा में सर्ग को 'कुडवक' कहते हैं, उदाहरणतया क्रमशः महाभारत, सेतुवन्ध तथा कर्णपराक्रम ।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

4.1. संस्कृत-साहित्य

1. 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च'–इस लक्षण से किसका संकेतग्रह होता है ?
   (A) पुराण (B) महाकाव्य (C) खण्डकाव्य (D) चम्पूकाव्य
2. 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'–इस उक्ति से सम्बद्ध ग्रन्थ है–
   (A) विष्णुपुराण (B) महाभारत (C) रामायण (D) ऋग्वेद
3. 'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्'–इस उक्ति से सम्बद्ध उपनिषद् है–
   (A) मुण्डकोपनिषद् (B) कठोपनिषद् (C) छान्दोग्योपनिषद् (D) केनोपनिषद्
4. 'विद्यावतां भागवते परीक्षा'–इस सुभाषित से सम्बद्ध ग्रन्थ है–
   (A) भगवद्गीता (B) ब्रह्मवैवर्तपुराण (C) मार्कण्डेयपुराण (D) भागवतपुराण
5. क्रमशः 'लिङ्गपुराण' व 'स्कन्दपुराण' में श्लोकों की संख्या है–
   (A) 11000/81000 (B) 22000/18000
   (C) 72000/44000 (D) 1525/3538
6. गरुड-पुराण में श्लोकों की संख्या पाई जाती है–
   (A) 51000 (B) 18000 (C) 35356 (D) 62500
7. 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्'–यह उक्ति किस ग्रन्थ में पाई जाती है ?
   (A) उत्तररामचरितं (B) किरातार्जुनीयम् (C) मालविकाग्निमित्रं (D) मृच्छकटिकम्
8. महाकवि 'भास' के रामकथाश्रित नाटकों की संख्या है–
   (A) 1 (B) 7 (C) 5 (D) 2
9. 'भास' के नाटकों में महाभारत कथाश्रित कौनसा नाटक है ?
   (A) मध्यमव्यायोग (B) अभिषेक
   (C) प्रतिज्ञायौगन्धरायण (D) चरिद्रचारुदत्त
10. 'स्वप्नवासवदत्तम्' में अङ्कों की संख्या है–
    (A) 5 (B) 6 (C) 7 (D) 8
11. मैत्रेय (विदूषक) किस नाटक से सम्बद्ध है ?
    (A) मृच्छकटिकम् (B) मालविकाग्निमित्रम्
    (C) चारुदत्तम् (D) स्वप्नवासवदत्तम्
12. वसन्तक (विदूषक) युक्त रचना है–
    (A) अभिज्ञानशाकुंतलम् (B) मालतीमाधवम्
    (C) विक्रमोर्वशीयम् (D) स्वप्नवासवदत्तम्
13. 'दुखं न्यासस्य रक्षणम्'–इस उक्ति वाला नाटक है–
    (A) स्वप्नवासवदत्तम् (B) चारुदत्तम् (C) मृच्छकटिकम् (D) विक्रमोर्वशीयम्
14. 'स्वप्नवासवदत्तम्' में रुमण्यवान् किस पद पर प्रतिष्ठित है ?
    (A) विदूषक (B) मन्त्री (C) दण्डाधिकारी (D) सेनापति

15. 'स्वप्नवासवदत्तम्' की पद्मावती किस राज्य की राजकन्या थी ?
(A) उज्जैन (B) गान्धार (C) मगध (D) गुर्जर

16. 'घोषवती वीणा' का सम्वन्ध किस नाटक से है ?
(A) चारुदत्तम् (B) मृच्छकटिकम् (C) उत्तररामचरितम् (D) स्वप्नवासवदत्तम्

17. 'लावाणक' ग्राम किस नाटक से सम्वद्ध है ?
(A) स्वप्नवासवदत्तम् (B) विक्रमोर्वशीयम् (C) महावीरचरितम् (D) मृच्छकटिकम्

18. 'प्रतिमानाटकम्' में अङ्कों की कुल संख्या है–
(A) 4 (B) 7 (C) 5 (D) 6

19. 'प्रद्वेषो वहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते' – यह किस नाटक से सम्वद्ध है ?
(A) वेणीसंहारम् (B) मालतीमाधवम् (C) स्वप्नवासवदत्तम् (D) मृच्छकटिकम्

20. 'मध्यमव्यायोग' में 'मध्यम' शव्द किसकी ओर संकेत करता है ?
(A) श्रीकृष्ण (B) अर्जुन (C) घटोत्कच (D) भीम

21. 'मालविकाग्निमित्रम्' की प्रस्तावना में कालिदास ने किस 'नाट्यकार' का स्मरण किया है ?
(A) भास (B) भरत (C) भारवि (D) भवभूति

22. 'स्वप्नवासवदत्तम्' की 'वासवदत्ता' किस राज्य की कन्या है ?
(A) मगध (B) अवन्तिका (C) गान्धार (D) कौशाम्वी

23. शकुन्तला (दुष्यन्त) के पुत्र का नाम है–
(A) भारत (B) देवव्रत (C) सर्वदमन (D) आरुणि

24. जिस स्थान पर शकुन्तला की अँगूठी गिरी–
(A) मार्ग (B) कण्वाश्रम (C) प्रभासतीर्थ (D) शचीतीर्थ

25. दुष्यन्त की मनः स्थिति जानने के लिए मेनका ने अपनी किस सखी को भेजा था ?
(A) सानुमती (B) उर्वशी (C) रम्भा (D) तिलोत्तमा

26. किसे आग्रह पर शकुन्तला के प्रति दुर्वासा के अभिशाप में कुछ लघुता आई ?
(A) अनसूया (B) प्रियम्वदा (C) गौतमी (D) गार्ङ्गरव

27. 'स्त्रीणामशिक्षत-पटुत्वममानुषीषु'–इस उक्ति से युक्त नाटक है–
(A) उरुभङ्गम् (B) मालविकाग्निमित्रम्
(C) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (D) विक्रमाङ्कचरितम्

28. 'अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् सगतं रहः'–'शाकुन्तलम्' में यह किसकी उक्ति है ?
(A) कण्व (B) मारीच (C) दुष्यन्त (D) शार्ङ्गरव

29. 'आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्'–यह सूक्ति किस ग्रन्थ में पाई जाती है ?
(A) उत्तररामचरितम् (B) महाभारत
(C) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (D) रामायण

30. 'विक्रमोर्वशीयम्' का नायक है–
(A) विक्रमादित्य (B) अग्निमित्र (C) विक्रम (D) पुरुरवा

31. 'विक्रमोर्वशीयम्' में कुल कितने अङ्क हैं ?
(A) 4 (B) 5 (C) 6 (D) 7

32. 'मालविकाग्निमित्रम्' में मालविका के नाट्याचार्य हैं–
(A) वसुमित्र (B) हरदत्त (C) वीरसेन (D) गणदास

33. 'मालविकाग्निमित्रम्' का विदूषक है–
(A) गौतम (B) मैत्रेय (C) वसन्तक (D) माढव्य

34. 'मालविकाग्निमित्रम्' में कुल कितने अङ्क हैं ?
(A) 4 (B) 5 (C) 6 (D) 7

35. 'मालविकाग्निमित्रम्' की पट्टमहिषी कौन है ?
(A) कौशिकी (B) मालविका (C) धारिणी (D) इरावती

36. 'मालविकाग्निमित्रम्' में परिव्राजिका है–
(A) निपुणिका (B) धारिणी (C) इरावती (D) कौशिकी

37. कालिदास के 'अग्निमित्र' की द्वितीय पत्नी है–
(A) इरावती (B) मदनिका (C) मालविका (D) धारिणी

38. कालिदास की 'धारिणी' का पुत्र है–
(A) वीरसेन (B) वसुमित्र (C) सारस (D) हरदत

39. 'मालविकाग्निमित्रम्' में 'धारिणी' की सुपुत्री है–
(A) कौमुदिका (B) मदनिका (C) वसुलक्ष्मी (D) निपुणिका

40. 'सर्वत्रार्जवं शोभते' इससे सम्वद्ध रचना है–
(A) मृच्छकटिकम् (B) विक्रमोर्वशीयम् (C) चारुदत्तम् (D) मालविकाग्निमित्रम्

41. 'विक्रमोर्वशीयम्' का विदूषक है–
(A) माणवक (B) मैत्रेय (C) माधव्य (D) वसन्तक

42. 'मृच्छकटिकम्' का विदूषक है–
(A) माधव्य (B) मैत्रेय (C) माणवक (D) गौतम

43. 'मृच्छकटिकम्' में चारुदत्त का कौनसा सेवक जुवारी बन जाता है ?
(A) माथुर (B) पालक (C) संवाहक (D) शर्विलक

44. चारुदत्त के घर में गहनों की चोरी करने वाला पात्र–
(A) कुम्भिलक (B) स्थावरक (C) संवाहक (D) शर्विलक

45. 'वसन्तसेना' को मृत्यु से बचाने वाला पात्र–
(A) संवाहक (B) चन्दनक (C) शर्विलक (D) कुम्भिलक

46. 'मृच्छकटिकम्' का वह राजा, जिसकी हत्या हुई–
(A) चन्दनक (B) पालक (C) आर्यक (D) वीरक

47. 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्' – यह किस नाटक से सम्बद्ध है ?
(A) शाकुन्तलम् (B) मृच्छकटिकम् (C) चारुदत्तम् (D) उत्तररामचरितम्

48. 'उत्तररामचरितम्' में 'गर्भनाटक' की योजना किस अङ्क में है ?
(A) प्रथम (B) द्वितीय (C) पञ्चम (D) सप्तम

49. 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गम् न च वयः' – इस उक्ति से सम्बद्ध नाटक है–
(A) वेणीसंहारम् (B) उत्तररामचरितम् (C) विक्रमोर्वशीयम् (D) महावीरचरितम्

50. 'वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े' – इस उक्ति से सम्बद्ध रचना है–
(A) मुद्राराक्षसम् (B) दूतवाक्यम् (C) उत्तररामचरितम् (D) विक्रमोर्वशीयम्

51. 'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' – इसका सम्बन्ध है–
(A) रत्नावली से (B) स्वप्नवासवदत्तम् से
(C) मृच्छकटिकम् से (D) उत्तररामचरितम् से

52. क्रमशः नागानन्द के नायक व नायिका का नाम है–
(A) जीमूतवाहन/मलयवती (B) उदयन/मलयवती
(C) जीमूतवाहन/इरावती (D) शङ्खचूड/मलयवती

53. 'प्रियदर्शिका' नाटक का नायक है–
(A) वसुमित्र (B) उदयन (C) मित्रावसु (D) दृढ़वर्मा

54. 'मुरारि' रचित नाटक है–
(A) अनर्घराघव (B) प्रसन्नराघव (C) कुन्दमाला (D) प्रबोधचन्द्रोदय

55. 'मेघदूतम्' में 'जह्नुकन्या' कौन है ?
(A) नर्मदा (B) निर्विन्ध्या (C) रेवा (D) गङ्गा

56. 'मेघदूतम्' में यक्ष के अनुसार कितने महीने शेष हैं ?
(A) 2 (B) 4 (C) 6 (D) 8

57. 'कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे' – इसमें जन शब्द किसका बोधक है ?
(A) राजहंस (B) मेघ (C) यक्ष (D) चातक

58. 'रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय' – इस सूक्ति से युक्त रचना है–
(A) किरातार्जुनीयम् (B) चारुदत्तम् (C) शिशुपालवधम् (D) मेघदूतम्

59. मेघदूत की 'यक्षिणी' शापदिवसों की गणना किससे करती है ?
(A) पुष्पों से (B) लेखनी से (C) मणियों से (D) अन्नकणों से

60. 'स्फुटता न पदैरपाकृता, न च स्वीकृतमर्थगौरवम्' – यह किस काव्य से सम्बद्ध है ?
(A) शिशुपालवधम् (B) किरातार्जुनीयम् (C) जानकीहरण (D) रघुवंशम्

61. 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' यह किस काव्य से सम्बद्ध है ?
(A) किरातार्जुनीयम् (B) रघुवंशम् (C) शिशुपालवधम् (D) कादम्बरी

62. वासवदत्ता (कथा) के नायक हैं–
(A) श्वेतकेतु (B) मित्रकेतु (C) चन्द्रकेतु (D) कन्दर्पकेतु

63. 'अच्छोद सरोवर' से सम्बन्धित है–
(A) कादम्बरी (B) शिशुपालवधम् (C) किरातार्जुनीयम् (D) हर्षचरितम्

64. 'रघुवंशम्' में कुल कितने श्लोक हैं ?
(A) 1266 (B) 1569 (C) 2035 (D) 5936

65. 'किरातार्जुनीयम्' में 'किरात' शब्द किसका बोधक है ?
(A) कोल-भील (B) किरीटधारी (C) शङ्कर (D) कार्तिकेय

66. हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' – यह किस ग्रन्थ में किसकी उक्ति है ?
(A) शिशुपालवध/श्रीकृष्ण (B) हर्षचरित/राज्यश्री
(C) किरातार्जुनीयम्/युधिष्ठिर (D) किरातार्जुनीयम्/वनेचर

67. 'शिशुपालवध' में श्लोकों की कुल संख्या–
(A) 1650 (B) 3548 (C) 2578 (D) 2239

68. 'हर्षचरितम्' के अनुसार 'बाणभट्ट' का गोत्र है–
(A) गार्ग्य (B) वात्स्यायन (C) गालव (D) पाराशर

69. 'रघुवंशम्' में सर्गों की कुल संख्या है–
(A) 19 (B) 20 (C) 21 (D) 14

70. रघु ने किस यज्ञ को सम्पन्न किया (रघुवंशम्) ?
(A) राजसूय (B) विश्वजित (C) अश्वमेध (D) पुत्रेष्टि

71. 'सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ' – यह रघुवंश के निम्नलिखित कथाप्रसङ्ग में वर्णित है–
(A) दिलीप-गोसेवा (B) सीताविसर्जन (C) इन्दुमती-स्वयंवर (D) विश्वजितयज्ञ

72. 'किरातार्जुनीयम्' में सर्गों की कुल संख्या है–
(A) 13 (B) 22 (C) 20 (D) 18

73. 'किरातार्जुनीयम्' के प्रत्येक सर्ग का अन्तिम पद है–
(A) लक्ष्मी (B) विभु (C) शिव (D) श्री

74. 'शिशुपालवधम्' में सर्गों की कुल संख्या है–
(A) 19 (B) 20 (C) 18 (D) 17

75. 'नैषधचरितम्' स्वीकृत व उपलब्ध सर्गों की संख्या है–
(A) 18 (B) 20 (C) 22 (D) 27

76. 'मदेकपुत्रा जननी जरातुरा, नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी'–यह किस ग्रन्थ में किससे सम्बद्ध है ?
(A) कादम्बरी/शुक (B) हर्षचरितम्/बाण
(C) शिशुपालवधम्/जरासन्ध (D) नैषधीयचरितम्/हंस

77. मूलतः 'बुद्धचरितम्' की सर्ग संख्या का उल्लेख मिलता है–
(A) 28 (B) 37 (C) 31 (D) 45

78. मगध-नरेश 'राजहंस' (दशकुमारचरितम्) का पुत्र है–
(A) मित्रगुप्त (B) राजवाहन (C) कामपाल (D) सत्यवर्मा

79. 'मेघदूतम्' के अनुसार 'मेघ-तत्त्व' है–
(A) पर्वत (B) आकाश (C) ज्योति (D) इनमें से कोई नहीं

80. यक्ष (मेघदूतम्) का शापान्त कब होता है ?
(A) जन्माष्टमी को (B) शिव-चतुर्दशी को
(C) वैशाख पूर्णिमा को (D) देवप्रबोधिनी एकादशी को

81. 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' – यह उक्ति किस ग्रन्थ में किससे सम्बन्ध रखती है ?
(A) कुमारसम्भवम्/ब्रह्मचारी (B) नैषध./नल
(C) नैषध /हंस (D) नैषध/दमयन्ती

4.2. काव्य-शास्त्र

1. 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' से सम्वद्ध आचार्य हैं–
   (A) मम्मट (B) रुद्रट (C) विश्वनाथ (D) भामह
2. आचार्य 'विश्वनाथ' की काव्य-परिभाषक शव्दावली है–
   (A) रमणीयार्थ प्रतिपादकं काव्यम् (B) वाक्यं रसात्मकं काव्यं
   (C) वक्रोक्तिः काव्यजीवितम् (D) तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती
3. 'विश्वनाथ' ने काव्य में वक्रोक्ति को किस रूप में माना है ?
   (A) रीति (B) गुण (C) अलङ्कार (D) आत्मा
4. 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' यह किसकी परिभाषा है ?
   (A) महिमभट्ट (B) जगन्नाथ (C) आनन्दवर्द्धन (D) कुन्तक
5. आचार्य विश्वनाथ ने मुख्यतः किस आचार्य की परिभाषा का खण्डन किया है ?
   (A) मम्मट (B) दण्डी (C) कुन्तक (D) आनन्दवर्द्धन
6. 'विश्वनाथ कविराज' के अनुसार काव्य में रस की स्थिति है –
   (A) आभूषण (B) आत्मा (C) अवयवसंस्थान (D) शरीर
7. आचार्य वामन की काव्यपरिभाषा है–
   (A) काव्यस्यात्मा ध्वनिः (B) शब्दार्थौ सहितं काव्यम्
   (C) रीतिरात्मा काव्यस्य (D) रमणीयार्थप्रतिपादिकः शब्दः
8. विश्वनाथ के अनुसार 'रस' पद से संकेतित है–
   (A) गुण, रीति, आदि (B) वक्रोक्ति, रीति, आदि
   (C) दोष, अलङ्कार, आदि (D) भाव, तदाभास, आदि
9. 'शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली' – यह परिभाषा किसकी है ?
   (A) दण्डी (B) भामह (C) मम्मट (D) आनन्दवर्द्धन
10. संकेतित अर्थ की बोधक शक्ति है–
    (A) तात्पर्या (B) अभिधा (C) लक्षणा (D) व्यञ्जना
11. 'गङ्गायां घोषः' का लक्ष्यार्थ है–
    (A) गङ्गा तटे घोषः (B) घोषप्रान्तवाहिन्यां गङ्गायाम्
    (C) घोषे शीतत्वं-पावणत्वम् (D) गङ्गा जलप्रवाहे घोषः
12. 'विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यते परः'–यह किस वृत्ति का लक्षण है ?
    (A) तात्पर्या (B) अभिधा (C) लक्षणा (D) व्यञ्जना
13. 'बोद्धव्यवैशिष्ट्य' पर आधारित वृत्ति है–
    (A) आर्थी व्यञ्जना (B) शाब्दी व्यञ्जना (C) उपादान लक्षणा (D) गौडी लक्षणा
14. 'इष्टनाशादनिष्टापत्तेः' – यह किस रस का लक्षण है ?
    (A) अद्भुत (B) करुण (C) शान्त (D) वीभत्स
15. सभी रूपकों का सामान्य लक्षण, किस रूपक के समान है ?
    (A) भाण (B) प्रहसन (C) प्रकरण (D) नाटक

16. 'वीथी' क्या है ?
(A) वृत्ति (B) सन्धि (C) अभिनय (D) रूपक

17. नाटक का वृत्त होना चाहिए–
(A) ख्यात (B) अलौकिक (C) काल्पनिक (D) लौकिक

18. नाटकगत सन्धि है–
(A) शिर (B) मुख (C) नासिका (D) हस्त

19. महाकाव्य में कम से कम कितने सर्ग होने चाहिए ?
(A) 28 (B) 35 (C) 8 (D) 12

20. महाकाव्य में अङ्गीरस नहीं होता है–
(A) शृंगार (B) वीर (C) करुण (D) रौद्र

21. नाटक में कम से कम व अधिक से अधिक कितने अङ्क होने चाहिए ?
(A) 5—10 (B) 4—7 (C) 5—7 (D) 7—10

22. यह 'अद्‌भुत-रस' से सम्बद्ध है–
(A) भयस्थायिभावो भूताधिदैवतः ।
(B) विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः ।
(C) जुगुप्सास्थायिभावस्तु ..... नीलवर्णो महाकालदैवतः ।
(D) क्रोधस्थायिभावो रक्तो रुद्राधिदैवतः ।

उत्तरमाला

4.1. संस्कृत-साहित्य

1. (A)	2. (B)	3. (C)	4. (D)	5. (A)	6. (B)	7. (C)	8. (D)
9. (A)	10. (B)	11. (C)	12. (D)	13. (A)	14. (B)	15. (C)	16. (D)
17. (A)	18. (B)	19. (C)	20. (D)	21. (A)	22. (B)	23. (C)	24. (D)
25. (A)	26. (B)	27. (C)	28. (D)	29. (C)	30. (D)	31. (B)	32. (D)
33. (A)	34. (B)	35. (C)	36. (D)	37. (A)	38. (B)	39. (C)	40. (A)
41. (A)	42. (B)	43. (C)	44. (D)	45. (A)	46. (B)	47. (D)	48. (C)
49. (B)	50. (C)	51. (D)	52. (A)	53. (B)	54. (A)	55. (B)	56. (B)
57. (C)	58. (D)	59. (A)	60. (B)	61. (C)	62. (D)	63. (A)	64. (B)
65. (C)	66. (D)	67. (A)	68. (B)	69. (A)	70. (B)	71. (C)	72. (D)
73. (A)	74. (B)	75. (C)	76. (D)	77. (A)	78. (B)	79. (C)	80. (D)
81. (A)							

4.2. काव्य-शास्त्र

1. (A)	2. (A)	3. (C)	4. (D)	5. (A)	6. (B)	7. (C)	8. (D)
9. (A)	10. (B)	11. (A)	12. (D)	13. (A)	14. (B)	15. (D)	16. (D)
17. (A)	18. (B)	19. (C)	20. (D)	21. (A)	22. (B)		

खण्ड (ख)
तृतीय प्रश्न-पत्र

1 वैदिक वाङ्मय तथा भाषा

1. संहिताएँ (विषय-सम्बद्ध सूक्तों का अध्ययन)

1.1. पुरुषसूक्त. ऋ.10/90

जगत् की उत्पत्ति के विषय में जो सूक्त प्राप्त होते हैं, उनमें 'पुरुषसूक्त' अन्यतम है। इसमें विराट्-पुरुष से ही सृष्टिप्रक्रिया, चारों वेदों के आविर्भाव, ग्राम्य तथा आरण्यक पशुओं की उत्पत्ति, सूर्यादि ग्रहों के प्राकट्य तथा सामाजिक व्यवस्था की उत्पत्ति बतलाई गई है। व्यष्टि और समष्टि के पारस्परिक तादात्म्य का इस सूक्त में गम्भीरतापूर्वक पल्लवन हुआ है । वर्णव्यवस्था का क्रमबद्ध सुस्पष्ट समुल्लेख सर्वप्रथम इस सूक्त में ही प्राप्त होता है । मैकडॉनल तथा वालिस का मत है कि- इसमें सर्वेश्वरवाद (Pantheism) के मूलबीज सन्निहित हैं। ग्रिस्वाल्ड के मत में परवर्ती एकेश्वरवाद सिद्धान्त का मूल स्रोत यही सूक्त है, जो आगे चलकर अद्वैतवेदान्त के **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** के रूप प्रतिष्ठित हुआ। पुरुषसूक्तस्थ–'**तानिधर्माणि प्रथमान्यासन**' के रूप में पहली बार सामाजिक व धार्मिक सुव्यवस्था के लिए रचे गए नियमों का उल्लेख भी इसी सूक्त में मिलता है। प्रो. वी. के. राजवाड़े तथा उनके अनुयायी विद्वान् इस सूक्त पर आधृत होकर पुरुषमेध की कल्पना करते हैं। हरबर्ट स्पेन्सर ने सम्भवतः इसी सूक्त से प्रेरणा लेकर अपनी **'Organic Theory'** की रूपरेखा प्रस्तुत की तथा पं. दीनदयाल उपाध्याय ने राजनीतिक आर्थिक क्षेत्र में इसी सूक्त से प्रेरणा लेकर **'एकात्ममानववाद'** का वैचारिक दर्शन प्रस्तुत किया।

टिप्पणी–अपवादस्वरूप कृष्णयजुर्वेद को छोड़कर प्रायः सभी संहिताओं में 'पुरुषसूक्त' किञ्चित्परिवर्तन के साथ उपलब्ध होता है। विशेष जानकारी हेतु ऋग्वेद शाकल-शाखा-सम्बद्ध सम्पूर्ण पुरुषसूक्त नीचे की पंक्तियों में दिया जा रहा है। इसके ऋषि–नारायण, देवता - पुरुष तथा छन्द - अनुष्टुप् (अन्तिम - त्रिष्टुप्) है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ 1 ॥

परमपुरुष (परमेश्वर) हजारों शिरों वाला, हजारों नेत्रों वाला तथा हजारों पैरों वाला है। वह भूमि को सभी ओर से आवृत्त कर दशअंगुल का अतिक्रमण कर अवस्थित हो गया है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ 2 ॥

यह सब कुछ–जो उत्पन्न हो चुका है, जो उत्पन्न होगा, इसके अतिरिक्त अमरता का स्वामी (पुरुष) तथा जो अन्न से बढ़ता है–वह सब पुरुष ही है ।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ 3 ॥

इतना इस पुरुष का ऐश्वर्य है और पुरुष इससे भी बड़ा है । समस्तप्राणी इसका चतुर्थांश मात्र है । इसका तीन-चौथाई अमृतरूप से द्युलोक में अवस्थित है ।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥ 4 ॥

तीन पादों से युक्त पुरुष ऊपर को उठ गया, फिर भी इसका चतुर्थांश यहीं रह गया । वह (पुरुष) भोजन करने वाले (चेतन) तथा न करने वाले (अचेतन) सभी को चारों ओर से व्याप्त कर लिया ।

तस्माद् विराळजायत विराजो अधि पूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ 5 ॥

उस (आदिपुरुष) से विराट् उत्पन्न हुआ । विराट् (व्यक्त जगत्) से अधिष्ठाता के रूप में पुरुष (जीवात्मा) उत्पन्न होकर जगत् के पीछे तथा आगे की भूमि से अतिक्रमण कर गया ।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ 6 ॥

जब देवताओं ने पुरुषरूप हवि के द्वारा यज्ञ को सम्पन्न किया, तब इस (यज्ञ) का घृत-वसन्त ऋतु, ईंधन-ग्रीष्मऋतु तथा हवि-शदरऋतु थी ।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ 7 ॥

सर्वप्रथम उत्पन्न सज्ञ साधनभूतपुरुष को कुश पर (रखकर) जल छिड़ककर (पवित्र किया) । उससे देवताओं तथा ऋषियों ने यजन (यज्ञ) किया ।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥ 8 ॥

जिसमें सब कुछ होम कर दिया गया, उस यज्ञ से दधिमिश्रित घृत इकट्ठा किया गया (जिससे) वायु में विचरण करने वाले (पक्षियों), तथा वन्य पशुओं और ग्राम्य-पशुओं को उत्पन्न किया ।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ 9 ॥

जिसमें सब कुछ होम कर दिया गया, उस यज्ञ से ऋचायें तथा साम उत्पन्न हुए, उससे छन्द उत्पन्न हुए तथा उससे यजुष् उत्पन्न हुआ ।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥ 10 ॥

उस (यज्ञ) से अश्व उत्पन्न हुए और जो कोई ऊपर-नीचे दोनों ओर दाँतों वाले (पशु हैं) उत्पन्न हुए । उससे गायें उत्पन्न हुईं । उससे भेड़-बकरियाँ पैदा हुईं ।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥ 11 ॥

जब पुरुष को देवों ने विभक्त किया, तब (उसे) कितने भागों में विविधरूप से कल्पित किया। इसका मुख क्या (था ?), (इसकी) भुजाएं कौन (थीं ?), (इसकी) जंघाएं क्या (हुईं), (और) पैर क्या कहे जाते हैं ?

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ 12 ॥

ब्राह्मण इस (पुरुष) का मुख था । दोनों भुजाओं को क्षत्रिय बनाया गया । जो वैश्य है, वह इसकी जंघाओं के रूप में था । दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ 13 ॥

(पुरुष के) मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ । नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ । मुख से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुआ ।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ 14 ॥

(पुरुष की) नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ । सिर से द्युलोक उत्पन्न हुआ । पैरों से भूमि और कानों से दिशाएं (उत्पन्न हुई) – इस प्रकार लोकों की रचना की ।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ 15 ॥

जिस समय देवताओं ने यज्ञ का विस्तार करते हुए पुरुष रूपी पशु को (यूप में) बाँधा (उस समय) उस (पुरुष) की सात परिधियाँ थीं (और) 21 समिधाएं बनाई गई ।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ 16 ॥

देवताओं ने यज्ञ के द्वारा यज्ञस्वरूप (प्रजापति) का यजन किया । वे धर्म सबसे मुख्य हुए । वे महिमाशाली (उपासक) दिव्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, जहाँ प्राचीन साध्यदेव हैं ।

1.2. हिरण्यगर्भ. ऋक्. 10/121.

ऋग्वेद के दार्शनिक सूक्तों में हिरण्यगर्भ (प्रजापति) सूक्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस सूक्त में कुल दश मन्त्र हैं, जिनमें से अन्तिम मन्त्र को छोड़कर शेष सभी मन्त्रों के अन्त में–**"कस्मै देवाय हविषा विधेम"** चरण आया है । इस चरण के विषय में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए हैं । इस सूक्त का दसवाँ मन्त्र 'प्रजापति' का नामोल्लेख करता है । सम्भवतः 'क' शब्द से प्रजापति की ही ओर प्रारम्भिक नौ मन्त्रों में संकेत किया गया है । आचार्य सायण के मत में सुवर्णमय अण्डे में गर्भ के रूप में स्थित 'प्रजापति' का ही दूसरा नाम 'हिरण्यगर्भ' है । नाम तथा रूप से निर्वचनीय न होने के कारण प्रजापति के लिए 'किम्' (क) शब्द का व्यवहार सर्वथा उचित व तार्किक है । सम्पूर्ण सूक्त त्रिष्टुप् छन्द में निबद्ध है । इसके देवता 'क' (प्रजापति) तथा ऋषि-प्रजापतिपुत्र 'हिरण्यगर्भ' है । विशेष अध्ययन हेतु निम्नलिखित मूल-सूक्त को देखा जा सकता है–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 1 ॥

हिरण्यगर्भ (प्रजापति) सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ । उत्पन्न होते ही वह सम्पूर्ण प्राणियों का अद्वितीय स्वामी हो गया (तथा) उसने इस पृथिवी और द्युलोक को धारण किया (उसे छोड़कर) हम किस देवता के लिए हवि से विधान (पूजन) करें ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 2 ॥

जो (हिरण्यगर्भ) प्राण (आत्मा) दाता (और) वलदाता है । जिसके आदेश की समस्त (प्राणी तथा) देवता उपासना करते हैं, जिसकी छाया अमृत है, जिसकी (छाया) मृत्यु है, (उसके अतिरिक्त) किस देवता के लिए हवि से विधान करें ।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो वभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 3 ॥

जो (हिरण्यगर्भ) अपनी महिमा से – श्वास-प्रश्वास लेने वाले, पलकों का संचालन करने वाले और गतिशील प्राणिजगत् का अकेला ही राजा हो गया और जो दो पैरों वाले (मनुष्यों) तथा चार पैरों वाले (पशुओं) का स्वामित्व करता है, (उसके अतिरिक्त) किसके लिए हवि से विधान करें ।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य वाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 4 ॥

जिस (हिरण्यगर्भ) की महिमा से ये वर्फीले पर्वत (स्थित) हैं, नदियों के साथ समुद्र को जिसका बताया जाता है, जिसकी ये प्रधान दिशाएं हैं (तथा) जिसकी भुजाएं (रक्षिका) हैं, (उसके अतिरिक्त) किस देवता के लिए हवि से विधान करें ।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तम्भितं येन नाकः ।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 5 ॥

जिसके द्वारा उन्नत द्युलोक और पृथिवी को दृढ़ (स्थिर) किया गया, जिसके द्वारा स्वर्गलोक और नाकलोक स्तब्ध कर दिया गया; जो अन्तरिक्ष में लोकों को नापने वाला है, (उसके अतिरिक्त) किस देवता के लिए हवि से विधान करें ।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।

यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 6 ॥

(प्राणियों की) रक्षा के लिए स्थिर वनाए गए तथा मन से काँपते हुए द्युलोक और पृथिवीलोक जिस (प्रजापति) की ओर देखते हैं, जिसे आधार वना कर सूर्य उदित होकर चमकता है, (उसके अतिरिक्त) किस देवता के लिए हवि से विधान करें ।

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 7 ॥

जव गर्भ धारण करती हुई और अग्नि को उत्पन्न करती हुई, विशाल जल राशि ने विश्व को व्याप्त कर लिया, तव देवताओं का एकमात्र प्राणभूत (प्रजापति) उत्पन्न हुआ, (उसके अतिरिक्त) किस देवता के लिए हवि से विधान करें ।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।

यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 8 ॥

जिसने अपनी महिमा से दक्ष (प्रजापति) को धारण करती हुई तथा यज्ञ को उत्पन्न करती हुई जलराशि को चारों ओर देखा, जो देवताओं में एक अद्वितीय देव हो गया, (उसके अतिरिक्त) किस देवता के लिए हवि से विधान करें ।

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।

यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ 9 ॥

वह (प्रजापति) हमें कष्ट न दे, जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है, तथा सत्यनियमवाला जिसने द्युलोक को उत्पन्न किया है, (तथा) जिसने आनन्ददायक विशाल जलराशि को उत्पन्न किया है, (उसके अतिरिक्त) हम किस देवता के लिए हवि से विधान करें ।

प्रजापते न त्वेदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ 10 ॥

हे प्रजापति ! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई इन (वर्तमान तथा) उन (भूत) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों को व्याप्त नहीं कर पाया; जिस (फल) की कामना करते हुए हम तुम्हें हवि प्रदान करते हैं, वह (फल) हमारा हो जाय । हम लोग समृद्धियों (धनों) के स्वामी हो जायें ।

1.3. नासदीयसूक्त. ऋ. 10/129.

'नासदीयसूक्त' विज्ञ आलोचकों की दृष्टि में ऋग्वेदीय ऋषियों की अलौकिक दार्शनिक चिन्तन-धारा का मौलिक परिचायक है । सप्तमन्त्रात्मक इस सूक्त में परमेष्ठी प्रजापति नामक ऋषि ने जगत् की प्रारम्भिक स्थिति का वर्णन करते हुए आकाशादि के कर्ता परमात्मा देवता की स्तुति की है । सम्पूर्ण सूक्त त्रिष्टुप् छन्द में निवद्ध है । मूल ऋचाओं को हिन्दी–अनुवाद के साथ यहाँ पर दिया जा रहा है-

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्म-न्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥ 1 ॥

उस समय न नामरूपादि-रहित अवस्था थी, न नामरूपात्मक अवस्था ही थी, न कोई लोक था, न आकाश ही था, जो ऊपर है । किसने आवृत किया था ? कहाँ किसकी सुरक्षा में ? क्या अपार गम्भीर जल था ?

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥ 2 ॥

तब मृत्यु नहीं थी, अमृतत्व भी नहीं था । रात्रि तथा दिन का भेदात्मक ज्ञान भी नहीं था । एक वायु के बिना (भी) अपनी इच्छा शक्ति से श्वाँस ले रहा था । उससे बढ़कर अलग पहले कुछ भी नहीं था ।

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे-ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।

तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासी-त्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥ 3 ॥

महान् अन्धकार से ढका हुआ सर्वप्रथम अन्धकार था । इस सम्पूर्ण (विश्व का कारणभूत) जल से भिन्न कोई चिन्ह नहीं था । (वह) जो स्थित था, सर्वव्यापी भावरूप अज्ञान था । अपनी तपस्या की महिमा से वह एक उत्पन्न हुआ ।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ 4 ॥

काम, जो मन का प्रथम विकार था, उसमें सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ । बुद्धिमानों ने हृदय में प्रज्ञा से विचार कर नामरूपात्मक जगत् का कारण नामरूपरहित तत्त्व में ही पाया ।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा-मधः स्विदासी ३दुपरि स्विदासी३त् ।

रेतोधा आसन्महिमान आस-न्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ 5 ॥

उनका (कार्यजाल जो) किरणों की तरह शीघ्र फैला हुआ था, क्या वह मध्य में था ? अथवा क्या वह नीचे था ? अथवा क्या वह ऊपर था ? (सृष्टि का) वीज धारण करने वाले थे; (आकाशादि) महाभूत थे; नीचे भोग्य था, ऊपर भोक्ता ।

को अद्धा वेद क इह प्र वोच - त्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना - था को वेद यत आबभूव ॥ 6 ॥

कौन सही रूप में जानता है ? कौन यहाँ कहेगा कि यह कहाँ से उत्पन्न हुई हैं ? यह विविध प्रकार की सृष्टि कहाँ से ? देवता इस सृष्टि की अपेक्षा अर्वाचीन हैं । तब यह कौन जानता है, जहाँ से यह (सृष्टि) उत्पन्न हुई है ?

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योम - न्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ 7 ॥

यह विविध रूपों वाली सृष्टि जहाँ से आई है (उसको उसने) या तो धारण किया था, या अगर नहीं (तो किसने धारण किया था ?) । जो इसका ईश्वर है, वह सर्वोच्च स्वर्ग में है; वही निश्चित रूप से इसे जानता है; यदि वह नहीं जानता (तो कौन जानता है ?)

1.4. वाक्सूक्त. ऋग्वेद. 10/125.

वाक्-सूक्त की गणना आध्यात्मिक सूक्तों के अन्तर्गत की जाती है । अष्ट-मन्त्रात्मक इस सूक्त की द्रष्ट्री अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् है । इस सूक्त की देवता-वाक् अथवा परमात्मा है । इस सूक्त का दूसरा मन्त्र जगती छन्द में शेष सात मन्त्र त्रिष्टुप् छन्द में निवद्ध हैं । वाक् परमेश्वरी शक्ति है, इसके सर्वव्यापी स्वरूप का अनेकशः उल्लेख इसके परम अस्तित्व का द्योतक है । प्रथम मन्त्र के भाष्य में सायणाचार्य ने स्पष्ट शब्दों में वाक् को माया कहा है–**'माया च जगदाकारेण निवर्तते ।'** विशेष विवरण निम्नलिखित सूक्त में देखा जा सकता है–

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरा म्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।

अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ 1 ॥

मैं (वागाम्भृणी) रुद्रों तथा वसुओं के साथ चलती हूँ । मैं आदित्यों और विश्वदेवों के साथ (चलती हूँ), मैं मित्र तथा वरुण दोनों को धारण करती हूँ । मैं इन्द्र तथा अग्नि और दोनों अश्विनों को (धारण करती हूँ) ।

अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये ३यजमानाय सुन्वते ॥ 2 ॥

मैं आवेश उत्पन्न करने वाले सोम को धारण करती हूँ और मैं त्वष्टा, पूषा तथा भग को (धारण करती हूँ), मैं सोम निचोड़ते हुए हवि - प्रदाता (तथा) भली-भाँति सहायता के योग्य यजमान के लिए धन धारण करती हूँ ।

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ 3 ॥

मैं (सम्पूर्ण विश्व की) स्वामिनी हूँ, धनों को प्राप्त कराने वाली हूँ, पूजनीयों में प्रमुख ज्ञानवती हूँ । अनेकों स्थानों में स्थित तथा अनेक प्राणियों में (अपना) प्रवेश कराती हुई मुझको देवताओं ने अनेक स्थानों में पृथक्-पृथक् (विविध रूपों में) स्थापित किया ।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।

अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ 4 ॥

जो अन्न खाता है, जो देखता है, जो श्वास लेता है, जो इस कहे हुए को सुनता है, वह मेरे द्वारा (ही होता है) । मुझे न मानने वाले (जो लोग हैं) वे नष्ट हो जाते हैं । हे विद्वान् ! सुनो (मैं) तुम्हारे लिए विश्वसनीय (वात) कहती हूँ ।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।

यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ 5 ॥

मैं स्वयं ही देवताओं तथा मनुष्यों के लिए प्रिय यह (वात) कहती हूँ । जिसे-जिसे चाहती हूँ, उसे-उसे वलयुक्त, उसे ब्रह्मा, उसे ऋषि (तथा) उसे ज्ञानी वनाती हूँ ।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

अहं जनाय समदं कृणोम्य-हं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ 6 ॥

ब्रह्मद्वेषी हिंसक को मारने के निमित्त मैं निश्चय ही रुद्र के लिए धनुष को तान देती हूँ । मैं मनुष्यों के लिए युद्ध करती हूँ । मैं द्युलोक तथा पृथ्वीलोक में समाई हुई हूँ ।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्व १न्तः समुद्रे ।

ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ 7 ॥

मैं इस (भूलोक) के ऊपर पितास्वरूप द्युलोक को उत्पन्न करती हूँ । मेरा उत्पत्ति स्थान जल के भीतर समुद्र में है, वहाँ से मैं सब लोकों में अनेक रूपों में स्थित हो जाती हूँ और शीर्षभाग से उस द्युलोक को स्पर्श करती हूँ ।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥ 8 ॥

मैं ही सकल भुवनों को उत्पन्न करती हुई, वायु के समान प्रवाहित होती हूँ । मैं द्युलोक से परे तथा इस पृथवीलोक से (भी) परे (वढ़कर) हूँ । (मैं) अपनी महिमा से इतनी (विशाल) हो गई हूँ ।

1.5. शिवसंकल्पसूक्त. शु.य.वाजस. 34.

प्रस्तुत सूक्त शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिनवाजसनेयसंहिता के 34 वें अध्याय में वर्णित षट्मन्त्रात्मक शिवशङ्कल्पोपनिषत् के नाम से जाना जाता है । इसके ऋषि याज्ञवल्क्य तथा देवता 'मन' हैं । सम्पूर्णसूक्त त्रिष्टुंप् छन्द में निबद्ध है । ये सभी मन्त्र पितृमेध में विनियुक्त हैं । मानस-शक्ति की

अनुपमेयता तथा विलक्षणता का इस सूक्त में बहुत ही सुन्दर निदर्शन होता है । मन के द्वारा ही अप्रमेय तथा ध्रुव सत्य का बोध सम्भव है–**'मनसैवानुद्रष्टव्यम् एतदप्रमेयं ध्रुवम् ।'** इस मन को प्रकृष्ट ज्ञान चेतना व धारणा के नाम से व्यपदिष्ट किया जाता है । इसके बिना किसी कर्म में प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती । इस मन में ही ऋचाएं, साम तथा यजु सम्प्रतिष्ठित हैं । अतएव मन को शिवसङ्कल्पों से पूरित करना चाहिए । यहाँ पर मनोविज्ञान का सफल निदर्शन देखा जा सकता है । इसके द्वारा ही भूत, भविष्य तथा वर्तमान के समस्त पदार्थों का ज्ञान होता है । इसके अनुष्ठान से मानसिक व्याधियों तथा हृदयरोग का नियन्त्रण सम्भव है । अग्निपुराण में इस सूक्त के जप से मन के समाधान का विधान है–**'शिवसंकल्पजापेन समाधिं मनसो लभेत् ।'** (260/74) मनुस्मृति (11/251) के अनुसार यह सूक्त पापों को दूर करने वाला है । अध्ययनार्थ सम्पूर्ण सूक्त नीचे दिया जा रहा है–

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति ।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 1 ॥

जो मन पुरुष की जाग्रतावस्था में अधिक दूर चला जाता है, जो एकमात्र आत्मा का दर्शन करने वाला है; जो पुरुष की सुषुप्त्यवस्था में उसी प्रकार लौट आता है (तथा) जो समस्त वाह्य इन्द्रियों का एकमात्र प्रकाशक है; वह मेरा मन शुभ सङ्कल्प वाला होवे ।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 2 ॥

जिस मन में कर्मनिष्ठ बुद्धिमान् पुरुष यज्ञ में तथा उपासनाओं में कर्म करते हैं, जो सब (इन्द्रियों) से पहले उत्पन्न होता है, और यज्ञ करने में समर्थ है, तथा जो प्राणिमात्र के शरीर के भीतर रहता है, वह मेरा मन शुभ सङ्कल्प वाला होवे ।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।

यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 3 ॥

जो मन विशेषज्ञान तथा सामान्यज्ञान (का साधन) है, जो धैर्य रूप है, जो प्राणियों के भीतर (इन्द्रियों की प्रेरक) अमर ज्योति है तथा जिसके बिना कोई भी काम नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन शुभ सङ्कल्प वाला होवे ।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्य-त्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 4 ॥

जिस अमर मन के द्वारा इस संसार में भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाल के सब पदार्थ जाने जाते हैं, और जिसके द्वारा सात होता वाला (अग्निष्टोम) यज्ञ किया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला होवे ।

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।

यस्मिꣳश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 5 ॥

रथ चक्र की नाभि में तीलियों की भाँति जिस मन में ऋचाएं, साम और यजु प्रतिष्ठित होते हैं, जिसमें प्राणियों का सर्वपदार्थविषयक ज्ञान निहित है, वह मेरा मन शुभसङ्कल्प वाला होवे ।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या-न्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 6 ॥

जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को इधर-उधर प्रेरित करता है और अपने वश में रखता है, उसी प्रकार जो मन प्राणियों को वार-वार इधर-उधर प्रेरित करता है और अपने वश में रखता है, जो हृदय में स्थित है, जो जरा से रहित तथा अत्यन्त वेगवान् है, वह मेरा मन शुभ संङ्कल्प वाला होवे ।

1.6. पृथ्वी-सूक्त/अथर्ववेद 12/1.

प्रस्तुत सूक्त में अथर्वण ऋषि ने कुल 63 मन्त्रों में मातृरूपिणी भूमि की–समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा पोषिका के रूप में महिमा समुद्घोपित की है, तथा प्रजा को समस्त वुराइयों, क्लेशों तथा अनर्थों से वचाने व सुख-सम्पत्ति की वृष्टि के लिए प्रार्थना की है । इस प्रकार पृथ्वी-विषयक इस एकमात्र सूक्त में 'भातृ-भूमि' की वड़ी ही मनोरम कल्पना की गई है । भाषा तथा भाव की दृष्टि से नितान्त उदात्त, भावप्रवण तथा सरस है । इस शैली के प्रौढ़ काव्य की उच्च कल्पना तथा भव्य-भावुकता, वैदिक साहित्य में भी अन्यत्र दुर्लभ है । **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'** का जयघोष देशभक्ति तथा विश्ववन्धुत्व की प्रेरणा मधुर-विलास है, जो अथर्ववेदीय युग की महनीय राष्ट्रीयता का सन्देशवाहक वनकर आज भी हमारे लिए उत्साह तथा उल्लास का सद्यः प्रेरक है । इस सूक्त के कुछ प्रमुख मन्त्र निम्नलिखित हैं–

सत्यं वृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्यु-रूं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ 1 ॥

सत्य, महत्ता, ऋत, उग्रता (शक्ति), दीक्षा, तपस्या, व्रह्म और यज्ञ पृथिवी को धारण करते हैं। भूत और भविष्यत् की पत्नी वह पृथ्वी हमारे लोक को (हमारे लिए) विस्तृत वना दे ।

असंवाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।

नानावीर्या ओषधीर्या विभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥ 2 ॥

जिस (पृथ्वी) के वहुत से ऊँचे, नीचे और समतल (क्षेत्र) मनुष्यों के वीच वाधा रहित स्थित हैं, जो अनेक प्रकार की शक्तियों से युक्त ओषधियों को धारण करती है, (वह) पृथिवी हमारे लिए विस्तृत हो और हमारे लिए समृद्ध वने ।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संवभूवुः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ 3 ॥

जिस (पृथ्वी) पर समुद्र, नदियाँ तथा जल (हैं); जिस पर अन्न और खेतियाँ (फसलें) उत्पन्न होती हैं; जिस पर यह श्वास लेने वाला और गतिशील जगत् आनन्दित होता है, वह पृथिवी हमें प्रथम पेय में (उत्तम पेय वाले प्रदेश में) स्थापित करे ।

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संवभूवुः ।

या विभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ 4 ॥

जिस पृथिवी की चार प्रमुख दिशाएं हैं, जिस पर अन्न और फसलें उत्पन्न होती हैं, जो श्वास लेने वाले तथा गतिशील (जगत्) को अनेक प्रकार से धारण करती है, वह पृथिवी हमें गायों और अन्न में स्थापित करे ।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ 5 ॥

जिस (पृथ्वी) पर (हमारे) प्राचीन पूर्वजों ने विशिष्ट कर्म किया, जिस पर देवताओं ने असुरों को आक्रमणपूर्वक भगा दिया, जो (पृथिवी) गायों, अश्वों और पक्षियों का निवास-स्थान है, (वह पृथिवी) हमें ऐश्वर्य और तेज प्रदान करे ।

यार्णविधिसलिलमग्र आसीत् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।

यस्या हृदयं परमे व्योऽमन् सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ 8 ॥

जो (पृथ्वी) पहले समुद्र में जल के भीतर थी, जिसे मनीषियों ने (अपनी) वुद्धि से प्राप्त किया (और) जिस पृथ्वी का, सत्य से ढका हुआ अमर्त्य हृदय परम व्योम में स्थित है, वह भूमि हमको वल और तेज प्रदान करे तथा हमें उत्तम राष्ट्र में प्रतिष्ठित करे ।

यस्यामापः परिचराः समानी-रहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो-दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ 9 ॥

जिस पृथ्वी पर चारों ओर विचरण करने वाला जल समान भाव से दिन-रात निर्बाध रूप में वहता रहता है, अनेक धाराओं वाली वह पृथिवी हमें दुग्ध (जल) प्रदान करे तथा हमें तेज से अभिसिञ्चित करे ।

यामश्विनावभिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।

इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।

सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ 10 ॥

जिस (पृथ्वी) को अश्विनीकुमारों ने नापा है, जिस पर विष्णु ने (अपना) पादन्यास किया, जिसे शक्ति के स्वामी इन्द्र ने अपने (हित के) लिए शत्रुहीन कर दिया । वह हमारी माता तुल्य भूमि (अपने) पुत्रस्वरूप मुझे (अपना) दूध प्रदान करे ।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।

बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।

अजीतोऽहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ 11 ॥

हे पृथिवी ! तुम्हारी पहाड़ियाँ, हिमाच्छादित पर्वत और तुम्हारे वन (हमारे लिए) सुखकर होवें । भूरी, काली, लाल, अनेक रूपों वाली स्थिर और इन्द्र द्वारा रक्षित सुविस्तृत-पृथिवी पर मैं अजेय, अहिंसित (तथा) अक्षत (होकर) अधिष्ठित हो जाऊँ ।

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वऽःसंबभूवुः ।

तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ॥

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ 12 ॥

हे पृथिवी ! जो तुम्हारा मध्यभाग है, जो नाभि का क्षेत्र है, तथा जो तुम्हारे शरीर से उत्पन्न रस हैं, उस सब में हमें प्रतिष्ठित करो । हमें पवित्र करो । भूमि माँ है । मैं पृथिवी का पुत्र हूँ । पर्जन्य पिता हैं, वह हमारा पालन-पोषण (रक्षा) करें ।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास् त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।

तवेमे पृथिवी पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ 15 ॥

तुमसे उत्पन्न हुए प्राणी तुम्हारे ऊपर (ही) कर्म करते हैं, तुम दो पैरों वाले (मनुष्यों तथा) चार पैरों वाले (पशुओं) को धारण करती हो । हे पृथिवी ! ये सभी मनुष्य तुम्हारे (ही हैं), जिनके लिए उदित होता हुआ सूर्य (अपनी) किरणों से अमृत तुल्य प्रकाश का विस्तार करता है ।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ 45 ॥

विविध वोली वाले, विभिन्न धर्मों वाले (तथा) वाञ्छित स्थान पर घर वनाकर रहने वाले लोगों को अनेक प्रकार से धारण करती हुई पृथ्वी, स्थिर (और) अचपल गाय के समान, मेरे लिए धन की हजारों धाराएँ दुह देवे ।

1.7. शान्त्यध्याय. ऋक्. 1/89

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु; विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।

देवा नो यथा सदमिद्वृधे; असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ ऋग्वेद 1-89-1

अर्थात्–वे कल्याणकारी यज्ञ सव ओर से हमारे पास आवें, जिनमें कोई विघ्न न हो, जिन्हें कोई रोक न सके और जिनसे एक के वाद दूसरा यज्ञ प्रकट होता हो और कभी प्रमाद न करते हुए प्रतिदिन रक्षा करने वाले देवता लोग सदैव हमारे लिए अभ्युदयकारी होवें ।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां; देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्तताम् ।

देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं; देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ 1-89-2

अर्थात्–देवता लोग हमारे प्रति अच्छी भावना रखें । हमारी सरलता (निष्कपटभाव) को चाहने वाले देवताओं द्वारा दिया हुआ सव कुछ निरन्तर हमारे समक्ष उपस्थित रहे । हम देवताओं की मित्रता प्राप्त करें । देवता दीर्घ-काल तक जीवन के लिए हमारी आयु को वढ़ावें ।

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं; भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम् ।

अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना; सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ 1-89-3

अर्थात्–हम उन देवताओं को प्राचीन वाणी (वेदवाणी) से बुलाते हैं,(जो)कभी अपने कर्तव्य से च्युत न होने वाले भग (ऐश्वर्यदाता), मित्र (स्नेहदाता), दक्ष (प्रजापति), अर्यमा (शत्रु का नाश करने वाले), अदिति (कभी दीनता को न प्राप्त होने वाली देवमाता), वरुण (पापनाशक), सोम (अमृत प्रदान करने वाला) और अश्विना (रोगनाशक) नाम वाले हैं । सौभाग्यदायिनी वाग्देवी (सरस्वती) हमें सदैव सुख प्रदान करें ।

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं, तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।

तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुव-स्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ 1-89-4

अर्थात्–वायु हमारे लिए सुखकारक औषधियों को प्रदान करे । सव जगत् की निर्मात्री पृथिवी और वर्षा द्वारा सबका पालन करने वाला द्युलोक भी उन औषधियों को हमें प्रदान करें । सोमरस को निचोड़ने वाले सुखद पत्थर भी हमें औषधि दें । इन औषधियों को धारण करने वाले हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों हमारी प्रार्थना को सुनो ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं, धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।

पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे, रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ 1-89-5

अर्थात्–हम अपनी तृप्ति (संतुष्टि) के लिए जगत् के सभी गतिशील तथा स्थिर पदार्थों के स्वामी, बुद्धि को प्रसन्न रखने वाले उस ईशान (समर्थ देवता-रुद्र) का आह्वान करते हैं । जिस प्रकार पूषा (पुष्टिकारक देवता) हमारे धनों की रक्षा के लिए सन्नद्ध रहते हैं, उसी प्रकार वे विना किसी प्रकार की हिंसा के हमारे कल्याणार्थ भी सन्नद्ध रहें ।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ॥ 1-89-6

अर्थात्–जिसकी कीर्ति सर्वत्र फैली हुई है, वह इन्द्र हमारा कल्याण करे । सर्वत्र पूषा (पुष्टिकारक देवता) हमारा कल्याण करे । कभी नष्ट न होने वाला या कभी अनिष्ट न करने वाले पंखों वाला तार्क्ष्य = गरुड़, हमें कल्याण प्रदान करे । वृहस्पति हमारा कल्याण करें ।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः, शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः ।

अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो, विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ 1-89-7

अर्थात्–चितकवरे घोड़ों वाले, दिति के पुत्र, सदैव कल्याण की ओर अग्रसर, यज्ञमण्डपों में जाने वाले, अग्नि में दिए गए हवि का ही स्वाद लेने वाले, सर्वज्ञ सूर्य के साथ रहने वाले मरुत् देवता तथा अन्य भी सम्पूर्ण देवता, हमारे हवि रूप अन्न से आकृष्ट होकर यहाँ आवें ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा, भद्रं पश्येमाक्ष भिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ꣳ सस्तनू-भिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ 1-89-8

अर्थात्–हे यज्ञ की रक्षा करने वाले देवताओ ! हम अपने कानों से शुभ समाचार सुनें, हम अपनी आँखों से कल्याणकारी दृश्य देखें । दृढ़ अंगों (हाथ-पैर आदि अवयवों) वाली अपनी देहों से तुम्हारी स्तुति करते हुए देवताओं की उपासना के योग्य जो आयु (जीवन) है, उसे व्यतीत करें ।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा, यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति, मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ 1-89-9

अर्थात्–हे देवताओ ! आप निश्चय ही सौ वर्षों तक हमारे समीप रहें, क्योंकि इन सौ वर्षों में हमारे शरीर वृद्ध हो जाएंगे । अतः हमारे पुत्र (अपने पुत्रों के) पिता हो जाएं या मुझे पौत्र की प्राप्ति हो जाए । वीच में ही हमारा जीवन नष्ट न होवे । हम पूर्ण आयु और पुत्र, पौत्रों का सुख भोगें ।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ 1-89-10

अर्थात्–हमारे लिए द्युलोक दीनतारहित हो, अन्तरिक्ष भी अदिति (दीनतारहित) हो । माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता, उत्पन्न समस्त प्राणी तथा उत्पन्न होने वाले समस्त प्राणी सभी अदिति (दीनतारहित) हों । अर्थात्-सभी सौभाग्यशाली होवें ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

यजुर्वेद 36-17

अर्थात्–द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, ओषधि, वनस्पति, सम्पूर्ण देवता, ब्रह्मस्थ शान्ति तथा जो वास्तविक शान्ति है, वह मुझे प्राप्त होवे ।

यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयङ्कुरु । शन्नः कुरु प्रजभ्योऽभयन्नः पशुभ्यः ॥

अर्थात्–हे परमात्मन् ! आप जहाँ-जहाँ से हमारे लिए भय उपस्थित होता देखें, वहाँ-वहाँ से हमारे उस भय को दूर करे । हमारी सन्तानें सुखी रहें तथा हमारे पशुओं को कोई भय न हो ।

यजुर्वेद 36-22

2. ब्राह्मण. आरण्यक तथा उपनिषद्

नोट :–कृपया **2·3** तथा **2·4** के अतिरिक्त अन्य सभी लक्षण इत्यादि तथ्यों को खण्ड (क) क्रमांक 1.2.2. तथा 1.2.3. के अन्तर्गत देखें ।

2.3. दर्श-पूर्णमास तथा अग्निहोत्र यज्ञ.

दर्श-पूर्णमास यज्ञ

यह वैदिकों के सात प्रमुख हविर्यज्ञों में से तीसरा यज्ञ है । इनमें 'दर्श' अमाव्रस्या में कर्तव्य तीन यागों का समूह तथा 'पूर्णमास'–पूर्णिमा में कर्तव्य तीन यागों का समूह है । इन छः यागों का निर्देश–**'दर्शपूर्णमासौ'** इस द्विवचन से होता है । यह 'प्रकृतियाग' कहा गया है । इन छः यज्ञों में अग्नि का आधान क्रमशः अमावस्या और पूर्णिमा को होता है. किन्तु यागविधि प्रतिपदा के दिन सम्पन्न होती है । दो अवसरों पर किए जाने वाले ये छः कर्म एक ही फल देते हैं । अतः इन्हें एक ही कर्म माना गया है । इन छः यागों के नाम निम्नलिखित हैं–

अमावस्या के तीन याग—1. अग्नि प्रीत्यर्थ पुरोडाशयाग, 2. इन्द्रप्रीत्यर्थक पुरोडाश (दधिद्रव्यक) याग, 3. इन्द्रप्रीत्यर्थ पयोद्रव्यकयाग ।

पूर्णिमा के तीन याग—1. अष्टाकपाल पुरोडाशयाग, 2. उपांशुयाग, 3. एकादशकपाल पुरोडाशयाग ।

प्रस्तुत-यज्ञ को लगातार 30 वर्षों तक करने का निर्देश दिया गया है, क्योंकि 30 वर्षों में कुल 360 पूर्णमासियाँ तथा 360 अमावस्याएँ हुईं, जो 360 दिन तथा 360 रात्रि की प्रतीक होकर एक वर्ष अर्थात् 360 दिन को प्राप्त होती हैं । जो इस रहस्य को समझकर 30 वर्षों तक अनवरत यह यज्ञ करता है वह दौड़ को जीत लेता है, परन्तु यदि दाक्षायण-यज्ञ करे तो 15 वर्ष ही करे । इसमें भी पूर्णता हो जाती है । **"सआजिसृतामेकः, य एवं विद्वांस्त्रिंशतं वर्षाणि यजते तस्माद् त्रिंशतमेव वर्षाणि यजेत यद्यु दाक्षायणयज्ञी स्यादथोऽपि पञ्चदशैववर्षाणि यजेतात्र ह्येव सा सम्पत्सम्पद्यते द्वे हि पौर्णमास्यौ यजते द्वे अमावास्येऽत्रोऽएव खलु सा सम्पद्भवति ।" शत. ब्रा. 11/1/2/13//** इन दोनों यागों को ही करके देवताओं ने शीघ्र ही पापी शत्रुओं को नष्ट कर डाला और प्रजावान हो गए, जो मनुष्य इस रहस्य को समझकर दर्शपूर्णमास याग में संलग्न होते हैं, वे भी शीघ्र ही शत्रु को नष्ट कर प्रजावान्

हो जाते हैं–**शत. ब्रा. 11/1/3/7//** ध्यातव्य है कि हवि देते समय यजमान को रात्रि में संयम से रहना चाहिए, अन्यथा यजमान स्वयं ही देवताओं की हवि हो जाता है–**शत. ब्रा. 11/1/8/4//.**

कुछ लोगों का कहना है कि–जो दर्श और पूर्णमास यज्ञ करता है, वह केवल संकल्प मात्र है, क्योंकि जव पूर्णमासी को इष्टि करता है, तो प्रतिज्ञा करता है कि–दर्श को यज्ञ करूँगा तथा जव दर्श को यज्ञ करता है, तो प्रतिज्ञा करता है कि–पूर्णमासी को यज्ञ करूँगा । इस प्रकार यह तो प्रतिज्ञा हुई, जो कभी पूरी नहीं होगी अतः प्रतिज्ञा पूरी न होने से पाप का भागी होना पड़ेगा. । इसका उत्तर यह है कि–पूर्णमासी और अमावस्या को जो-जो आधार आहुतियाँ देता है, वह दर्श और पूर्णमास-इष्टियों की पूर्ति है और जव ये इष्टियाँ (याग) पूरी हो गईं तो मरणोपरान्त परलोक में प्रतिज्ञा पालन न करने की त्रुटि का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता–**शत. ब्रा. 11/2/4/10//.**

नोट–कृपया अधिक जानकारी के लिए शतपथ ब्राह्मण प्रथमकाण्ड तथा एकादशकाण्ड प्रथम अध्याय से पञ्चम अध्याय पर्यन्त अवलोकन करने का कष्ट करें ।

अग्निहोत्र-यज्ञ

प्रस्तुत यज्ञ वैदिकों के सात प्रमुख हविर्यज्ञों में से दूसरा यज्ञ है । इस यज्ञ के माध्यम से प्रतिदिन प्रातः तथा सन्ध्याकाल में सूर्य व अग्नि की उपासना की जाती है, जिसमें मुख्यतः दुग्ध की तथा गौणतः यवागू, तण्डुल, दधि तथा घृत की आहुति दी जाती है । इसमें सायंकालीन आहुति इस मन्त्र से दी जाती है–**"अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा" (यजु. 6/9)** तथा प्रातःकालीन आहुति इस मन्त्र से–**"सूर्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा" (यजु. 3/9)** । क्योंकि जव सूर्य डूब जाता है, तो अग्नि ही ज्योति रहती है और जव सूर्य निकलता है, तो सूर्य ज्योति होता है ।

'ब्रह्मवर्चस' की कामना के लिए तक्षा ने अरुणि के प्रति कहा था–**"अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः सूर्यो-वर्चो ज्योतिर्वर्चः" (यजु. 3/9)** जो पुरुष इस तथ्य को समझकर अग्निहोत्र करता है, वह **'ब्रह्मवर्चसी'** हो जाता है । शत. ब्रा. 2/3/1/31. महर्षि याज्ञवल्क्य का कहना है कि–अग्निहोत्र को हविर्यज्ञ नहीं मानना चाहिए । इसको तो पाकयज्ञ (Domestic sacrifice) कहना चाहिए, क्योंकि हविर्यज्ञ में जो कुछ स्रुक् में लिया जाता है, वह सव अग्नि में छोड़ दिया जाता है, परन्तु यहाँ तो अग्नि में आहुति देने के पश्चात् आचमन करता है और खाता है । यह सव पाकयज्ञ की क्रिया है–शत. ब्रा. 2/3/1/21. अग्निहोत्र यज्ञ की महत्ता इसी वात से स्पष्ट हो जाती है कि–'अग्निहोत्र को यज्ञ का शिर कहा गया है' .... **यज्ञानां यदग्निहोत्रं शीर्षम्** ॥ शत. ब्रा. **14/3/1/29.**

नोट–विस्तृत जानकारी के लिए शतपथ ब्राह्मण 2/3/1/1-39 तथा अन्यान्य प्रसङ्गप्राप्त विशृंखलित विवरणों को देखा जा सकता है ।

2.4. आख्यान

2.4.1 शुनःशेप आख्यान

शुनःशेप एक ऋग्वैदिक व्यक्ति विशेष का नाम है; जो आगे चलकर एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि के रूप में प्रतिष्ठित हुआ । इसका पैत्रिक नाम 'अजीगर्ति' है । ऋग्वेदस्थ सांकेतिक विवरण के अलावा 'ऐतरेय-ब्राह्मण' 7/13/18 में यह कथा आख्यान के रूप में विस्तार से वर्णित है ।

हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र से वरुण का यज्ञ करने का सङ्कल्प किया था, परन्तु पुत्र उत्पन्न होने पर पुत्रमोह भी साथ-साथ उत्पन्न हुआ और वह अपने सङ्कल्प को विस्मृत कर दिया; फलतः वरुण देव अपने इस अपमान को सहन न कर सके और हरिश्चन्द्र जलोदर रोग से पीड़ित हो गया । भविष्य में अधिकाधिक अनिष्ट की आशंका से हरिश्चन्द्र ने पुरोहितों के निर्णय के अनुसार अपने पुत्र 'रोहित' के वदले किसी अन्य बालक से वरुण का यज्ञ सम्पादित करने का निर्णय लिया । एतदर्थ ब्राह्मण वालक शुनःशेप वलि हेतु खरीद करके यज्ञशाला में लाया गया तथा बलि के निमित्त यज्ञीय यूप (खम्भा) में वाँध दिया गया । उसके पुष्ट शरीर के माँस की पवित्र आहुति देने की

तैयारियाँ होने लगीं । वह वेचारा यज्ञाहुतिभूत, निःसहाय होकर कातर नेत्रों से अपने चारों ओर देखने लगा, उसको रक्षा का कोई स्रोत दिखाई न दिया । उसने विश्वामित्र द्वारा दिए गए सलाह का स्मरण किया–उसे एक क्षीण आशा का सम्वल दिखाई दिया–वे थे वरुण देव । शुनःशेप की क्षीण आशा, करुणवाणी में मुखरित हुई–

"तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ ऋ. 1/24/11.

अर्थात्–हे वरुण देव ! मैं प्रार्थना द्वारा आपकी वन्दना करता हूँ, अपनी आयु के लिए तुम्हारे पास याचना करता हूँ; यजमान हवि द्वारा उसी आयु की याचना करता है । हे वरुण देव ! हम पर क्रोधित न होते हुए, हमारे अभिप्राय को समझो । हे विस्तृत रूप से स्तुत्यमान वरुण ! हमारी आयु को मत चुरावो ।

"तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥" (ऋ. 1/24/12)

अर्थात्–वही वात रात को तथा वही वात दिन को वे मुझसे कहते हैं । अन्तःकरण से उद्भूत हमारी वुद्धि भी वही वात कहती है । वह राजा वरुण, जिसको पाशवद्ध-शुनःशेप ने वुलाया है । हमें पाशों से मुक्त करें ।

"परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये । वयो न वसतीरुप ॥" (ऋ. 1/25/4)

अर्थात्–हे वरुणदेव ! मेरी कामनाएं जीवन प्राप्ति के लिए, तुम्हारी ओर भाग रही हैं, जिस प्रकार कि पक्षी अपने घोंसलों की ओर भागते हैं ।

"परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥" (ऋ. 1/25/16)

अर्थात्–हे वरुण देव ! विशाल दृष्टि वाले आपकी इच्छा करती हुई मेरी स्तुतियाँ उसी तरह आपकी ओर जाती हैं, जैसे गायें चरागाह की ओर जाती हैं ।

"इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके ॥" (ऋ. 1/25/19)

अर्थात्–हे वरुण देव ! मेरी इस करुण पुकार को सुनिए और आज मेरे ऊपर दया कीजिए । सहायता का इच्छुक मैं आपकी दया की कामना करता हूँ ।

"उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे ॥" (ऋ. 1/25/21)

हे वरुण देवता ! हमारे ऊपर वाले पाश को ऊपर से हटा दीजिए । मध्यम तथा निचले पाश को भी मेरे जीने के लिए नीचे से हटा दीजिए ।

इस प्रकार शुनःशेप ने वरुण, अग्नि, सोमपायी इन्द्र की क्रमशः करुण स्तुतियाँ कीं और पाश से मुक्त हो गए । यही शुनःशेप आगे चलकर विश्वामित्र के दत्तकपुत्र 'देवरात' के रूप में प्रतिष्ठित हुए ।

टिप्पणी–अधिक जानकारी के लिए–ऋग्वेद- 1/24-30, ऐतरेय ब्राह्मण-7/13-18, तैत्तिरीय संहिता-5/2/13//, मैत्रायणी संहिता- 3/21; कठकसंहिता-19/11तथा वृहद्देवता 2/215; 3/103 का विवरण देखा जा सकता है ।

2.4.2. वाक्-मनस्–संवाद

प्रस्तुत आख्यान शतपथ ब्राह्मण 1/4/5/8-13 में पाया जाता है । यहाँ पर मन और वाणी के सम्वाद को बहुत ही ललित शैली में प्रस्तुत किया गया है, जो अपने मूलरूप में पूरा का पूरा हिन्दी अनुवाद के साथ नीचे दिया जा रहा है–

अथातो मनश्चैव वाचश्च । अहंभद्रऽउदितं मनश्च ह वै वाक्चाहंभद्रऽऊदाते ॥ 8 ॥

अब यहाँ से अपने-अपने बड़कपन के विषय में मन और वाणी का सम्वाद प्रारम्भ होता है । एक बार मन और वाणी अपने-अपने वड़कपन के विषय में विवाद करने लगे ।

तद्ध मनऽउवाच । अहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मि न वै मया त्वं किञ्च नानभिगतं वदसि सा यन्मम त्वं कृतानुकरानुवर्त्मास्यहमेव त्वच्छ्रेयोऽस्मीति ॥ 9 ॥

इस विषय में मन ने कहा कि मैं तुमसे बड़ा हूँ, क्योंकि तुम मेरे द्वारा न जाना हुआ, कुछ भी नहीं बोलती हो । तुम मेरा अनुकरण करने वाली मेरी अनुगामिनी हो । अतः मैं ही तुमसे बड़ा हूँ ।

अथ ह वागुवाच । अहमेव त्वच्छ्रेयमस्मि । यद्वै त्वं वेत्थाहं तद्विज्ञापयाम्यहं सञ्ज्ञपयामीति ॥ 10 ॥

इस पर वाणी ने कहा मैं तुमसे बड़ी हूँ । तुम जो कुछ भी जानते हो, वह मैं ही जानती और बताती हूँ ।

ते प्रजापतिं प्रति प्रश्नमेयतुः । स प्रजापतिर्मनसऽएवानूवाच मनऽएव त्वच्छ्रेयो मनसो वै त्वं कृतानुकरानुवर्त्मासि श्रेयसो वै पापीयान्कृतानुकरोऽनुवर्त्मा भवति ॥ 11 ॥

वे दोनों झगड़े का निपटारा करने के लिए प्रजापति के पास गए । प्रजापति ने मन के ही अनुकूल निर्णय दिया । उन्होंने वाणी से कहा कि मन तुमसे बड़ा है, तुम मनोनुगामी हो । बड़े का अनुकरण व अनुगमन करने वाला निश्चित ही उससे नीचा ही होता है ।

सा ह वाक् परोक्ता विसिष्मिये । तस्यै गर्भः पपात सा ह वाक् प्रजापतिमुवाचाहव्यवाडेवाहं तुभ्यं भूयासं यां मा परोवाच इति तस्माद्यत्किञ्च प्राजापत्यं यज्ञे क्रियत उपांश्वेव तत्क्रियतेऽहव्यवाड्ढि वाक् प्रजापतयः आसीत् ॥ 12 ॥

इस प्रकार विरुद्ध बोली जाने के कारण वाणी हतोत्साहित हो गई । उसका गर्भ गिर गया । उसने प्रजापति से कहा कि अच्छा हो यदि मैं तुम्हारे लिए हवि ले जाने वाली न होऊँ; क्योंकि तुमने मेरे विरुद्ध निर्णय दिया है । अतः यज्ञ में जो कुछ भी प्रजापति के लिए किया जाता है, वह नीच स्वर से किया जाता है । वाणी प्रजापति के लिए हविर्द्रव्य नहीं ले जाती ।

तद्धैतद् देवाः । रेतश्चर्मन्वा यस्मिन्वा बभ्रुस्तद्ध स्म पृच्छन्त्यत्रैवत्या३दिति ततोऽत्रिः सम्बभूव तस्माद् अप्यात्रेय्या योषितैनस्व्येतस्यै हि योषायै वाचो देवताया एते सम्भूताः ॥ 13 ॥

देवताओं ने वाणी के उस गर्भ को एक चमड़े में या अन्य किसी पात्र में भर लिया । वे पूछते थे कि क्या वह इसी में है, तब उसी से अत्रि उत्पन्न हुए । इसलिए गतिलगर्भा रजस्वला स्त्री को आत्रेयी कहते हैं । उससे व्यवहार करने वाला पापी होता है । इसी स्त्री रूपधारिणी वाग्देवता से ये सब गर्भ पैदा हुए हैं ।

2.4.3. जल-प्लावन की कथा (बाढ़ सम्बन्धी आख्यान)

शतपथ ब्राह्मण (1.8.1.) में सबसे रोचक आख्यान जल-प्लावन सम्बन्धी आख्यान है । विन्टरनित्स के अनुसार इस कथा का मूल स्रोत सेमेटिक परम्परा है । अवेस्ता में भी यह कथा पाई जाती है । महाराज मनु को एक छोटी सी मछली मिलती है, जो राजा से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करती है और वचन देती है कि एक जल-प्लावन आएगा, जिससे मैं तुझे बचा लूँगी । महाराज मनु मत्स्य की रक्षा करते हैं और उसके बड़ा होने पर उसे समुद्र में प्लावित कर देते हैं । मत्स्य के निर्देशानुसार मनु ने एक जलयान का निर्माण कराया और जल-प्लावन के समय उसमें बैठ गए । उसी समय मत्स्य तैरती हुई वहाँ आई और जलयान को उत्तरी पर्वत की ओर बहाकर एक सुरक्षित स्थान पर ले जाकर एक शिखर पर बँधवा दिया और कहा कि जब जल नीचे उतर जाए तब तुम धीरे-धीरे नीचे उतरना । महाराज मनु के नौका बाँधने का यह स्थान **मनोरवसर्पण**, के नाम से विख्यात है।

3. ऋक्-प्रातिशाख्य

3.1. समानाक्षर

"अष्टौ समानाक्षराण्यादितः" अर्थात्–वर्णमाला के आदि से लेकर आठ अक्षर पर्यन्त 'समानाक्षर' कहलाते हैं । उव्वटभाष्य के अनुसार–'**आदित आरभ्य वर्णसमाम्नायस्य अष्टाक्षराणि समानाक्षरसंज्ञकानि**

भवन्ति ।' अर्थात्–अ, आ, ऋ, ॠ, इ, ई, उ तथा ऊ–ये आठ वर्ण समानाक्षर संज्ञक हैं । इनके प्रयोजन को बतलाते हुए आचार्य उव्वट ने कहा है कि–**'समानाक्षरसंस्थाने ।'** अर्थात्–समान स्थान वाले दो समानाक्षर दीर्घता को प्राप्त हो जाते हैं ।

3.2. सन्ध्यक्षर

"ततश्चत्वारि सन्ध्यक्षराण्युत्तराणि" अर्थात्–समानाक्षर के वाद वाले चार वर्ण 'सन्ध्यक्षर' संज्ञक होते हैं । उव्वट महाभाष्य के अनुसार–**"समानाक्षरेभ्यः उत्तराणि चत्वारि सन्ध्यक्षरसंज्ञकानि भवन्ति । अकारस्य इकारेण उकारेण एकारेण ओकारेण च सह सन्धौ यान्यक्षराणि निष्पद्यन्ते तानि तथोच्यन्ते ।"** अर्थात्–ए, ओ, ऐ, औ–ये वर्ण सन्धिजन्य होने से सन्ध्यक्षर कहलाते हैं । इनका प्रयोजन वतलाते हुए उव्वट ने कहा है–**'सन्ध्यानि सन्ध्यक्षराण्याहुरेके ।'**

3.3. अघोष

"अन्त्याः सप्त तेषामघोषाः ।" अर्थात्–उन ऊष्म वर्णों में अन्तिम सात-वर्ण अघोष-संज्ञक हैं । उव्वटभाष्य के अनुसार–**'तेषाम् एवोष्मणाम् अन्त्याः सप्त ऊष्माणः अघोषसंज्ञाः वेदितव्याः ।'** अर्थात्–उन ऊष्म वर्णों में ही अन्त वाले सात ऊष्मवर्णों को अघोष संज्ञक जानना चाहिए । यथा–श, ष, स, अः, ≍ क ≍ प । इनके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ग के प्रथम दो वर्ण भी अघोष संज्ञक होते हैं–**'वर्गे वर्गे च प्रथमावघोषौ ।'** अर्थात्–क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, ये अघोष वर्ण हैं । **'अघोषे रेफ्यरेफी च'** इनका प्रयोजन वतलाया गया है ।

3.4. सोष्म

"युग्मौ सोष्माणौ ।" अर्थात् प्रत्येक वर्ग के सम वर्ण (द्वितीय तथा चतुर्थ) सोष्म संज्ञक होते हैं। उव्वटभाष्य के अनुसार–**'वर्गे-वर्गे च द्वितीय-चतुर्थौ वर्णौ सोष्माणौ वेदितव्यौ'** अर्थात्–ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ तथा भ वर्ण सोष्म हैं । **'सोष्मा तु पूर्व्येण सहोच्यते'** इनका प्रयोजन है ।

3.5. स्वरभक्ति

"स्वरभक्तिः पूर्वभागमक्षराङ्गम् ।" अर्थात्–स्वरभक्ति पूर्ववर्ती रेफ या लकार से सम्बद्ध होती है । उव्वट के अनुसार–**'सा स्वरभक्तिः पूर्वं रेफं लकारं वा भजते ।'** अर्थात्–यह स्वरभक्ति पूर्ववर्ती रेफ या लकार से सम्बद्ध होती है । यह दो प्रकार की होती है– 1. दीर्घस्वरभक्ति तथा 2. ह्रस्वस्वरभक्ति । इनमें यदि ऊष्म-वर्ण परे हो तो स्वरभक्ति दीर्घ होती है, जो अर्धमात्रा वाली होती है तथा यदि द्वित्व प्राप्त ऊष्मवर्ण परे हो तो ह्रस्वस्वरभक्ति होती है, जो चौथाई मात्रा वाली होती है ।

3.6. यम

"स्पर्शा यमाननुनासिकाः स्वान्परेषु स्पर्शेष्वनुनासिकेषु ।" अर्थात्–अनुनासिक स्पर्श अपने-अपने यमों को प्राप्त हो जाते हैं; यदि वाद में अनुनासिक स्पर्श हो, अर्थात्–वर्गों में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ वर्ण अपने-अपने यम हो जाते हैं, यदि वाद में पञ्चम वर्ण हो । तात्पर्य यह है कि अनुनासिक स्पर्श परे होने पर अनुनासिक स्पर्श ही यम संज्ञक नासिक्य वर्ण हो जाता है । इन यमों की संख्या चार है– 1. **अघोष अल्पप्राण**–कँ, चँ, टँ, तँ, पँ । 2. **अघोष महाप्राण**–खँ, छँ, ठँ, थँ, फँ । 3. **सघोष अल्पप्राण**–गँ, जँ, डँ, दँ, बँ । 4. **सघोष महाप्राण**–धँ, झँ, ढँ, घँ, भँ । ध्यातव्य है कि-ऊष्मन् से उत्पन्न होने वाला स्पर्श 'यम' नहीं होता–**"न स्पर्शस्योष्मन् प्रकृतेः प्रतिपाद्यमापत्तिम् ।"**

3.7. रक्त

"रक्तसंज्ञोऽनुनासिकः ।" अर्थात्–अनुनासिक वर्णों की रक्त-संज्ञा होती है । उव्वट के अनुसार–**'यस्य वर्णस्यानुनासिकसंज्ञा-विहिता तस्यानेन रक्तसंज्ञा विधीयन्ते ।'** जिस वर्ण की अनुनासिक संज्ञा का

विधान किया जा चुका है, यहाँ पर उसी की रक्तसंज्ञा का विधान किया गया है । अर्थात्–ङ, ञ, ण, न, म–ये सभी अनुनासिकवर्ण रक्तसंज्ञक वर्ण कहे जाते हैं । ध्यातव्य है कि–जहाँ पर नकार का लोप, रेफ या ऊष्मन् होता है, वहाँ उस नकार के स्थान से पूर्व वाला स्वर अनुनासिक हो जाता है । यथा–**महाँ इन्द्रो नृवदा** ......

3.8. संयोग

"**संयोगस्तु व्यञ्जनसन्निपातः** ।" अर्थात्–दो व्यञ्जनवर्णों का मिलना ही 'संयोग' कहलाता है । उव्वट के शब्दों में–'**व्यञ्जनयोर्मेलकः संयोगसंज्ञः भवति** ।' उदाहरणतया–'**प्र प्र वस्त्रिष्टुभमिषम्** ।' ध्यातव्य है कि–स्वर या अनुस्वार के अव्यवहित बाद में आने वाले संयोग का प्रथमवर्ण द्वित्व को प्राप्त होता है–'**स्वरानुस्वारोपहितो द्विरुच्यते संयोगादिः** ।'

'संयोग' शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक युज् धातु से घञ् प्रत्यय होकर (सम् + युज् घञ्) बना है । 'संयोग' का शाब्दिक अर्थ है–स्वर से अव्यवहित वर्णों का मेल ।

3.9. प्रगृह्य

"**ओकार आमन्त्रितजः प्रगृह्यः** ।" अर्थात्–सम्बोधन (आमन्त्रित) से उत्पन्न या दूसरे शब्दों में–सम्बोधन पद के अन्त में विद्यमान ओकार की 'प्रगृह्य' संज्ञा होती है । उदाहरणतया–'**ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्राः** ।' ध्यातव्य है कि–'इति' शब्द परे हो तो प्रगृह्य (स्वर-वर्ण) प्रकृतिभाव से रहते हैं ।

3.10. रिफित

"**ऊष्मारेफी पञ्चमो नामिपूर्वः** ।" अर्थात्–नामि (स्वर) पूर्व में हो तो पञ्चम उष्मवर्ण अर्थात् विसर्जनीय रेफिसंज्ञक होता है । जैसे–'**अग्निरश्मि जन्मना**' । ध्यातव्य है कि–महः और अपः से अन्यत्र आने वाला विसर्जनीय रिफित संज्ञक होता है ।

4. निरुक्त

4.1. पदों का चतुर्विध-विभाजन

'निघण्टु' में कठिन वैदिक शब्दों का वर्णन किया गया है । ये सभी शब्द चार भागों में आते हैं । अलौकिक या वैदिक-भाषा में सामान्यतः चार प्रकार के 'पद' माने गये हैं–1. नाम, 2. आख्यात, 3. उपसर्ग, 4. निपात । क्रमशः इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है–

1. **नाम**–'नाम' का लक्षण प्रस्तुत करते हुए महर्षि यास्क ने लिखा है–"**सत्त्वप्रधानानि नामानि** ।" अर्थात्–जहाँ सत्त्व की प्रधानता हो, अर्थात्–जो लिङ्ग, वचन, संख्यादि से अन्वित हो, द्रव्यप्रधान हो तथा क्रिया गौण हो, उसे नाम कहते हैं ।

'सत्त्व' का तात्पर्य द्रव्य से है, जो गुणों का आश्रय होता है । यथा–**घटः, पटः, धनम्** इत्यादि में सत्त्व की प्रधानता के निम्नलिखित हेतु हैं–

(i) देवदत्त आदि नाम शब्दों का उच्चारण करने पर देवदत्त आदि द्रव्य का ही प्रधान रूप से बोध होता है, परन्तु उसके क्रिया सम्बन्धी नाम से नहीं ।

(ii) जब किसी प्रातिपदिक शब्द का उपयोग किया जाता है, तो वह लिङ्गादि से युक्त होता है, जिसे विद्वानों ने द्रव्य कहा है ।

(iii) '**कः पठतिः केन पठ्यते वा**' इस प्रकार के द्रव्य-विषयक प्रश्न के उत्तर में राम, कृष्ण इत्यादि किसी नाम शब्द का प्रयोग मिलता है । '**मूर्तं सत्त्वभूतं सत्त्वनामानि** ।'

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि–नाम तथा आख्यात में केवल अवस्था का ही अन्तर है । क्रिया का होते रहना आख्यात है, जबकि–क्रिया का अवसान (पूर्ण होना) सत्त्वनाम है । उदाहरणतया–'पठति' आख्यात है, जबकि 'पाठ' नाम है ।

2. **आख्यात** –निरुक्तकार यास्क के शब्दों में–"**भावप्रधानमाख्यातम् ।**" अर्थात्–जिन पदों में क्रिया की प्रधानता हो, उसे 'आख्यात' कहते हैं । यहाँ भाव का तात्पर्य क्रिया की साध्यावस्था से है, सिद्धावस्था से नहीं । अर्थात्–जिन पदों के अर्थों में साध्यभाव (क्रिया) की प्रधानता हो, उसे 'आख्यात' कहते हैं । जैसे–गच्छति, पचति, भुङ्क्ते इत्यादि ।

उपर्युक्त सभी क्रियाएं साध्यावस्था में हैं । जब तक ये सिद्ध नहीं होतीं, तब तक ये आख्यात कहे जाएंगे, परन्तु अवसान (विरामावस्था) को प्राप्त होकर ये सत्त्व (नाम) के रूप में ज्ञात होते हैं । आख्यात पदों में क्रिया की मुख्यता निम्नलिखित रूप में प्रमाणित हो जाती है–

(i) **व्रजति या पठति**–इन दोनों आख्यात पदों के प्रयोग से जाने तथा पढ़ने की क्रिया का बोध हो रहा है, परन्तु कर्ता आदि का नहीं ।

(ii) **देवदत्तः किं करोति**–इस प्रकार जब किसी क्रिया के विषय में प्रश्न किया जाता है, तो उसे 'करोति' इत्यादि आख्यात पदों द्वारा प्रस्तुत करते हैं, नाम पद द्वारा नहीं ।

3. **उपसर्ग**–"**न निर्बद्धा उपसर्गा अर्थान्निराहुरिति शाकटायनः । नामाख्यातयोस्तु कर्मोपसंयोगद्योतका भवन्ति ।**" अर्थात्–शाकटायन के मत में–उपसर्ग, स्वतन्त्र रूप से अर्थों को नहीं कहते, अपितु नाम और आख्यात से मिले हुए ये सार्थक माने गये हैं । अन्यथा ये निरर्थक हैं । जिस प्रकार गृहगत सम्पूर्ण वस्तु प्रकाश के अभाव में दिखाई नहीं पड़ती, उसी प्रकार उपसर्ग भी इन अर्थों के द्योतक मात्र होते हैं, वाचक नहीं । यथा–अतिधनम् । सुब्राह्मणः ।

गार्ग्याचार्य के मत में–उपसर्ग स्वतन्त्र रूप से भी सार्थक हैं, निरर्थक नहीं । अतः शाकटायन का मत उचित नहीं है । उपसर्ग से युक्त होने पर नाम तथा आख्यात में जो अर्थ भिन्नता आती है, वही उसका अपना स्वतन्त्रार्थ है । उपसर्गों के विषय में वैयाकरणों का मत (22 उपसर्ग) नैरुक्तों से भिन्न है–"**आ इत्यर्वागर्थे । प्रपरेत्येतस्य प्रातिलोम्यम् । अभीत्याभिमुख्यम् । प्रतीत्येतस्य प्रातिलोम्यम् । अति सु इत्यभियूजितार्थे । निर्दुरित्येतयोः प्रातिलोम्यम् । न्यवेति विनिग्रहार्थीयौ । उदित्येतयोः प्रातिलोम्यम् । समित्येकी भावम् । व्यपेत्येतस्य प्रातिलोम्यम् । अन्विति सादृश्यापरभावम् । अपीति संसर्गम् । उपेत्युपजनम् । परीति सर्वतोभावम् अधीत्युपरिभावमैश्वर्यंवा ।**

4. **निपात**–"**उच्चावचेष्वर्थेपु निपतन्ति इति निपाताः ।**" अर्थात्-अनेकार्थक होने के कारण, इन्हें 'निपात' कहते हैं । निपात शब्द 'नि' उपसर्गपूर्वक 'पत्' धातु से बना है । लौकिक भाषा में इसका अर्थ है–'जो अज्ञात रूप से आ गिरे ।' इनका प्रकृति-प्रत्यय स्पष्ट नहीं होता । अतः, ये निपात कहलाते हैं । इनके तीन प्रकार हैं–

(i) **उपमार्थक**–इस अर्थ में मुख्यतः इव, न, चित् तथा नु आते हैं । इनके अतिरिक्त वा तथा यवा भी उपमार्थक निपात हैं । 'न' निपात लौकिकभाषा में निषेधार्थक है ।

(ii) **कर्मोपसंग्रहार्थक**–वे निपात जो दो या दो से अधिक सामासिक पदों के मध्य में आकर कथित अर्थों या वस्तुओं की भिन्नता को निश्चित रूप से सूचित करते हैं । यथा-देवदत्तयज्ञदत्तौ में च निपात है देवदत्तश्च यज्ञदत्तश्च । च के अतिरिक्त इसके अन्तर्गत वा, आ, अह, ह, किल, हि, ननु, खलु, शश्वतम्, नूनम् इत्यादि निपात आते हैं ।

(iii) **पादपूर्णाक**–ये वे निपात हैं, जिनका प्रयोग छन्दोबद्ध ग्रन्थों में पादपूर्ति हेतु किया जाता है । गद्यात्मक शैली को अलंकृत करने के लिए भी इनका प्रयोग होता है । इसके अन्तर्गत–कम, इम, इत, उ, इव, त्व, त्वत इत्यादि प्रमुख निपात हैं ।

4.2. क्रिया के छः रूप (षड्भावविकार)

यास्क ने क्रिया की उत्पत्ति से लेकर अवसानपर्यन्त छः भावों (अवस्थाओं) को दर्शाते हुए आचार्य वार्ष्यायणि के मत का उल्लेख किया है–"**षड्भावविकाराः भवन्ति इति वार्ष्यायणिः–जायते,**

अस्ति, विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यतीति ।" अर्थात्–किसी भी वस्तु के छः क्रिया-विकार होते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. **जायते**–यह क्रिया पहली क्रिया के प्रारम्भमात्र को कहती है, परवर्ती क्रिया को नहीं कहती है और न उसे मना करती है–**"जायत इति पूर्वभावस्यादिमाचष्टे, नापरभावमाचष्टे, न प्रतिषेधति ।"**

2. **अस्ति**–यह क्रिया (भाव) पैदा हुए पदार्थ की निश्चयात्मक स्थिति को कहती है तथा यह वाद वाली क्रिया (विपरिणमते) को न कहती है न ही मना करती है–

"अस्त्युत्पन्नस्य सत्त्वस्यावधारणम् ।"

3. **विपरिणमते** –यह क्रिया अपनी प्रकृति को न छोड़ते हुए भी वस्तु के परिवर्तन का कथन करती है तथा परवर्ती क्रिया वर्द्धते को न कहती है, न मना करती है–**"विपरिणमत इत्यप्रच्यवमानस्य तत्त्वाद्विकारम् ।"**

4. **वर्द्धते**–यह क्रिया अपने अवयवों–शिर, ग्रीवादि की वढ़ोत्तरी को कहती है, या अपने सम्पर्क में आए हुए धन-धान्यादि पदार्थों की वढ़ती को कहती है, जैसे–वह अपने शरीर से वढ़ रहा है । वह विजय से वढ़ रहा है, इत्यादि–**"वर्द्धत इति स्वाङ्गाभ्युच्चयं सांयौगिकानाम् वार्थानाम्–वर्द्धते विजयेनेति वा स्वाङ्गाभ्युच्चये ।"** यह परवर्ती क्रिया 'अपक्षीयते' को न कहती है न मना ही करती है ।

5. **अपक्षीयते**–इसे वर्द्धते का ठीक उल्टा (विपरीत) समझना चाहिए । यह अपनी परवर्ती क्रिया 'विनश्यति' का न कथन न प्रतिषेध ही करती है–**"अपक्षीयते इति एतेनैव व्याख्यातः प्रतिलोमम् ।"**

6. **विनश्यति** –यह क्रिया किसी अन्तिम क्रिया के प्रारम्भमात्र को कहती है तथा पूर्वभाव का न तो कथन ही करती है, न निषेध ही–**"विनश्यतीत्यपरभावस्यादिमाचष्टे न पूर्वभावमाचष्टे न प्रतिषेधति ।"**

विशेष–उपर्युक्त षड्भावविकारों के अतिरिक्त जो अन्य क्रिया-विकार हैं, उनका इन्हीं षड् भावों के अन्तर्गत समाहार समझना चाहिए–**"अतोऽन्ये भावविकारा एतेषामेव विकारा भवन्तीति ह स्माह ।"**

4.3. निरुक्त के अध्ययन के उद्देश्य

निरुक्त का प्रमुख उद्देश्य मन्त्रों के अथवा मन्त्रगत पदों के अर्थों का ज्ञान प्राप्त करना है–**'अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययोः न विद्यते ।'** यह कार्य निर्वचन के बिना असम्भव है । इस प्रकार निरुक्त का अवान्तर प्रयोजन निर्वचन करना भी है, जिसे–**'समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः ।'** इस रूप में कहा गया है । अर्थवोधकता के अभाव में स्वरसंस्कार का ज्ञान नहीं रहता और न ही व्याकरणशास्त्र का अतः निरुक्त का महत्त्व और भी बढ़ जाता है ।

यास्क ने उपर्युक्त अर्थवोधकता के अतिरिक्त पदविभाग तथा देवताज्ञान को भी निरुक्त का प्रयोजन माना है–**"याज्ञे दैवतेन बहवः प्रदेशा भवन्ति, तद् एतेनोपेक्षितव्यम् ।"** अपने तर्क की पुष्टि में उन्होंने एक मन्त्र भी दिया है–**"इदं न त्वा शवसा देवता वायुम्पृणन्ति ।"** इसका देवता अग्नि है । पद–विभाग के सन्दर्भ में यास्क का वचन है–**"अथापीदमन्तरेण पदविभागो न विद्यते ।"** अर्थात्–निरुक्तशास्त्र के बिना पदों का विभाग भी सम्भव नहीं है । इन सब से विलक्षण निरुक्त का एक मुख्य उद्देश्य–'ज्ञान की प्रशंसा तथा अज्ञान की निन्द्रा भी है'–**"अथापि ज्ञानप्रशंसा भवति अज्ञाननिन्दा च ।"** उदाहरणतया (निन्दा अर्थ में)–

"स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञः इति सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञान-विधूत-पाप्मा ॥"

4.4. निर्वचन के सिद्धान्त

निरुक्तकार यास्क ने द्वितीय-अध्याय के प्रथम-पाद में निर्वचन-प्रक्रिया को बहुत अच्छी तरह प्रस्तुत किया है । किसी प्राचीन आचार्य ने निरुक्त को पञ्चविधस्वीकृत करते हुए अग्रलिखित श्लोक लिखा है–

"वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्ण-विकार-नाशौ ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥"

1. **"अथापि वर्णोपजनः । आस्थद्, द्वारो भरूजेति ।"** अर्थात्–कहीं पर वर्णागम हो जाता है । जैसे–'आस्थत्' में 'अस्' धातु से लुङ् में 'अस्यतेस्थुक्' से थुक् का आगम होकर 'आस्थत्' होता है ।

2. **वर्णविपर्यय**–आदि, आद्यन्त तथा अन्त भेद से तीन प्रकार का होता है–

(क) **आदिविपर्यय**–'हन्' धातु में आदि अक्षर 'ह' के स्थान पर 'घ' होकर घन तथा 'भिदिर्' धातु में 'भ' के स्थान पर 'व' होकर बिन्दु इत्यादि शब्द बनते हैं ।

(ख) **आद्यन्तविपर्यय**–उदाहरणतया 'च्युतिर् क्षरणे' धातु से आदि और अन्त के अक्षर का विपर्यय होकर 'स्तोक' बनता है, सृज् से रज्जु बनता है ।

(ग) **अन्तविपर्यय**–जैसे-'मिह्' धातु के अन्तिमवर्ण 'ह' को 'घ' होकर 'मेघ' बनता है ।

3. कहीं-कहीं उपधा-विकार इत्यादि वर्णविकार देखने को मिलते हैं, जैसे–'राजन् + सु' में **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** सूत्र से उपधासंज्ञक जकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ होकर 'राजा' पद बनता है ।

4. **वर्णनाश या वर्णलोप के अन्तर्गत**–आदिलोप, अन्तलोप, वर्णलोप, द्विवर्णलोप इत्यादि कई प्रक्रियाएँ हैं । उदाहरणतया–स्तः, जग्मुः, यामि, गत्वा इत्यादि ।

5. यदा-कदा धातुओं के अर्थ बढ़ा लेने से भी निर्वचन प्रक्रिया हो जाती है ।

समीक्षा–निवर्चन-सिद्धान्त के मामले में यास्क के वक्तव्यों में विरोधाभास दिखाई पड़ता है । उनका कहना है कि–व्याकरण प्रक्रिया से ही निर्वचन करना चाहिए, परन्तु यदि सम्भव न हो, तो व्याकरण की उपेक्षा भी की जा सकती है । कहने का तात्पर्य यह है कि–किसी भी प्रकार निर्वचन अवश्य होना चाहिए । यथोक्तम्–**'न त्वेव न निर्ब्रूयात् । न संस्कारमाद्रियेत । विशयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति । यथार्थं बिभक्तीः सन्नमयेत ।**

इस प्रकार यास्क का निर्वचन वस्तुतः वैज्ञानिकता को प्रदर्शित करता है, जिसे आधुनिक-भाषाविज्ञान की जननी कहा जा सकता है ।

4.5. विषयसन्निविष्ट व्युत्पत्तियाँ

1. **आचार्यः** – आचार्यः आचारं ग्राहयुति। आचिनोति; आचिनोति बुद्धिमिति वा ।
2. **वीरः** – वीरयति अमित्रान् वीरयते वा ।
3. **ह्रदः** – ह्रदो ह्रादते शब्दकर्मणः । ह्रादतेर्वा स्यात्, शीतिभावः कर्मणा :।
4. **गौः** – यद् दूरङ्गता भवति । यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति ।
5. **समुद्रः** – समुद्रवन्त्यस्मादापः, समभिद्रवन्त्येनमापः, सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि, समुदको भवति, समुनत्तीति वा ।
6. **वृत्रः** – वृणोतेर्वा वर्त्ततेर्वा वद्धतेर्वा वृत्रः ।
7. **आदित्यः** – आदत्ते रसान् । आदत्तेभासं ज्योतिषाम् । आदिप्तो भासेति । आदितेःपुत्र इति ।
8. **उषस्** – उच्छतीति । रात्रेः अपरः कालः ।
9. **मेघः** – मेहत्तीति मेघः ।
10. **वाक्** – वक्तीति वाक् ।
11. **उदक्** – उनन्तीति उदकम् ।
12. **नदी** – नदना इमा भवन्ति शब्दवत्यः ।
13. **अश्वः** – अश्नुतेऽध्वानम् महाशनो भवतीति वा ।
14. **अग्निः** – अग्रणी भवति । अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते । अङ्ग नयति सन्नममानः । अक्नोपनो भवतीति ।

15. **जातवेदस्** – जातानि वेदः । जातानि वैनं विदुः । जाते जाते विद्यते इति वा । जातवित्तो वा जातधनः । जातविद्यो वा जातप्रज्ञानः ।

16. **वैश्वानरः** – विश्वान् नरान् नयति । विश्व एनं नरा नयन्तीति वा । अपि वा विश्वानर एव स्यात् ।

17. **निघण्टु** – ते निगन्तव एव सन्तो निगमनान्निघण्टवः उच्यन्त इत्यौपमन्यवः । अपि वाऽऽहननादेव स्युः समाहता भवन्ति । यद्वा समाहता भवन्ति ।

4.6. मन्त्रों के प्रकार

'मन्त्र' का तात्पर्य ऋचाओं से है । जो परोक्ष, प्रत्यक्ष तथा आध्यात्मिक भेद से तीन प्रकार की हैं । आचार्य यास्क के शब्दों में–**"तास्त्रिविधा ऋचः । परोक्षकृताः । प्रत्यक्षकृताः । आध्यात्मिक्यश्च ।"** इन तीनों प्रकार के मन्त्रों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है–

1. **परोक्षकृताः**–इनमें वे ऋचाएं आती हैं, जो परोक्ष रूप से किसी अर्थ का प्रकाशन करती हैं । ये मन्त्र सम्पूर्ण नाम विभक्तियों तथा तिङन्त के प्रथम पुरुष से युक्त होती हैं–**"तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नामविभक्तिभिर्युज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य ।"** क्रमशः प्रत्येक विभक्ति का उदाहरण निम्नलिखित है–

प्रथमा – "इन्द्रो दिवः इन्द्र ईशे पृथिव्याः" (ऋ. 10/89/10)

द्वितीया – "इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत् ।" (ऋ. 1/7/1)

तृतीया – "इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणः ।" (ऋ. 7/18/15)

चतुर्थी – "इन्द्राय साम गायत ।" (ऋ. 8/98/1)

पञ्चमी – "नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन ।" (ऋ. 9/69/6)

षष्ठी – "इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम् ।" (ऋ. 1/32/1)

सप्तमी – "इन्द्रे कामा असंयत ।"

2. **प्रत्यक्षकृताः**–ये ऋचाएं प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध अर्थ को प्रकाशित करती हैं । प्रत्यक्षकृत मन्त्र मध्यम पुरुष तथा 'त्वम्' इस सर्वनाम से युक्त रहते हैं । उदाहरणतया–हे इन्द्र ! तू बल से पैदा हुआ है । यास्क के शब्दों में–**"अथ प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगाः । त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना । 'त्वमिन्द्र बलादधि' (ऋ. 10/153/2)"** ज्ञातव्य है कि–कहीं-कहीं स्तोता प्रत्यक्षकृत होते हैं और स्तुत्यर्ह देवता परोक्षकृत होते हैं–**"अथापि प्रत्यक्षकृताः स्तोतारो भवन्ति । परोक्षकृतानि स्तोतव्यानि ।"** यथा– **"मा चिदन्यद्विशंसत" (ऋ. 8/1/1) "कण्वा अभि प्रगायत" (ऋ. 1/37/1)**

3. **आध्यात्मिक्यः**–ये मन्त्र अध्यात्म (आत्मा-परमात्मा) सम्बन्धी अर्थों का प्रकाशन करते हैं । जहाँ तक इनके लक्षण का प्रश्न है–जिन मन्त्रों या ऋचाओं का उत्तमपुरुष से सम्बन्ध है और 'अहम्' इस सर्वनाम से युक्त हैं, वे आध्यात्मिक्य ऋचाएं कहलाती हैं–**"अथाध्यात्मिक्य उत्तमपुरुषयोगाः । अहमिति चैतेनसर्वनाम्ना ।"** उदाहरणतया–**'यथैतदिन्द्रो वैकुण्ठः । लव सूक्तम् । वागाम्भृणीयमिति ।'** अर्थात्–इन्द्रवैकुण्ठ, लव तथा वागाम्भृणीय ये तीनों सूक्त आध्यात्मिक हैं । क्रमशः इनका उदाहरण निम्नलिखित है–

इन्द्र-वैकुण्ठ-सूक्त – "अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः ।"

लव-सूक्त – "इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।"

वागाम्भृणीय सूक्त – "अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि ।"

ध्यातव्य है कि प्रत्यक्षकृत और परोक्षकृत मन्त्र बहुत हैं, परन्तु आध्यात्मिक्य कम हैं ।

4.7. देवताओं का स्वरूप

निरुक्तकार यास्क ने देव-स्वरूप-निरूपण-क्रम में कुल चार मतों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित हैं–

1. इस मत के समर्थकों का कहना है कि–देवता 'पुरुषविध' हैं अर्थात्–उनकी आकृति मनुष्य जैसी है–**"पुरुषविधाः स्युरित्येकम् ।"** अपने मत की पुष्टि में कारण प्रदर्शित करते हुए कहते हैं–**"चेतनावद्वद्धि स्तुतयो भवन्ति ।"** अर्थात् देवताओं की स्तुतियाँ चेतनावालों (मनुष्यों) की तरह की गई है तथा इनके परस्पर अभिधान या वाद-विवाद भी मनुष्यों के सदृश ही प्रस्तुत किए गए हैं–**"तथाभिधानानि ।"** इसके अतिरिक्त-सवसे बड़ा प्रमाण यह है कि–मनुष्य सम्वन्धी द्रव्यों तथा कर्मों से देवताओं की स्तुति की गई है–**"अथापि पौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः ।"** यथा–**"आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि" (ऋ. 2/18/4) "अथापि पौरुषविधिकैः कर्मभिः ।"** यथा–**"अद्धीन्द्र पिव च प्रस्थितस्य" (ऋ. 10/116/7).**

2. इस मत के अनुसार–देवताओं की आकृति मनुष्य जैसी नहीं हो सकती–**"अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम् ।"** क्योंकि-प्रत्यक्षतः देखा जाता है कि–अग्नि, वायु, सूर्य, पृथिवी और चन्द्र सभी अपुरुष (जड़) सदृश हैं–**"अपि तु यद् दृश्यतेऽपुरुषविधं तत् । यथाग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति ।"** पूर्वपक्षी का यह कहना उचित नहीं है कि पुरुष सदृश अंगों से इनकी स्तुति की गई है, ऐसा व्यवहार तो अचेतनों के साथ भी किया गया है–**"यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्ते इत्यचेतनेष्वप्येतत् भवति ।"** यथा–**'अभिक्रन्दंति हरितेभिरासभिः ।' (ऋ. 10/94/2) इतिग्रावस्तुतिः ।** इसी प्रकार मनुष्य सम्वन्धी द्रव्यों तथा कर्मों के भी विषय में समझना चाहिए–**"यथो एतत्पौरुषविधिकैः द्रव्यसंयोगैरित्येतदपि तादृशमेव–'सुखं रथं युयुजे सिंधुरश्विनम्' । (ऋ. 10/75/9) इति नदी स्तुतिः ।"** अतः वस्तुतः देवता जड़ ही हैं ।

3. तृतीय मत को उपस्थापित करते हुए यास्क जी लिखते हैं–**"अपि वोभयविधाः स्युः ।"** अर्थात्–देवता जड़ तथा चेतन दोनों ही प्रकार के (उभयविध) हैं तथा दोनों ही स्वतन्त्र हैं–**'उभयत्र प्रामाण्यात् । पुरुषविधाश्च अपुरुषविधाश्चेत्यर्थः ।'**

4. इस मत में निरुक्तकार निष्कर्षभूत अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखता है–**"अपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युः । यथा यज्ञो यजमानस्य । एष चाख्यान समयः ।"** अर्थात्–चिद् अचिद् दोनों ही प्रकार के देवता हैं । उनमें अचेतन देवता कर्मस्वरूप हैं जो चेतन (पुरुषविध) देवताओं के अधीन हैं । अर्थात्–पुरुषविध देवता स्वतन्त्र हैं, जबकि अपुरुषविध (अचेतन) देवता परतन्त्र हैं । उदाहरणतया–'यज्ञ' यद्यपि किन्हीं मन्त्रों का देवता है, परन्तु वह यजमान के अधीन है । यही बात महाभारत इत्यादि विभिन्न आख्यानों से भी सिद्ध है । इसी मत को 'कर्मार्थात्मोभयविध' कहा गया है ।

4.8. देवताओं की संख्या

देवताओं की संख्या को निरूपित करते हुए निरुक्तकार ने कुल तीन मतों को उपस्थापित किया है, जिनका संक्षिप्त विवेचन यहाँ पर दिया जा रहा है–

1. **त्रित्ववाद**–यह मत नैरुक्तों का है । इनका कहना है कि–कुल तीन ही देवता हैं–इनमें पहला 'अग्नि' पृथ्वीस्थानीय है, दूसरा 'वायु अथवा इन्द्र' अन्तरिक्षस्थानीय तथा तीसरा 'सूर्य' द्युस्थानीय देवता है–**"तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः । अग्निः पृथ्वीस्थानः वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः ।"** परमऐश्वर्यशाली होने के कारण ये ही देवता बहुत से नामों से पुकारे जाते हैं–**"तासां महाभाग्याद् एकैकस्यापि बहूनि नामधेयानि भवन्ति ।"**

2. **एकत्ववाद**–इस मत के समर्थकों का कहना है कि–जैसे एक ही ऋत्विक् कार्यभेद से कभी होता, कभी अध्वर्यु, कभी उद्गाता तथा कभी ब्रह्मा इन विभिन्न नामों से जाना जाता है, वैसे ही-एक ही देवता कार्यभेद से विभिन्न नामों से जाना जाता है–**"अपि वा कर्मपृथक्त्वात् । यथा होताध्वर्युर्ब्रह्मोद्गातेत्यप्येकस्य सतः ।"**

3. **बहुत्ववाद**–इस मत के समर्थक याज्ञिकों का कहना है कि–एक ही देवता के पृथक्-पृथक् नाम नहीं होते, अपितु पृथक्-पृथक् कार्यों से सम्वद्ध देवता भी पृथक्-पृथक् ही हैं । अतः, देवताओं की संख्या वहुत अधिक है तथा बहुत से नाम भी हैं–**"अपि वा पृथगेव स्युः । पृथग्विध स्तुतयो भवन्ति । तथा अभिधानानि ।"** लोकव्यवहार से भी सिद्ध है कि–बहुत से मनुष्य कार्यों को बाँट कर करते हैं, परन्तु उनके नाम वही रहते हैं, कार्य के अनुसार बदल नहीं जाते–**"यतो एतत्कर्मपृथक्त्वादिति बहवोऽपि विभज्य कर्माणि कुर्युः ।"**

समन्वय–उपर्युक्त तीनों मतों से समन्वय स्थापित करते हुए अर्थात् एकत्व-त्रित्व-वहुत्ववाद की समानार्थता सिद्ध करते हुए यास्क जी अपना मत प्रस्तुत करते हैं कि सभी देवताओं की समान स्थान तथा समान भोग से एकता समझनी चाहिए । जैसे–पृथ्वी पर मनुष्य, पशु इत्यादि सभी भिन्न-भिन्न होते हुए भी स्थान की दृष्टि से समान हैं–**"तत्र संस्थानैकत्वं सम्भोगैकत्वं च उपेक्षितव्यम् । यथा पृथिव्यां मनुष्याः पशवो देवा इति स्थानैकत्वम् । सम्भोगैकत्वं च दृश्यते–यथा पृथिव्याः पर्जन्येन च वाय्वादित्याभ्यां च सम्भोगः । अग्निना चेतरस्य लोकस्य ।"** जिस प्रकार एक राष्ट्र में (भारत में) रहने वाले सभी (भिन्न-भिन्न) मनुष्य एक (भारतीय) हैं, उसी प्रकार 'ब्रह्मराष्ट्र' की दृष्टि से सभी देवता एक हैं । उसी परमात्मदेव की भिन्न-भिन्न विभूतियों को लेकर भिन्न-भिन्न देवताओं की कल्पना की गई है, इनकी संख्या 33 के आस-पास वताई गई है । इस प्रकार उपर्युक्त तीनों मतों में कोई विरोध नहीं है–**"तत्रैतन्नरराष्ट्रमिव ।"**

5. वैदिक-व्याख्या की प्रमुख विशेषताएँ

1. **यास्क**–निरुक्तकार 'यास्क' के मत में प्राचीन काल में मानव-मस्तिष्क, जितना उर्वर व विकसित रहा है, उतना परवर्ती काल में नहीं रहा है । अतः, वेद जैसे गूढ़ विषयों का अर्थबोध परवर्ती लोगों के लिए क्रमशः क्लिष्टतर होता गया । इसी अर्थबोध को ध्यान में रखते हुए 'यास्क' ने 'निरुक्तम्' की रचना की । यास्क ने पूर्वपक्षी 'कौत्साचार्य' के मत–**'अनर्थका हि मन्त्राः'** का वहुत ही तार्किक खण्डन करके अपना सिद्धान्तपक्ष प्रस्तुत किया है । यास्क ने लगभग 600 ऋचाओं का अर्थ सुस्पष्ट किया है ।

2. **सायण**–आचार्य सायण विजय नगर के संस्थापक महाराज बुक्क तथा महाराज हरिहर के आमात्य व सेनानी थे । इनका समय 14वीं शदी उत्तरार्द्ध माना जाता है ।

सायणाचार्य कृत वैदिक भाष्य 'माधवीय' नाम से जाना जाता है, जो अब तक उपलब्ध समग्र वैदिक-भाष्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है । आचार्य सायण ने अनेक विद्वानों की सहायता से तथा अपनी अद्वितीय प्रतिभा से चारों वेदों पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण व प्रामाणिक भाष्य लिखा । वैदिक सम्प्रदाय के सच्चे ज्ञाता होने के कारण 'सायण' कृत वेदभाष्य वास्तव में वेदार्थ की कुञ्जी है । इन्होंने क्रमशः तैत्तिरीय संहिता, ऋग्वैदिक शाकल संहिता, सामवेद संहिता, काण्व संहिता तथा अथर्ववेद की शौनक संहिता पर अपना भाष्य लिखा । इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक ब्राह्मणों तथा आरण्यकों पर भी अपने भाष्य लिखे ।

सायणकृत वेद भाष्य–अपने में सम्पूर्ण तथा सर्वथा विश्वसनीय हैं । श्रुतियों, ब्राह्मणों तथा वेदाङ्गों के प्रचुर उद्धरणों ने उन्हें और भी प्रामाणिकता तथा गौरव प्रदान किया है । प्राची और प्रतीची के सभी वैदिक विद्वानों के निष्कर्ष भले ही भिन्न हों, किन्तु सभी का आधार सायण-भाष्य ही है । आचार्य सायण का दृष्टिकोण 'यज्ञ-परक' है । भाष्यों में स्वर और व्याकरण-प्रक्रिया पर भी विचार किया गया है । 'यद्वा' कहकर दूसरे पक्षों को भी उपस्थापित किया गया है । इस प्रकार वेदों के दुरूह अर्थों के ज्ञान के लिए सायणभाष्य का ज्ञान अत्यन्त उपादेय है ।

3. **दयानन्द सरस्वती**–वेदों के आधार पर हिन्दू समाज के पुनर्गठन के लिए प्रयत्नशील महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य-समाज के प्रवर्तन के साथ ही वेद मन्त्रों की व्याख्या-पद्धति को एक नया दृष्टिकोण भी दिया । इन्होंने सर्वप्रथम शुक्ल-यजुर्वेद पर अपने भाष्य लिखे, तदन्तर ऋग्वेद पर अपना भाष्य प्रारम्भ किया, जो सातवें मण्डल तक ही हो पाया था कि स्वामी जी का असामयिक निधन हो गया ।

महर्षि दयानन्द ने–अग्नि, मरुत्, विष्णु, इन्द्र इत्यादि देवों की पृथक् सत्ता को अस्वीकार करते हुए उन्हें परमात्मा की विभिन्न शक्तियों के रूप में स्वीकार किया है । इस सन्दर्भ में उन्होंने देवविषयक ऐतिहासिक या आख्यानात्मक तथ्यों का अर्थ भी बदल दिया है । उनकी दृष्टि में वेद ईश्वरकृत तथा ईश्वरीय ज्ञान की निधि हैं । अतः, वेद सभी सत्य-विद्याओं के मूल हैं ।

वेद-व्याख्या के सन्दर्भ में सरस्वती जी ने यास्क कृत 'निरुक्तम्' तथा पाणिनीय 'अष्टाध्यायी' को ही मूल आधार माना है । यास्क की ही भाँति ये भी आख्यातवाद तथा धात्वर्थवाद में विश्वास करते थे । शब्दों को यौगिक तथा योगरूढ़ि तो मानते थे, परन्तु केवल रूढ़ि मानने को तैयार नहीं थे । किसी भी मन्त्र का भाष्य करते समय, सर्वप्रथम वे पदच्छेद करते हैं, तदन्तर अन्वय, पदार्थ करते हुए भावार्थ प्रस्तुत करते हैं । देवताओं के आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनों ही स्वरूपों का सम्यक् उद्घाटन करने के प्रयास किए हैं । जहाँ तक दार्शनिक-दृष्टि का प्रश्न है, ये एकेश्वरवाद तथा त्रित्ववाद में विश्वास रखते थे ।

महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य पर कुछ आक्षेप भी किए जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(1) महर्षि दयानन्द ने व्याकरण की प्रक्रिया का प्रयोग प्रकरण पर ध्यान दिए बिना ही स्वेच्छापूर्वक किया है ।

(2) एक ही मन्त्र की भिन्न-भिन्न स्थलों पर भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ दी गई हैं ।

(3) स्वरप्रक्रिया का ध्यान नहीं रखा गया है ।

(4) भाष्य में स्वाभाविकता की कमी तथा खींचतान की अधिकता है ।

4. **अरबिन्दो**–वर्तमान काल के मूर्द्धन्य तत्त्वचिन्तक श्री अरविन्द ने अपने युग की बौद्धिक अपेक्षाओं के अनुरूप वेदमन्त्रों को आध्यात्मिक-गरिमा से मण्डित रहस्यवादी तथा प्रतीकात्मक अर्थ देने की चेष्टा की है । उनका कथन है–"मैंने यह देखा कि वेद के मन्त्र एक स्पष्ट और ठीक प्रकाश के साथ मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को प्रकाशित करते हैं ।"

श्री अरविन्द के अनुसार–वेदमन्त्रों में एक उच्चतर, महान्, व्यापक, शाश्वत तथा अपौरुषेय सत्य निहित है । ये दिव्य स्फुरण तथा दिव्यस्रोत से प्रकट हुए हैं । इन प्रतीकों पर एक आवरण चढ़ा हुआ है । ऋषिगण आध्यात्मिक तथा गुह्यज्ञान से युक्त थे, जिस तक साधारण मानव की गति नहीं हो सकती । केवल व्याकरण, व्युत्पत्ति या अटकलों से वेदमन्त्रों का गूढ़ अर्थ नहीं जाना जा सकता । वस्तुतः वैदिक मन्त्र केवल उसी के द्वारा जाने जा सकते हैं, जो स्वयं ऋषि या रहस्यवेत्ता योगी हो, क्योंकि वेद का अर्थ योग तथा तपस्या के द्वारा विधूत तथा पवित्रित हृदय में ही स्फुरित होता है । अतः वेद सिद्धों की वाणी है, जो अन्तर्जगत् के आध्यात्मिक तथ्यों का ही निरूपक है । ऐसा श्री अरबिन्द जी का मानना था ।

देवताओं के विषय में अरबिन्द जी का विचार है कि–वैदिक देवता, विश्वव्यापी देवताओं के नाम, शक्तियाँ तथा व्यक्तित्व हैं । वे दिव्यसत्ता के किसी विशेष सारभूत बल का प्रतिनिधित्व करते हैं । विश्व के रूप में उन्हीं की अभिव्यक्ति हुई है, तथा उन्होंने ही विश्व को अभिव्यक्त किया है ।

5. **प्रो. रडल्फ रॉथ**–प्रो. युजीन वरनफ के शिष्य प्रो. रॉथ पाश्चात्य विद्वानों में वेदाध्ययन की ऐतिहासिक पद्धति के प्रवर्तक माने जाते हैं । इन्होंने सायण आदि भारतीय भाष्यकारों का बहिष्कार कर वेद-व्याख्या की दृष्टि से तुलनात्मक भाषाविज्ञान तथा तुलनात्मक पुराकथाविज्ञान को प्रमुखता

दी । सन् 1846 में इन्होंने **'वैदिक साहित्य तथा इतिहास'** नामक एक पुस्तिका लिखकर इस दिशा में लोगों का ध्यान आकर्षित किया । इनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य **'सेन्टपीटर्सवर्ग संस्कृत-जर्मन महाकोश'** का सम्पादन है, जिसे-पाश्चात्य देशों में नया निरुक्त ही समझा जाता है । इस प्रकार प्रो. रॉथ ऐतिहासिक उद्भावक के रूप में विख्यात हैं । इनकी पद्धति दोषपूर्ण होते हुए भी अर्थज्ञान के लिए विशेष महत्त्व की है । आगे चलकर सन् 1857 में प्रो. रॉथ ने प्रो. विलियम ड्वाइट ह्विटनी की सहायता से अथर्ववेद शौनकीया शाखा का सम्पादन कर प्रकाशित कराया ।

6. **प्रो. एच. एच. विलसन**–ऋग्वेद के प्रथम आंग्ल-अनुवाद का श्रेय प्रो. विलसन को प्राप्त है । चिकित्सा विज्ञान की उच्च शिक्षा पाने के पश्चात् प्रो. विलसन 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की टकसाल में जाँच अधिकारी बनकर आए थे । यहीं उन्होंने 'सायणभाष्य' के आधार पर ऋग्वेद का अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया, जो इंगलैण्ड में पूरा हुआ । इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1850 ई. में हुआ ।

7. **प्रो. गेल्डनर**–गेल्डनर महोदय ने लगभग 70 सूक्तों का अनुवाद केगी (Kaegi) के साथ प्रकाशित कराया । इसके अतिरिक्त वैदिक शब्दों का अर्थ तथा इतिहास पर भी इन्होंने 'पिशेल' के साथ कार्य किया है ।

8. **डॉ. मैक्समूलर**–प्रो. युजीन वरनफ के महान् शिष्य डा. मैक्समूलर भी रॉथ की परम्परानुसार तुलनात्मक ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर वैदिक-देवता-विज्ञान का प्रणयन किया । इसके अतिरिक्त सन् 1844 में हितोपदेश का जर्मन अनुवाद तथा 'पवित्र प्राच्य ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत वैदिक ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित कराया । अपने गुरु बनरफ की प्रेरणा से डा. मैक्समूलर ने सन् 1849 से 1875 तक कठिन परिश्रम करके ऋग्वेद का सायणभाष्य सहित प्रकाशन कार्य पूरा किया । इसके अतिरिक्त 'प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास' तथा 'भारत से हम क्या सीखें' ? नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया ।

9. **ओल्डेनवर्ग**–वैदिक ग्रन्थों के अनुवादकों में 'ओल्डेनवर्ग' का अपना विशिष्ट स्थान है । इस जर्मन विद्वान् ने ऋग्वेद के ऊपर अत्यन्त मार्मिक तथा विवेचना पूर्ण व्याख्या की है, जो दो भागों में 1909-1912 ई. में बर्लिन से प्रकाशित हुआ । इस ग्रन्थ में ओल्डेनवर्ग ने प्रत्येक सूक्त में अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के व्याख्यान का निर्देश करते हुए अपनी विशद विवेचना प्रस्तुत की है, जो ऋग्वेद का बहुत उत्कृष्ट भाष्य माना जाता है । इसके अतिरिक्त इन्होंने ऋग्वैदिक छन्द आदि के विषय में भी कार्य किया है ।

10. **ग्रासमैन**–प्रो. रडल्फ रॉथ के शिष्य ग्रासमैन ने प्रो. रॉथ की पद्धति के अनुसार–शर्मण्यदेशीय भाषा में ऋग्वेद का दो भागों में पद्यानुवाद किया, जिसके प्रकाशन का कार्य 1876-77 में पूरा हुआ । इस अनुवाद का आधार तुलनात्मक भाषाविज्ञान ही है । भाषाविज्ञान के क्षेत्र में इनका 'ध्वनि-परिवर्तन' का नियम विश्वप्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त इन्होंने 'वैदिक-कोश' का प्रणयन किया, जिसका प्रकाशन कार्य 1873-1875 के बीच पूरा हुआ । यह ग्रन्थ मुख्यतः ऋग्वैदिक-कोश है ।

6. वैदिक-व्याकरण (स्वर-प्रक्रिया)

उदात्तादि स्वरों की सत्ता वैदिक भाषा की विशेषता है । प्रत्येक अक्षर का उच्चारण किसी न किसी स्वर के साथ होता है । अब तक उपलब्ध सभी संहिता ग्रन्थों में स्वर के चिह्न लगे हुए हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में आरण्यक-सहित तैत्तिरीय ब्राह्मण में तथा बृहदारण्यक सहित शतपथ ब्राह्मण में स्वर लगे हुए हैं । अन्य ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों में स्वरों के चिह्न नहीं मिलते ।

अक्षरों के उच्चारण में दो प्रकार के स्वर लगाए जाते हैं–एक होता है, स्वर का आरोह (Rising-tone) तथा दूसरा होता है, स्वर का अवरोह (Fallingtone) । इनकी एक मिश्रित दशा भी उस समय देखी जाती है, जब उच्चारणकर्ता उच्च स्वर से निम्न स्वर की ओर उतरता है (आरोह

से एकदम अवरोह की ओर आना चाहता है), परन्तु एकदम नीचे उतरना सम्भव न होने से, बीच में ही वह टिकता है–इसे ही आधुनिक ध्वनि-वैज्ञानिकों ने 'Rising-falling-tone' कहा है। वैदिक परम्परा में इन्हीं स्वरों को क्रमशः उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित नाम से पुकारा जाता है। इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है–

1. उदात्त –"उच्चैरुदात्तः" **(अष्टाध्यायी/1/2/29) (वाजस. प्राति. /1/108)** अर्थात्–जिस स्वर के उच्चारण में गात्रों की शक्ति का आरोह होता है, अर्थात्–गात्र ऊपर खिंच जाते हैं–उसे उदात्त कहते हैं–**"आयामेन ऊर्ध्वगमनेन गात्राणां यः स्वरो निष्पद्यते स उदात्तसंज्ञो भवति" (शु. यजु. प्राति. 1/109)**। ऋग्वेद में उदात्त स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगाया जाता। उदात्त स्वर से सम्बद्ध कुछ स्मरणीय तथ्य निम्नलिखित हैं–

1. वहुव्रीहि में प्रथम पद उदात्त होता है।
2. सामान्य तत्पुरुष में अन्तिम पद उदात्त होता है।
3. द्वन्द्व समास के उत्तरपद पर उदात्त होता है।
4. जिन द्वन्द्व समासों में देवताओं के नाम होते हैं तथा दोनों द्विवचनान्त होते हैं, तो दोनों पदों पर उदात्त होता है।
5. यदि क्रिया, वाक्य या पाद के प्रारम्भ में आए तो उस पर उदात्त होता है।
6. सम्वोधन के तुरन्त वाद क्रिया आए तो उस पर भी उदात्त होता है।
7. मुख्य वाक्य में उपसर्ग उदात्तयुक्त होते हैं।
8. दो उपसर्ग हों तो दोनों स्वतन्त्र और उदात्तयुक्त होते हैं।
9. उदात्त के साथ उदात्त की सन्धि होने पर उदात्त ही होता है–उ + उ = उ।
10. अनुदात्त के साथ उदात्त की सन्धि होने पर उदात्त होता है–अ + उ = उ।
11. स्वरित के साथ उदात्त की सन्धि होने पर उदात्त होता है–स्व + उ = उ।
12. कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः प्रत्येक पद में एक उदात्त स्वर होता है।

2. **अनुदात्त–"नीचैरनुदात्तः।" (पा. अ. 1/2/30 & वाजस. प्रा. 1/109)** अर्थात् जिस स्वर के उच्चारण में गात्रशक्ति की शिथिलता (अधोगमन) पाया जाए, वह अनुदात्त कहलाता है। ऋग्वैदिक पद्धति में अनुदात्त को आड़ी रेखा (—) से अंकित किया जाता है।

3. **स्वरित–"समाहार स्वरितः।" (पा. अ. 1/2/30), (वा. प्रा. 1/109),** अर्थात्–जिस स्वर के उच्चारण के समय पहले गात्रों का आरोह हो, तदनन्तर अनुदात्तस्वर के कारण गात्रों का अवरोह होता है, वहाँ पर दोनों प्रयत्नों का मिश्रित स्वर 'स्वरित' कहलाता है। शुक्ल. प्राति. में इसी को–**'उभयवान स्वरितः' (1/110)** कहा गया है। प्रातिशाख्य ग्रन्थों में स्वरित के 5 प्रकारों का वर्णन मिलता है, जिन्हें सामान्य-स्वरित, जात्यस्वरित, अभिनिहितस्वरित, प्रश्लिष्ट-स्वरित तथा क्षैप्रस्वरित के नाम से जाना जाता है। ध्यातव्य है कि–उदात्त के वाद आने वाला अनुदात्त नियमतः स्वरित हो जाता है, यदि उसके वाद कोई उदात्त या स्वरित न हो। ऋग्वैदिक पद्धति में स्वरित को व्यक्त करने के लिए स्वरित स्वर के ऊपर खड़ी पाई (।) लगाई जाती है।

4. **कम्प**–जात्य, क्षैप्र, प्रश्लिष्ट तथा अभिनिहित स्वरित के वाद, जव कोई उदात्त स्वर आता है, तो वह 'कम्प' कहा जाता है। यदि जात्यस्वरित ह्रस्व हो तो कम्प को स्वरित तथा अनुदात्तयुक्त एक (1) के अङ्क से व्यक्त करते हैं तथा यदि जात्यस्वरित दीर्घ हो तो कम्प को स्वरित तथा अनुदात्त युक्त ३ के अङ्क से निर्दिष्ट करते हैं। **उदाहरणतया**–ह्रस्व → **अप्स्व १न्तः**; दीर्घ → **वध्याँ ३अह**।

5. **प्रचय**–स्वरित के वाद आने वाले विना चिह्न के वर्ण 'प्रचय' कहलाते हैं। स्वरित के वाद कई वर्ण प्रचय हो सकते हैं। स्वरित के वाद आने वाले अनुदात्त प्रचित हो जाते हैं–**"स्वरितादनुदात्तानां परेषां प्रचयः स्वरः" (ऋ. प्रा. 3/19)** आचार्य पाणिनि के अनुसार प्रचय

(प्रचित) का नाम 'एकश्रुति' है । काशिकार के अनुसार–जहाँ उदात्त आदि स्वरों में अभेद हो उसे एकश्रुति कहते हैं–**'स्वराणामुदात्तादीनामविभागोऽभेदस्तिरोधानमेकश्रुतिः' (1/2/33)** । महर्षि आश्वलायन–उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के अत्यन्त सामीप्य को एकश्रुति कहते हैं–**''उदात्तानुदात्तस्वरितानां परः सन्निकर्ष ऐकश्रुत्यम्'' (आ. श्रौ. 1/2)** ध्यातव्य है कि–वाक्य के अन्त में जव स्वरित के वाद कई प्रचय (एकश्रुति) रहते हैं, तो उन्हें विना चिह्न के छोड़ देते हैं और अन्त के अनुदात्त को भी चिह्नित नहीं करते हैं ।

7. वैदिक तथा लौकिक–संस्कृत में विभिन्नता

(रूपव्यवस्था से सम्बन्धित-क्त्वार्थ, तुमर्थ तथा लेट्-लकार)

1. शब्दरूपों की दृष्टि से आकारान्त पुल्लिंग शब्दों का रूप वैदिक भाषा प्रथमा विभक्ति वहुवचन में 'अस्' तथा 'असस्' दोनों प्रत्ययों में से किसी के भी लगने से वन सकता है, जैसे–देवाः तथा देवासः । जवकि लौकिक संस्कृत में केवल 'अस्' प्रत्यय ही लगता है ।

2. तृतीया वहुवचन में वैदिकभाषा में अकारान्त शब्दों के रूप दो प्रकार के हैं–**'देवेभिः'** तथा **'देवैः'** परन्तु लौकिक संस्कृत में केवल अन्तिम (दूसरा) रूप ही स्वीकृत है ।

3. ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का तृतीया एकवचन 'ई' लगकर भी वन जाता है–**'सुष्टुती'** जवकि लौकिक भाषा में ऐसा सम्भव नहीं है ।

4. वैदिक संस्कृत में अनेक स्थानों पर सप्तमी का एकवचन लुप्त हो जाता है–यथा–**'परमे व्योमन्'** परन्तु लौकिक संस्कृत में यह–**'व्योम्नि'** या **'व्योमनि'** ही होता है ।

5. अकारान्त नपुंसकलिङ्गगत शब्दों का वहुवचन 'आ' तथा 'आनि' दोनों प्रत्ययों के योग से सिद्ध हो जाता है–**'विश्वानि अद्‌भुता'**, परन्तु लौकिक संस्कृत में केवल 'आनि' प्रत्यय ही आता है ।

6. वैदिक-भाषा में क्रियापदों की रचना की दृष्टि से उत्तमपुरुष वहुवचन (वर्तमानकाल) में 'मसि' तथा 'मस' दोनों ही प्रत्यय प्राप्त होते हैं, जवकि लौकिक संस्कृत में 'मस' प्रत्यय ही मिलता है ।

7. लोट् लकार मध्यम पुरुष वहुवचन के त, तन, तात तथा थन आदि अनेक प्रत्यय हैं । यथा–**शृणोत, सुनोतन, वृणुतात, यतिष्ठन्** इत्यादि, परन्तु लौकिक संस्कृत में ऐसा नहीं है ।

8. लौकिक संस्कृत में उपसर्ग क्रिया पद के पहले जोड़े जाते हैं, परन्तु वैदिक भाषा में यह नियम अनिवार्य नहीं है, क्रिया पद के वाद भी जोड़े जा सकते हैं–जैसे– **हन्ति नि मुष्टिना'** । यहाँ पर उपसर्गों का प्रयोग वहुत ही स्वतन्त्रतापूर्वक हुआ है ।

9. लौकिक संस्कृत में–'लिए' अर्थ में एकमात्र प्रत्यय 'तुमुन्' है, किन्तु वेद में लिए अर्थ में अनेक प्रत्यय देखे जाते हैं । जैसे–**असे, ए, इ, तु, ति, त्यै, ध्यै, तवै, मन्, वन्, अम्, तोस्** आदि ।

10. आज्ञा तथा सम्भावना अर्थ में वैदिक साहित्य में लेट् लकार (एक विशिष्ट लकार) प्राप्त होता है जैसे–**'तारिषत्'**, **'मंदिषत्'**, **'भवाति'**, **'पताति'** इत्यादि; परन्तु लौकिक संस्कृत में यह लकार नहीं मिलता है ।

11. लिट् लकार का प्रयोग वैदिक भाषा में वर्तमान के लिए होता है–**'यः दाधार पृथिवींद्यामुतेमाम्'** परन्तु लौकिर्क संस्कृत में इसका प्रयोग 'परोक्षभूत' में होता है ।

12. वैदिक भाषा में लुङ्, लङ् और लिट् लकारों का प्रयोग किसी भी लकार के स्थान पर क्रिया जा सकता है–**'छन्दसि लुङ्लङ्लिटः' (अष्टा. 3/4/6)** परन्तु लौकिक संस्कृत में ऐसा नहीं है ।

13. लुङ्, लङ् तथा लृङ् लकार में वैदिक भाषा में धातुओं के पूर्व होने वाला अट् आगम कहीं नहीं होता, जवकि लौकिक संस्कृत में होता है ।

14. वैदिक संस्कृत में सोपसर्गक धातुओं से भी क्त्वा प्रत्यय होता है–**'परिधापयित्वा'** तथा क्त्वा के स्थान पर 'त्वी' तथा 'त्वाय' प्रत्ययों का भी प्रयोग मिलता है–**'भूत्वी'**, **'कृत्वी'**, **'दत्त्वाय'**, **गत्वाय'** इत्यादि; परन्तु लौकिक संस्कृत में ऐसा नहीं है ।

15. चतुर्थी का षष्ठी तथा षष्ठी का चतुर्थी के स्थान पर वैदिक संस्कृत में प्रयोग होता है, लौकिक संस्कृत में नहीं ।

16. वेद में किसी शब्द के किसी विभक्ति के किसी वचन में प्रथमा एकवचन का प्रयोग सम्भव है, जबकि लौकिक संस्कृत में ऐसा नहीं है ।

2 दर्शनशास्त्र (Philosophy)

1. साङ्ख्य (साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी)

(I) प्रमाणत्रय

सांख्यदर्शन में् प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द (आप्त) भेद से कुल तीन प्रमाण स्वीकार किए गए हैं–"**त्रिविधं प्रमाणमिष्टम् ....** ।" इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है–

(क) प्रत्यक्षप्रमाण

साङ्ख्यकारिकाकार श्रीमदीश्वरकृष्ण ने प्रत्यक्ष का लक्षण करते हुए लिखा है–"**प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम् ।**" अर्थात्–'**विषयं विषयं प्रति वर्त्तते, इति प्रतिविषयमिन्द्रियम्, तस्मिन् अध्यवसायः इति प्रतिविषया ध्यवसायः ।**' यहाँ पर अध्यवसाय का तात्पर्य बुद्धिव्यापार या ज्ञान से है–'**अध्यवसायश्च बुद्धिव्यापारो ज्ञानम् ।**' तत्त्वकौमुदीकार श्री मिश्र के अनुसार–उपर्युक्त लक्षण में 'अध्यवसाय' पद के ग्रहण से 'संशय' तथा 'विषय' पद के ग्रहण से असद्विषयक विपर्यय (**विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम्**) का परिहार किया गया है तथा 'प्रति' शब्द के ग्रहण से इन्द्रियार्थ को सूचित कर अनुमान व स्मृत्यादि का निराकरण किया गया है । इस प्रकार–विषयसन्निकृष्ट इन्द्रियों पर आधारित होने वाला निश्चयात्मक ज्ञान ही 'प्रतिविषयाध्यवसाय' है । यही प्रत्यक्ष है । अर्थात्– इन्द्रिय का विषय के साथ सन्निकर्ष होकर, बुद्धिगततमोगुण का अभिभव होने पर, सत्त्वगुण के उद्रेक से जो अध्यवसायात्मक ज्ञान होता है; वही प्रत्यक्ष प्रमाण है, जो इन्द्रियों की सहायता से होने वाला, विषयाकाररूप में परिणमित बुद्धि का धर्म है, इन्द्रियादि का नहीं, क्योंकि–इन्द्रियाँ बुद्धि को विषय-देश तक पहुँचाने में सहायकमात्र हैं । इनकी इस सहायता से बुद्धि, विषयदेश में जाकर विषयाकाररूप में परिणत होकर विषय का प्रकाशन करती है । यथोक्तम्-

"सान्तः करणा बुद्धिः सर्वं विषयमवगाहते यस्मात् ।
तस्मात् त्रिविधं करणं द्वारि द्वाराणि शेषाणि ॥"

इस प्रकार अनुमानादि सजातीय तथा संशयादि विजातीय पदार्थों से लक्ष्य को पृथक् करने के कारण–'प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम् ।' यह लक्षण सर्वथा उचित ही है ।

टिप्पणी–

1. 'बुद्धि तत्त्व' प्राकृत होने से अचेतन है । अतः उसका अध्यवसाय तथा उसके परिणाम सुखादि भी अचेतन हैं, परन्तु बुद्धिगत धर्मों से असम्बद्ध चेतनपुरुष का बुद्धि में प्रतिबिम्ब पड़ने से पुरुष सुखादिवान् तथा बुद्धि व उसका अचेतन अध्यवसाय भी चेतनवत् प्रतीत होता है–

"तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम् । गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्तेव भवत्युदासीनः ॥"

2. सांख्य और न्याय के प्रत्यक्ष में मात्र इतना ही अन्त है कि सांख्य में इन्द्रियों की सहायता से बुद्धि विषयदेश में जाकर विषयाकार रूप में परिणमित होकर विषय का ज्ञान कराती हैं, जबकि

न्यायमत में इन्द्रियाँ स्वयमेव विषयदेश में जाकर विषयाकर रूप में परिणमित होकर विषय को प्रकाशित करती हैं ।

(ख) अनुमान त्रैविध्य

सांख्यकारिकाकार ने अनुमान का सामान्य लक्षण करते हुए लिखा है–"**तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम् ।**" यहाँ पर लिङ्ग का अभिप्राय व्याप्य तथा लिङ्गि का अभिप्राय व्यापक है । जैसे–"**धूमादिर्व्याप्यो वह्न्यादिः व्यापकः ।**" इस प्रकार अनुमान का विशिष्ट लक्षण होगा–'**व्याप्यव्यापकपक्ष-धर्मताज्ञानपूर्वकम् अनुमानम् ।**' अर्थात्–व्याप्य-व्यापक पक्षधर्मता ज्ञानपूर्वक अनुमान होता है । यह अनुमान– 1. शेषवत्, 2. पूर्ववत् तथा 3. सामान्यतोदृष्ट भेद से तीन प्रकार का होता है–"**त्रिविधम् अनुमानम् आख्यातम् ।**"

1. शेषवत् (अवीतानुमान)

'**शिष्यते परिशिष्यते इति शेषः, स एव विषयतया यस्यास्त्यनुमानज्ञानस्य तच्छेषवत् ।**' अर्थात्–जो वच जाए वह शेष है । वह शेष ही जिस अनुमान ज्ञान का विषय हो, वह शेषवदनुमान होता है । जैसे-'शब्द' गुण होने से मन, काल तथा दिक् में नहीं रह सकता । श्रोत्र-ग्राह्य होने से पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आत्मा का विशेष गुण भी नहीं हो सकता । अतः शेष वचे हुए द्रव्य 'आकाश' का ही गुण होगा–"**प्रसक्तप्रतिषेधे अन्यत्राप्रसंगात् शिष्यमाणे सम्प्रत्ययः परिशेषः ।**" ध्यातव्य है कि–यह केवल व्यतिरेकी होता है ।

2. पूर्ववत् (वीतानुमान)

'**पूर्वं प्रसिद्धं दृष्टस्वलक्षणसामान्यम् इति यावत् ।**' अर्थात्–किसी वस्तु का सामान्य रूप; जिसके विशिष्ट रूप का पहले प्रत्यक्ष किया जा चुका हो, जैसे–धूम के द्वारा वह्नित्व इस सामान्य धर्म से युक्त पर्वतस्थ वह्निविशेष का अनुमान किया जाता है । यहाँ वह्नित्व सामान्य का स्वलक्षण 'वह्निविशेष' रसोईघर में पहले ही देखा जा चुका है । मिश्रजी के शब्दों में–'**धूमाद्वह्नित्वसामान्यविशेषः पर्वतेऽनुमीयते ।**'

3. सामान्यतोदृष्ट (वीतानुमान)

'**सामान्यतोदृष्टमदृष्टस्वलक्षणसामान्य विषयम् । यथेन्द्रियविषयकमनुमानम् ।**' अर्थात्–इस अनुमान का विषय; वे सामान्य वस्तुएँ होती हैं, जिनका स्वलक्षण (विशेषरूप) पहले से देखा हुआ नहीं रहता, जैसे–इन्द्रियातीत पदार्थों में किया जाने वाला अनुमान सामान्यतोदृष्ट अनुमान है । जैसाकि–कारिका से स्पष्ट है–"**सामान्यतस्तुदृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात् ।**" अर्थात्– '**सामान्यतोदृष्टादनुमाना-दतीन्द्रियाणाम् प्रतीतिः ।**'

टिप्पणी–सामान्यतः कार्य से कारण का अनुमान 'शेषवत्' । कारण से कार्य का अनुमान 'पूर्ववत्' तथा किसी एक देशस्थ किसी वस्तु को देखकर सभी स्थानों की उस वस्तु का अनुमान लगा लेना सामान्यतोदृष्ट कहा जाता है ।

(ग) शब्द प्रमाण

आप्तपुरुष (यथार्थ-वक्ता) के पद-समूहात्मक वाक्य को 'शब्द प्रमाण' कहते हैं–'**आप्तवाक्यं शब्दः ।**' प्रस्तुत लक्षण में शब्द के अलावा 'आप्त' और 'वाक्य' दो शब्द और जुड़े हुए हैं । इसमें आप्त का अभिप्राय–यथार्थ वक्ता से है–'**आप्तस्तु यथार्थवक्ता**' और 'वाक्य' का अभिप्राय-पदों के समूह से है–'**वाक्यं पदसमूहः ।**' सांख्यकारिकाकार श्रीमदीश्वरकृष्ण ने आप्तवचन या शब्द प्रमाण को परिभाषित करते हुए लिखा है–"**श्रुतिराप्तवचनन्तु**" अर्थात्–श्रुति वाक्य (सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय) आप्तवचन के अन्तर्गत आते हैं । चूँकि आप्तवचन ही शब्द प्रमाण है, अतः श्रुतिवाक्यों को शब्द प्रमाण समझा जाता है । इसके अतिरिक्त कपिल, व्यास इत्यादि जितने महर्षि आप्तपुरुष हैं, उनकी वाणी भी शब्द-प्रमाण के अन्तर्गत आती है ।

(II) गुणों का सिद्धान्त (त्रिगुणों के लक्षण, प्रयोजन एवं क्रिया)

"प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः । अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः ॥
सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः । गुरुवरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः ॥"

इन दो कारिकाओं के आधार पर कौमुदीकार श्री मिश्रजी ने त्रिगुणों का जो विवेचन किया है, वह संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है–

लक्षण (स्वरूप)–सत्त्वगुण का स्वरूप प्रीत्यात्मक, रजोगुण का अप्रीत्यात्मक (दुःखात्मक) तथा तमोगुण का स्वरूप विषादात्मक (मोहात्मक) है; परन्तु ये त्रिगुणों के सामान्य लक्षण हैं, विशिष्ट लक्षण तो–**'सत्त्वं लघु प्रकाशकनिष्टम्' से** उद्धृत है । सत्त्वगुण–लाघव एवं प्रकाश से युक्त होता है । यही सत्त्व अग्नि के ऊर्ध्वज्वलन तथा वायु के तिर्यग्गमन में सहायक होता है । रजोगुण को; अप्रवृत्तिशील-सत्त्वतमादि को स्व-स्व कार्यों में प्रवृत्त कराने के कारण उपष्टम्भक (उत्तेजक) एवं चञ्चल कहा गया है । तमोगुण को, रजोगुण की प्रवृत्ति में प्रतिवन्धक होने के कारण गुरु (भारी) एवं आवरणक कहा गया है–**'गुरुवरणकमेव तमः ।'**

प्रयोजन–"प्रकाश-प्रवृत्ति-नियमार्थाः ।" इस कारिकांश के अनुसार–सत्त्वगुण-प्रकाशार्थ, रजोगुण-प्रवृत्त्यर्थ तथा तमोगुण-नियमार्थ प्रवृत्त होता है । सम्मिलित रूप में ये तीनों गुण वत्ती-तेल-अग्नि समन्वित प्रदीपवत् एक ही पुरुषार्थरूप प्रयोजन को सिद्ध करते हैं–**'प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः ।'**

क्रिया–"अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयः ।" यहाँ पर प्रत्येक पद के साथ अन्वित 'वृत्ति' शब्द क्रियावोधक है–

1. **अन्योन्याभिभववृत्ति**–ये गुण परस्पर अन्य दो को अभिभूत करके अपने-अपने प्रयोजन का सम्पादन करते हैं ।

2. **अन्योन्याश्रयवृत्ति**–परस्पर एक दूसरे का सहारा लेकर, ये त्रिगुण अपने-अपने कार्य का सम्पादन करते हैं । जैसे–प्रवृत्तिहीन-सत्त्वगुण, रजोगुण की प्रेरणा से तथा तमोगुण के नियमन से प्रकाशन का कार्य करता है । इसी प्रकार रजस्; सत्त्व तथा तम की सहायता से प्रवर्तन और सत्त्व तथा रजस् की सहायता से तमोगुण, नियमन का कार्य करता है ।

3. **अन्योन्यजननवृत्ति**–गुणत्रय परस्पर एक दूसरे को उत्पन्न करने वाले हैं । अर्थात् अन्य दो के सहयोग से सदृश-परिणाम उत्पन्न करते हैं ।

4. **अन्योन्यमिथुनवृत्ति**–गुणत्रय परस्पर भिन्न प्रवृत्ति वाले होते हुए भी परस्पर नियत सहचर भाव से (मिथुनवृत्ति से) उसी प्रकार रहते हैं, जैसे-त्रिदण्ड, एक दूसरे के सहारे खड़ा रहता है । अकेले कोई एक नहीं । जिस प्रकार प्रदीपगत–वत्ती, तेल तथा अग्नि सहचर भाव से ही प्रकाशन करते हैं, अलग-अलग नहीं, उसी प्रकार से ये अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्ति वाले गुणत्रय–रूपयौवनकुल-शीलसम्पन्नाप्रमदावत् सुखदुःखादि भिन्न-भिन्न कार्यों को उत्पन्न करते हैं ।

विशेष–इन त्रिगुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है–**'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः ।**

(III) विपर्यय

'विपर्यय' बुद्धि के चतुर्विध-परिणामों में से अन्यतम है । इसी को तत्त्वकौमुदीकार श्री मिश्र जी ने बुद्धि का धर्म बतलाते हुए अविद्या (अज्ञान) पद से सम्बोधित किया है–**'विपर्ययः अज्ञानमविद्या साऽपि बुद्धिधर्मः ।'** यही योग-सूत्रकार पतञ्जलि की अतद्रूपप्रतिष्ठित अविद्या भी है–**विपर्ययोमिथ्या ज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितं ।**

विपर्यय के भेद

योगसम्मत पञ्चक्लेशों (**अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः**) को ही सांख्यमत में क्रमशः तम, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अन्धतामिस्र पद से कहा गया है । जहाँ तक विपर्यय के उपभेदों का प्रश्न है–वह 62 प्रकार के हैं; जो अग्रलिखित कारिका से स्पष्ट है–

"भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः ।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवन्त्यन्धतामिस्रः ॥"

1. **तमस् (अविद्या)**–अव्यक्त, महत्, अहंकार एवं पञ्चतन्मात्रा-इन अनात्मभूत आठ जड़-पदार्थों में जो आत्मवुद्धि देखी जाती है, यही अष्टतमस् (अविद्या) है–

"अष्टस्वव्यक्तमहदहङ्कारपंचतन्मात्रेष्वनात्मस्वात्मबुद्धिरविद्या तमः ।"

2. **मोह (अस्मिता)**–देवगण जो अणिमादिक अष्टसिद्धियों को प्राप्त करके, उन्हें आत्मसम्बद्ध एवं नित्य मानकरके जो अमरत्व का अभिमान करते हैं–**'वयममरणधर्मकाः ।'** यही अष्टमोह (अस्मिता) है–**"देवा ह्यष्टविधमैश्वर्यमासाद्यामृतत्वाभिमानिनोऽणिमादिकं आत्मीयं शाश्वतिकम् अभिमन्यन्ते सेयमस्मिता ।"**

3. **महामोह (राग)**–दिव्यादिव्य भेद से दश रूपों में परिणत पञ्चतन्मात्रस्वरूप रागात्मक विषयों में आसक्ति ही दशविध महामोह (राग) है–**"शब्दादिषु पञ्चसु दिव्यादिव्यतया दशविधेषु विषयेषु राग आसक्तिर्महामोहः ।"** इसी को महर्षि पतञ्जलि ने **"सुखानशयी रागः"** सूत्र से परिभाषित किया है ।

4. **तामिस्र (द्वेष)**–**"तामिस्रः द्वेषः अष्टादशधा"** अर्थात्–क्रोध की विषयीभूत दिव्यादिव्य दशविधतन्मात्राएँ एवं अणिमादिक अष्टसिद्धियाँ ही 18 तामिस्र (द्वेष) हैं । योगसूत्रकार ने इसी को **"दुःखानुशयी द्वेषः"** पद से कहा है ।

5. **अन्धतामिस्र (अभिनिवेश)**–अपने ऐश्वर्य के छिन जाने या अनिष्ट के भय की भावना ही अन्धतामिस्र है । महर्षि पतञ्जलि ने वहुत ही सुन्दर शब्दों में कहा है–**"स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारुढ़ोऽभिनिवेशः ।"** अर्थात्–सभी प्राणियों में जो स्वाभाविक मरणभय की धारा बह रही है, वही 'अभिनिवेश' है । तामिस्रवत् यह भी 18 प्रकार का है–**"तथाभवन्त्यन्धतामिस्रः ।"**

नोट :– अवान्तरभेदों सहित विपर्यय 62 प्रकार का है–**"विपर्ययोऽवान्तरभेदाद् द्वाषष्ठिरिति ।"**

(IV) अपवर्ग

सांख्यदर्शन के अनुसार–दुःखत्रय की ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक निवृत्ति ही अपवर्ग है, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि-मोक्ष आनन्दस्वरूप है । सांख्यमत में पुरुष निर्गुण, निर्विकार चेतनमात्र है । आनन्द तो सत्त्वगुण का फल है । मोक्षावस्था में त्रिगुणों के संस्कारसमेत सर्वथा निवृत्त हो जाने से आनन्दादि सम्भव नहीं है । वस्तुतः पुरुष का बन्ध और मोक्ष तो होता ही नहीं । नाना पुरुषों के आश्रय में रहने वाली वुद्ध्यादिरूपा प्रकृति का ही बन्ध और मोक्ष होता है–

"तस्मान्नबद्ध्यतेऽद्धा न मुच्यते नाऽपि संसरति कश्चित् ।
संसरति बद्ध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ॥" कहने का आशय यह है कि–अपने ही धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अवैराग्य, अनैश्वर्य तथा अज्ञान-इन सात भावों (रूपों) से प्रकृति स्वयं ही अपने को वाँध लेती है, तथा मोक्षावस्था में आठवें भाव 'ज्ञान' के द्वारा पुरुष को अपने वन्धन का ज्ञान कराकर स्वयं को निवृत्त कर लेती है–

"रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः ।
सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण ॥" यही पुरुष का मोक्ष कहा जाता है, जबकि वस्तुतः यह पुरुष का नहीं, अपितु प्रकृति का ही मोक्ष है; क्योंकि गुणमती प्रकृति के संयोग से उदासीन चेतन पुरुष में कर्तृत्त्वभोक्तृत्व की जो प्रतीति थी, वह तो अज्ञानावरण के कारण भ्रममात्र थी–

"तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिवलिङ्गम् ।
गुणकर्तृत्त्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः ॥" परन्तु जब प्रकृति की कृपा से पुरुष एकमात्र अवशिष्ट भाव 'ज्ञान' से प्रकृति का वास्तविक दर्शन कर लेता है, तो प्रकृति नृत्याङ्गनावत् अपने को पुरुष से देख ली गई समझकर स्वयमेव भोगापवर्ग का सम्पादन बन्द कर देती है–**"रङ्गस्य**

दर्शयित्वा. .... ।" ऐसी स्थिति में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होने से धर्माधर्मादि की कारणता नष्ट हो जाने पर भी प्रारब्धकर्मों के अवशिष्ट संस्कारवशात् कुलालचक्रवत् शरीर की स्थिति बनी रहती है–

सम्यग्ज्ञानाधिगमात् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ ।

तिष्ठिति संस्कारवशात् चक्रभ्रमिवद्धृतशरीरः ॥" परन्तु भोगद्वारा प्रारब्धकर्म के क्षय होने के पश्चात् शरीर भी नष्ट हो जाता है । ऐसी स्थिति में प्रकृति के पूर्णतया निवृत्त हो जाने से, चेतनपुरुष को ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक रूप से त्रिविधदुःखों से मुक्ति मिल जाती है । यही अपवर्ग है । कारिकारश्रीमदीश्वरकृष्ण के शब्दों में–

"प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ ।

ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति ॥"

2. योग (योगसूत्र-व्यासभाष्य)

(I) चित्तभूमि

चित्त की स्वाभाविक अवस्थाओं को ही 'चित्तभूमि' के नाम से जाना जाता है । ये क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरुद्ध भेद से पाँच प्रकार की हैं । इनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1. **क्षिप्त**–'क्षिप्त' का अर्थ है–'चञ्चल'; जो रजोगुण का धर्म है–**'क्रियाशीलं रजः ।'** सांख्यमत में–**'उपष्टम्भकं चलं च रजः ।'** अर्थात्–सत्त्व के ह्रास होने से तथा तमस् के साथ रजोगुण के प्रभावी होने से चित्त–अणिमादिक सिद्धियों एवं शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादिक विषयों में आसक्त हो जाता है । चित्त की यही स्थिति 'क्षिप्तचित्तभूमि' के नाम से जानी जाती है–**'क्षिप्तं सदैव तेषु तेषु विषयेषु क्षिप्तमाणमत्यन्तमस्थिरम् ।'** ऐसा चित्त दैत्यों एवं मदोद्भ्रान्त विषयी जनों का होता है ।

2. **मूढ़**–इसमें तमोगुण का प्रावल्य और सत्त्व तथा रजोगुण के दौर्बल्य से मूढ़ चित्त विचारशून्य होता हुआ, किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में–अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य तथा निद्रादि से समन्वित शास्त्रविरुद्धकर्मों से सन्निविष्ट हो जाता है । यथोक्तम्–**'मूढं तु तमः समुद्रेकान्निद्रावृत्तिमत् । मूढं तमसा निद्रादिवृत्तिमत् ।'** यही मूढ़चित्तभूमि है, जो राक्षस, पिशाचादिक में पाई जाती है ।

3. **विक्षिप्त–(वि + क्षिप्त) 'क्षिप्ताद् विशिष्टं विक्षिप्तम् ।'** इस अवस्था में–**'सत्त्वाधिक्येन समादधदपि चित्तं रजोमात्रयान्तरान्तरा विषयान्तरवृत्तिमद् ।'** अर्थात्–सत्त्व के उत्कर्ष तथा रजस् के लेशमात्र रूप में रहने से चित्तः धर्म-ज्ञान-वैराग्य तथा ऐश्वर्यादि से मण्डित होकर धीरे-धीरे कभी-कभी स्थिर होने लगता है । यही विक्षिप्त-चित्तभूमि है । जो देवादि में पाई जाती है ।

4. **एकाग्र**–यह सत्त्वगुणप्रधान अवस्था है । रजोगुण एवं तमोगुण का सत्त्वगुण में अभिभव (अन्तर्भाव) हो जाने से चित्त एकाग्र हो जाता है । 'एकाग्र' का अर्थ ही होता है–'एक है (सत्त्व) अग्र में जिसके ।' यही एकाग्रचित्तभूमि सम्प्रज्ञात-समाधि के नाम से जानी जाती है–**'यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतम् अर्थं प्रद्योतयति, क्षिणोति च क्लेशान्, कर्मबन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखं करोति स सम्प्रज्ञातो योग इत्याख्यायते ।'**

5. **निरुद्ध**–जब चित्तगत सात्विकवृत्ति का भी निरोध हो जाता है, तब पुरुष अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप में अवस्थित होता है । चित्त की यही अवस्था 'निरुद्ध-चित्तभूमि' या निर्बीज (असम्प्रज्ञात) समाधि के नाम से जानी जाती है–**'सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसम्प्रज्ञातः, समाधिः ।' 'स निर्बीजः समाधिः ।' 'न तत्र किञ्चित्सम्प्रज्ञायत इत्यसम्प्रज्ञातः ।'**

(II) चित्तवृत्ति

मनुष्य का चित्त जिन-जिन परिस्थितियों में रहता है, उसी को चित्तवृत्ति कहते हैं । महर्षि पतञ्जलि ने इन असंख्यचित्तवृत्तियों को प्रथमतः क्लिष्टाक्लिष्ट भेद से दो वर्गों में तथा पुनः प्रमाणादि

भेद से पाँच वर्गों में विभक्त किया है–"**वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ।**" "**प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः ।**" इनमें-अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशादि क्लेश-मूलक वृत्तियाँ, जो धर्माधर्म कर्माशय (वासना) की वृद्धि में खेत का कार्य करती हैं, वे क्लिष्ट कही जाती हैं–'**क्लेशहेतुकाः कर्माशयप्रचयक्षेत्रीभूताः क्लिष्टाः ।**' इसके विपरीत जो वृत्तियाँ पुरुष-विवेक-ज्ञान में सहायक सिद्ध होती हैं, वे अक्लिष्ट वृत्तियाँ कही जाती हैं– '**ख्यातिविषया गुणाधिकारविरोधिन्यो अक्लिष्टाः ।**' इनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1. **प्रमाण–"प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।**" अनधिगत, अवाधित अर्थ को विषय करने वाले पुरुष-निष्ट ज्ञान को 'प्रमा' कहते हैं । इस प्रमा का जो असाधारण कारण है, वही 'प्रमाण वृत्ति' कहलाता है । प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम भेद से प्रमाण वृत्तियाँ तीन प्रकार की वतलाई गई हैं ।

2. **विपर्यय–"विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम् ।**" अर्थात्–किसी वस्तु का यथार्थ रूप में स्थित न होने वाला शुक्तिस्थ रजतप्रतीतिवत् मिथ्याज्ञान ही 'विपर्यय-वृत्ति' कहलाता है । सांख्यतत्त्वकौमुदीकार श्री मिश्रजी के शब्दों में–'**विपर्ययः अज्ञानमविद्या सापि बुद्धिधर्मः ।**' ऐसा–'अविद्या' पद से कहा गया है । यह अविद्या पञ्चपर्वा वताई जाती है–'**सेयं पञ्चपर्वा भवत्यविद्या । अविद्याऽस्मिता-रागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः इति ।**'

3. **विकल्प–"शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ।**" अर्थात्–जो वृत्तिज्ञान, वस्तुशून्य शशविषाणवत् पदार्थविषयक होने पर भी शब्दजन्यज्ञान के प्रभाव से प्रतीत होता है, वह 'विकल्पवृत्ति' कहा जाता है । जैसे–'**राहोः शिरः**' या '**पुरुषस्य चैतन्यम्**' । यहाँ पर जो राहु है, वही शिर है तथा जो पुरुष है, वही चैतन्य है–'**स न प्रमाणोपारोही न विपर्ययोपारोही च । वस्तुशून्यत्वेऽपि शब्द-ज्ञानमाहात्म्यनिबन्धनो व्यवहारो दृश्यते । यथा-चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति ।**'

4. **निद्रा–** जाग्रत तथा स्वप्नावस्था के पदार्थों को विषय बनाने वाली सात्त्विक तथा राजस वृत्तियों के आवरणकद्रव्य रूप अज्ञान का आलम्वन करने वाली चित्तवृत्ति ही निद्रा या सुषुप्ति कहलाती है–"**अभाव प्रत्ययालम्बनावृत्तिर्निद्रा ।**" '**सा च सम्प्रबोधे प्रत्यवमर्शात्प्रत्ययविशेषः ।**'

5. **स्मृति–"अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ।**' अर्थात्–अनुभव किए गए विषयों का चित्त में आरोहपूर्वक अनुभवमात्र विषय वाली चित्तवृत्ति विशेष ही स्मृति कहलाती है । यह स्मृति भाविताभावित भेद से दो प्रकार की होती है–'तत्र ग्रहणाकारपूर्वा बुद्धिः, ग्राह्याकारपूर्वा स्मृतिः । सा च द्वयी भावितस्मर्तव्या चाभावितस्मर्तव्या च ।'

नोट–अभ्यास-वैराग्य से इन वृत्तियों का निरोध सम्भव है–"**अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।**"

(III) ईश्वर का स्वरूप

योगदर्शन का मुख्य प्रयोजन, समाधिलाभ को प्राप्त करना है । यह समाधिलाभ ईश्वर-प्रणिधान से होने के कारण ("**समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्**" "**ईश्वरप्रणिधानाद्वा**") योगदर्शन में ईश्वर का स्थान अत्यन्त महत्त्वशाली है । ईश्वर के स्वरूप के विषय में योगसूत्रस्थ–'**प्रधानपुरुष व्यतिरिक्तो कोऽयमीश्वरो नामेति ?**' इस प्रश्न के उत्तर में ईश्वर के स्वरूप का निर्धारक सूत्र–"**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।**" उपलब्ध होता है । इसका अर्थ है–अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन पञ्चक्लेशों (**क्लिशनन्तीति क्लेशाः**) शुभाशुभ कर्मों; तथा इन कर्मों के फलस्वरूप सुख, दुःख, जाति, आयु एवं भोगरूप विपाक (**विपच्यत इति विपाकः**) और उन कर्म-फलविपाकों के वासनारूपी संस्कार (आशय) से सम्पर्क-रहित पुरुष-विशेष ही ईश्वर है । ईश्वर का अर्थ ही होता है '**ईशनशील**' अर्थात्–'**इच्छामात्रेण सकलजगदुद्धरणक्षमः ।**'

कालादि की सीमाओं से अनवच्छिन्न होने के कारण सर्वज्ञ-ईश्वर (**तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्**) को पूर्ववर्ती कपिलादिक गुरुजनों का भी 'गुरु' स्वीकार किया गया है–"**पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्**" । इस परम-पुरुष की दयालुता का वर्णन करते हुए, भाष्यकार महर्षि व्यास जी ने लिखा है–'**तस्यात्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहप्रयोजनम् । ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामि ।**'

ईश्वर का वाचक शब्द 'प्रणव' है–**"तस्य वाचकः प्रणवः ।"** इस प्रणव या 'ॐ' के जप तथा इसके अर्थभूत ईश्वर के ध्यान करने मात्र से योगियों के चित्त में एकाग्रता का सञ्चार होता है । अविद्या क्षीण होती है तथा आत्मा को स्व-स्वरूप का दर्शन होता है । यही कारण है कि जप तथा ध्यान स्वरूप ईश्वर प्राणिधान–(**तज्जपस्तदर्थभावनम्**) को महर्षि पतञ्जलि ने क्रियायोग कहा है–**"तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।"** तथा साथ ही साथ पञ्चनियमों की कोटि में भी रखा है–**"शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।"** परमलक्ष्य समाधि की प्राप्ति में भी ईश्वर प्रणिधान की प्रमुखभूमिका है–**"समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।"** भाष्यकार भगवान् व्यास जी ने–**"ईश्वरप्रणिधानाद्वा"** की विवेचना करते हुए लिखा है–**'प्रणिधानात् भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णाति अभिध्यानमात्रेण । तदभिध्यानात् अपि योगिनः आसन्नतमः समाधिलाभः फलं च भवतीति ।'**

नोट–योगदर्शन में ईश्वर को परमसत्ता के रूप में छब्बीसवाँ तत्त्व स्वीकार किया गया है ।

(IV) योगाङ्ग

महर्षि पतञ्जलि ने–'योग' (निर्बीजसमाधि) रूपी अङ्गी की प्राप्ति में सहायक जो अङ्गभूत हैं, उन्हें यम-नियमादि भेद से आठ भेदों में विभक्त किया है–**"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार-धारणाध्यानसमाधयोष्टावङ्गानि ।"** जो इस प्रकार हैं–

1. यम–"अहिंसा-सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।"

(i) **अहिंसा**– मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है–**'तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा च सर्वभूतानामनभिद्रोहः ।'**

(ii) **सत्य–'सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे'** अर्थात् मन तथा वाणी का यथार्थ होना ही सत्य है ।

(iii) **अस्तेय**–शास्त्रानुकूल द्रव्यादि का ग्रहण अस्तेय है- **'स्तेयं परस्वापहरणम् तदभावोऽस्तेयम् ।'**

(iv) **ब्रह्मचर्य**–गुप्तेन्द्रिय संयम ही ब्रह्मचर्य है–**'ब्रह्मचर्यगुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः ।'**

(v) **अपरिग्रह**–विषयों में दोषदर्शन होने पर उनका परित्याग कर देना ही अपरिग्रह है ।

2. नियम– "शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानिनियमाः ।"

(i) **शौच**– बाह्याभ्यन्तर भेद से यह दो प्रकार का होता है–**'तत्र शौचं मृज्जलादि जनितम् मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम् । आभ्यन्तरम् चित्तमलानामाक्षालनम् ।'**

(ii) **सन्तोष–'सन्तोषः सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा ।'**

(iii) **तप–'तपोद्वन्द्वसहनम् ।'**

(iv) **स्वाध्याय–'स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनम् प्रणवजपो वा ।'**

(v) **ईश्वरप्रणिधान–'ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम् ।'**

3. आसन–"स्थिरसुखमासनम् ।" अर्थात्–जिसमें स्थिरता तथा सुख की प्राप्ति हो, वह आसन है । जैसे–पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, शीर्षासनादि ।

4. प्राणायाम्–"तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।" अर्थात्–आसन-सिद्ध्यनन्तर श्वास-प्रश्वास की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है–**'सत्यासन जये बाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः कौष्ठस्य वायोर्निस्सारणं प्रश्वासः तयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः ।'**

5. प्रत्याहार–"स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्यस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणाम् प्रत्याहारः ।" अर्थात्–इन्द्रियों का अपने-अपने विषय के साथ संयुक्त न होने पर चित्ताकारस्वरूप हो जाना ही प्रत्याहार है । इससे इन्द्रियों का उत्कृष्ट वशीकार होता है–**"ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्"** ।

6. धारणा–"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।" अर्थात्–चित्त को नासिकादि किसी देशविशेष में एकाग्र करना ही धारणा है । यथा–**'नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि, ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाग्रे इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा ।'**

7. ध्यान–"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।" अर्थात्–पूर्वकथित नाभिचक्रादि स्थानों में जो ध्येयाकार चित्तवृत्ति की एकाग्रता है; वही ध्यान है–**'तस्मिन् देशे ध्येयावलम्बनस्य प्रत्ययैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम् ।'**

8. समाधि–"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।" अर्थात् ध्यान ही जब ध्येय स्वरूप का प्रकाशक होते हुए अपने स्वरूप से शून्य जैसा हो जाता है, तब वह समाधि कहलाता है–**'ध्यानमेव ध्येयाकार निर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति, ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते ।'**

विशेष–1. उपर्युक्त समाधि–'निर्बीजसमाधि' (योग) का अङ्ग या सबीज समाधि है ।

2. धारणा, ध्यान, समाधि ये तीनों अन्तरङ्गसाधन हैं । इन तीनों का किसी एक विषय में होना ही संयम कहा जाता है–**"त्रयमेकत्रसंयमः ।"**

यम (योगाङ्ग)–"अहिंसा-सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।" इन पञ्चयमों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

1. **अहिंसा**– किसी भी प्रकार से किसी को कोई कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा है–**'तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः ।'** अहिंसा को ही सभी यम-नियमादि का मूल कहा गया है । अहिंसा की प्रतिष्ठा वाले योगी के सम्पर्क-क्षेत्र के जीव-जन्तु भी वैर-भाव छोड़कर अहिंसक हो जाते हैं–**"अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्संनिधौ वैरत्यागः ।"**

2. **सत्य**–भगवान् व्यास ने लिखा है–**'सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे यथा दृष्टं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति ।'** अर्थात्–जैसा देखा तथा सुना गया हो, वैसा ही मन और वाणी का भी होना 'सत्य' है । यह 'सत्यवचन' वञ्चना अथवा भ्रान्त्युक्त नहीं होना चाहिए–**'स्वबोधसंक्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिबन्ध्या वा भवेदिति ।'** यथोक्तम्–**'तस्माद् परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात् ।'** ऐसे सत्य में दृढ़ स्थिति होने पर योगी की वाणी क्रियाफल का आश्रय बनती है–**"सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।"**

3. **अस्तेय–'स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम् । तत्प्रतिषेधः पुनरस्पृहारूपम् अस्तेयमिति ।'** अर्थात्–शास्त्रानुकूल परतः दानादि ग्रहण करना 'अस्तेय' कहा गया है । अस्तेय की दृढ़ स्थिति में सभी रत्नों की प्राप्ति होती है–**"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।"**

4. **ब्रह्मचर्य–"ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः ।"** अर्थात् गुप्तेन्द्रिय (उपस्थ) के संयम का ही दूसरा नाम 'ब्रह्मचर्य' है । इसकी प्रतिष्ठा से वीर्यलाभ होता है–**"ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।" 'यस्य लाभादप्रतिघाणुणान् उत्कर्षयति सिद्धश्चविनयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थोभवतीति ।'**

5. **अपरिग्रह–"विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसा-दोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहः ।"** अर्थात्–विभिन्न विषयों में-अर्जन, रक्षण, क्षय, आसक्ति तथा हिंसा आदि दोषदर्शन होने पर सम्बद्ध विषयों का परित्याग कर देना ही अपरिग्रह है, जिसकी सिद्धि होने पर-भूत, भविष्य, वर्तमान सभी जन्मों की विशिष्टता का साक्षात्कार होता है–**"अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ।"**

विशेष–उपर्युक्त पाँचों यम सभी देश, काल, जाति तथा व्यक्तियों के लिए अनिवार्यरूप से स्वीकरणीय होने के कारण महाव्रत के नाम से जाने जाते हैं–**"जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ।"**

नियम (योगाङ्ग)–"शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।" इन पञ्च नियमों का संक्षिप्त-परिचय निम्नलिखित है–

1. **शौच**– यह आभ्यन्तर तथा बाह्यभेद से दो प्रकार का होता है–**'तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम् आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालनम् ।'** इस द्विविध शौच का पूर्णतः अनुष्ठान

करते रहने से योगी के मन में अपने अङ्गों के प्रति भी ग्लानि (घृणा) की भावना उत्पन्न हो जाती है । अतः अशुद्धिभयात् योगी दूसरे लोगों को अपना शरीर छूने भी नहीं देता है–**"शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरपसर्गः ।"** भगवान्भाष्यकार के शब्दों में–**'स्वाङ्गे जुगुप्सायां शौचमारभमाणः कायावद्यदर्शी कायानभिष्वङ्गी यतिर्भवति ।'** इस प्रकार शौच से अन्तःकरण की पवित्रता, मन की स्वच्छता, एकाग्रता, इन्द्रियजय तथा आत्मसाक्षात्कार की योग्यता प्राप्त होती है–**"सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ।"**

2. **सन्तोष–"सन्तोषः सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा ।"** अर्थात्–जितने साधनों से शरीर धारण किया जा सकता है, उससे अधिक को ग्रहण करने की इच्छा का अभाव ही सन्तोष है । सन्तोषप्रतिष्ठा में अनुपम सुखानुभूति होती है–**"सन्तोषादनुत्तमं सुखलाभः ।"**

3. **तप–'तपो द्वन्द्वसहनम् । द्वन्द्वश्च जिघत्सापिपासे, शीतोष्णे, स्थानासने, काष्ठमौनाकारमौने च ।'** अर्थात्–भूख, प्यास, शीत, ऊष्णादि द्वन्द्वों को सहना ही तप है–**'व्रतानि चैषां यथायोगं कृच्छ्रचान्द्रायण सान्तापनादीनि ।'** इन व्रतादिकों से तपोनिष्ठिा की सिद्धि होने पर अशुद्धिरूप मलावरण के क्षय से शरीर तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होती है–**"कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।"**

4. **स्वाध्याय–"स्वाध्यायः मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा ।"** अर्थात्–मोक्षोपयोगी गीता, उपनिषदादि ग्रन्थों का अध्ययन अथवा ॐकार जप करना ही स्वाध्याय कहा गया है । इससे अभीष्ट देवता का दर्शन होता है–**"स्वाध्यायादिष्टदेवता–सम्प्रयोगः ।"**

5. **ईश्वरप्रणिधान–"ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन्परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम् ।"** अर्थात्–परमगुरु (परमात्मा) में सभी कर्मों को अर्पित कर देना ही ईश्वरप्रणिधान कहा गया है । इससे सम्प्रज्ञात-समाधि की प्राप्ति होती है–**"समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।"** अर्थात्–ईश्वरार्पित सर्वभावस्य समाधिसिद्धिर्यया सर्वमीप्सितमवितथं जानाति देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च । ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानातीति ।

(V) समाधि

महर्षि पतञ्जलि ने 'समाधि' का प्रयोग–'योग' के पर्याय के रूप में किया है–**'योगः समाधिः ।'** यह योग सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन दो प्रकार का है । सूत्रकार ने 'योग' का लक्षण करते हुए लिखा है–**"योगश्चितवृत्तिनिरोधः ।"** अर्थात्–प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति रूप क्लिष्टाक्लिष्ट चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है । ज्ञातव्य है कि सात्त्विक अक्लिष्ट वृत्तियाँ सम्प्रज्ञातयोग में भी बनी रहती हैं । अतः भाष्यकार व्यासजी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–**'सर्वशब्दाग्रहणात् सम्प्रज्ञातोऽपि योग उच्यते ।'** अर्थात्–सर्व चित्तवृतिनिरोधः योगः' ऐसा कथन न होने से सात्त्विकचित्तवृत्ति स्वरूप सम्प्रज्ञातसमाधि को भी योग माना जाता है ।

सम्प्रज्ञातसमाधि की सिद्धि में यम-नियमादिकों के साथ-साथ ईश्वरप्रणिधान को भी हेतु के रूप में स्वीकार किया गया है । सूत्रकार का स्पष्ट कथन है–**"ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।" "समाधिसिद्धिरीश्वर-प्रणिधानात् ।"** यह एकाग्रचितभूमिक सम्प्रज्ञातसमाधि वितर्कविचारानन्दास्मिताभेदेन चार प्रकार की है–**"वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात्सम्प्रज्ञातः ।"**

महर्षि पतञ्जलि ने साधनपाद में समाधि (योग) सिद्धि के निमित्त योगाङ्गस्वरूप अष्टाङ्गिकमार्ग अथवा अष्टांगयोग की चर्चा की है–**"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावङ्गानि ।"**

ध्यातव्य है कि यहाँ पर 'योग' पद से निर्वीजसमाधि तथा सूत्रस्थ 'समाधि' पद से सवीजसमाधि का ग्रहण किया गया है । इस सवीजसमाधिगत सात्त्विकचित्तवृत्तियाँ भी जब निरुद्ध हो जाती है–(**"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।"**) तब संस्कारमात्र अवशिष्ट रहते हैं, जो कर्मफलभोग हेतु शरीर को प्रारब्धकर्म की समाप्ति-पर्यन्त धारण किए रहते हैं । यही स्थिति 'निर्वीजसमाधि' की है–**"तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्वीजसमाधिः ।"** इस समय पुरुष–शुद्ध चैतन्यस्वरूपमात्र अवशिष्ट रहता है, जो प्रारब्धकर्मफलभोग अनन्तर शरीर के नष्ट होने पर कैवल्य को प्राप्त करता है ।

सबीज (धर्ममेध/सम्प्रज्ञात/सविकल्पक) समाधि

सात्त्विक-वृत्ति स्वरूप चित्त की एकाग्र अवस्था ही सवीजसमाधि या सम्प्रज्ञातयोग के नाम से जानी जाती है । भगवान् भाष्यकार लिखते हैं–**'यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति, क्षिणोति च क्लेशान् कर्मबन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखं करोति स सम्प्रज्ञातो योग इत्याख्यायते ।'** यथोक्तं–**'सम्यक् प्रज्ञायते साक्षात्–क्रियते ध्येयमस्मिन्निरोधविशेषरूपे योग इति सम्प्रज्ञातः योगः ।'**

सम्प्रज्ञातसमाधि को वितर्कविचारानन्दास्मिता भेद से चार रूपों में विभक्त किया गया है । **"वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात्सम्प्रज्ञातः"** इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है–

1. **वितर्कानुगत–'वितर्कश्चित्तस्यालम्वने स्थूल आभोगः ।'** अर्थात्–पंचभूतादि स्थूलविषयकभावना वितर्कानुगत–ग्राह्यसमापत्ति ही सम्प्रज्ञात समाधि कही जाती है, जो सवितर्क तथा निर्वितर्क भेद से दो प्रकार की है । इनमें–**'तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः'** तथा **'स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का'** क्रमशः सवितर्क तथा निर्वितर्क समाधि कही जाती है ।

2. **विचारागुत–'सूक्ष्मो विचारः ।'** अर्थात्–सूक्ष्म पञ्चतन्मात्र रूप ग्राह्यविषयक विशिष्ट भावना ही विचारानुगत समापत्ति कही जाती है । इनमें कार्यकारण ज्ञानवाली समाधि, सविचार समाधि–**'तत्र सूक्ष्मभूतेष्वभिव्यक्तधर्मकेषु देशकालनिमित्तानुभवावच्छिन्नेषु या समापत्तिः सा सविचारः ।'** तथा देश-काल-निमित्त के ज्ञान से शून्य समापत्ति ही निर्विचार कहलाती है ।

3. **आनन्दानुगत–'आनन्दो ह्लादः ।'** अर्थात् सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न एकादश इन्द्रिय रूप ग्रहणविषयक भावनाविशेष (आभोग) ही आनन्द विषयक होने से आनन्दानुगतसमापत्ति कही जाती है ।

4. **अस्मितानुगत–'एकात्मिका संविदस्मिता ।'** अर्थात्–इन्द्रियों के कारण अहंकार तथा अहङ्कार के कारण वुद्धि एवं वुद्धि के कारण प्रकृति और पुरुष रूप ग्रहीतृ विषयक आभोग ही अस्मिता है । अर्थात् चित्त, वीजरूप अहङ्कार और अहंकारोपाधितपुरुष; जहाँ से पुरुष और चित्त में अभिन्नता आरोपित होती है, उसका नाम अस्मिता है । यही सास्मितसम्प्रज्ञात समाधि कही जाती है ।

विशेष–उपर्युक्त चारों समापत्तियाँ ही 'सवीजसमाधि' कही जाती है–**'ता एव सबीजः समाधिः ।'** इनका निरोध होने पर 'निर्बीज समाधि' की प्राप्ति होती है ।

निर्बीज (निर्विकल्पक/असम्प्रज्ञात) समाधि

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।" सूत्र से स्पष्ट है कि–'सम्प्रज्ञातयोग' में चित्त की राजस् व तामस् चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाने पर भी सात्त्विक वृत्तियाँ वनी रहती हैं । यही अवस्था 'एकाग्र चित्तभूमि' कहलाती है । योगी जब धीरे-धीरे इन सात्त्विक चित्तवृत्तियों का भी परित्याग कर देता है, तव संस्कारमात्र अवशिष्ट रहते हैं, जिनका परवैराग्य के उदय से निरोध हो जाता है । ऐसी स्थिति में सभी संस्कारों के निरुद्ध हो जाने पर जो समाधि प्राप्त होती है, वही निर्वीज समाधि कहलाती है–**"तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजसमाधिः ।"** भगवान् व्यास् के शब्दों में–**'स न केवलं समाधिप्रज्ञा–विरोधी प्रज्ञाकृतानां संस्काराणामपि प्रतिबन्धी भवति ।'**

इस निर्बीजसमाधिलाभहेतु महर्षि पतञ्जलि ने यमनियमादिक अष्ट योगाङ्गों की भी चर्चा की है–**"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावङ्गानि ।"** यहाँ पर अष्टम व अन्तिम अङ्ग समाधि का तात्पर्य सम्प्रज्ञातसमाधि से है, जो योग (असम्प्रज्ञातसमाधि) रूपी अङ्गी का एक अङ्ग मात्र है ।

इस प्रकार सारांश के तौर पर कहा जा सकता है–कि प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृति रूप सभी क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियाँ सुख-दुःख व मोहात्मक हैं–**'सर्वाश्चैता वृत्तयः सुखदुःखमोहात्मिका ।'** अतः इन सभी वृत्तियों का निरोध करना चाहिए–**'एताः सर्वा वृत्तयो निरोद्धव्याः ।'** इन क्लिष्टाक्लिष्ट द्विविधवृत्तियों का निरोध हो जाने पर असम्प्रज्ञात (**न तत्र किञ्चित् सम्प्रज्ञायत इत्यसम्प्रज्ञातः**) समाधि की प्राप्ति होती है, जो उपाय व भवप्रत्यय भेद से दो प्रकार की है–

1. **उपाय-प्रत्यय**–यह समाधि शास्त्रोक्त श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा–इन पञ्च-उपायों के द्वारा योगियों को प्राप्त होती है ।

2. **भव-प्रत्यय–'भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ।'** अर्थात्–विदेह संज्ञक देवताओं को तथा प्रकृतिलीन साधकों को भवप्रत्यय-असम्प्रज्ञात समाधि होती है । वे संस्कार-मात्र अवशिष्ट चित्त से कैवल्य पद जैसा अनुभव करते हुए अपने संस्कारों के अनुरूप फलों को भोगते हुए समाप्त करते हैं ।
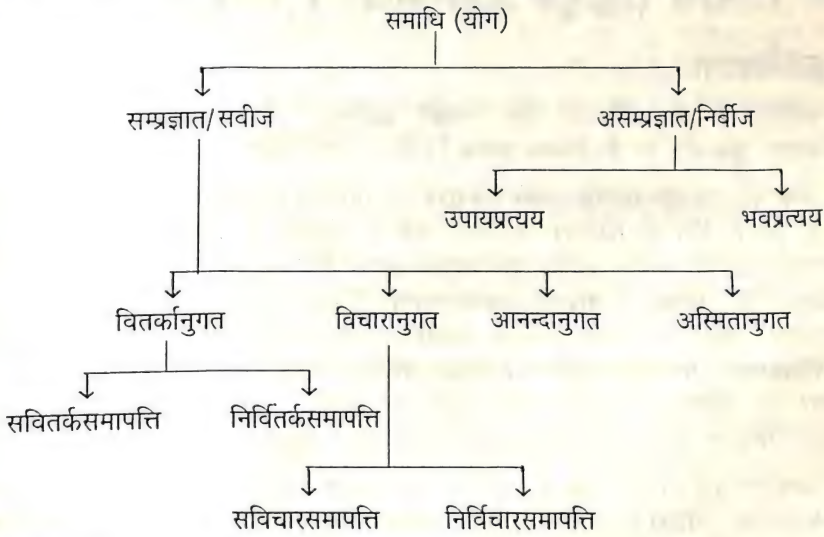
(VI) कैवल्य

"दृष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ।" अर्थात्–द्रष्टा और दृश्य (पुरुष और प्रकृति) का संयोग ही दुःख का कारण है । यह संयोग अविद्यामूलक है । इस अविद्या के नाश होने के उपरान्त संयोग का भी नाश हो जाता है । यही संयोगाभाव ही 'हान' है; जिसे दृक्शक्ति (पुरुष) का कैवल्य कहते हैं–**"तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ।"**

इस 'हान' के उपाय को बतलाते हुए महर्षि-पतञ्जलि ने लिखा है–**"विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ।"** अर्थात्–कभी भी न हटने वाली (अविप्लव) विवेकख्याति ही 'हान' का उपाय है; जो अष्टयोगाङ्गों के अनुष्ठान से अशुद्धि के नाश होने पर प्राप्त होती है–**"योगाङ्गानुष्ठादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।"** ऐसी विवेकख्याति की अवस्था में योगी का चित्त विवेक-मार्ग में सञ्चरण करता हुआ कैवल्याभिमुख होता है–**"तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ।"** ऐसी अवस्था में चित्त और पुरुष का भेद जानने वाले को सर्वभाव अधिष्ठातृत्व तथा सर्वज्ञातृत्व की प्राप्ति होती है–**"सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ।"**

इस प्रकार सात्त्विक वृत्ति–स्वरूप एकाग्रावस्था में वर्तमान पुरुष–जब विवेकख्याति रूप उस सात्त्विकवृत्ति का भी परित्याग कर देता है, तब प्रारब्धकर्मफलभोग से अपने संस्कारों के क्षीण होने पर निर्वीज समाधि को प्राप्त करता है–**"तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीज समाधिः ।"** परवैराग्य की यही अवस्था 'कैवल्य' के नाम से भी जानी जाती है–**"तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ।"** ऐसी स्थिति में पुरुष अपने शुद्ध चेतन स्वरूप में अवस्थित होता है–**"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।"** अर्थात्–**'गुणाः न पुरुषस्य दृश्यत्वेन पुनरूपतिष्ठन्ते, तत्पुरुषस्य कैवल्यम् । तदा पुरुषः स्वरूपमात्रज्योतिरमलः केवली भवति ।'** इसी को और अधिक सुस्पष्ट करते महर्षि पतञ्जलि ग्रन्थ के अन्त में लिखते हैं–**"पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ।"** अर्थात्–पुरुषार्थ से शून्य हुए गुणों का अपने कारण में लीन हो जाना अथवा चितिशक्ति का अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाना ही कैवल्य है ।

विशेष–1. जीवन्मुक्ति तथा 2. विदेहमुक्ति भेद से द्विविध–कैवल्य की भी कल्पना की जाती है; परन्तु वस्तुतः विदेहमुक्ति ही 'कैवल्य' माना जाता है ।

3. वेदान्त (ब्रह्मसूत्र शाङ्कर-भाष्य) 1.1./1.4./2.2.

(I) ब्रह्मजिज्ञासा

ब्रह्मजिज्ञासा का प्रतिपादक सूत्र **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'** है । यहाँ–'अथ'–'अतः' तथा 'ब्रह्मजिज्ञासा' कुल तीन पद हैं, जिनका क्रमिक विश्लेषण निम्नलिखित है–

'अथ' पद–**'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्र्येष्वथोऽथ'** //अमरकोश /3/248// के अनुसार मंगलादि कई अर्थों से युक्त है, फिर भी यहाँ पर 'आनन्तर्य' अर्थ ही अभिप्रेत है, क्योंकि-यहाँ पर 'अथ' पद आरम्भार्थक नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्मजिज्ञासा आरम्भणीय नहीं है । मंगल का वाक्यार्थ में समन्वयाभाव है–**'मंगलस्य च वाक्यार्थे समन्वयाभावात् ।'** अतः भाष्कार के मत में 'अथ' पद 'आनन्तर्यार्थक' ही है, परन्तु ज्ञातव्य है कि–स्वाध्यायानन्तर्य या धर्मजिज्ञासानन्तर्य नहीं है, क्योंकि–**'न धर्मजिज्ञासायाः प्रागप्यधीतवेदान्तस्य ब्रह्मजिज्ञासोपपत्तेः ।'** यहाँ पर 'साधनचतुष्टयानन्तर्य' ही भाष्यकार को स्वीकार्य है । ये साधनचतुष्टय इस प्रकार है–1. नित्यानित्यवस्तुविवेक, 2. इहामुत्रार्थभोगविराग, 3. शमदमादिकषट्साधनसम्पत्ति और 4. मुमुक्षुत्व ।

'अतः' पद यहाँ पर हेतु अर्थ में प्रयुक्त है–**'अतः शब्दो हेत्वर्थः'** । वेद ही स्वर्ग के साधनभूत यज्ञों के फल को अनित्य बतलाता है–**'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते'** । इसके विपरीत–**'ब्रह्मविदाप्नोति परम्'** इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट है कि–'ब्रह्मज्ञान से मोक्ष होता है ।' अतः साधनचतुष्टय की सिद्धि के अनन्तर ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिए । 'अतः' पद से यही अर्थ अभिप्रेत है ।

'ब्रह्मजिज्ञासा' पद में सूत्रकार ने **'ब्रह्मणो जिज्ञासा ब्रह्मजिज्ञासा'** इस विग्रह में **'कर्तृकर्मणोः कृतिः'** सूत्र के अनुसार कर्म में षष्ठी विभक्ति (ब्रह्मणः) स्वीकार किया है–**"ब्रह्मण इति कर्मणि षष्ठी न शेषे, जिज्ञास्यापेक्षत्वाज्जिज्ञासायाः जिज्ञास्यान्तरानिर्देशात् ।"** अर्थात्–जिज्ञासा को जिज्ञास्य की अपेक्षा होती है, यहाँ पर ब्रह्म के सिवाय किसी अन्य जिज्ञास्य का निर्देश न होने के कारण कर्म में षष्ठी मानने पर, जिज्ञासा के कर्मभूत केवल 'ब्रह्म' का ही विचार प्राप्त होता है, परन्तु पूर्वपक्षी के मतानुसार–**'शेषे षष्ठी'** अर्थ में–'ब्रह्म सम्बन्धी जिज्ञासा' इस अर्थ में ब्रह्म सम्बन्धी–लक्षण, प्रमाण, युक्ति, ज्ञान, साधन और फलादि की भी प्राप्ति होती है, जो अनुपयुक्त है । अतः षष्ठी कर्म अर्थ में है ।

निष्कर्ष–उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि–नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविराग-शमदमादिसाधनषट्कसम्पत्ति एवं मुमुक्षत्व इन साधनचतुष्टय के अनन्तर (अथ) कर्मफल के अनित्य तथा ज्ञानफल के नित्य होने से (अतः) मुमुक्षु को ब्रह्मजिज्ञासा करनी चाहिए **(ब्रह्मजिज्ञासा)** ।

(II) ब्रह्म-लक्षण

'लक्षणन्तु असाधारणधर्मवचनम् ।' लक्षण दो प्रकार का होता है–1. स्वरूप लक्षण तथा 2. तटस्थ लक्षण । इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है–

1. स्वरूप लक्षण

'स्वरूपं सत्व्यावर्तकं स्वरूपलक्षणम् ।' अर्थात्–जो लक्षण, अपने लक्ष्य का स्वरूप होता हुआ, स्वलक्ष्य को अन्य अलक्ष्यों से पृथक् करता है, वह स्वरूप लक्षण होता है । उदाहरणतया–**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' ' विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' 'सच्चिदानन्दं ब्रह्म'** इत्यादि ।

2. तटस्थ लक्षण

कादाचित्कत्वे सति व्यावर्तकम् तटस्थलक्षणम् ।' अर्थात्–जो लक्षण स्वलक्ष्य में यदा-कदा रहकर अपने लक्ष्य का अन्य अलक्ष्यों से पृथक् बोध कराता है, वह तटस्थ लक्षण है । जन्माद्यधिकरण में ब्रह्म का तटस्थ लक्षण करते हुए महर्षि बादरायण ने लिखा है–**'जन्माद्यस्य यतः ।'** यहाँ पर जन्म स्थिति तथा लय की कारणता–ब्रह्म में सदैव नहीं रहती, अपितु केवल माया के अधिष्ठान काल में ही रहती है । इसके अलावा (इस लक्ष्य ब्रह्म के अतिरिक्त) सांख्य-योग-नैयायिकादि के प्रधान-परमाणु आदि जो अलक्ष्य हैं, उनसे ब्रह्म का पार्थक्य सिद्ध होने से–**'जन्माद्यस्य यतः'** इस सूत्र में लक्षणसमन्वय हो जाता है । सूत्र सम्बन्धी विशेष विवरण निम्नलिखित हैं–

जन्मादि–'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्र में **जन्मादि** (उत्पत्ति आदि में है जिसके) पद में स्थिति और लय विशेष्यों के साथ उत्पत्ति रूप विशेषण का भी ग्रहण होने से–**'तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि'** समास है–**'जन्मोत्पत्तिरादिरस्येति तद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः ।'**

अस्य–सूत्रस्थ 'अस्य' पद के द्वारा इदं पद में षष्ठी विभक्ति से जन्मादिक धर्मों के धर्मी जगत् के साथ सम्वन्ध सूचित किया गया है ।

यतः–'यतः' पद कारण (निमित्तोपादान) का निर्देशक है ।

ध्यातव्य है कि **'जन्माद्यस्य यतः'** इस सूत्र के भाष्य में आचार्य शङ्कर ने ब्रह्मज्ञान को सिद्धवस्तुविषयक माना है । यह धर्मजिज्ञासा की भाँति, पुरुषबुद्धि की अपेक्षा नहीं रखता, अपितु वस्त्वधीन होता है । उदाहरणतया–स्थाणु में–स्थाणु है, पुरुष है या कोई अन्य है । यह मिथ्याज्ञान है, परन्तु स्थाणु ही है–यह यथार्थज्ञान है; क्योंकि–यह वस्त्वधीन है । इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान भी वस्त्वधीन है, क्योंकि वह भी सिद्धवस्तुविषयक है–**'एवंभूतवस्तुविषयाणां प्रामाण्यं वस्तुतन्त्रम् । तत्रैवं सति ब्रह्मज्ञानमपि वस्तुतन्त्रमेव भूतवस्तुविषयत्वात् ।'**

विशेष–ज्ञातव्य है कि सूत्रकार ने–**'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ...'** इस श्रुतिवाक्य से जगत्प्रपञ्च का कारण किसे बतलाया है ? इस निर्णयवाक्य के रूप में सूत्रकार ने श्रुतिवाक्य प्रस्तुत किया है–**'आनन्दाद्ध्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।'** अतः जगत् का कारण-आनन्द ही, जो ब्रह्म का स्वरूप ही है–'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' (स्वरूप लक्षण) ।

(III) अध्यास

'अध्यास' का तात्पर्य अज्ञान या अविद्या से है । इसका लक्षण करते हुए आचार्य शङ्कर ने लिखा है–**'अध्यासो नाम अतस्मिंस्तद्बुद्धिः । यथा पुत्रभार्यादिषु विकलेषु सकलेषु वा अहमेव विकलः सकलः वेति ।'** अर्थात्–जो जैसा नहीं है (अतद्) उसमें वैसी (तद्) भावना रखना ही अध्यास है । जैसे–स्त्री, पुत्रादि के पूर्ण, अपूर्ण होने पर मैं ही पूर्ण और अपूर्ण हूँ, ऐसी बुद्धि रखना ही अध्यास है । भाष्यकार ने और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है–**'स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः ।'** अर्थात्–स्मर्यमाण के सदृश पूर्वानुभूत की अन्य अधिष्ठान में प्रतीति ही अध्यास है । जैसे–**'शुक्तौ इदं रजतम्'** यहाँ अन्य (शुक्ति) में जो रजत है, वह पूर्वानुभूत स्मृति के विषय हट्ट स्थित रजत के सदृश (स्मर्यमाण के सदृश) भी है । यही–शुक्ति में रजत की प्रतीत ही अध्यास है ।

पञ्चख्याति

भगवान् भाष्यकार के मत में–सभी मतों में भ्रम-स्थल में उपर्युक्त अध्यास पाया जाता है, किन्तु उसके स्वरूप या भ्रम की प्रक्रिया में अन्तर है । आचार्य शङ्कर ने ऐसे चार मतों को पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थापित कर 'अनिर्वचनीयख्याति' के रूप में अपना सिद्धान्त-पक्ष प्रस्तुत किया है । इन ख्यातियों की संख्या पाँच होने से इन्हें पञ्चख्याति के नाम से जाना जाता है–

"आत्मख्यातिरसतख्यातिरख्यातिः ख्यातिरन्यथा ।
तथाऽनिर्वचनीयख्यातिरेतत्तु ख्यातिपञ्चकम् । विज्ञानशून्यमीमांसा-तर्काद्वैतविदां मतम् ॥"

1. **आत्मख्याति**–इस मत के समर्थक विज्ञानवादी बौद्ध हैं । इनके मत में एक मात्र विज्ञान ही सत् है, जो विविधरूपों में प्रतिभासित होता है । भ्रमस्थल में विज्ञान की ही प्रतीति होती है ।

2. **असतख्याति**–इसके समर्थक शून्यवादी बौद्ध हैं; जिनके मत में समस्त लोकव्यवहार ही शून्य है–**'शून्यं तत्त्वम्'** यह शून्य ही विविध रूपों में भासता है ।

3. **अख्याति**– अख्यातिवादी प्रभाकर-मीमांसक का मानना है कि–**'यदध्यासस्तद्विवेकाग्रहनिबन्धनो भ्रमः ।'** उदाहरणतया–**'इदं रजतम्'** में **इदं पश्यामि** एवं **रजतं स्मरामि** में भेदग्रहण न होने से भ्रम उत्पन्न हो जाता है । यही अख्याति है ।

4. **अन्यथाख्याति**–अन्यथाख्यातिवादी नैयायिकों का मानना है कि– **'यत्र यदध्यासस्तस्यैव विपरीतधर्मत्वकल्पना ।'** अर्थात्–जिसमें जिसका अध्यास है, उसमें विरुद्धधर्मत्व की कल्पना अध्यास है । जैसे–**'रजतत्वाभाववति रजतत्वप्रकारकं ज्ञानम् ।'**

5. **अनिर्वचनीयख्याति**–इस मत के समर्थक स्वयं आचार्यशङ्कर ही हैं, जिन्होंने इसे सिद्धान्तपक्ष के रूप में उपस्थापित किया है–**'अध्यासो नाम अतस्मिंस्तद्बुद्धिः ।'** इसमें केवल भ्रमस्थल का रजतत्व ही नहीं, अपितु संसार के सारे पदार्थ ही अनिर्वचनीय हैं । यह जगत् ही अध्यास है । भ्रमस्थल में आध्यासिक-वस्तु की उत्पत्ति होती है ।

(IV) शास्त्रप्रमाणकं ब्रह्म

प्रस्तुत वाक्य का अभिप्राय है, ब्रह्म केवल ऋग्वेदादि शास्त्रप्रमाणक है। अर्थात्–ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान में ऋग्वेदादि शास्त्र ही प्रमाण हैं । अतः सर्वज्ञ ब्रह्म की सर्वज्ञता को दृढ़ करने हेतु महर्षि बादरायण ने **'शास्त्रयोनित्वात्'** ऐसा सूत्र प्रस्तुत किया है । यहाँ पर 'योनि' शब्द की 'कारण' एवं 'प्रमाण' परक द्वयर्थक्रता के आधार पर भाष्यकार ने उपर्युक्त सूत्र की द्विविध व्याख्या प्रस्तुत की है, जो निम्नलिखित है–

1. **'योनि' की प्रमाणपरक व्याख्या–'शास्त्रं योनिः प्रमाणं यस्मिन् तस्यभावः शास्त्रयोनित्वम् तस्मात् शास्त्रयोनित्वात् ।'** इस विग्रह के आधार पर ऋग्वेदादि शास्त्र इस ब्रह्म के स्वरूपनिर्धारण में प्रमाण हैं, और इस शास्त्रप्रमाण से ही ब्रह्म की जगत्कारणता सिद्ध होती है–**'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।'** ब्रह्म की इस जगत्कारणता का उल्लेख सूत्रकार ने यद्यपि पूर्ववर्ती सूत्र **'जन्माद्यस्य यतः'** में ही कर दिया था, तथापि शास्त्र का स्पष्ट ग्रहण न होने से पुनः **'शास्त्रयोनित्वात्'** इस सूत्र को प्रस्तुत किया । यथोक्तम् भाष्यकारेण–**'तत्र पूर्वसूत्राक्षरेण स्पष्टं शास्त्रस्यानुपादानाज्जन्मादि केवलमनुमानमुपन्यस्तमित्याशङ्कयेत, तामाशङ्कां निवर्तयितुमिदं सूत्रं प्रववृते शास्त्रयोनित्वात् ।'**

2. **'योनि' की कारणपरक व्याख्या–'शास्त्रं योनिः शास्त्रयोनिः तस्यभावः शास्त्रयोनित्वं, तस्मात्शास्त्रयोनित्वात् ।'** इस विग्रह के अनुसार अनेक विद्यास्थानों से उपकृत प्रदीपवत् सभी अर्थों के प्रकाशन में समर्थ एवं सर्वज्ञ के समान महान् ऋग्वेदादि शास्त्रों का कारण (योनि) ब्रह्म है; क्योंकि-सर्वगुण सम्पन्न ऋग्वेदादि जैसे-शास्त्रों की उत्पत्ति, सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी अन्य से सम्भव नहीं है, क्योंकि–**'यद्यद्विस्तरार्थं शास्त्रं यस्मात्पुरुषविशेषात् सम्भवति, यथा व्याकरणादिपाणिन्यादेर्ज्ञेयैकदेशार्थमिति, स ततोऽप्यधिकतर विज्ञान ।'** अतः अनेक शाखाभेद भिन्न देव, मनुष्य, पश्वादि विभाग के हेतु सभी ज्ञानों के आकर ऋग्वेदादि की उत्पत्ति, पुरुषनिःश्वासवद लीलान्याय से जिस ब्रह्म से हुई है, वह निश्चित ही सर्वज्ञ होगा । ऐसे सर्वज्ञ हम, आप हो ही नहीं सकते, अतः ऋग्वेदादि का कारण महान् ब्रह्म ही होगा । श्रुति कहती है–**'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदः ।'** इस प्रकार ऋग्वेदादिक शास्त्रों का कारण 'ब्रह्म' ही है । ये ऋग्वेदादि शास्त्र ही ब्रह्म के स्वरूपनिर्धारण में प्रमाण हैं । अतः, कहा गया है–**"शास्त्रप्रमाणकं ब्रह्म ।"**

(V) मोक्ष

आचार्य शङ्कर ने समन्वयाधिकरणस्थ **'तत्तुसमन्वयात्'** इस सूत्र के विवेचनक्रम में **'ब्रह्मभावश्च मोक्षः'** अर्थात् ब्रह्मभाव या ब्रह्मावगति को 'मोक्ष' कहा है । यह मोक्ष-नित्य-शुद्ध-ब्रह्मस्वरूप वाला है–**'नित्यशुद्धब्रह्मस्वरूपवान्मोक्षः'** अर्थात्–सुख के समान आपेक्षिक या परिणामी सुख नहीं है, जो धर्म (पुण्य) के क्षीण होने पर नष्ट हो जाय–**'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।'** अपितु परमार्थिक नित्य है–**'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ।'** इस ब्रह्मभाव को प्राप्त करने के पश्चात्–**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे ।'** अर्थात्–सभी प्रकार के शोक एवं मोह से रहित ऐसा मुक्त पुरुष सर्वत्र ब्रह्म का ही दर्शन करता है, क्योंकि वह स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है–**'तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।'**

भगवान् भाष्यकार का कहना है कि–'मोक्ष' उत्पाद्य नहीं हो सकता, क्योंकि जो उत्पन्न होता है, वह अनिवार्य रूप से विनष्ट भी होता है, जैसे–उपासनादि कर्मफलजन्य स्वर्गादि । 'मोक्ष' तो आत्मा को स्वभावतः नित्यप्राप्त है । अज्ञान से आच्छादित मात्र होने के कारण, आत्मा अपने को सुख-दुःखादि से युक्त समझता है, वस्तुतः वह तो नित्यशुद्ध बुद्ध-आनन्दस्वरूप है–**'नित्यविज्ञानमानन्दं ब्रह्म ।'** सद्गुरू के द्वारा **'तत्त्वमसि'** वाक्य से स्मरण मात्र दिला दिए जाने पर जब अज्ञानावरण समाप्त हो जाता है, तो **'अहं ब्रह्मास्मि'** की अनुभूति होती है । यही मोक्ष है, जो प्राप्य नहीं है, अपितु आत्मा का स्वाभाविक धर्म है ।'अहं ब्रह्मास्मि' की यही अनुभूति ही अशरीरत्व है–**'अशरीरं शरीष्वनवस्थितम् । (कठोप.)** अज्ञाननिवृत्तिपरक इस मोक्ष की सिद्धि गौतम प्रणीत निम्न सूत्र से भी होती है–**'दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानमुत्तरोत्तरापायेतदन्तरापायादपवर्गः ।'** इस प्रकार स्पष्ट है कि–सम्पूर्ण वेदान्त वाक्य समन्वित तात्पर्य से सिद्धवस्तुविषयक 'ब्रह्मावबोधन' में ही समन्वित हैं । अतः सूत्रस्थ **'समन्वयात्'** इस हेतु से ब्रह्मावगति में वेदान्तवाक्यों की सार्थकता सिद्ध होने से, जैमिनि सम्मत–**'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम् ।'** यह कथन भी खण्डित हो जाता है, तथा उत्पाद्य, विकार्य, एवं संस्कार्य इत्यादि दोषों से रहित होने से ब्रह्मावगति रूप मोक्ष में हेयोपादेयरहितत्व भी स्वयं सिद्ध हो जाता है ।

(VI) सांख्य का खण्डन

द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाद में सांख्य के **'प्रधानकारणवाद'** सिद्धान्त का खण्डन करते हुए सूत्रकार महर्षि बादरायण जी लिखते हैं–**'रचनानुपपत्तेश्च नाऽनुमानम् ।'** अर्थात् प्रधानकारणतावाद के विषय में सांख्य का यह अनुमान करना कि–जगत् सुख-दुःख-मोह से अन्वित है, जैसे–घट, मृत्तिका से उत्पन्न होकर मृत्तिका से अन्वित है, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि जड़ प्रधान (प्रकृति) से इस विचित्र जगत् की रचना सम्भव ही नहीं है । इसका कारण यह है कि अचेतन प्रधान की साम्यावस्था की प्रच्युति रूप प्रवृत्ति होने पर भी बिना किसी चेतन के रचना उत्पन्न नहीं है । इसी को सूत्रकार ने–**'प्रवृत्तेश्च'** सूत्र से कहा है । लोक में भी देखा जाता है कि जड़ मृत्तिका तथा रथ आदि को कुलाल तथा अश्वादि चेतन से युक्त होने पर ही प्रवृत्तिवान् देखा जाता है । यहाँ पर सांख्याचार्य यदि यह कहें कि, जैसे–बछड़े के पोषण के लिए दूध तथा लोककल्याण के लिए जल स्वयं प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार प्रधान भी स्वयं प्रवृत्त होती है, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि-दूध की प्रवृत्ति में चेतन गौ, तथा बछड़े के द्वारा दूध का चूसना इत्यादि भी सम्मिलित है । इसी प्रकार जल भी ईश्वर-प्रेरणा से प्रवाहित होता है–**"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राचोऽन्या नद्यः स्यन्दन्ते ।"** अतः अचेतन की प्रवृत्ति सर्वत्र चेतनापेक्षिणी ही है–**'पयोम्बुवच्चेत्तत्रापि ।'** इसके अतिरिक्त सांख्य का यह कथन कि–तृणपल्लवादि के दुग्धरूप स्वाभाविक परिणमन के समान प्रधान की भी स्वतः प्रवृत्ति होती है; यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि-तृणपल्लवादि से बैल आदि में दुग्धप्रवृत्ति न होने से धेनु की कारणता सिद्ध है–**'अन्यत्राभावाच्च तृणादिवत् ।'** पुरुषाश्मवत् यदि पुरुष को प्रधान का

प्रवर्तक मानें तो भी यह सम्भव नहीं है–**'पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि'** क्योंकि स्वतन्त्र प्रवृत्ति वाले प्रधान को उदासीन पुरुष प्रवर्तित नहीं कर सकता, यदि अयस्कान्तमणिवत् (लौह चुम्वकवत्) मानें तो अयस्कान्तमणिवत्–पुरुष को प्रधान के पास लाएगा कौन ? अतः बीच में किसी तीसरे चेतन की आवश्यकता पड़ेगी । यदि गुणों में परस्पर अङ्गाङ्गिभाव से प्रवृत्ति मानें तो यह अङ्गाङ्गिभाव अनुपपन्न है–**"अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ।"**

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त सांख्य की सवसे वड़ी कमी यह है कि-परस्पर विरुद्ध सिद्धान्त स्वीकार किए गए हैं–**'विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ।'** कहीं सात इन्द्रियाँ, तो कहीं ग्यारह इन्द्रियाँ, कहीं महत् से तन्मात्रा की उप्पत्ति, तो कहीं अहङ्कार से । कहीं एक अन्तःकरण तो कहीं तीन । इसके अलावा श्रुतिस्मृति प्रतिपादित ईश्वर की जगत्कारणता का विरोध है । अतः आनुमानिक प्रकृति जगत् का कारण नहीं हो सकती, अपितु ब्रह्म ही जगत् का कारण है ।

(VII) वैशेषिक का खण्डन

कणादमतानुयायी वैशेषिकों का मानना है कि–जगत् का कारण 'परमाणु' ही है । यह परमाणु छः पार्श्वों वाला परिमण्डल है । इसमें अदृष्ट की प्रेरणावश सर्वप्रथम कर्म उत्पन्न होता है, तदनन्तर उनका संयोग होने से द्वयणुक, त्र्यणुक, चतुर्णुक आदि क्रम से ह्रस्व, महत्, दीर्घादि उत्पन्न होते हैं । ये उत्पद्यमान् द्वयणुकादि परमाणुओं से अत्यन्त भिन्न होते हुए भी, उनमें समवेत रहते हैं । ये रूपादिमान् परमाणु पृथ्वी, जल, तेज, वायु भेद से चार प्रकार के हैं, जो नित्य एवं चतुर्भौतिक पदार्थों के आरम्भक हैं । अतः वेदान्त-सम्मत ब्रह्म जगत् का कारण नहीं है, क्योंकि, कारण के नित्य होने से कार्य भी नित्य होगा, जैसे शुक्ल तन्तुओं से शुक्ल पट की उत्पत्ति देखी जाती है ।

खण्डन–वैशेषिकमत का खण्डन करते हुए महर्षि वादरायण जी लिखते हैं-'महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्' अर्थात्–जिस प्रकार निरवय तथा ह्रस्व अणु एवं द्वयणुक से सावयव महत् तथा दीर्घ परिमाण-पदार्थ उत्पन्न होता है, उसी प्रकार चेतन ब्रह्म से अचेतन जगत् की उत्पत्ति होती है । अतः पूर्वपक्षी का आरोप उचित नहीं है ।

'उभयथापि न कर्मास्तदभावः' इस सूत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य शङ्कर कहते हैं कि–वैशेषिक मत में निमित्तकारणाभाव में विभागावस्था में वर्तमान जड़ परमाणुओं में आदि क्रिया सम्भव नहीं है । इस आद्यकर्माभाव में यदि अदृष्ट को आद्यकर्म में निमित्त मानें, तो यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि अदृष्ट अचेतन होने से स्वतन्त्र रूप से न प्रवृत्त होता है; न किसी को प्रवृत्त करा सकता है । आत्मा का गुण प्रयत्न भी शरीर भाव (मनः आत्मसंयोगाभाव) में सम्भव नहीं है । अदृष्टवान्पुरुष अणु सम्वन्ध में नित्य-प्रवृत्ति दोष होगा । अतः संयोग और विभाग के अभाव से तदधीन होने वाले सर्ग और प्रलय का भी अभाव होगा ।

'समवाय' पक्ष में जिस प्रकार परमाणुओं से अत्यन्तभिन्न होता हुआ द्वयणुक, समवायसम्बन्धेन उनके साथ सम्वद्ध होता है, उसी प्रकार समवाय भी समवायियों से अत्यन्त भिन्न होता हुआ समवायरूप अन्य सम्वन्ध से ही समवायियों से सम्वद्ध होगा, जिससे तत्तत् समवाय हेतु अन्यसम्बन्ध की कल्पना से अनवस्था होगी–**'समवायाभ्युगमाच्च ।'**

ज्ञातव्य है कि–**'नित्यमेव च भावात्'** सूत्रानुसार परमाणुओं को प्रवृत्तिस्वभाव मानने पर प्रलयाभाव, तथा निवृत्तिस्वभाव मानने पर सृष्ट्यभाव होगा । उभयानुभयस्वभाव उपपन्न ही नहीं है । इसके अतिरिक्त–**'रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शनात्'** भी कारणता असिद्ध है, अर्थात्–परमाणुओं को रूपादिविशिष्ट तथा नित्य भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि इससे स्थूलत्व एवं अनित्यत्व दोष उपपन्न होगा–**'यद्धि हि लोके रूपादिमद्वस्तु तत्स्वकारणापेक्षया स्थूलमनित्यं च दृष्टम् ।'** इतना ही नहीं इन्हें उपचितगुणात्मक मानने पर परमाणुत्वभङ्ग तथा अपचितगुणात्मक मानने पर पृथ्व्यादि कार्य में रूपादि की अनुपलब्धि होगी–**'उभयथा च दोषात् ।'** इस प्रकार महर्षि वादरायण जी परमाणुकारणता

का पूर्णतः निराकरण करते हुए लिखते हैं–**'अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ।'** *अर्थात् मन्वादि शिष्टों द्वारा अपरिगृहीत होने से 'परमाणुकारणवाद' अनुपपन्न है । अतः जगत् का कारण ब्रह्म ही है ।*

(VIII) बौद्धमत का खण्डन

सर्वास्तित्ववादी 'वैभाषिक' एवं सौत्रान्तिक मत में पृथिव्यादि चार भूत तथा रूपादि भौतिक हैं । आकाश आवरण का अभाव मात्र है । पृथिव्यादि के चार परमाणु–कठिन, स्नेह, उष्ण तथा चलन, स्वभाव वाले हैं । रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा तथा संस्कार- ये पञ्चस्कन्द हैं । भूत, भौतिक, चित्त एवं चैत्त-ये चार सृष्टियाँ हैं, जो परमाणुओं का समुदायमात्र है । अवयवों से भिन्न अवयवी की उपलब्धि न होने से अवयवों का ही समुदाय मात्र है। जो कुछ भी सत है, वह विद्युतवत् क्षणिक है–**'यत् सत् तत्क्षणिकम्'** विज्ञानवादी योगाचार मत में बाह्य तथा आन्तर सभी पदार्थ विज्ञान के ही आकार विशेष हैं ।

खण्डन–बौद्ध मत को निरस्त करते हुए सूत्रकार महर्षि व्यास जी लिखते हैं–**'समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ।'** अर्थात्–परमाणुओं के अचेतन होने से सृष्टि के प्रारम्भ में परमाणुओं अथवा स्कन्दों का समुदाय स्वतः नहीं हो सकता है, क्योंकि अन्य चेतननियामक का अभाव है, ऐसी स्थिति में स्वाभाविक प्रवृति मानने पर मोक्षाभाव प्रसक्त होगा । वैनाशिक-यदि समुदाय के प्रति अविद्यादि को निमित्त मानें, तो भी ठीक नहीं है, क्योंकि-अविद्या-उत्पत्ति मात्र के प्रति निमित्त है, समुदायोत्पत्ति के प्रति नहीं । अविद्यादि को यदि संघात का निमित्त मानें, तो अन्योन्याश्रय दोष होगा, तथा भोग व भोक्ता में क्षणिकत्व बुद्धि से मोक्ष कथन भी असंगत होगा । अतः क्षणिकत्व सिद्धान्त भी वाधित होगा–**'इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिनिमित्वात् ।'** सबसे बड़ी बात यह है कि–नष्ट पूर्वक्षण, उत्तरक्षण का कारण कैसे होगा ? **'भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैवोच्यते ।'**[१] के अनुसार–यदि उत्पत्ति को ही व्यापार मानें तो भी कार्यकारणभाव सम्भव नहीं है । उत्पत्ति और निरोध या उससे भिन्न स्वरूप भी अनुपपन्न है–**'उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ।'**

कारणभाव तथा क्षणिकत्व के खण्डन के पश्चात् बौद्धाभिमत दो प्रकार के विनाशों के विषय में सूत्रकार कथन है कि–**'प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात्'** अर्थात् सन्तान और सन्तानियों का विच्छेद न होने से प्रतिसंख्यानिरोध (बुद्धिपूर्वक) तथा अप्रतिसंख्यानिरोध (अबुद्धिपूर्वक) भी भावपदार्थ का नाश सम्भव नहीं है ।

जहाँ तक आकाश का प्रश्न है–**'आत्मनः आकाशः सम्भूतः'** इत्यादि श्रुतिवाक्यों से तथा शब्दगुण विशिष्ट होने से पृथिव्यादिवत् 'आकाश' की भी सत्ता सिद्ध है–**'आकाशे चाविशेषात्'** अतः **'आवरणाभावमात्रमाकाशम्'** यह कथन ठीक नहीं है ।

क्षणिक विज्ञानवादी योगाचारमत के खण्डन में सूत्रकार का कथन है–**'अननुस्मृतेश्च'** अर्थात्–अनुभवोपरान्त स्मरणरूप अनुस्मृति होने से तथा अनुभव व स्मृति का सामानाधिकरण्य होने से भी प्रमाता (आत्मा) तथा प्रमेय का क्षणिकत्व बाधित हो जाता है । इसके अतिरिक्त **'नासतोऽदृष्टत्वात्'** क्षणिकत्व पक्ष में अभाव से भावोत्पत्ति में शशविषाणादि से भी कार्योत्पत्ति होने लगेगी । इससे–**'उदासीनानामपि चैवंसिद्धिः ।'** ऐसा दोष प्रसक्त होगा । ज्ञातव्य है कि–विज्ञानातिरिक्त बाह्यपदार्थों का प्रत्यक्ष होने से उनका अभाव नहीं हो सकता–**'नाभाव उपलब्धेः ।'** इस प्रकार विज्ञान में उत्पत्तिनाश तथा अनेकत्वादि होने से वह जड़ सिद्ध होगा । बाह्यार्थ के अभाव में वासना का भी अभाव होगा **'न भावोऽनुपलब्धेः'** क्योंकि–क्षणिक होने से आलयविज्ञान भी वासना का आश्रय नहीं हो सकता–**'क्षणिकत्वाच्च ।'** अतः बौद्ध दर्शन हर तरह से अषंगत है ।

(IX) जैनमत का खण्डन

जैनाचार्यों के मत में–जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जर, बन्ध तथा मोक्ष ये सात पदार्थ और जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशास्तिकाय–ये पाँच अस्तिकाय हैं–**'अस्ति कायते इति अस्तिकायः ।'** इनमें

जीवास्तिकाय–1. बद्ध, 2. मुक्त तथा 3. नित्यसिद्ध भेद से तीन प्रकार का है । पुद्गलास्तिकाय–पृथिव्यादि चारभूत, स्थावर एवं जङ्गम भेद से छः प्रकार का है–**'पूर्यन्ते गलन्तीति पुद्गलाः ।'** सम्यक् प्रवृत्ति से अनुमेय 'धर्म' तथा ऊर्ध्वगमनशील जीव की देह में स्थिति का हेतु अधर्म है । आवरण का अभाव ही आकाश है; जो लोकालोक भेद से दो है । जीव-शरीरपरिमाण वाला है, तथा इनका प्रमुख सिद्धान्त सप्तभङ्गीनय है ।

खण्डन–आर्हत मत को निराकृत करते हुए महर्षि व्यास जी–**'नैकस्मिन्न सम्भवात्'** सूत्र के माध्यम से कहते हैं कि-सप्तभङ्गीनय योजना ठीक नहीं है, क्योंकि इसके एक धर्मी में एक ही समय में शीतोष्णादि, नित्यानित्यादि धर्मों का समावेश सम्भव नहीं है । सप्त-पदार्थों समेत पञ्चास्तिकायों की सत्ता, अभाव तथा नित्यता एवं अनित्यता, अधिक क्या सप्तत्व एवं पञ्चत्व संख्या का अस्ति नास्ति भेद से भाव, अभाव प्राप्त होने लगेगा । इस प्रकार यह संशयात्मक विरुद्धकथन प्रलाप मात्र सिद्ध होगा ।

आर्हत मत में दूसरा दोष यह है कि–जीव के शरीरपरिमाणवाला होने से परिछिन्नत्व (सीमितत्व) उपपन्न होगा, जिससे मनुष्य जीव कर्मविपाक से हस्ति-शरीर को व्याप्त नहीं कर सकेगा, और न ही चींटी के शरीर में समायेगा । यदि जैनाचार्य दीपकप्रकाशवत् जीव के अवयवों में संकोच तथा विकास मानें तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि इससे घटादिगतप्रदीपप्रकाशवत् चींटी के शरीर में जीव की महानता तथा गृहगतप्रदीपप्रकाशवत् हस्ती के शरीर में अल्प-चेतनता उपपन्न होगी, तथा शरीरमात्र परिछिन्न जीव अवयवों के आनन्त्य की कल्पना करनी होगी, जो सम्भव नहीं। इस प्रकार जीव घटादिवत् अनित्य होगा–**'एवं चात्माऽकात्स्नर्यम्'** यदि इन अवयवों के–शरीर के सापेक्ष हटने और प्राप्त होने की बात कही जाए, तो आत्मा में विकारादि दोष प्रसक्त होगा । यदि आत्मा को अवयवी कहा जाए, तो वह अनित्य होगा । अतः आत्मा (जीव) गमनागमन स्वभाववाला नहीं हो सकता–**'न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ।'**

ज्ञातव्य है कि–जैनाचार्य मोक्षावस्थापन्न जीवपरिमाण को नित्य मानते हैं । इससे आदि और मध्य जीव परिमाणों में भी नित्यत्व प्रसङ्ग होने से तीनों परिमाण समान हो जाएंगे, जिससे यदि एक शरीर परिमाण के समान आत्मा होगा, तो अन्य स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति नहीं होगी । अतः जीव, शरीरपरिमाणवाला नहीं हो सकता–**'अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ।'** अतः आर्हतमत उपेक्षणीय होने से असङ्गत है ।

(X) पाँचरात्रमत का खण्डन

भागवत-पाँचरात्र मत में-केवल एक भगवान् 'वासुदेव' ही निरञ्जन-ज्ञानस्वरूप-परमार्थतत्त्व हैं । वह अपने को वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध व्यूह से चार व्यूहों रूपों में विभक्त कर प्रतिष्ठित हैं–**'भगवानेवैको वासुदेवो निरञ्जनज्ञानस्वरूपः परमार्थतत्त्वं, स च चतुर्धात्मानं प्रविभज्य प्रतिष्ठितः । वासुदेवो नाम परमात्मोच्यते । संकर्षणो नाम जीवः । प्रद्युम्नो नाम मनः । अनिरुद्धो नाम अहङ्कारः ।'** इनमें वासुदेव पराप्रकृति तथा संकर्षणादि कार्य हैं । इस परमात्मा वासुदेव की–अभिगमन, उपादान, इज्या स्वाध्याय और योग द्वारा सौ वर्ष पूजाकर क्षीणक्लेश होकर जीव भगवान् को ही प्राप्त होता है–**'क्षीणक्लेशो भगवन्तमेव प्रतिपद्यते ।'**

खण्डन–चतुर्व्यूहों में अवस्थित परमात्मसत्ता तथा ईश्वरप्रणिधानादि तो श्रुतिस्मृति प्रतिपादित होने से सूत्रकार को भी अभिमत हैं, परन्तु भागवतों का यह कथन कि–वासुदेव से संकर्षण उत्पन्न होता है, संकर्षण से प्रद्युम्न व उससे अनिरुद्ध, यह सम्भव नहीं है, क्योंकि संकर्षण संज्ञक जीव के उत्पत्तिमान् होने से निश्चित ही अनित्यत्व आदि दोष प्रसक्त होगा । आत्मा उत्पन्न नहीं होता है–**'नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्चताभ्यः' 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं.'** इत्यादिश्रुतेः । अतः जीवोत्पत्ति न होने से यह मत असंगत है–**'उत्पत्त्यसम्भवात् ।'**

दूसरी आपत्ति यह है कि-संकर्षण नामक कर्ता (जीव) से प्रद्युम्नसंज्ञक करण (मन) की उत्पत्ति अनुचित है; क्योंकि-लोक में भी देवदत्तादि से कुठारादि करण की उत्पत्ति नहीं देखी जाती है ।

सूत्रकार के शब्दों में–**'न च कर्तुः करणम् ।'** ऐसी स्थिति में भागवत यदि यह कहें कि ये संकर्षणादि जीव-ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज रूप ईश्वर सम्बन्धी धर्मों से युक्त ईश्वर ही हैं, तो एक ही ईश्वर से सृष्टि-सम्भव होने से अनेकईश्वर कल्पना निष्फल है–**'ततोऽनेकेश्वरकल्पनाआनर्थक्यम् एकेनेश्वरेण कार्यसिद्धिः ।'** मृत्तिका घटवत, कार्य-कारण में अतिशय होना ही चाहिए, जबकि यहाँ वासुदेव ही सभी व्यूहों में निर्विशेष है । अतः **'विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ।'**

इस पाँचरात्र तन्त्र में गुण-गुणित्वादि रूप अनेक प्रकार का विरोध उपलब्ध होने तथा– **'एकस्यापि तन्त्राक्षरस्य अध्येता चतुर्वेदिभ्योऽधिकः ।'** जैसे वेद-निन्दक वाक्यों के ग्रहण से यह भागवत-पाँचरात्र मत, असंगत सिद्ध हो जाता है–**"विप्रतिषेधाच्च ।"**

4. न्याय-वैशेषिक (न्यायसिद्धान्त-मुक्तावली)

1. ईश्वरसिद्धि

"नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय ।
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय ॥"

'ईश्वरास्तित्ववाद' के परिप्रेक्ष्य में उपर्युक्त मङ्गलाचरण पर ध्यान दें तो–**'संसारमहीरुहस्य बीजाय'** यह विशेषण निमित्त कारणस्वरूप ईश्वर के अस्तित्व में अनुमान-प्रमाण की सूचना दे रहा है । मुक्तावलीकार के शब्दों में–**'संसार एव महीरूहो वृक्षस्तस्य बीजाय, निमित्तकारणायेत्यर्थः । एतेन ईश्वरे प्रमाणमपि दर्शितं भवति, तथाहि–यथा घटादि कार्यं कर्तृजन्यं तथा क्षित्यङ्कुरादिकमपि ।'** अर्थात्–घट-पटादि कार्य, जैसे विना कर्ता के सम्भव नहीं हैं, उसी प्रकार क्षित्यंकुरादि कार्य भी विना कर्ता के सम्भव नहीं है । अतः हम कह सकते हैं कि–**'यत्र यत्र कार्यत्वम् तत्र-त्तत्र कर्तृत्वम् । अतएव-क्षित्यङ्कुरादि कार्यं कर्तृजन्यम्, कार्यत्वात् घटवत् ।'** यहाँ पर क्षित्यङ्कुरादि 'पक्ष'; कर्तृजन्यत्व-'साध्य'; कार्यत्वात्–'हेतु'; तथा घटवत्–'दृष्टान्त' है ! इस अनुमान के प्रयोग से स्पष्ट है कि-क्षित्यङ्कुरादि का भी कोई कर्ता अवश्य है । चूँकि हम, आप इसके कर्ता हो नहीं सकते । अतः इस क्षित्यङ्कुरादि का कर्ता निश्चित ही ईश्वर होगा–**'न च तत्कर्तृत्वमस्मदादीनां सम्भवतीत्यतस्तत्कर्तृत्वेन ईश्वरसिद्धिः ।'**

यहाँ पर पूर्वपक्षी (अनीश्वरवादी) उपर्युक्त अनुमान प्रयोग में सत्प्रतिपक्ष-दोष की आशङ्का करते हुए दूसरा अनुमान-प्रयोग प्रस्तुत करता है–**'यत्र-यत्र शरीराजन्यत्वं तत्र-तत्र कर्त्रजन्यत्वम् । अतएव–क्षित्यङ्कुरादि कर्त्रजन्यम्, शरीराजन्यत्वात् आकाशवत् ।'** यहाँ पर-क्षित्यङ्कुरादि-'पक्ष', कर्तजन्यत्व-'साध्य' । शरीराजन्यत्वात्–'हेतु' तथा आकाशवत्–'दृष्टान्त' है; परन्तु पूर्वपक्षी द्वारा दिए गए इस अनुमान की कहीं व्याप्ति ही नहीं देखी जाती है । अतः, यह अप्रयोजक है । इसके विपरीत नैयायिक (ईश्वरवादी) का अनुमान-प्रयोग विशुद्ध है, क्योंकि-कार्य-कारण भाव व्याप्ति सर्वत्र देखने को मिलती है । **'यदि कर्तृजन्यत्वम् न स्यात्, तर्हि कार्यत्वमेव न स्यात् ।'** इस परिप्रेक्ष्य में नैयायिक आगम प्रमाण भी प्रस्तुत करता है–**"द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ।" "विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।"** इस प्रकार निमित्तकारणस्वरूप ईश्वर की सत्ता स्वयं-सिद्ध है–

"कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः ।
वाक्यात्संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः ॥"

2. पदार्थ-विवेचन

'द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाय-अभाव' सप्त पदार्थों के विस्तृत व स्थायी ज्ञान हेतु 'न्यायसिद्धान्तमुक्तावली' को देखने का कष्ट करें । यहाँ पर सप्त-पदार्थों का एक सामान्य परिचय अग्रांकित आरेख के माध्यम से दिया जा रहा है–
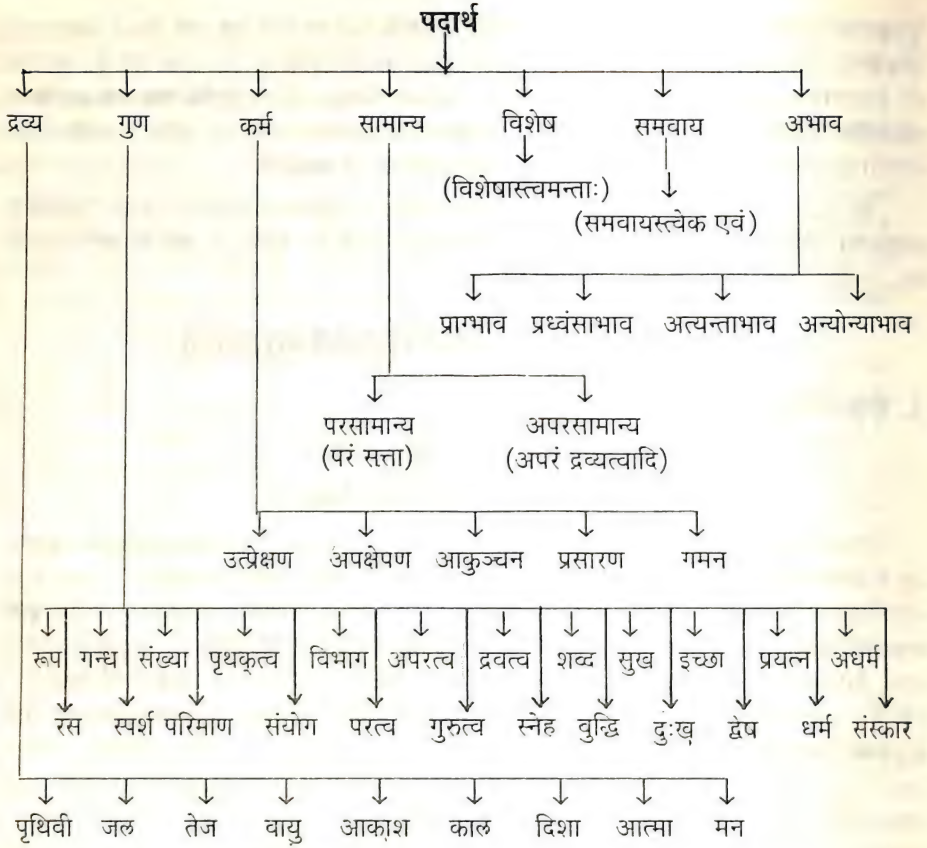
3. कारण एवं अन्यथासिद्धि

कारणत्रय– **"अन्यथासिद्धिशून्यस्य नियता पूर्ववर्तिता ।**
कारणत्वं भवेत्तस्य त्रैविध्यं परिकीर्तितम् ॥"

अर्थात्–जो कार्य के प्रति अन्यथा सिद्ध न हो तथा कार्योत्पत्ति के पूर्व नियत रूप से रहने वाला हो–**'अन्यथासिद्धि शून्यत्वे सति नियतपूर्ववर्तित्वं कारणत्वम् ।'** समवायि, असमवायि तथा निमित्त भेद से कारण तीन प्रकार का है–

"यत्समवेतं कार्यं भवति ज्ञेयं तु समवायिजनकं तत् ।
तत्रासन्नं जनकं द्वितीयमाभ्यां परं तृतीयं स्यात् ॥"

1. **समवायि-कारण–'समवायसम्बन्धेन कार्यवत्त्वं समवायिकारणत्वम् ।'** अर्थात्–जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहता हुआ कार्य उत्पन्न हो, वह उस कार्य का समवायि कारण होता है । उदाहरणतया–पट, तन्तुओं में समवाय-सम्बन्ध से उत्पन्न होता है । अतः, तन्तु; पट कार्य के प्रति समवायिकारण हैं । तर्कसंग्रहकार के शब्दों में–**'यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् ।'**

2. **असमवायिकारण–** मुक्तावलीकार के शब्दों में–**'समवायिकारणे आसन्नं प्रत्यासन्नं कारणं द्वितीयमसमवायिकारणम् ।'** अर्थात्–जो कारण, कार्य के साथ-साथ कार्य के समवायिकारण में प्रत्यासन्न हो; वह उस कार्य के प्रति असमवायिकारण होता है । उदाहरणतया–पट कार्य के प्रति

तन्तुसंयोग असमवायिकारण है, क्योंकि-तन्तुसंयोग (असमवायिकारण) पट (कार्य) के साथ-साथ, पट के समवायिकारण तन्तु में समवाय सम्बन्ध से रहता है ।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य है कि–ज्ञानादि, आत्मा के विशेषगुण किसी भी कार्य के प्रति असमवायिकारण नहीं होते । इसी प्रकार पट (कार्य) के प्रति 'तुरी-तन्तुसंयोग' तथा अभिघात के प्रति 'वेग' असमवायिकारण नहीं होता है । अतः उपर्युक्त लक्षण में अतिव्याप्तिदोष निवारणार्थ–ज्ञानादि भिन्नत्व, तुरीतन्तुसंयोग भिन्नत्व इत्यादि पद भी जोड़ देना चाहिए उदाहरणतया–**'ज्ञानादि-आत्मविशेषगुणभिन्नत्वे सति, तुरीतन्तुसंयोगभिन्नत्वे सति, पटसमवायिकारणे प्रत्यासन्ने सति पटकार्यजनकत्वं पटासमवायिकारणत्वम् ।'**

असमवायिकारण (i) कार्यैकार्थप्रत्यासत्ति तथा (ii) कारणैकार्थ प्रत्यासत्ति भेद से दो प्रकार का होता है, जो निम्नलिखित है–
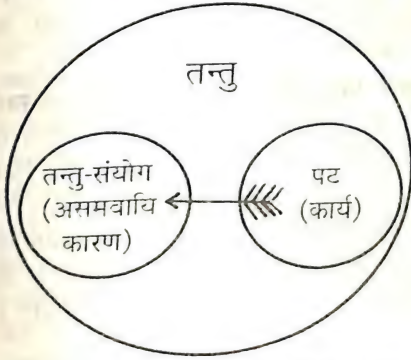
(i) **कार्यैकार्थप्रत्यासत्ति–'पटादिकं प्रति तन्तुसंयोगादिकम् असमवायिकारणम् । तत्र कार्येण पटेन सह कारणस्य तन्तुसंयोगस्यैकस्मिन् तन्तौ प्रत्यासत्तिरस्ति ।'** अर्थात्–पटादि (कार्य) के प्रति तन्तुसंयोगादि असमवायिकारण हैं, क्योंकि तन्तु-संयोग (असमवायिकारण) पट (कार्य) के साथ-साथ पट के समवायिकारण तन्तुओं में समवाय सम्बन्ध से रहता है । अतः, तन्तुसंयोग, पट (कार्य) के प्रति कार्यैकार्थ असमवायिकारण है ।

(ii) **कारणैकार्थप्रत्यासत्ति–'पटरूपं प्रति तन्तुरूपमसमवायिकारणम् । तत्र स्वगतरूपादिकं प्रति समवायिकारणं पटः, तेन सह तन्तुरूपस्यैकस्मिन् तन्तौ प्रत्यासत्तिरस्ति ।** अर्थात्–पटरूप (कार्य) के प्रति तन्तुरूप असमवायिकारण है, क्योंकि तन्तुरूप (असमवायिकारण) पटरूप (कार्य) के समवायिकारण (पट) के साथ तन्तुओं में समवाय सम्बन्ध से रहता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि–जो कारण, कार्य के समवायिकारण के साथ-साथ किसी एक अधिकरण में समवाय सम्बन्ध से रहता है, वह उस कार्य के प्रति कारणैकार्थ असमवायिकारण होता है । इस प्रकार असमवायिकारण का निर्दुष्ट लक्षण होगा–**'कार्यैकार्थकारणैकार्थप्रत्यासत्या समवायिकारणे प्रत्यासन्नं कारणं ज्ञानादि भिन्नमसमवायिकारणम् ।'**
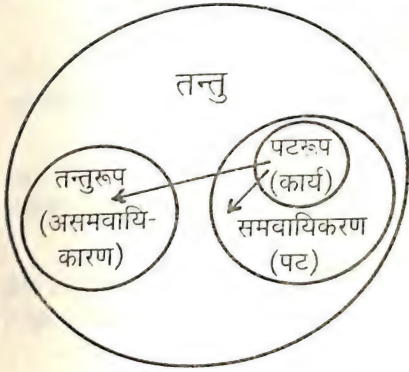
3. **निमित्तकारण–'आभ्यां समवायिकारणासमवायिकारणाभ्यां परं भिन्नं कारणं तृतीयं निमित्तकारणम् ।'** अर्थात्–समवायि और असमवायिकारण से भिन्न सभी कारण, निमित्तकारण के अन्तर्गत आते हैं, जैसे-पट (कार्य) के प्रति तुरी, वेमादिक निमित्त कारण हैं ।

अन्यथासिद्धि

मुक्तावलीकार विश्वनाथ तर्कपञ्चानन ने पाँच प्रकार के अन्यथासिद्ध प्रतिपादित किए हैं । अन्यथासिद्ध का अर्थ है–जिससे होने वाला कार्य किसी अन्य प्रकार से भी हो सकता है, अर्थात्–जिसका कार्य के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है । जैसे–घट के प्रति कुम्हार का पिता । पञ्चविध अन्यथासिद्धि का संक्षिप्त विवेचन अग्रलिखित है–

1. **"यत्कार्यं प्रति कारणस्य पूर्ववृत्तिता येन रूपेण गृह्यते, तत्कार्यं प्रति तद्रूपं अन्यथासिद्धम् । यथा घटं प्रति दण्डत्वम् ।"** अर्थात्–जिस कार्य के प्रति कोई वस्तु जिस स्वरूप या धर्म से कारण होती है, उस कार्य के प्रति उस वस्तु का स्वरूप अन्यथासिद्ध होता है, जैसे-घट के प्रति दण्डत्व अन्यथासिद्ध है ।

2. **"यस्य स्वातन्त्र्येणान्वयव्यतिरेकौ न स्तः, किन्तु कारणमादायैवान्वयव्यतिरेकौ गृह्येते, तदन्यथासिद्धम् । यथा-दण्डरूपम् ।"** अर्थात्–जिस कार्य के साथ स्वतन्त्र रूप से अन्वयव्यतिरेक व्याप्ति न बन सके, अपितु उस वस्तु के कारण के साथ परम्परया व्याप्ति वने वह उस कार्य के प्रति अन्यथासिद्ध होता है । जैसे–घट के प्रति दण्ड तो कारण है, परन्तु दण्ड में रहने वाला दण्डरूप घट के प्रति अन्यथासिद्ध है ।

3. **"अन्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृहीत्वैव यस्य यत्कार्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वं, तस्य तत्कार्यं प्रति अन्यथासिद्धत्वम् । यथा-घटादिकं प्रत्याकाशस्य ।"** अर्थात्–जिसका पूर्वभाव किसी अन्य वस्तु के प्रति पूर्वभाव जानकरके ही मालूम पड़े । जैसे–'आकाश' घट का पूर्ववर्ती है, यह हम तभी कह सकते हैं, जब शब्द के समवायिकारण के रूप में आकाश का स्वरूप समझ लें । अतः, 'आकाश' घट के प्रति अन्यथासिद्ध है ।

4. **"यत्कार्यजनकं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृहीत्वैव यस्य यत्कार्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृह्यते, तस्य तत्कार्यं प्रत्यन्यथासिद्धम् । यथा–कुलालपितुर्घटम्प्रति ।"** अर्थात्–किसी कार्य के कारण का कारण उस कार्य के प्रति अन्यथासिद्ध होता है । जैसे–घट कार्य के प्रति कुम्हार तो कारण है, परन्तु कुम्हार का पिता (कारण का कारण) अन्यथा सिद्ध है ।

5. **"अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिन एवं कार्यसम्भवे तद्भिन्नमन्यथासिद्धम् ।"** अर्थात्–जिस कार्य के प्रति जिस कारण का मानना अत्यन्त-आवश्यक हो तथा वह नियतपूर्ववर्ती हो, उसके अतिरिक्त जो कुछ भी हो; वह उस कार्य के प्रति अन्यथासिद्ध होता है । जैसे–घट कार्य के प्रति दैवागत रासभादि ।

टिप्पणी–

1. इसी पाँचवें अन्यथासिद्ध के अन्तर्गत शेष चारों अन्यथासिद्धों का भी अन्तर्भाव हो जाता है ।
2. **"एते पञ्चान्यथासिद्धा दण्डत्वादिकमादिमम् । घटादौ दण्डरूपादि द्वितीयमपिदर्शितम् ॥**
   तृतीयं तु भवेद्व्योम कुलालजनकोऽपरः । पञ्चमो रासभादिः स्यादेतेष्वाश्यकस्त्वसौ ॥"

4. आत्मा का स्वरूप

(i) चार्वाक का खण्डन

चार्वाकमत में क्रमशः शरीर, इन्द्रिय तथा मन को आत्मा के रूप में उपस्थापित किया गया है । न्यायमत में इन तीनों का निराकरण निम्नलिखित है–

1. **शरीरात्मवाद–** शरीरात्मवादी चार्वाकों के मत में–**'पृथिव्यादीनि भूतानि चत्वारि तत्त्वानि । तेभ्य एव देहाकारपरिणतेभ्यः किण्वादिभ्य : मदशक्तिवत् चैतन्यमुपजायते । चैतन्यविशिष्ट देह एव आत्मा ।'** यथोक्तम्–

"जड़भूतविकारेषु चैतन्यं यत्तु दृश्यते ।
ताम्बूलपूगचूर्णानां योगाद्राग इवोत्थितम् ॥

अर्थात्–शरीर ही आत्मा है । इसके खण्डन में न्यायसिद्धान्त मुक्तावलीकार ने लिखा है–**'शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः ।'** अर्थात्–यदि शरीर ही आत्मा है, तो मृत अवस्था में शरीर के विद्यमान रहने पर भी चैतन्य क्यों नहीं रहता । इसके अतिरिक्त शरीर को चेतन स्वीकार करने पर शैशवावस्था में देखे गए पदार्थों का वृद्धावस्था में स्मरण नहीं होगा । क्योंकि–शरीर, उत्पाद-विनाशशाली है । यदि चार्वाकपन्थी इसके पीछे संस्कारों को हेतु मानें, तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि–**'न च पूर्वशरीरोत्पन्नसंस्कारेण द्वितीयशरीरे संस्कार उत्पद्यत अनन्तसंस्कारकल्पने गौरवात् ।'** इसके अतिरिक्त शरीर को चेतन मानने पर इष्टसाधनतास्मारक के अभाव में उत्पन्न बालक की स्तन्यपान में भी प्रवृत्ति नहीं होगी । अतः 'शरीर' आत्मा नहीं हो सकता ।

2. **इन्द्रियात्मवाद**– चार्वाकपन्थी यदि इन्द्रियों को ही आत्मा मानें, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि-**'इन्द्रियाणामुपघाते कथं स्मृतिः ।'** अर्थात्–**'पूर्वं चक्षुषा साक्षात्कृतानां चक्षुषोऽभावे स्मरणं न स्यात् । अनुभवितुरभावात् । अन्यदृष्टस्यान्येन स्मरणासम्भवात् ।'** अतः स्मरणानुपपत्ति होने से इन्द्रियात्मवाद भी खण्डित हो जाता है ।

3. **मनसात्मवाद**– मनसात्मवादी चार्वाक के अनुसार-नित्य मनस् इन्द्रिय ही आत्मा है । इसके खण्डन में मुक्तावलीकार का कहना है–**'मनोऽपि न तथा ज्ञानाद्यनध्यक्षं तदा भवेत् ।'** अर्थात्–मनस् को चैतन्य मान लेने पर ज्ञानादि का प्रत्यक्ष ही नहीं होगा, क्योंकि महत्परिमाण, प्रत्यक्ष में कारण है; जबकि मन अणुपरिमाणवाला है । यदि मन को महत्परिमाण मान भी लिया जाए, तो एक ही समय में अनेक ज्ञान होने लगेंगे, जबकि यह नियम है कि-एक समय में एक ही ज्ञान होता है; क्योंकि-अणुपरिमाण होने से मनस् किसी एक समय में किसी एक ही इन्द्रिय के साथ सम्बद्ध होता है । मुक्तावलीकार के शब्दों में–**"मनसोऽणुत्वात्प्रत्यक्षे च महत्त्वस्य हेतुत्वान्मनसि ज्ञानसुखादिसत्त्वे तत्प्रत्यक्षानुपपत्तिरिति ।"**

(ii) विज्ञानवाद का खण्डन

क्षणिकविज्ञानवादी योगाचार बौद्धों के अनुसार–**'विज्ञानमेवात्मा, तस्य स्वतः प्रकाशरूपत्वाच्चेतनत्वम्, ज्ञानसुखादिकन्तु तस्यैवाकारविशेषः ।'** अर्थात्–स्वप्रकाश होने से विज्ञान ही चेतन आत्मा है । ज्ञान, सुख, दुःखादि तो उसी के आकार विशेष हैं । बाह्य जगत् में हमें जो कुछ भी दिखाई देता है, उसका बाह्य अस्तित्व नहीं है । वह हमारे विज्ञान का ही स्वरूप है । यह विज्ञान क्षणिक है, तथा मृगमदवासनावसितवसनसङ्क्रम के समान पूर्व-पूर्व विज्ञान संस्कार उत्तरोत्तर विज्ञान में संक्रान्त होते रहते हैं । यह क्षणिकविज्ञान–1. प्रवृत्ति तथा 2. आलय भेद से दो प्रकार का है । इनमें घट-पटादिविषयक प्रवृत्ति विज्ञान एवं अहमहं इत्याकारक निर्विषयकज्ञान आलयविज्ञान है ।

खण्डन–नैयायिक, बौद्धों की उपर्युक्त बातों का खण्डन करते हुए आपत्ति उठाता है कि–

1. क्षणिक विज्ञान को आत्मा मानने पर विज्ञान के जगद्विषयक होने से सर्वज्ञत्वापत्ति, एवं यत्किञ्चिद्विषयक होने से विनिगमना विरह-दोष प्रसक्त होगा–**'तस्य जगद्विषयकत्वे सर्वज्ञत्वापत्तिः यत्किञ्चित्विषयकत्वे विनिगमनाविरहः ।'**

2. सुषुप्त्यवस्था में आलयविज्ञान की निर्बाध धारा मानने पर उस समय भी हमें घट, पटादि का ज्ञान होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता है । अतः विषयाभाव प्रसङ्ग होगा–**'सुषुप्तावपि विषयाभावप्रसङ्गाच्च, ज्ञानस्य सविषयत्वात् ।'**

3. विज्ञानवादी यदि, घट-पटादि को विज्ञान का ही आकार-विशेष मानें, तो यह आकार विशेष यदि विज्ञान से भिन्न होगा, तो भिन्न वस्तु सिद्ध हो जाएगी, अन्यथा अभिन्न मानने पर समूहावलम्बन ज्ञान में नीलाकार, पीताकार हो जाएगा ।

4. विज्ञानवादी यदि नीलत्व-पीतत्वादि धर्म को अपोह (अतद्व्यावृत्ति) रूप में मानें तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा मानने पर दो विरुद्ध धर्म ऊष्णता और शीतलता की भी एक साथ प्रतीति होने लगेगी ।

5. बौद्धसम्मत-मृगमदवासना-वसित-वसन-संक्रम भी सम्भव नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर माता की वासना या संस्कार पुत्र में भी चला जाएगा, जो सम्भव ही नहीं है ।

6. बौद्ध दर्शन में चूँकि पहला विज्ञान पूर्णतः नष्ट हो जाता है, अतः पूर्वविज्ञान का संस्कार उत्तर विज्ञान में जा ही नहीं सकता ।

7. प्रत्येक विज्ञान में संस्कार तथा उसके उत्पादक प्रत्येक विज्ञान की उत्पत्ति यदि नए सिरे से मानी जाए, तो विज्ञान के अनन्त होने से संस्कार भी अनन्त होगें–**'उत्तरस्मिन्नुत्पत्तिरेव संक्रम इति चेत् न तदुत्पादकाभावात् । चितामेवोत्पादकत्वे तदानन्त्यप्रसङ्गः ।'** अतः, क्षणिकविज्ञान को आत्मा मानना उचित नहीं है ।

(iii) साङ्ख्यमत का खण्डन

साङ्ख्यदर्शन में आत्मा को 'पुरुष' शब्द से सम्बोधित किया गया है । अतः पुरुष को चैतन्य का आश्रय नहीं अपितु 'चैतन्य' ही माना गया है–**'पुरुषस्तु पुष्करपलाश वन्निर्लेपः किन्तु चेतनः ।'** न्याय-वैशेषिक मत में ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःखादि गुण जो आत्मा के माने जाते हैं; सांख्यमत में, वे आत्मा के नहीं अपितु बुद्धि के गुण हैं । यह बुद्धि-प्रकृति की विकृति होने से चूँकि जड़ है, अतः चेतनता इस बुद्धि का धर्म नहीं हो सकता । बुद्धिगत स्वच्छ स्वरूप, पुरुष में प्रतिबिम्बित होने के कारण, पुरुष में कर्तृत्व, ज्ञातृत्व आदि प्रतीत होते हैं तथा साथ ही बुद्धि में चेतनता की प्रतीत होती है–**"तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम् । गुण कर्त्तृत्वेऽपि तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः ॥" (सांख्यकारिका)**

न्यायमत में ज्ञानादि जिस अधिकरण में रहते हैं, उसी में चेतनता भी रहती है । यदि सांख्यसम्मत बुद्धि को प्रयत्नादि के आश्रय के साथ-साथ चेतनता का भी आश्रय स्वीकार कर लिया जाए तो न्याय की आत्मा तथा सांख्य की बुद्धि दोनों समान हो जाएंगी । इसके विपरीत सांख्यमतानुसार बुद्धि को पुरुष से भिन्न मानने पर–यदि बुद्धि नित्य है, तो उसके सदैव बने रहने से पुरुष का कभी मोक्ष नहीं होगा, तथा यदि बुद्धि अनित्य है, तो वह कभी उत्पन्न हुई होगी । अतः बुद्ध्युत्पत्ति से पूर्व की सृष्टि में बुद्धिहीनता का दोष उत्पन्न होगा–**'बुद्धेर्नित्यत्वे मोक्षाभावोऽनित्यत्वे तत्पूर्वमसंसारापत्तिः ।'** वस्तुतः न्यायमत में जड़ प्रकृति से उत्पन्न बुद्धि को जड़ मानना सांख्य की मनगढ़न्त कल्पना मात्र है । स्तन्यपान में बालक की प्रवृत्ति को देखते हुए ज्ञानादि के आश्रयभूत बुद्धि को नित्य तथा चेतन ही कहना चाहिए, जो न्याय की आत्मा का स्वरूप है, क्योंकि प्रकृति की कार्यरूपा जड़ बुद्धि को ज्ञानादि का आश्रय मानने में कोई प्रमाण नहीं है–**'अनादेर्नाशासम्भवान्नित्यत्वम् । तत्किं प्रकृत्यादि कल्पनेन ।'** अपने मत की पुष्टि में संख्य गीता की निम्नलिखित उक्ति प्रस्तुत करता है–**"प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहंकार विमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते ॥ गीता** 3/27// यहाँ पर नैयायिक, प्रकृति का अर्थ सांख्य की प्रकृति नहीं, अपितु धर्माधर्माख्य 'अदृष्ट' तथा गुण का अर्थ-अदृष्टजन्य इच्छा मानते हैं । मुक्तावलीकार के शब्दों में– **'प्रकृतेरदृष्टस्य गुणैरदृष्टजन्यैरिच्छादिभिः कर्ताहमेवेत्यस्य तदर्थत्वात् ।'** अतः पुरुष को आत्मा मानना ठीक नहीं है ।

(iv) नित्यविज्ञानात्मवादी अद्वैतमत का खण्डन

अद्वैतवादी वेदान्ती का मानना है कि-नित्यविज्ञान ही आत्मा है–**'नित्यविज्ञानमेवात्मा ।'** जबकि-नैयायिकों के मत में आत्मा ज्ञानस्वरूप नहीं है, अपितु ज्ञान का अधिकरण है । आत्मा एक द्रव्य है, ज्ञान उसमें समवायसम्बन्ध से रहने वाला एक गुणमात्र है, जबकि वेदान्ती इसे आत्मा का स्वरूप मानता है । यदि आत्मा को नित्यविज्ञानस्वरूप मान भी लिया जाए, तो आत्मा के सभी विषयों का ज्ञान एक साथ होना चाहिए, इससे प्रत्येक मनुष्य सर्वज्ञ हो जाएगा । यदि एक समय में एक ही ज्ञान मानें तो, उस समय उस विषय का ही ज्ञान क्यों होता है, इसमें विनिगमना क्या होगी ? इस प्रकार आत्मा की सविषयकता बाधित हो जाती है, तथा निर्विषयक ज्ञान हो ही नहीं सकता–**'अतो ज्ञानादिभिन्नो नित्यात्मेति सिद्धम् ।'**

जहाँ तक श्रुतिवाक्यों का प्रश्न है–**"अविनाशी वारेऽयमात्मा" "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "नित्यविज्ञानमानन्दं ब्रह्म" "यः सर्वज्ञः स सर्ववित् ।"** इत्यादि श्रुतिवाक्य नैयायिक मत में ब्रह्मविषयक हैं । इनका सम्बन्ध आत्मा से नहीं है । ये तो अर्थवाद मात्र हैं । इनका भाव है कि-ईश्वर की उपासना में अभेदभाव रखना चाहिए । यदि वेदान्ती यह कहें कि-**'मोक्षावस्थायामज्ञाननिवृत्तौ अभेदो जायते ।'** ऐसा भी ठीक नहीं है, क्योंकि भेद तो नित्य है । उसका नाश सम्भव नहीं है । भेदनाश हो भी जाए, तो व्यक्तिद्वय तो बने ही रहेंगे । यदि दोनों व्यक्तियों को एक-एक करके देखें तो भी उनमें एकत्व धर्म रहता ही है । यदि दोनों व्यक्तियों को मिलाकर देखें तो यह कहना ही पड़ेगा कि-वे दोनों एक नहीं है । जैसे–अकेले पृथिवी में गन्ध होने पर भी-**'पृथिवीजलयोर्न गन्धः'** ऐसा कहा जाता है ।

इसके अलावा मोक्षावस्था में अभेद का प्रतिपादक वेदवाक्य भी सुख-दुःखादि रहित जीवात्मा का ईश्वर के साथ सादृश्य कथन मात्र है । जैसे–धनाधिक्य में **'पुरोहितोऽयं राजा संवृतः । अतः निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ।'** ऐसा सुना जाता है । अतः सुस्पष्ट है कि-आत्मा नित्यज्ञानस्वरूप नहीं है, अपितु ज्ञान का आश्रय है–**'ईश्वरोऽपि न ज्ञानसुखात्मा, किन्तु ज्ञानाद्याश्रयः, नित्यंविज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादौ विज्ञान ज्ञानाश्रय एवोक्तः, 'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्' इत्याद्यनुरोधात् । आनन्दमित्यस्याप्यानन्दवदित्यर्थः ।'**

5. प्रत्यक्ष-सिद्धान्त

(i) प्रत्यक्ष की परिभाषा

'प्रत्यक्ष-प्रमा' का लक्षण करते हुए मुक्तावलीकार ने लिखा है– **'इन्द्रियजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ।'** अर्थात्–**'इन्द्रियजन्यत्वे सति ज्ञानत्वं प्रत्यक्षप्रमायाः लक्षणम् ।'** ज्ञातव्य है कि-यद्यपि सभी ज्ञान मनोरूप इन्द्रिय से ही जन्य हैं, तथापि इन्द्रियत्व रूप में इन्द्रिय जिस ज्ञान में करण **(असाधारणकारणं करणम्)** हो, वही ज्ञान प्रत्यक्ष है–**'यद्यपि मनोरूपइन्द्रियजन्यं सर्वमेव ज्ञानं तथापि इन्द्रियत्वेन रूपेण इन्द्रियाणां यत्र ज्ञाने करणत्वं, तत्प्रत्यक्षमिति ।'** इस प्रकार उपर्युक्त लक्षण का अभिप्राय है–**'इन्द्रियत्वावच्छिन्न - व्यापारसम्बन्धावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतावत् ज्ञानत्वम् ।'** यह लक्षण केवल जीवात्मा के प्रत्यक्ष का लक्षण है । ईश्वरप्रत्यक्ष इस लक्षण का लक्ष्य नहीं है–**'ईश्वरप्रत्यक्षं तु न लक्ष्यम् ।'** इस कथन की पुष्टि में मुक्तावलीकार ने न्यायसूत्र के प्रत्यक्ष लक्षण का उल्लेख करते हुए लिखा है–**'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ।'** अर्थात्–इन्द्रिय का अर्थ के साथ सम्बन्ध होने से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है, जो कि अशाब्द हो, व्यभिचारशून्य हो तथा विशेषणविशेष्यभावावगाही हो । यह लक्षण अनित्यप्रत्यक्ष प्रमा का है, जबकि ईश्वर प्रत्यक्ष नित्य होता है ।

नव्यन्याय के संस्थापक श्री गङ्गेश उपाध्याय ने 'तत्त्वचिन्तामणि' में **'ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ।'** ऐसा प्रत्यक्ष का लक्षण किया है, जो मुक्तावलीकार को भी अभिप्रेत है । इस लक्षण का अर्थ है-वह ज्ञान, जिसमें कोई अन्य ज्ञान कारण न हो-**'ज्ञानं न करणं यस्य तद् ज्ञानाकरणकम् तादृशं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ।'** इस प्रकार यह लक्षण सर्वथा विशुद्ध है, क्योंकि-अनुमिति में-व्याप्तिज्ञान, उपमिति में-सादृश्यज्ञान, शाब्दीप्रमा में-पदज्ञान, तथा स्मृति में-अनुभव करण होता है । इन चारों का 'ज्ञानाकरणकम्' पद के द्वारा निराकरण हो जाता है । अतः अतिव्याप्तिदोष भी नहीं होगा । यह लक्षण ईश्वरप्रत्यक्ष में भी घटित हो जाता है–**'इदं लक्षणं ईश्वरप्रत्यक्षसाधारणम् ।'** क्योंकि-ईश्वरप्रत्यक्ष या अनित्यप्रत्यक्ष दोनों में कहीं भी प्रत्यक्ष के प्रति व्याप्त्यादि ज्ञान करण नहीं होते हैं ।

(ii) प्रत्यक्ष के प्रकार

'घ्राणजादिप्रभेदेन प्रत्यक्षं षड्विधं स्मृतम् ।' अर्थात्–1. घ्राणज, 2. रासन, 3. चाक्षुष, 4. स्पार्शन, 5. श्रौत्र तथा 6. मानस भेद से प्रत्यक्ष छः प्रकार का होता है । इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है–

1. **घ्राणज-प्रत्यक्ष–** घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध गुण तथा गन्धत्व जाति है, परन्तु ध्यातव्य है कि-गन्धसहित द्रव्य (गन्धाश्रय = पृथिवी) के ग्रहण में घ्राणेन्द्रिय समर्थ नहीं है–**'गन्धस्य प्रत्यक्षत्वात्तद्वृत्ति-जातिरपि प्रत्यक्षा, गन्धाश्रय ग्रहणे तु घ्राणस्यासामर्थ्यम् ।'** इस गन्ध को उद्भूत होना चाहिए ।

2. **रासन-प्रत्यक्ष–**रसनेन्द्रिय द्वारा रस गुण तथा रसत्व जाति का ग्रहण होता है । गन्ध की भाँति रस को भी उद्भूत होना चाहिए-**'गन्धो रसश्च उद्भूतो बोध्यः ।'**

3. **चाक्षुष-प्रत्यक्ष–**उद्भूत रूप चक्षु-इन्द्रिय का विषय है, अनुद्भूत रूप नहीं, जैसे–ग्रीष्म-ऋतु की गर्मी में अनुद्भूत रूप होने से, उसका चाक्षुष-प्रत्यक्ष नहीं होता है । उद्भूतरूपवान् द्रव्य–पृथ्वी, जल, तेज तथा गुण–संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह एवं प्रत्यक्ष योग्य पाँचों प्रकार की क्रियाएं और समवाय का ग्रहण चक्ष्विन्द्रिय द्वारा उद्भूत रूप तथा प्रकाश के सम्बन्ध से होता है–**'आलोकसंयोग उद्भूतरूपं च चाक्षुषप्रत्यक्षे कारणत्वम् ।'**

4. **श्रौत्र-प्रत्यक्ष**–श्रोत्रेन्द्रिय से शब्दगुण तथा शब्दत्व जाति का ग्रहण होता है ।

5. **स्पार्शन-प्रत्यक्ष**–उद्भूत स्पर्श वाले द्रव्य का ग्रहण त्वगिन्द्रिय से होता है । ज्ञातव्य है कि इस विषय में प्राचीन तथा नवीन नैयायिकों में मतभेद है । **प्राचीनों के मत में**–जिस द्रव्य में रूप हो तथा स्पर्श भी हो, उस द्रव्य का चाक्षुष प्रत्यक्ष के साथ-साथ स्पार्शन प्रत्यक्ष भी होता है, परन्तु जिस द्रव्य में स्पर्श तो है, परन्तु रूप नहीं है, ऐसे द्रव्य के स्पर्श गुण का प्रत्यक्ष तो होता है, परन्तु स्पर्श वाले द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं होता है, जैसे-वायु । **नव्यनैयायिकों के मत में**–गुण का प्रत्यक्ष होने पर गुणी का भी प्रत्यक्ष माना जाता है । अतः वायु, प्रभादि में संख्या का ग्रहण होने से वायु, प्रभादि द्रव्यों का भी प्रत्यक्ष मानना चाहिए ।

6. **मानस-प्रत्यक्ष**–'**मनोग्राह्यं सुखं दुःखमिच्छा द्वेषो मतिः कृतिः** ।' अर्थात्–सुख-दुःख-इच्छा-द्वेष-मति (ज्ञान)-कृति (प्रयत्न) एवं सुखत्वादि जातियाँ ये सब मनोग्राह्य होते हैं । ज्ञान सामान्य के प्रति त्वक् मनस् संयोग हेतु माना जाता है, परन्तु कुछ लोग चर्म-मनस् संयोग को ज्ञानसामान्य के प्रति हेतु मानते हैं ।

(iii) लौकिक तथा अलौकिक सन्निकर्ष

1. षड्विध लौकिक सन्निकर्ष–कारिकावलीकार विश्वनाथ तर्कपञ्चानन के शब्दों में–'**विषयेन्द्रिय सम्बधो व्यापारः सोऽपि षड्विधः** ।' अर्थात्–विषय और इन्द्रिय का सम्बन्ध ही व्यापार (सन्निकर्ष) है । व्यापार का अभिप्राय है–'**तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापारः** ।' लौकिक पक्ष में सन्निकर्ष को संयोगादि छः वर्गों में रखा गया है । इनका संक्षिप्त-विवेचन निम्नलिखित है–

(i) **संयोग**–'**द्रव्यप्रत्यक्षमिन्द्रियसंयोगजन्यम्**' अर्थात्–किसी द्रव्य का इन्द्रिय के साथ संयोग होने से जो प्रत्यक्ष होता है, वह संयोगसन्निकर्ष से होता है । उदाहरणतया–चक्षु से घट के प्रत्यक्ष में चक्षिवन्द्रिय का घट द्रव्य के साथ संयोग । '**चक्षुषाघटप्रत्यक्षजनने संयोगसन्निकर्षः** ।' **तर्कसंग्रह** ॥

(ii) **संयुक्त-समवाय**–'**द्रव्यसमवेतप्रत्यक्षमिन्द्रियसंयुक्तसमवायजन्यम्** ।' अर्थात्–द्रव्यसमवेत रूपादि गुणों का प्रत्यक्ष इन्द्रियसंयुक्तसमवायसन्निकर्ष से होता है–'**घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायसन्निकर्षः, चक्षुः संयुक्ते घटे रूपस्य समवायात्** ।' **तर्कसंग्रह** ॥

(iii) **संयुक्त-समवेत-समवाय**–द्रव्य में समवेत गुण, कर्म पर समवेत गुणत्व, कर्मत्व का प्रत्यक्ष, इन्द्रियसंयुक्तसमवायसन्निकर्ष से होता है । उदाहरणतया–'**रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः सन्निकर्षः, चक्षुः संयुक्ते घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात्** ॥'

(iv) **समवाय**– श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द के प्रत्यक्ष में समवाय-सन्निकर्ष माना जाता है–'**श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः सन्निकर्षः । कर्णविवरवर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वाद् गुणगुणिनोश्च समवायात्** ।'

(v) **समवेत-समवाय**–श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द में समवेत शब्दत्व जाति का प्रत्यक्ष समवेत-समवाय सन्निकर्ष से होता है–'**शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवाय-सन्निकर्षः । श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात्** ।'

(vi) **विशेषणता**–समवाय-सम्बन्ध तथा अभावपदार्थ का प्रत्यक्ष स्वरूपसम्बन्धाख्य 'विशेषणता' सम्बन्ध से होता है । इन्द्रियसम्बद्ध भूतल आदि में विशेषणीभूत अभाव आदि का ग्रहण इन्द्रियसम्बद्ध-विशेषणता-सन्निकर्ष से होता है, जैसे '**घटाभाववद्भूतलम्**' ऐसा ज्ञान । यहाँ पर बोधव्य है कि-वैशेषिक, समवाय का प्रत्यक्ष नहीं मानते । मुक्तावलीकार के शब्दों में–'**अभावप्रत्यक्षे समवायप्रत्यक्षे च इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता हेतुः । वैशेषिकमते तु समवायो न प्रत्यक्षः** ।'

2. त्रिविध अलौकिक सन्निकर्ष–त्रिविध अलौकिक सन्निकर्ष का निरूपण करते हुए कारिकावलीकार आचार्य विश्वनाथ तर्कपञ्चानन जी लिखते हैं–

"**अलौकिकस्तु व्यापारस्त्रिविधः परिकीर्तितः । सामान्यलक्षणो ज्ञानलक्षणो योगजस्तथा** ॥"

(i) **सामान्यलक्षण–'सामान्यं लक्षणं यस्य सः ।'** यहाँ पर, 'सामान्य है लक्षण जिसका' इस व्युत्पत्ति में 'लक्षण' शब्द के दो अर्थ हैं–1. स्वरूप तथा 2. विषय । **'स्वरूप'** अर्थ करने पर सामान्य स्वरूप-प्रत्यासत्ति होती है । इससे जहाँ धूमादि विशेष्य पदार्थों के साथ नेत्रादि इन्द्रियों का सम्वन्ध हुआ है, वहाँ पर धूमादि विशेष्यक 'धूमः' इत्याकारक ज्ञान में धूमत्व प्रकार (विशेषण) है । इस धूमत्वरूप सन्निकर्ष से-'धूमा' इत्याकारक सकलधूमविषयक ज्ञान उत्पन्न होता है । मानस-प्रत्यक्ष स्थल में–**'ज्ञानप्रकारीभूतं सामान्यमात्रं प्रत्यासत्तिः'** होती है । इसीलिए शब्दादि के द्वारा किसी पिशाचादि की उपस्थिति होने पर समस्त पिशाचादि के विषय में मानस-बोध हो जाता है । इसके अतिरिक्त–**'समानानां भावं सामान्यम्'** इस व्युत्पत्ति से धर्ममात्र का ग्रहण होता है, जो कहीं तो नित्यधूमत्वादि (जाति), तथा कहीं अनित्य घटादि (व्यक्ति) होता है । उसी सम्वन्ध से उस अधिकरण वाले समस्त धर्मों को उपस्थित करता है, जैसे–समवाय-सम्वन्ध से घटयुक्त कपाल का ज्ञान होने पर समवाय-सम्वन्ध से ही घटयुक्त समस्तकपालों की उपस्थिति होगी । इस प्रकार स्पष्ट होता है कि-सामान्यविषयक ज्ञान ही प्रत्यासत्ति (सन्निकर्ष) है–**'आसत्तिराश्रयाणां तु सामान्यज्ञानमिष्यते ।'**

(ii) **ज्ञानलक्षण–'विषयी यस्य तस्यैव व्यापारो ज्ञानलक्षणः ।'** अर्थात्–जिसका ज्ञान होता है, उसी का सन्निकर्ष, 'ज्ञानलक्षणसन्निकर्ष' कहा जाता है । उदाहरणतया–**'सुरभिचन्दनम्'** इस प्रयोग से जिस सौरभादि का ज्ञान होता है, उसी सौरभादि का जो सन्निकर्ष है, वही ज्ञानलक्षण है । यहाँ पर चन्दन से तो चक्षु का सन्निकर्ष होता है, परन्तु सुगन्ध में ज्ञानलक्षण-सन्निकर्ष होता है । इसी को 'उपनीतभान' भी कहते हैं । यद्यपि यह 'सौरभज्ञान' सामान्यलक्षण से भी सम्भव है, परन्तु सौरभत्व का ज्ञान ज्ञानलक्षण से ही होता है–**'यद्यपि सामान्यलक्षणयापि सौरभभानं सम्भवति, भौरभत्वस्य भानं ज्ञानलक्षणया ।**

(iii) **योगज–'योगात् जातो योगजः ।'** अर्थात्–**'योगाभ्यासजनितो धर्मविशेषः श्रुतिपुराणादिप्रतिपाद्यः ।'** यह 1. युक्त, 2. युञ्जान भेद से दो प्रकार का होता है–**"योगजः द्विविधः प्रोक्तः युक्तयुञ्जानभेदतः । युक्तस्य सर्वदाभानं चिन्तासहकृतोऽपरः ।"**

1. **युक्त–**युक्त योगी को योगजधर्म की सहायता से मन के द्वारा आकाश, परमाणु आदि निखिलपदार्थों का ज्ञान सदैव होता रहता है–**'युक्तस्य सर्वदा भानम् ।'**

2. **युञ्जान–**युञ्जांन योगी को धारणाध्यानादि संयमरूप चिन्ताविशेष करने से अलौलिक प्रत्यक्ष होता है–**'चिन्तासहकृतोऽपरः ।'**

6. अनुमान-सिद्धान्त

(i) व्याप्ति की परिभाषा

'व्याप्ति' का अर्थ होता है-'अविनाभाव या साहचर्यनियम'–**'यत्र-यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति साहचर्य नियमोव्याप्तिः ।'** (तर्कसंग्रह) । कारिकावलीकार के शब्दों में–**"व्याप्तिः साध्यवदन्यस्मिन्नसम्बन्ध उदाहृतः ।"** अर्थात्–साध्यवान् से भिन्न पदार्थ में हेतु का न रहना (अवृत्तित्व) ही व्याप्ति है । उदाहरणतया–**'वह्निमान् धूमात्'** इस प्रयोग में हेतुभूत धूम, वह्निमान् से भिन्न ह्रदादि पदार्थों में नहीं रहता है । अतः लक्षण-समन्वय हो जाता है । इसके विपरीत **'धूमवान् वह्नेः'** इस प्रयोग में हेतुभूत वह्नि की धूम के साथ व्याप्ति नहीं है; वस्तुतः होना भी नहीं चाहिए, क्योंकि-धूमवान् पदार्थों से भिन्न तप्तलौहपिण्ड में हेतुभूत वह्नि का अस्तित्व पाया जाता है । इस प्रकार उपर्युक्त लक्षण के निर्दुष्ट प्रतीत होने पर भी मुक्तावलीकार ने कुछ अपेक्षित परिष्कार करते हुए साध्यवान्, साध्यवदन्यादि को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है–

1. **येन सम्बन्धेन साध्यं तेनैव सम्बन्धेन साध्यवान् बोध्यः ।**
2. **साध्यवदन्यश्च साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवान्बोध्यः ।**
3. **येन सम्बन्धेन हेतुता तेनैव सम्बन्धेन साध्यवदन्यवृत्तित्वं बोध्यम् ।**

4. **साध्यवदन्यावृत्तित्वं च साध्यवदन्यवृत्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः ।**

इस प्रकार 'पूर्वपक्ष व्याप्ति' के अनन्तर 'सिद्धान्तपक्ष' को प्रस्तुत करते हुए विश्वनाथपञ्चानन जी लिखते हैं–**"अथवाहेतुमन्निष्ठविरहाप्रतियोगिना । साध्येन हेतोरैकाधिकरण्यं व्याप्तिरुच्यते ।"** अर्थात्-हेतु के अधिकरण में रहने वाला जो अभाव, उसका अप्रतियोगी जो साध्य, उसके साथ हेतु के समानाधिकरण्य को 'व्याप्ति' कहते हैं । जैसे–**'पर्वतो वह्निमान् धूमात् ।'** इस प्रयोग में-धूम का अधिकरण पर्वत है, उसमें रहने वाला घटाभाव, उसका (प्रतियोगी घट) अप्रतियोगी वह्नि (साध्य) का धूम (हेतु) के साथ पर्वतरूपी एक अधिकरण में रहना ही व्याप्ति है । इस प्रकार लक्षण समन्वय हो जाता है । यहाँ पर अव्याप्ति निवारण हेतु–**'तद् हेत्वधिकरणवृत्त्यभावाप्रतियोगी तत् साध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः ।'** कहा गया है । **'वृक्षः'कपिसंयोगवान् एतत्वृक्षत्वात्'** इस स्थल में अभाव का अर्थ प्रतियोगिव्यधिकरण' है–**'हेत्वधिकरणे प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्य विवक्षितत्वात्, स्वप्रतियोग्यनधिकरणीभूत हेत्वधिकरणवृत्त्यभावः ।'** इस प्रकार सभी अव्याप्तियों से रहित 'व्याप्ति' का निर्दुष्ट लक्षण होगा–**'प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणीभूत हेत्वधिकरणवृत्त्यभावप्रतियोगितासामान्ये यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वयद्धर्मावच्छिन्नत्वोभयाभावः, तेन सम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य तद्हेतुव्यापकत्वं बोध्यम् । व्यापकसामानाधिकरण्यं च व्याप्तिः ।'**

(ii) पक्षता (पक्षधर्मता) की परिभाषा

कारिकावलीकार के शब्दों में–**"सिषाधयिषा-शून्या सिद्धिर्यत्र न विद्यते । स पक्षस्तत्र वृत्तित्वज्ञानादनुमितिर्भवेत् ॥"** अर्थात्–सिषाधयिषा के विरह से विशिष्ट सिद्धि के अभाव को 'पक्षता' कहते हैं । इस पक्षता का आश्रय पक्ष होता है–**'सिषाधयिषा-विरहविशिष्ट सिद्ध्यभावः पक्षता, तद्वान् पक्षः ।'**

ध्यातव्य है कि-सिषाधयिषा मात्र पक्षता नहीं है, क्योंकि विना सिषाधयिषा के भी घनगर्जित से **'गगनं मेघवत्'** ऐसा मेघानुमान होता है । अतः–**'साध्यसन्देहोऽपि न पक्षता विनाऽपि सन्देहं तदनुमानात् ।'**

सिद्धि के होने पर भी सिषाधयिषा होने पर अनुमिति होती है । इस प्रकार जहाँ सिद्धि नहीं है, वहाँ सिषाधयिषा के होने या न होने पर भी पक्षता होती है । जहाँ सिषाधयिषा है, वहाँ सिद्धि के होने या न होने पर भी 'पक्षता' होती ही है, परन्तु–**'यत्र सिद्धिरस्ति सिषाधयिषा च नास्ति, तत्र न पक्षता, सिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्धेःसत्वात् ।'**

पक्षता के विषय में यह भी वोधव्य है कि–**'यादृश-यादृशसिषाधयिषा-सत्त्वे सिद्धिसत्त्वे यल्लिङ्गकानुमितिः तादृश-तादृशसिषाधयिषा-विरहविशिष्टसिद्ध्यभावः तल्लिङ्गकानुमितौ पक्षता ।'** उदाहरणतया–**'पर्वते वह्न्यनुमितिर्मेजायताम् ।'** इस सिषाधयिषा के रहने पर, वह्नि की सिद्धि रहने पर भी, जिस धूम को हेतु मानकर 'पर्वतोवह्निमान्' यह अनुमिति होती है, उस 'सिषाधयिषाविरह-विशिष्टसिद्ध्यभाव' को धूमलिङ्गक अनुमिति में 'पक्षता' मानते हैं ।

यहाँ पर ज्ञातव्य है कि-पुरुष के विषय में संशय होने पर **(पुरुषो न वेति)** अनुमिति की इच्छा न होने पर पुरुष का प्रत्यक्ष होता है, अनुमिति नहीं । अतः जैसे–कामिनीजिज्ञासा अन्यज्ञान को स्वतन्त्रतापूर्वक रोक देती है, उसी प्रकार अनुमिति की इच्छा के अभाव के साथ प्रत्यक्ष की सामग्री स्वतन्त्ररूपेण अनुमिति की प्रतिबन्धिका है । अतः ऐसा नियम है कि-**'प्रत्यक्षेच्छाविरहविशिष्टानुमिति-सामग्रीभिन्नविषयकप्रत्यक्षे प्रतिबन्धिका ।'**

(iii) हेत्वाभास की परिभाषा व प्रकार

परिभाषा–असद्हेतु-विवेचनक्रम में मुक्तावलीकार ने हेत्वाभास को दो तरह से परिभाषित किया है–1. **'हेतोः आभासाः हेत्वाभासाः'**, 2. **हेतुवदाभासन्ते इति हेत्वाभासाः ।'**

1. **हेतोः आभासाः हेत्वाभासाः**–प्रस्तुत अर्थ में नव्यनैयायिकों के मत में हेत्वाभास की परिभाषा है–**'यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वं तत्त्वम् ।'** अर्थात्–यद्विषयक ज्ञान अनुमिति का विरोधी हो,

वह विषय हेत्वाभास कहलाता है–उदाहरणतया–**'ह्रदो वह्निमान् जलात्'** इस प्रयोग में वह्न्यभाववद् ह्रद विषयक बाधज्ञान **'ह्रदो वह्निमान्'** इस अनुमिति का विरोधी है । अतः यह दोष है । ध्यातव्य है कि प्रतिद्वन्द्वी परामर्श भय होने पर भी सद्हेतु दुष्ट नहीं होते । अतः वह्निव्याप्यपाषाणमयत्ववाला यह पर्वत है, इस रूप के परामर्श काल में 'वह्निव्याप्यधूम' सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास नहीं है, अपितु भ्रम के कारण अनुमिति का प्रतिवन्धक मात्र है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि–**'साध्याभाववद्वृत्तिहेत्वादिकं दोषः । तद्वत्वं च हेतौ येन केनापि सम्बन्धेनेति ।'**

2. **हेतुवदाभासन्ते इति हेत्वाभासाः**–यह लक्षण प्राचीन नैयायिकों का है । इनके मत में–**'यद्विषयत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वं तद्वत्वं हेत्वाभासत्वम् ।'** अर्थात्–जिस दोष विषयक ज्ञान, अनुमिति का विरोधी हो, तद्वत्व हेत्वाभास है । कहने का तात्पर्य यह है कि–**'ज्ञानवृत्तित्वविशिष्टयद्विषयकत्वावच्छिन्नानुमितिप्रतिबन्धिकता तद्वत्वं हेत्वाभासत्वम् ।'** उदाहरणतया–'ह्रदो वह्निमान्' इस अनुमिति का **'ह्रदो वह्न्यभाववान्'** यह बाधज्ञान, विरोधी है, क्योंकि अनुमितिविरोधित्व का अर्थ है–अनुमिति अथवा अनुमितिकरणव्याप्तिज्ञान का विरोधी । मुक्तावलीकार के शब्दों में–**'अनुमितिविरोधित्वं च अनुमितितत्करणान्यतरविरोधित्वम् । तेन व्यभिचारिणि नाव्याप्तिः । दोषज्ञानं च यद्धेतुकविषयकं तद्धेतुकानुमितौ प्रतिबन्धकं तेनैकहेतौ व्यभिचार ज्ञाने हेत्वन्तरेणानुमिति उत्पत्तेः ।'**

हेत्वाभास के प्रकार (भेद)

असद्धेतुविवेचनक्रम में मुक्तावलीकार ने हेत्वाभास के पञ्चभेदों का निरूपण करते हुए लिखा है–

"अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः । कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा ॥"

इनका संक्षिप्त-विवेचन इस प्रकार है–

1. अनैकान्तिक (सव्यभिचार)–"साधारणाद्यन्यतमत्वमनैकान्तिकत्वम् ।" अर्थात्–साधारणादि वहुतों में एक (अन्यतम) को अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं । इसके तीन भेद हैं–

(i) **साधारण–'यः सपक्षे विपक्षे च भवेत् साधारणस्तु सः ।'** अर्थात्–जो हेतु-सपक्ष तथा विपक्ष दोनों में रहे, जैसे–**'धूमवान् वह्नेः'** में वह्नि हेतु सपक्ष तथा विपक्ष दोनों में रहता है ।

(ii) **असाधारण–'सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः ।'** अर्थात् जो हेतु एकमात्र केवल पक्ष में ही पाया जाता है, उसे असाधारण हेत्वाभास कहते हैं, जैसे–**'शब्दो नित्यः शब्दत्वात् ।'**

(iii) **अनुपसंहारी**–अन्वयव्यतिरेक दृष्टान्त से रहित हेतु 'अनुपसंहारी हेत्वाभास' कहलाता है–**'अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी ।'** उदाहरणतया–**'सर्वमनित्यम् प्रमेयत्वाद् ।'**

2. विरुद्ध–'साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः ।' अर्थात्–जो हेतु साध्याभाव में व्याप्त हो, जैसे–**'शब्दो नित्यः कृतकत्वात् ।'** यहाँ पर कृतकत्व हेतु 'अनित्यत्व' से व्याप्त है ।

3. असिद्ध– 'असिद्धिमान् हेत्वाभासः असिद्धः ।' यह आश्रयासिद्ध, स्वरूपासिद्ध तथा व्याप्त्यासिद्ध भेद से तीन प्रकार का है–

(i) **आश्रयासिद्ध–'आश्रयासिद्धिः पक्षे पक्षतावच्छेदकस्याभावः ।'** उदाहरणतया–**'काञ्चनमयोपर्वतो वह्निमान् धूमात् ।'** यहाँ पर काञ्चनमयपर्वत (पक्षतावच्छेदक) ही असिद्ध है ।

(ii) **स्वरूपासिद्ध–'स्वरूपासिद्धिस्तु पक्षे व्याप्त्याभिमतस्याभावः ।'** उदाहरणतया–**'ह्रदो द्रव्यं धूमात्'** यहाँ पर पक्ष (ह्रद) में धूम की व्याप्ति ही नहीं बनती है । यह साध्याप्रसिद्धि तथा साधनाप्रसिद्धि भेद से दो प्रकार है ।

(iii) **व्याप्त्यासिद्ध**–नीलधूमादि को हेतु मानने पर व्याप्त्यासिद्धि होती है । उदाहरणतया–**'पर्वतो वह्निमान् नीलधूमात् ।'**

4. सत्प्रतिपक्ष–'विरुद्धयोः परामर्शे हेतोः सत्प्रतिपक्षता ।' अर्थात्–**'यस्य साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं विद्यते स सत्प्रतिपक्षः ।' यथा–'शब्दोनित्यः श्रावणत्वात् शब्दत्ववत् ।'** तथा **'शब्दोऽनित्यः जन्यत्वात् घटवत् ।'**

5. कालात्ययापदिष्ट (बाध)–'बाधस्तु पक्षे साध्याभावादिः ।' अर्थात्–**'साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ बाध उदाहृतः ।'** उदाहरणतया–उत्पत्तिकालीन घट में गन्धसाधना । अथवा 'वह्निरनुष्णः द्रव्यत्वात् ।' यहाँ पक्ष में साध्याभाव की उपस्थिति है ।
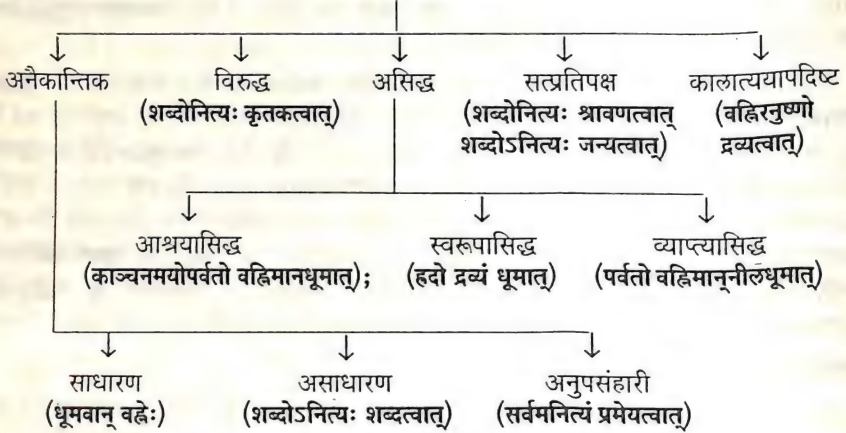
7. शब्द-अर्थ का सम्बन्ध

मुक्तावलीकार के मत में–

शब्द और अर्थ में जो अर्थस्मरण के अनुकूल परस्पर सम्बन्ध विशेष है; उसकी वृत्ति 1. शक्ति तथा 2. लक्षणा के भेद से दो प्रकार की है । इसमें पद के साथ पदार्थ के सम्बन्ध विशेष का नाम शक्ति है । वह, इस पद से यह अर्थ जानना चाहिए-ऐसा ईश्वरेच्छारूप है–**'शक्तिश्च पदेन सह पदार्थस्य सम्बन्धः । सा चास्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्यः इतीश्वरेच्छारूपः ।'** शक्तिग्रह के प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं–

7.1. शक्तिग्रहोपाय

**"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च ।
वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ॥"**

1. **व्याकरणात्**–धातु, प्रकृति प्रत्ययादि का शक्तिग्रह व्याकरण से होता है, जैसे–भूसत्तायां, वर्तमाने लट् इत्यादि, परन्तु कहीं-कहीं वाधा उपस्थित होने पर परित्याग भी कर दिया जाता है, जैसे–**'चैत्रः पचति'** में वैयाकरण तिङ् की शक्ति कर्ता में मानते हैं, परन्तु कर्ता के साथ चैत्र का अभेदान्वय होने से गौरवभयात् इसका परित्याग कर दिया जाता है–**"... किन्तु कृतौ शक्तिग्रहो लाघवात् । कृतिश्च चैत्रादौ प्रकारीभूय भासते ।"**

2. **उपमानात्**–आरण्यकपुरुषोपदिष्ट **'गो सदृशो गवयपदवाच्यः ।'** इस अतिदेशवाक्य के स्मरण-पूर्वक ग्रामीण पुरुष को गवय को देखते समय गौ के साथ गवय का जो सादृश्यज्ञान होता है, वही उपमिति में कारण है । इस प्रकार 'गवय' पद में उपमिति ज्ञान से शक्तिग्रह हो जाता है ।

3. **कोशात्–'कोशादपि शक्तिग्रहः । सति बाधके क्वचित्त्यज्यते ।'** जैसे–नीलादि पद की नीलरूपादि और नीलविशिष्ट में शक्ति है–**'गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणि लिङ्गास्तु तद्वति ।'** परन्तु लाघव के कारण इसकी शक्ति नीलादि में ही मानते हैं । नीलादिविशिष्ट में लक्षणा मानते हैं–**'लाघवान्नीलादेव शक्तिः नीलादिविशिष्टे तु लक्षणेति ।'**

4. **आप्तवाक्यात्**– आप्तपुरुष (यथार्थवक्ता) के कथनानुसार–**'कोकिलः पिकपदवाच्यः ।'** इस आप्तवाक्य से **'पिको रौति'** में पिक पद का कोकिल में शक्तिग्रह हो जाता है ।

5. **व्यवहारात्**– प्रयोजकवृद्ध से **'घटमानय'** पद को सुनते ही प्रयोज्यवृद्ध द्वारा घटानयन क्रिया को देखकर पुनः **'घटं नय'** से घट को ले जाने की क्रिया को देखकर पार्श्वस्थ बालक को घट पद में घड़े का तथा 'आनय' पद में आनयन क्रिया का शक्तिग्रह हो जाता है ।

6. **वाक्यशेषात्–'यवमयश्चरुर्भवति'** इस वाक्य में आर्य लोग 'यव' का अर्थ दीर्घसूक्विशेष (जौ) में तथा म्लेच्छ लोग कङ्गु में करते हैं, परन्तु निम्नलिखित वाक्यशेष से 'यव' पद की शक्ति दीर्घसूक्विशेष जौ में ही होती है–**"वसन्ते सर्वसस्यानां जायते पत्रशातनम् । मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः ॥"**

7. **विवृत्तेः–'विवरणं तु तत्समानार्थकपदान्तरेण तदर्थकथनम् ।'** अर्थात्–किसी पदार्थ को, उसी के समानार्थक (पर्याय) पद से कहना ही 'विवृति' है । जैसे–'घट' को 'कलश' शब्द से कहना– **'यथा–घटोऽस्तीत्यस्य कलशोस्तीत्यनेन विवरणाद् घटपदस्य कलशे शक्तिग्रहः ।'**

8. **सिद्धपदस्य सन्निधेः**–प्रसिद्ध पद की सन्निधि से भी शक्तिग्रह देखा जाता है । उदाहरणतया– **'इह सहकारतरौ मधुरं पिको रौति ।'** इस वाक्य में पिक पद का अर्थ न जानने वाला व्यक्ति भी प्रसिद्धार्थक 'सहकारतरू' पद के सान्निध्य से 'पिक' पद का 'कोकिल' में शक्तिग्रह कर लेता है ।
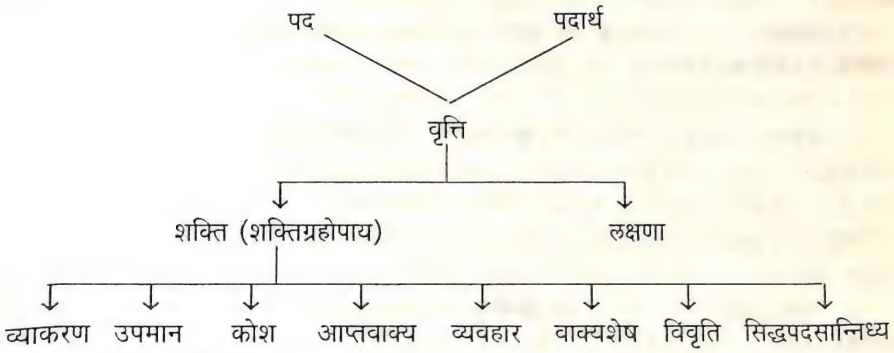
7.2. मीमांसकाभिमत जातिशक्ति का खण्डन

जिन पदों का जिन अर्थों में शक्तिग्रह होता है, वह जाति में होता है या व्यक्ति में, जैसे–'घट' पद की शक्ति घटत्व जाति में है या कम्बुग्रीवादिमत् व्यक्ति में । ऐसी स्थिति में मीमांसकों का मत पूर्वपक्ष के रूप में तथा नैयायिको का मत सिद्धान्त पक्ष के रूप में निम्नलिखित है–

मीमांसकमत–'तत्र जातावेव शक्तिर्न तु व्यक्तौ व्यभिचारादानन्त्याच्च ।' अर्थात्–जाति में ही शक्ति माननी चाहिए, व्यक्ति में नहीं, क्योंकि-व्यक्ति में शक्तिग्रह मानने पर व्यक्तियों के अनन्त होने से अनन्त शक्ति की कल्पना करनी पड़ेगी, जो सम्भव नहीं है । यदि किसी एक व्यक्ति में शक्तिग्रह मानें तो दूसरे व्यक्तियों में शक्तिग्रह न होने से शाब्दबोध नहीं होना चाहिए, परन्तु शाब्दबोध होता है । अतः **'कारणाभावे कार्योत्पादः'** यह व्यतिरेक व्यभिचार होगा । अतएव शक्ति–जाति में मानना चाहिए, व्यक्ति में नहीं । यदि यह कहा जाय कि-बिना व्यक्ति के जाति की प्रतीति नहीं हो सकती, तो जातिभासकसामग्री से ही व्यक्ति का बोध हो जाएगा, अथवा व्यक्ति में लक्षणा मान लेगें ।

नैयायिकमतानुसार खण्डन–मीमांसकमत के खण्ड में नैयायिक कहता है–**'तन्न शक्तिं व्यक्तिभानानुपपत्तेः ।'** अर्थात्–शाब्दबोध में वृत्त्या पदजन्यपदार्थोपस्थिति कारण है । यदि व्यक्ति में शक्ति नहीं है, तो शाब्दबोध में व्यक्ति में व्यक्तिभान नहीं होगा–**'व्यक्तौ शक्तिं विना व्यक्तेर्भानं न स्यात् इति भावः ।'** 'गौरस्ति' इत्यादि वाक्यों में अन्वयानुपपत्ति या तात्पर्यानुपपत्ति न होने से लक्षणा मानने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

जहाँ तक आनन्त्यदोष का प्रश्न है, सभी व्यक्तियों में एक ही शक्ति स्वीकार करने पर आनन्त्यदोष नहीं होगा, साथ ही सभी गौ के प्रति गोत्व के अनुगमक होने से अर्थात्–गो विषयक शाब्दबोध के प्रति–गोत्वावच्छिन्नयावद्गो-विशेष्यक एक शक्तिज्ञान की कारणता मानने से अननुगमरूपी दोष भी नहीं होगा । इसके अलावा मीमांसक यदि-**'गौः गोपदशक्या'** ऐसा शक्तिज्ञान माने तो व्यक्ति में शक्ति स्वतः सिद्ध है, अन्यथा यदि-**'गोत्वं गोपदशक्यं'** ऐसा माने तो गोत्वप्रकारक पदार्थस्मरण और गोत्वप्रकारकशाब्दबोध नहीं होगा; क्योंकि-**'समानप्रकारकत्वेन शक्तिज्ञानस्य पदार्थस्मरणं शाब्दबोधं प्रति हेतुत्वात् ।'** यदि 'गो' पद की गोत्व जाति में शक्ति मान भी ली जाए, तो शक्यतावच्छेदकधर्म गोत्वत्व होगा, ऐसी स्थिति में अनन्त गो व्यक्तियों का शक्यतावच्छेदककोटि में अनुप्रवेश होने से मीमांसकमत में ही गौरव होगा । अतएव **'तस्मात् तत्तज्जात्याकृतिविशिष्टतत्तद्व्यक्ति-बोधानुपपत्त्या कल्प्यमाना शक्तिर्जात्याकृतिविशिष्टव्यक्तौ विश्राम्यतीति ।'** इस प्रकार सुस्पष्ट है कि–व्यक्ति में ही शक्ति मानना श्रेयष्कर है ।

7.3. पद-निरूपण

मुक्तावलीकार ने पदों का निरुपण करते हुए लिखा है–**'शक्तं पदम् । तच्चतुर्विधम्-क्वचिद्यौगिकं, क्वचिद्रूढं, क्वचिद्योगरूढं, क्वचिद्यौगिकरूढम् ।'** अर्थात्–शक्ति से जो विशिष्ट होता है, वह पद कहलाता है । उपर्युक्त चतुर्विधपदों का विवेचन निम्नलिखित है–

1. **यौगिक पद–'यत्रावयवार्थ एव बुध्यते तद्यौगिकम् । यथा पाचकः ।'** अर्थात्–जो पद अपने अवयवों से स्वार्थ का बोधक हो, वह यौगिक पद है । जैसे–'पाचकः' में पचति इति पाचकः इस विग्रह में पच् + ण्वुल् इन दो अवयवों से ही पाचक का अर्थ पाक क्रिया करने वाला स्पष्ट हो जाता है ।

2. **रूढ़-पद–'यत्रावयवशक्तिनैरपेक्ष्येण समुदायशक्तिमात्रेण बुध्यते तद्रूढम् । यथा–गोमण्डलादिपदम् ।'** अर्थात्-जो पद, अवयव शक्ति के बिना समुदाय शक्ति से स्वार्थ का बोधक हो, वह 'रूढ़पद' कहा जाता है । जैसे–'गो' पद का अवयवशक्ति से **'गच्छतीति गौः'** (गमनकर्ता मात्र) तथा 'मण्डल' पद का **'मण्डं लाति आदत्ते इति मण्डलम्'** (माड़ लाने वाला) ऐसा अर्थ होगा, जो सर्वथा असंगत है । अतः समुदाय शक्ति से 'गो' पद गो व्यक्ति का तथा 'मण्डल' पद 'सूर्य-आभा-मण्डल' का बोध कराता है ।

3. **योगरूढ़-पद–'यत्र तु अवयवशक्तिविषये समुदायशक्तिः अप्यस्ति, तद्योगरूढम् । यथा–पङ्कजादिपदम् ।'** अर्थात्–जो पद अवयव तथा समुदाय दोनों शक्तियों द्वारा स्वार्थ का बोधक हो, वह योगरूढ़ पद होता है । जैसे–'पङ्कज' पद 'पङ्काज्जायते' इस व्युत्पत्ति के अनुसार–**'अवयवशक्ति द्वारा'**–पङ्क से उत्पन्न वस्तु, तथा **समुदायशक्ति द्वारा**-पद्मत्वेन रूपेण केवल 'कमल' का बोधक है ।

4. **यौगिकरूढ़पद–'यत्र तु यौगिकार्थरूढ्यर्थयोः स्वातन्त्र्येण बोधस्तद्यौगिकरूढम् । यथोद्भिदादिपदम् ।'** अर्थात्–जिस पद से यौगिकार्थ (अवयवशक्ति) तथा रूढ्यर्थ (समुदाय-शक्ति) दोनों का स्वतन्त्र रूप से बोध हो रहा हो, वह यौगिकरूढ़ पद होता है । जैसे–'उदभिद्' पद,–यौगिकार्थ–**'ऊर्ध्वं भिनत्ति इति उद्भिद् ।'** 'वृक्ष' अर्थ में तथा रूढ्यर्थ–**'उद्भिदायजेत्'** 'उद्भिद्' नामक एक याग का बोधक है ।

7.4. लक्षणा का स्वरूप

"लक्षणा शक्यसम्बन्धस्तात्पर्यानुपपत्तितः ।" अर्थात्–शक्यार्थ के सम्बन्ध-विशेष को लक्षणा कहते हैं । तात्पर्यानुपपत्ति इस लक्षणा का वीज (कारण) है । जैसे–**'गङ्गायां घोषः'** इस वाक्य में गंगा पद का शक्यार्थ 'प्रवाह' तथा घोष पद का शक्यार्थ 'आभीरगृह' है । यहाँ गंगा के प्रवाह में घोष सम्भव नहीं है, अतः अन्वयानुपपत्ति होने से गंगा पद अपने शक्यार्थ 'प्रवाह' के सम्बन्धी (समीपवर्ती) तीर (तट) में लाक्षणिक है । यही शक्य सम्बन्ध है । यथा–**'लक्षणा शक्यसम्बन्धः ।'**

ज्ञातव्य है कि–सर्वत्र अन्वयानुपपत्ति ही लक्षणा का बीज नहीं है, क्योंकि-'यष्टीः प्रवेशय' इस वाक्य में यष्टियों के प्रवेश में कोई अन्वयानुपपत्ति नहीं है, परन्तु तात्पर्यबोध के लिए यष्टिधारी में लक्षणा होती है । इसी प्रकार–**'काकेभ्योदधि रक्ष्यताम्'** में अन्ययानुपपत्ति नहीं है, परन्तु तात्पर्यानुपपत्ति होने से 'काक' पद से दध्युपधातक सकल काकाकाकसमुदाय में लक्षणा होती है । इसी प्रकार **'छत्रिणो यान्ति'** में एकसार्थवाहित्व में लक्षणा है । अतः तात्पर्यानुपपत्ति ही लक्षणा का वीज है ।

लक्षित-लक्षणा–'यत्र तु शब्दार्थस्य परम्परा-सम्बन्धरूपा लक्षणा सा लक्षित-लक्षणा ।' अर्थात्–शक्यार्थ की परम्परा सम्बन्ध से लक्षणा को लक्षित-लक्षणा कहते हैं । जैसे–**'द्विरेफ'** पद का शक्यार्थ है–'दो रेफ' । दो रेफ साक्षात् सम्बन्ध से भ्रमर पद में है, परन्तु द्विरेफ पद से सीधे भ्रमर का बोध नहीं होता, अपितु–**'स्ववाच्यरेफद्वयघटितवाच्यत्व'** रूप परम्परा सम्बन्ध से होता है । ध्यातव्य है कि लाक्षणिक-पद अर्थस्मारक होते हैं, उससे शाब्दबोध में घोष आदि पदान्तर कारण होते हैं ।

मीमांसाक **'गभीरायां नद्यां घोषः'** इत्यादि स्थलों में एकदेशान्वय-लक्षणा को अनुचित बतलाते हैं । अतः इनके मत के खण्डन में मुक्तावलीकार का कथन है कि-**'चित्रगु'**–'चित्रा गावो यस्य' इत्यादि स्थलों में एकदेशान्वय पक्ष में 'गो' पद की गोस्वामी में लक्षणा मानी जाती है । अतः परिस्थिति वशात् एकदेशान्वय उचित ही है ।

बहुव्रीहि समास के उत्तरपद में तथा तत्पुरुष समास के पूर्वपद में लक्षणा होती है । जैसे–**'आरूढ़वानरो'** में वानर पद की वानरारोह कर्म में तथा 'राजपुरुषः' में पूर्वपद राजन् की राजासम्बन्धी में लक्षणा करते हैं तथा **'राजसम्बन्ध्यभिन्नपुरुषः'** ऐसा शाब्दबोध होता है । जहाँ तक द्वन्द्व एवं कर्मधारय में लक्षणा का प्रश्न है, नैयायिक इनमें लक्षणा नहीं मानते हैं, परन्तु समाहार द्वन्द्व **'अहिनकुलम्'** इत्यादि पदों में प्राचीन नैयायिक लक्षणा मानते हैं ।

7.5. शाब्दबोध के कारण

शाब्दबोध के कारणों का विवेचन करते हुए कारिकावलीकार ने लिखा है– **'आसत्तियोग्यताकांक्षा-तात्पर्यज्ञानमिष्यते ।'** अर्थात्–1. **आसत्ति**, 2. **योग्यता**, 3. **आकांक्षा तथा** 4. **तात्पर्यज्ञान**; शाब्दबोध के प्रति ये चार कारण हैं ।

1. **आसत्ति–'सन्निधानं तु पदस्यासत्तिरुच्यते ।'** अर्थात्–पदों की सन्निधि को आसत्ति कहते हैं । कहने का भाव यह है कि–**'अन्वयप्रतियोग्यनुयोगिपदयोरव्यवधानमासत्तिः ।'** ज्ञातव्य है कि-जिस पदार्थ से अन्वय अपेक्षित हो, उन दोनों पदों की अव्यवहित रूप से उपस्थिति रूप आसत्ति ही शाब्दबोध में कारण है । उदाहरणतया–**'गिरिर्भुक्तमग्निमान्देवदत्तेन'** में गिरि का अग्निमान् तथा भुक्तम् का देवदत्तेन के साथ अन्वय अपेक्षित है, परन्तु यहाँ पर पदों की अव्यवहित उपस्थिति नहीं है । अतः शाब्दबोध नहीं होता हैं । यह व्यवधान देशकृत है । कालकृतव्यवधान विलम्ब से उच्चरित होने में होता है । **'नीलोघटो द्रव्यं पटः'** में जो शाब्दबोध होता है, वह आसत्तिभ्रम से होता है ।

2. **योग्यता–'पदार्थे तत्र तद्वत्ता योग्यता परिकीर्तिता ।'** अर्थात्–एक पदार्थ से अपर पदार्थ के सम्बन्ध को योग्यता कहते हैं । इस योग्यता के अभाव में–**'वह्निना सिंचति'** इत्यादि पदसमूहों में शाब्दबोध नहीं होता है । प्राचीन नैयायिक–शाब्दबोध में योग्यताज्ञान को मानते हैं, परन्तु नव्यनैयायिकों के मत में योग्यताज्ञान, शाब्दबोध में कारण नहीं है, अपितु जो अयोग्यता है, वह विपरीत शाब्दबोध के प्रति प्रतिबन्धक है ।

3. **आकांक्षा–'यत्पदेन विना यस्याननुभावकता भवेत् ।'** अर्थात्–जिस पद के बिना, जिस पद का शाब्दबोध न हो सके, उस पद के साथ, उस पद की आकांक्षा होती है । जैसे–'आनय' इस क्रिया पद के बिना 'घटम्' यह कारकपद शाब्दबोध को उत्पन्न नहीं कर सकता । यद्यपि क्रिया और कारक पदों की अव्यवधान रूप सन्निधि, आसत्ति से चरितार्थ हो सकती है, अतः आकांक्षा को मानना व्यर्थ है, परन्तु घटकर्मता बोध के प्रति घट पद के अव्यवहितोत्तर 'अम्' यह द्वितीया विभक्ति–तद्रूपाकांक्षज्ञान कारण होगा और 'घटमानय' पद से शाब्दबोध होगा । 'घटः कर्मत्वम् आनयनं कृतिः' से नहीं ।

4. **तात्पर्य–'वक्तुरिच्छा तु तात्पर्यं परिकीर्तितम् ।'** अर्थात्–श्रोता के प्रति वक्ता की इच्छा ही तात्पर्य है । शाब्दबोध में यदि तात्पर्यज्ञान को कारण मानें तो 'सैन्धवमानय' इत्यादि स्थलों में कहीं 'अश्व' तथा कहीं 'लवण' का बोध नहीं होगा । ज्ञातव्य है कि–तात्पर्यग्राहक प्रकरणादि को शाब्दबोध में कारण नहीं माना जा सकता, क्योंकि प्रकरणादि का एक रूप से अनुगम नहीं हो सकता । प्रलय का आगमों में उल्लेख न होने से तथा सृष्ट्यारम्भ में अध्यापकाभाव होने से वेदस्थलों में वक्ता के तात्पर्यज्ञान के हेतु ईश्वर की कल्पना की जाती है ।

नैयायिकों के अनुसार शाब्दबोध का स्वरूप.

(प्रथमान्तार्थ मुख्यविशेष्यक शाब्दबोध.)

वाक्य-चैत्रः तण्डुलं पचति.
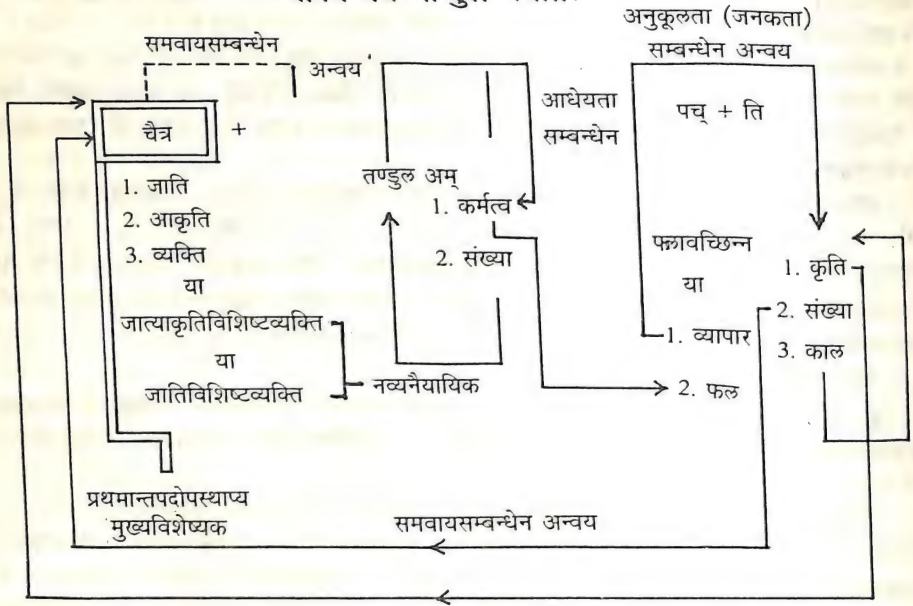
कर्मवाच्य के स्थल पर प्रथमान्तार्थ मुख्यविशेष्यक शाब्दबोध

वाक्य–चैत्रेणतण्डुलःपच्यते.

प्रथमान्तार्थ मुख्यविशेष्यक शाब्दबोध

3 साहित्य (काव्यशास्त्र)
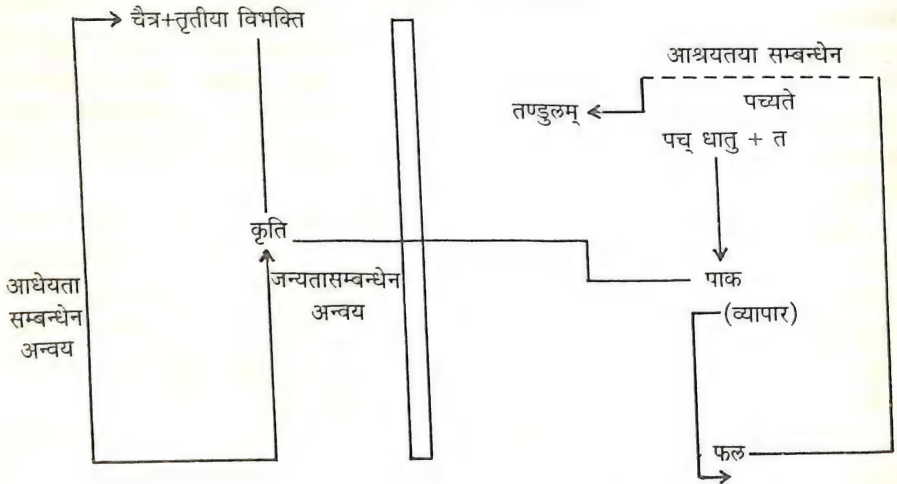
(क) काव्यप्रकाश (आचार्य मम्मट)

1. काव्यप्रयोजन

प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' इस न्याय से स्पष्ट है कि सभी कार्य प्रयोजन की अपेक्षा रखते हैं । अतः स्वयमेव सुस्पष्ट है कि काव्य जैसा महान् कार्य भी निष्प्रयोजन नहीं हो सकता । आचार्य मम्मट ने काव्यकर्ता (कवि) तथा काव्य अध्येता (पाठक) दोनों के दृष्टिकोण से काव्य के कुल छः प्रयोजनों का उल्लेख किया है । आचार्य मम्मट के शब्दों में–

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये । सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥"

अर्थात्–काव्य-यश का जनक, अर्थ का उत्पादक, व्यवहार का बोधक, अमंगल का नाशक, पढ़ने के साथ-साथ ही परमानन्द की प्रतीति कराने वाला, तथा कान्ता (प्रिया) के समान उपदेश करने वाला होता है ।

आचार्य मम्मट के कहने का तात्पर्य यह है कि–(काव्यनिर्मिति) कालिदास आदि के समान 1. यश की प्राप्ति; रत्नावलीकार श्रीहर्ष से धावकादि के समान 2. धन की प्राप्ति; समाज में विभिन्न व्यक्तियों के साथ किए जाने वाले विभिन्न आदर्श 3. लोकव्यवहार का परिज्ञान; सूर्य आदि की स्तुति से मयूरादि के समान 4. अनिष्ट का निवारण; तथा सम्पूर्ण प्रयोजनों में प्रमुख यह है कि–काव्य को पढ़ने या सुनने के साथ-साथ तुरन्त रसास्वादन से समुद्भूत तथा अन्य सभी विषयों के परिज्ञान से शून्य 5. परमानन्द की प्रतीति होती है । इसके अतिरिक्त-प्रभुसम्मित शब्दप्रधानवेदादि शास्त्रों से विलक्षण, मित्र के समान अर्थ प्रधान पुराणेतिहासादि से भिन्न, शब्द तथा अर्थ दोनों के गुणीभाव के कारण रस के साधक व्यञ्जना व्यापार की प्रधानता के द्वारा विलक्षण लोकोत्तर वर्णनशैली में निपुण जो कविकर्म (काव्य) है, वह 6. कान्ता (प्रिया) के समान सरसता उत्पादन के द्वारा अपनी ओर उन्मुख करके **'रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवत्'** ऐसा प्रभावी सदुपदेश देता है । अतः कवि तथा सहृदय (पाठक) दोनों को काव्य रचना तथा उसके अध्ययन में सर्वथा प्रयत्न करना चाहिए ।

समीक्षा–आचार्य मम्मट ने–आचार्य भामह, वामन, भरतमुनि, भोजराज तथा आनन्दवर्धन के मतों (क्रमशः)–**"धर्मार्थकाम मोक्षेषु ... ।"** **"काव्यं सद् दृष्टादृष्टार्थम् प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात् ।"** **"धर्म्यं यशस्यम् आयुष्यं ... ।"** **"कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति"** तथा **"सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् ।"** में समन्वय स्थापित करते हुए तथा इनमें संशोधन व परिमार्जन करते हुए परिष्कृत व अपेक्षाकृत विस्तृत रूप में काव्य के उपर्युक्त छः प्रयोजनों को एक छोटी सी कारिका में अत्यन्त ललितशैली में बाँधने का सफल प्रयास किया है, जो सर्वथा उचित ही है ।

2. काव्यहेतु

कार्य-कारण सिद्धान्त के अन्तर्गत बिना कारण के किसी कार्य की उत्पत्ति न होने से काव्य की सहेतुकता स्वयं सिद्ध हो जाती है । ऐसी स्थिति में आचार्य मम्मट ने 'काव्यहेतु' का उल्लेख करते हुए लिखा है–

"शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् । काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥"

अर्थात्–1. शक्ति, (लोकशास्त्रकाव्यादिपर्यावेक्षणोत्पन्न) 2. निपुणता (काव्य के मर्म को जानने वाले कवि या गुरू की शिक्षानुसार) 3. अभ्यास–ये तीनों एक साथ मिलकर (समष्टिरूपेण) काव्य के उद्भव व विकास के हेतु होते हैं ।

1. **"शक्तिः कवित्व बीजरूपः संस्कार विशेषः"** अर्थात् शक्ति वह तत्त्व है, जिसके बिना काव्य का प्रसार सम्भव नहीं है, यदि प्रसार हो भी जाए तो उपहास के योग्य होता है ।

2. लोक अर्थात् स्थावर, जङ्गम रूप जगत् के व्यवहारोपयोगी शास्त्र अर्थात्–छन्द, व्याकरण, शब्दकोश, कला, धमार्थकाममोक्षप्रतिपादकग्रन्थ, गज, तुरंग, खड्गादि-सम्बद्ध ग्रन्थों, महाकवियों के काव्यों तथा इतिहास ग्रन्थों के अनुशीलन से उत्पन्न विशिष्टज्ञान ही निपुणता है ।

3. जो काव्य की रचना तथा विवेचना करने में सक्षम हैं, उनके उपदेशानुसार काव्यनिर्माण और उनके संयोजन में वार-वार प्रवृत्ति ही अभ्यास है ।

ध्यातव्य है कि–उपर्युक्त शक्ति, निपुणता तथा अभ्यास-तीनों एक साथ समन्वित रूप में ही काव्य के प्रति हेतु हैं । अलग-अलग नहीं । जैसे-तेल, वत्ती तथा अग्नि तीनों की एकत्र समुपस्थिति ही दीपक की निर्मिति का कारण है अथवा सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों की एकत्र स्थिति ही सृष्टि के प्रति कारण है, अलग-अलग नहीं, वैसे ही काव्य के भी विषय में समझना चाहिए ।

समीक्षा–आचार्य मम्मटकृत उपर्युक्त काव्यहेतु में वामन (लोको विद्याप्रकीर्णश्च), भामह (काव्यं तु जायते जातु ...), दण्डी (नैसर्गिकी च प्रतिभा ...), रूद्रट, कुन्तक, राजशेखर आदि आचार्यों के मतों में सामञ्जस्य स्थापित करते हुए शक्ति, निपुणता तथा अभ्यास इन तीनों के समुदित रूप को काव्य का हेतु स्वीकार करके काव्यशास्त्र के एक सरल व स्वच्छ मार्ग को प्रशस्त किया है ।

3. काव्यलक्षण एवं काव्यभेद

(i) काव्यलक्षण

लक्षण ही वह तत्त्व है, जो किसी पदार्थ की एक निश्चित सीमा निर्धारित करते हुए या उसे एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हुए उस पदार्थ को अन्य पदार्थों से पृथक् करता है । इस 'लक्षण' का सर्वथा निर्दुष्ट होना बहुत ही कष्टसाध्य व विलक्षणबुद्धि का काम है, इसमें 'काव्य' जैसे दुर्बोध पदार्थ का तो कहना ही क्या ? लेकिन आचार्य मम्मट ने इस दिशा में जो प्रयास किया है, वह बहुत ही अहमियत रखता है, जो निम्नलिखित है–

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि ।"

अर्थात्–दोषों से रहित, गुणसहित, कहीं-कहीं स्पष्ट अलंकारों से रहित भी (सामान्यतः अलंकार सहित) शब्द तथा अर्थ दोनों की समष्टि काव्य कहलाती है । लक्षण में प्रयुक्त क्वापि पद से कवि का आशय है कि-सर्वत्र अलंकार सहित परन्तु जहाँ व्यङ्ग्य या रसादि का समुचित परिपाक हुआ हो, वहाँ पर स्पष्ट रूप से अलंकार की सत्ता न होने पर भी काव्यत्व की हानि नहीं होती । यथा–**"यः कौमारहरः स एव वरस्ता एव चैत्रक्षपा .... चेतः समुत्कण्ठते ।"** इत्यादि में कोई स्पष्ट अलंकार नहीं है तथा रस की प्रधानता के कारण इसे 'रसवदलंकार' भी नहीं कहा जा सकता; फिर भी हम इसे काव्य कहते ही हैं ।

आचार्य कविराज विश्वनाथ ने–'अदोषौ' 'सगुणौ' तथा 'अनलंकृती पुनः क्वापि' इन तीनों की कटु आलोचना की है, तथा उक्त उदाहरण में भी विभावना व विशेषोक्ति अलंकार माना है । यहाँ पर आचार्य मम्मट का कहना है कि–काव्य को च्युतसंस्कारादि दोषों से रहित होना चाहिए, 'अदोषौ' पद सर्वथा अभाव का सूचक नहीं है अपितु नञ् अर्थ में है । जहाँ तक विभावना तथा विशेषोक्ति का प्रश्न है, तो ये चूँकि अभावमुखेन निकलते हैं; अतः आचार्य विश्वनाथ की आलोचना उचित नहीं है।

समीक्षा–आचार्य मम्मट समन्वयवादी आचार्य हैं । इनके पूर्व काव्य के विभिन्न पहलुओं पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विचार होता रहा । यथा–

भोज–"अदोषं गुणवद्काव्यम् अलंकारैरलंकृतम् ...... ।"

भामह–"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"

दण्डी–"शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।"

वामन–"रीतिरात्मा काव्यस्य"

आनन्दवर्द्धन–"ध्वनिरात्मा काव्यस्य" इत्यादि

आचार्य मम्मट ने 'सगुणौ' तथा 'अदोषौ' इन दो पदों के माध्यम से पूर्ववर्ती काव्य लक्षणों का समाहार करते हुए काव्यलक्षण का एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । आचार्य मम्मट ही ऐसे प्रथम लक्षणकार हैं, जिन्होंने काव्य के गुण-दोष का प्रश्न प्रस्तुत किया है । पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के लक्षणों का सार रूप होने से आचार्य मम्मटकृत उपर्युक्त लक्षण सर्वथा परिमार्जित, तार्किक तथा आदरणीय है ।

(ii) काव्य भेद

आचार्य मम्मट ने उत्तम, मध्यम तथा अधम भेद से काव्य के तीन विभाग किए, जिनका संक्षिप्त-विवेचन निम्नलिखित है–

(क) उत्तम (ध्वनि) काव्य–आचार्य मम्मट के शब्दों में–"**इदमुत्तममतिशायिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः ।**" अर्थात् वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ यदि अधिक चमत्कारपूर्ण, तो उत्तमकाव्य समझना चाहिए । इसी को विद्वानों ने 'ध्वनिकाव्य' की संज्ञा दी है ।

उदाहरणतया–

"निःशेषच्युतचन्दनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो ...... पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्"

इत्यादि में वक्ता तथा बोद्धा के वैशिष्ट्य से 'तू उसी नायक के पास गई थी, तथा रमण करने के लिए ही गई थी'–यह तथ्यं '**अधम**' पद से अभिव्यञ्जित होता है । अतः यहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ के अधिक चमत्कारिक सिद्ध होने से यह 'ध्वनिकाव्य' का उदाहरण माना गया है । ध्यातव्य है कि–अविवक्षितवाच्य तथा विवक्षितान्वयपरवाच्य भेद से ध्वनिकाव्य के दो भेद हैं ।

(ख) मध्यम (गुणीभूत व्यङ्ग्य) काव्य–आचार्य मम्मट के शब्दों में–"**अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम् ।**" अर्थात्–जहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार न पाया जाए, उसे 'मध्यमकाव्य' या 'गुणीभूतव्यंग्यकाव्य' कहते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि–मध्यमकाव्य में व्यंग्यार्थ गौण (अप्रधान) हो जाता है, तथा वाच्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण या प्रधान हो जाता है ।

उदाहरणतया–

"ग्रामतरुणं तरुण्या नवमञ्जुलमञ्जरीसनाथकरम् । पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया ।"

यहाँ पर; अशोक लतागृह में ग्रामतरुण से मिलने का संकेत देकर तरुणी निश्चित समय पर नहीं आई, जबकि तरुण वहाँ समय पर पहुँच गया । अतः उस तरुण को देखकर उस तरुणी के मुख की कान्ति अत्यन्त मलिन होती जा रही है । इस उदाहरण में 'तरुणी समय पर नहीं आई' यह व्यंग्यार्थ गौण हो गया है, जबकि इसकी अपेक्षा वाच्यार्थ अत्यधिक प्रभावी है । अतः यह गुणीभूतव्यंग्य (मध्यम) काव्य का उदाहरण है ।

(ग) चित्रकाव्य या अधमकाव्य–"**शब्दचित्रं वाच्यत्रिमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम् ।**" अर्थात्–व्यंग्यार्थरहित काव्य को ही विद्वानों ने चित्रकाव्य या अधमकाव्य कहा है; जो शब्दचित्र तथा वाच्यचित्र भेद से दो प्रकार का है । ध्यातव्य है कि यहाँ पर 'चित्र' शब्द का अभिप्राय गुण व अलंकार से युक्त होना है ।

शब्दचित्र का उदाहरण–

"स्वच्छन्दोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतराम्बुच्छटा–,

मूर्च्छन्मोहमहर्षिहर्षविहितस्नानाह्निकाय वः ।

भिद्यादुधदुदारदर्दुरदरीदीर्घादरिद्रद्रुम–,

द्रोहोद्रेकमहोर्मिमेदुरमदामन्दाकिनी मन्दताम् ॥"

भगवती मन्दाकिनी-विषयक उपयुक्त छन्द में व्यांग्यार्थ का सर्वथा अभाव है, जबकि अनुप्रासजन्य चमत्कार की प्रधानता है । अतः यह शब्दचित्र काव्य कहा जाएगा ।

अर्थचित्र का उदाहरण–

"विनिर्गतं मानदमात्ममन्दिराद् भवत्युपश्रुत्य यदृच्छयापि यम् ।
ससम्भ्रमेन्द्रद्रुतपातितार्गला निमीलिताक्षीव भियामरावती ॥"

यहाँ पर निमीलिताक्षीव में उत्प्रेक्षा अलंकार है । यद्यपि यहाँ पर वीररस की प्रतीति हो रही है, किन्तु कवि का तात्पर्य उसमें न होकर उत्प्रेक्षा के चमत्कार प्रदर्शन में ही है । अतः इसे अर्थचित्रकाव्य का उदाहरण कहना ही उचित है ।

4. शब्दशक्ति

पद और पदार्थ के सम्बन्ध को 'शक्ति' कहते हैं–**अस्मात् पदादयमर्थो बोद्धव्य इति ईश्वरसंकेतः शक्तिः ।** इस प्रकार शक्ति को संकेत तथा शक्तिग्रह को संकेतग्रह कहते हैं । शक्ति को संकेत इसलिए कहते हैं, कि इस पद का यह अर्थ है या यह पद इस अर्थ का बोधक है–इस प्रकार का ईश्वरेच्छारूप संकेतग्रह होता है । प्राचीन नैयायिक ईश्वरेच्छा रूप संकेत को ही शक्ति मानते हैं, जबकि नव्य नैयायिक संकेतमात्र को शक्ति मानते हैं । संकेतग्रह या शक्तिग्रह के प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं–

"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्यात् व्यवहारतश्च ।
वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ॥"

शब्दशक्ति के भेद

(i) अभिधा (ii) लक्षणा तथा (iii) व्यञ्जना भेद से शब्दशक्ति के तीन प्रकार माने गए हैं । आचार्य मम्मट सम्मत इन शक्तियों के विषय में कुछ संक्षिप्त-विवेचन निम्नलिखित है–

(i) अभिधा शक्ति

"**स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते ॥**" अर्थात् साक्षात् संकेतित अर्थ (वाच्यार्थ) ही मुख्य अर्थ होता है । इस मुख्य अर्थ के बोधन में शब्द का जो व्यापार है, वही अभिधावृत्ति (शक्ति) कहलाता है । जैसे–मुख, नेत्र, कमल, लता इत्यादि ।

(ii) लक्षणा शक्ति

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात् ।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया ॥"

अर्थात्–1. मुख्यार्थ का बाध होने पर, 2. उस मुख्यार्थ के साथ लक्ष्यार्थ अथवा अन्यार्थ का सम्बन्ध होने पर, 3. रूढ़ि अथवा प्रयोजन विशेष से जिस शब्दशक्ति के द्वारा अन्यार्थ लक्षित होता है । शब्द का वह आरोपित व्यापार विशेष ही 'लक्षणा वृत्ति' कहलाता है । यहाँ पर मुख्यार्थबाध, मुख्यार्थयोग तथा रूढ़ि या प्रयोजन इन तीनों को लक्षणा का समुदित हेतु माना गया है । जैसा कि आचार्य मम्मट ने लिखा है–'**मुख्यार्थबाधादित्रयं हेतुः**' उदाहरणतया–'**कर्मणि कुशलः**' तथा '**गङ्गायां घोषः ।**' यहाँ पर 'कर्मणिकुशलः' इस प्रयोग में कुशों को लाने से कोई सम्बन्ध न होने से, तथा 'गङ्गायां घोषः' इस प्रयोग में गंगा (प्रवाह) में घोष का होना सम्भव न होने से मुख्यार्थ का बाध हो जाता है । अतः प्रथम प्रयोग में विवेचकत्वादि तथा द्वितीय प्रयोग में सामीप्यादि सम्बन्ध होने पर-प्रथमप्रयोगस्थ 'कुशल' शब्द के 'दक्ष' अर्थ में रूढ़ होने के कारण रूढ़िवशात् तथा द्वितीयप्रयोगस्थ गंगायां घोषः में गंगातट पर घोष है अर्थात् शैत्य पानत्वादि प्रयोजन से जो मुख्यार्थ से सम्बद्ध अमुख्यार्थ की प्रतीति है, वह व्यवहित अर्थ में रहने वाला आरोपित शब्दव्यापार लक्षणा है ।

लक्षणा के भेद–आचार्य मम्मट के–"**लक्षणा तेन षड्विधा**" इस सूत्र से स्पष्ट है कि लक्षणा छः प्रकार की होती है । प्रथमतः इसके दो भेद हैं–1. शुद्धा तथा 2. गौणी । इनमें उपचार रहित लक्षणा शुद्धा तथा उपचार सहित लक्षणा गौणी कहलाती है पुनः उपादानलक्षणा तथा लक्षणलक्षणा भेद से शुद्धा के दो भेद हो जाते हैं–

(अ) उपादान लक्षणा–"स्वसिद्धये पराक्षेपः" अर्थात्–अपने वाच्यार्थ के अन्वय की सिद्धि के लिए अन्य अर्थ (अशक्यार्थ) का आक्षेप (ग्रहण) करना ही उपादान लक्षणा है । जैसे–**'कुन्ताः प्रविशन्ति'** में 'कुन्त' शब्द अपने अर्थ का परित्याग किए विना ही अन्वय की सिद्धि के लिए अन्य अर्थ 'कुन्तधारी पुरुष' का आक्षेप कर लेता है । इसी को अजहत्स्वार्थावृत्ति कहा गया है ।

(ब) लक्षण लक्षणा–"परार्थं स्वसमर्पणम्" अर्थात् जहाँ पर दूसरे या अशक्य अर्थ की सिद्धि के लिए, अपने अर्थ का समर्पण (परित्याग) कर दिया जाता है, वहाँ लक्षण-लक्षणा होती है । **(स्वार्थपरित्यागेन परार्थोपस्थापनं लक्षणम्)** उदाहरणतया– **'गंगायां घोषः'** में गंगा पद अन्य अर्थ (अशक्यार्थ) के अन्वय की सिद्धि के लिए अपने प्रवाह रूप शक्यार्थ का परित्याग कर देता है । इसे जहत्स्वार्थावृत्ति या जहल्लक्षणा भी कहते हैं ।

उपर्युक्त शुद्धा व गौणी के पुनः सारोपा व साध्यवसाना दो-दो भेद हो जाते हैं; जिनका लक्षण निम्नलिखित है–

(क) सारोपा–"सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा ।" अर्थात् जहाँ पर विषयी तथा विषय दोनों शब्दतः कथित हों वहाँ सारोपा लक्षणा होती है । उदाहरणतया–**'आयुर्घृतम्'**।

(ख) साध्यवसाना–"विषय्यन्तः कृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात् साध्यवसानिका ।" अर्थात्–जहाँ पर विषयी के द्वारा अन्य आरोप विषय को अन्तर्लीन कर लिया जाता है, वहाँ साध्यवसाना लक्षणा होती है । जैसे–**'आयुरेवेदम्'** ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथमतः शुद्धा के उपादान व लक्षणलक्षणा दो भेद किए गए पुनः शुद्धा व गौणी के सारोपा व साध्यवसाना दो-दो भेद किए गए–1. शुद्धा सारोपा, 2. शुद्धासाध्य - वसाना, 3. गौणी सारोपा, 4. गौणी साध्यवसाना । इनके साथ पूर्वोक्त–1. शुद्धाउपादान-लक्षणा तथा 2. शुद्धा लक्षणलक्षणा इन दोनों को भी मिला देने पर लक्षणा के कुल छः भेद हो जाते हैं । इसी को आचार्यमम्मट ने–**"लक्षणा तेन षडविधा"** इस सूत्र से कहा है । इन छः भेदों को निम्नलिखित आरेख के माध्यम से सुगमता पूर्वक समझा जा सकता है–
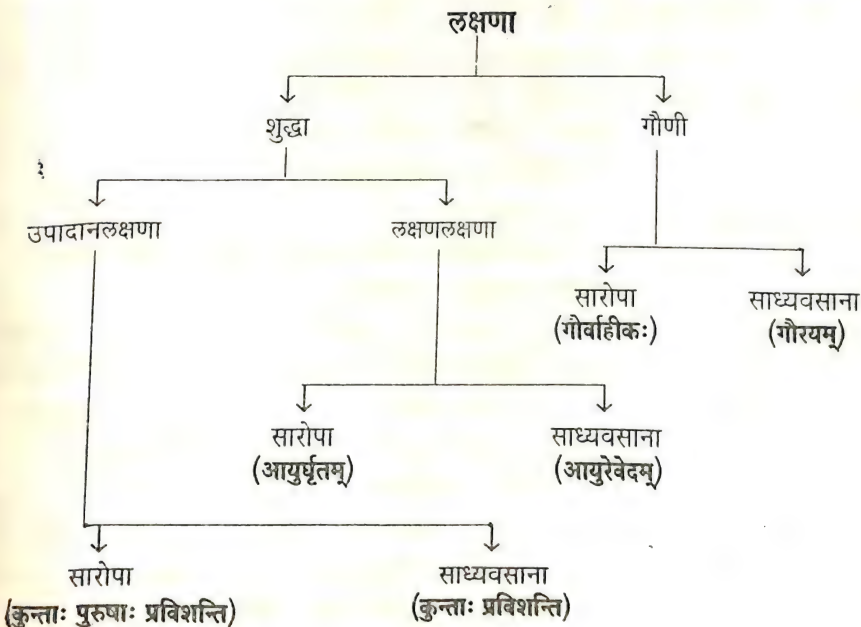
(iii) व्यञ्जना शक्ति

शैत्य-पावनत्व प्रयोजन रूप व्यंग्यार्थ को वोधित करने वाली शक्ति 'व्यञ्जनावृत्ति' कहलाती है, जो काव्य की तीनों शब्दशक्तियों में सर्वश्रेष्ठ है तथा महाकवियों की वाणी में पाई जाती है । इसी शक्ति के आश्रयभूत काव्य को उत्तम अथवा ध्वनिकाव्य कहा जाता है । यह व्यञ्जना 1. शाब्दी तथा 2. आर्थी भेद से दो प्रकार की होती है । इनमें जव शव्द में व्यञ्जना होती है, तो अर्थ तथा जव अर्थ में व्यञ्जना होती है, तो शब्द सहकारी होता है । शाव्दी व्यञ्जना को अभिधामूला तथा लक्षणामूला भेद से दो वर्गों में रखा गया है, जो निम्नलिखित है–

1. **अभिधामूलाव्यञ्जना– "अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते ।**
संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद् व्यापृतिरञ्जनम् ॥"

अर्थात्–संयोगादि के द्वारा अनेकार्थक शब्दों के वाचकत्व के नियन्त्रित हो जाने पर वाच्यार्थ भिन्न अर्थ की प्रतीति कराने वाला व्यापार व्यञ्जना कहलाता है । उदाहरणतया–**'सशंखचक्रो हरिः' 'अशंखचक्रो हरिः'** इत्यादि में प्रथम प्रयोग में संयोग से तथा द्वितीय प्रयोग में विप्रयोग से 'हरिः' शब्द अच्युत (विष्णु) अर्थ में नियन्त्रित है । अतः यहाँ पर अभिधामूला व्यञ्जना है ।

2. **लक्षणामूला व्यञ्जना–'गंगायां घोषः'** इस प्रयोग में गंगा पद से तट रूप लक्ष्यार्थ की प्रतीति हो जाने के बाद, जो शैत्य-पावनत्वादि प्रयोजन रूप धर्मों की प्रतीति होती है, इसमें लक्षणामूला व्यञ्जनाशक्ति ही कार्य करती है–**(व्यंग्येन रहिता रूढ़ौ सहिता तु प्रयोजने)** और उस शैत्यादि व्यंग्यरूप प्रयोजन के विषय में लाक्षणिक शब्द का व्यञ्जनात्मक व्यापार होता है **(तत्र व्यापारो व्यञ्जनात्मकः)** यहाँ पर शैत्यपावनत्वादि प्रयोजनरूप व्यंग्यार्थ को लक्ष्यार्थ नहीं माना जा सकता; क्योंकि जिस प्रयोजन की प्रतीति कराने के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है, केवल शब्द से गम्य उस प्रयोजन के विषय में व्यञ्जना के अतिरिक्त और कोई व्यापार नहीं होता है–

"यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते । फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यञ्जनान्नापराक्रिया ॥"

इस प्रयोजन रूप अर्थ की प्रतीति कराने में लक्षणा की पूर्वकथित तीनों शर्तों का प्रयोग नहीं हो पाता है–**'हेत्वाभावान्न लक्षणा ।'** इस विषय में आचार्य मम्मट ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है–

"लक्ष्यं न मुख्यं नाप्यत्र बाधो योगः फलेन नो । न प्रयोजनमेतस्मिन् न च शब्दः स्खलद्गतिः ।"

अतः स्पष्ट है कि–प्रयोजन के सहित (तट को) लक्ष्यार्थ मानना उचित नहीं है, क्योंकि ज्ञान का विषय अन्य होता है तथा ज्ञान का फल (प्रयोजन अन्य ही होता है–

"प्रयोजनेन सहितं लक्षणीयं न युज्यते ।
ज्ञानस्य विषयो ह्यन्यः फलमन्यदुदाहृतम् ॥"

आर्थी-व्यञ्जना–आचार्य मम्मट के शब्दों में–

"वक्तृबोद्धव्यकाकूनां वाक्य-वाच्यान्यसन्निद्धेः । प्रस्तावदेशकालादेर्वैशिष्ट्यात्प्रतिभाजुषाम् ॥
योऽर्थस्यान्यार्थधीहेतुर्व्यापारो व्यक्तिरेव सा ॥"

अर्थात्–वक्ता, बोद्धव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्यसन्निधि, प्रस्ताव (प्रकरण), देश, काल, चेष्टा आदि के वैशिष्ट्य से प्रतिभावान् सहृदयों को अन्य अर्थ की प्रतीति कराने वाला जो अर्थ का व्यापार है, वह आर्थी-व्यञ्जना कहलाता है । उदाहरणतया–

(1) वक्तृवैशिष्ट्येन– **"अतिपृथुलं जलकुम्भं गृहीत्वा समागतास्मि सखि त्वरितम् ।**
श्रमस्वेदसलिलनिःश्वासनिःसहा विश्राम्यामि क्षणम् ॥"

यहाँ पर नायिका का चौर्यरत सम्भोग-गोपन वक्ता के वैशिष्ट्य से अभिव्यञ्जित हो रहा है ।

(2) बोद्धव्य वैशिष्ट्येन– **"औन्निद्र्यं दौर्बल्यं चिन्तालसत्त्वं सनिःश्वसितम् ।**
मम मन्दभागिन्याः कृते सखि त्वामपि अहह परिभवति ॥"

यहाँ पर बोद्धव्य दूती के ज्ञात दुष्ट-चेष्टा-वैशिष्ट्य के कारण–**'तुम्हें भी मेरे पति के साथ सम्भोग इष्ट है'** इस प्रकार नायिका के पति के साथ दूती के सम्भोग की बात प्रकट हो रही है । इसी प्रकार काकु, वाक्य, वाच्यादि वैशिष्ट के भी विषय में समझना चाहिए ।

रस-व्यञ्जना–शृंगारादि रस कभी भी स्व-शब्द वाच्य नहीं होते, अपितु सदैव व्यंग्य ही होते हैं । आचार्य मम्मट के शब्दों में–**'रसादिलक्षणस्त्वर्थः स्वप्नेऽपि न वाच्यः ।'** अर्थात् रसादि रूप अर्थ तो स्वप्न में भी वाच्य नहीं हो सकता । इसी को **'रसध्वनि'** भी कहते हैं । यही मुख्य तथा काव्यात्मा होती है । यह मुख्यार्थबाध आदि लक्षणा प्रयोजक हेतुओं के न होने से लक्षणागम्य भी नहीं होती । अतएव सर्वदा व्यंग्य ही होती है ।

5. अभिहितान्वयवाद

तात्पर्यार्थ-विवेचनक्रम में आचार्य मम्मट ने **"तात्पर्यार्थोपि केषुचित्"** की व्याख्या करते हुए 1. अभिहितान्वयवाद तथा 2. अन्विताभिधान वाद; इन दो मतों को उपस्थापित किया है । इनमें से प्रथम मत के समर्थक कुमारिल तथा पार्थसारथि मिश्रादि मीमांसक हैं । भाट्टसम्प्रदाय के इन आचार्यों का मन्तव्य है, कि-आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि के कारण पदार्थों का अन्वय परस्पर सम्बन्ध होने पर विशेष आकार वाला अपदार्थ अर्थात् पदों का अर्थ न होने पर भी तात्पर्यार्थ रूप वाक्यार्थ होता है । इस परिप्रेक्ष्य में आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि इन पदों का विशिष्ट विवरण इस प्रकार है–

(i) **आकांक्षा–'येन पदेन विना यस्य पदस्यान्वयानुभावकत्वं तेन पदेन सह तस्याकांक्षा'** अर्थात् जहाँ पर एक पद के सुनने के बाद दूसरे पद को सुने बिना अर्थ की प्रतीति न हो, वहाँ पर दूसरे पद को सुनने की जो इच्छा होती है–वही 'आकांक्षा' है । उदाहरणतया–'आनय' पद को सुनने के बाद 'किम् आनय' ऐसी आकांक्षा होती है जिसकी पूर्ति गाम्, घटम् आदि से होती है । ध्यातव्य है कि-केवल कारक या क्रियापदों का समूह वाक्यार्थज्ञान नहीं करा सकता । जैसे-गौः, अश्वः, पुरुषः आदि ।

(ii) **योग्यता–'पदार्थानां परस्परसम्बन्धे बाधाभावे योग्यता'** शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध में बाधा का अभाव ही योग्यता है । जैसे–**'अग्निना सिञ्चति'** इस प्रयोग में अग्नि का सिञ्चति के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि अग्नि से सिञ्चन का कार्य असम्भव है ।

(iii) **सन्निधि–'पदानामबिलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः'** अर्थात् किसी एक ही वक्ता के द्वारा बिना समय-व्यवधान के शब्दों का कथन सन्निधि है ।

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि उपर्युक्त तीनों हेतुओं के द्वारा जब कतिपय शब्द आपस में अन्वित होकर एक विशिष्टार्थ को अभिव्यक्त करते हैं, तो ऐसे शब्द समूह को वाक्य कहते हैं । उस वाक्य में पदार्थ तथा वाक्यार्थ दो प्रकार के अर्थ होते हैं । पदार्थ की प्रतीति अभिधावृत्ति से तथा वाक्यार्थ की प्रतीति 'तात्पर्यावृत्ति' से होती है । उदाहरणतया–**'गामानय'** में 'गाम्' का अर्थ 'गाय' तथा 'आनय' का अर्थ आनयनानुकूल व्यापार है । यहाँ गाय में आनयनानुकूल व्यापार रूप कर्मत्व किसी शब्द का अर्थ नहीं है । इसी को वाक्यार्थ कहते हैं, जिसकी प्रतीति, तात्पर्यावृत्ति से होती है । इस अभिहित पदार्थों का अन्वय मानने के कारण ही कुमारिलभट्ट आदि का यह सिद्धान्त 'अभिहितान्वयवाद' कहा जाता है । जैसा कि आचार्य मम्मट ने लिखा है–**'आकांक्षायोग्यतासन्निधिवशाद्वक्ष्यमाणस्वरूपाणां पदार्थानां समन्वये तात्पर्यार्थो विशेषवपुरपादार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीत्यभिहितान्वयवादिनां मतम् ।'**

6. अन्विताभिधानवाद

पूर्वकथित **'तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्'** के सन्दर्भ में आचार्य मम्मट ने प्रभाकर गुरु तथा शालिकनाथ मिश्र के मत को 'अन्विताभिधानवाद' के रूप में प्रस्तुत किया है । इस मत के समर्थकों का कहना है कि–**'वाच्य एव वाक्यार्थः'** अर्थात् वाच्यार्थ ही वाक्यार्थ है । कहने का भाव यह है कि–अभिधा शक्ति के द्वारा पहले पदार्थों की उपस्थिति नहीं होती, अपितु अन्वित पदार्थों की ही उपस्थिति होती है । अतः तात्पर्याशक्ति को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

इस प्रकार अन्विताभिधानवादियों के अनुसार–पदों से अन्वितपदार्थों की जो उपस्थिति होती है, वह संकेतग्रह के द्वारा होती है तथा संकेत का ग्रहण व्यवहार से होता है । उदाहरणतया–कोई उत्तमवृद्ध, मध्यमवृद्ध से कहता है **'गामानय',** तो पार्शस्थ बालक भी इस वाक्य को सुनता है, तथा सास्नादिविशिष्ट (गाय) को लाते हुए देखता है, तो पृथक्-पृथक् (गाम् + आनय) पदार्थज्ञान न होने पर भी वह 'गामानय' इस अखण्डवाक्य से 'सास्नादिविशिष्ट गाय का आनयन' रूप वाक्यार्थ का ग्रहण करता है । तदनन्तर–**'गां नय' ; 'अश्वमानय'** इत्यादि वाक्यों को सुनता है तथा व्यवहारतः देखता है, तो प्रवृत्ति-निवृत्ति के द्वारा प्रवर्त्तन व निवर्त्तन रूप क्रिया को देखकर 'नय' का अर्थ 'ले जाना' तथा आनय का अर्थ लाना–ऐसा समझने लगता है । यही संकेतग्रह की प्रक्रिया है । यह संकेतग्रह अन्वित पदार्थों में ही होता है–**'विशिष्टा एव पदार्थः वाक्यार्थः, न तु पदार्थानाम् वैशिष्ट्यम् ।'**

इस प्रकार हम देखते हैं कि–अन्वयविशिष्ट पदार्थ को वाक्यार्थ मानने के कारण यह सिद्धान्त अन्विताभिधान कहा जाता है । आचार्य मम्मट ने अभिहितान्वयवाद के पक्ष में अपनी स्वीकृति प्रस्तुत करते हुए अन्विताभिधानवाद को उपेक्षात्मक दृष्टि से देखा है । उनका कहना है कि– अन्विताभिधानवाद को स्वीकार करने पर भी अभिधा शक्ति से अन्वयमात्र का ज्ञान भले ही हो जाए, किन्तु सम्बन्ध-विशेष की प्रतीति नहीं हो सकती । अतः उसके लिए तात्पर्या वृत्ति मानना ही होगा ।

7. रससूत्र पर विचार

लोक में रति आदि स्थायी भावों के जो कारण, कार्य और सहकारी हैं, वे यदि नाट्य और काव्य में प्रयुक्त होते हैं, तो वे विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहे जाते हैं । इन्हीं विभावादि से व्यक्त वह स्थायिभाव 'रस' कहा गया है जैसा कि आचार्य 'भरतमुनि' ने स्पष्ट शब्दों में कहा है–

'विभावानुभावव्यभिचारिभाव संयोगाद् रसनिष्पत्तिः ।'

अर्थात्–विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है । इस दिशा में भट्टलोल्लटादि आचार्यों के कुछ प्रमुख रससूत्र विषयक सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

(i) भट्टलोल्लट सम्मत रस-सिद्धान्त (उत्पत्तिवाद)–आचार्य लोल्लट सम्मत रससूत्रविषयकसिद्धान्त **'उत्पत्तिवाद'** के नाम से जाना जाता है । आचार्य लोल्लट की गणना मीमांसाक आचार्यों में की जाती है । इनके मत में–विभाव, अनुभाव तथा संचारिभाव के योग से अनुकार्य–राम-सीतादि में रस की उत्पत्ति होती है । विभाव सीतादि मुख्य रूप से रस को उत्पन्न करते हैं । अनुभाव–उत्पन्न रस का बोध कराता है, तथा व्यभिचारिभाव उसका परिपोषण करता है । इस प्रकार स्थायिभावों के साथ विभावों का उत्पाद्य-उत्पादकभाव, अनुभावों का गम्य-गमकभाव तथा सञ्चारिभावों का पोष्य-पोषकभाव सम्बन्ध होता है । भरतसूत्रस्थ 'संयोग' शब्द से भी यही तीन अर्थ अभिप्रेत हैं । आचार्य मम्मट के शब्दों में भट्टलोल्लटसम्मत यह सिद्धान्त इस प्रकार है–

'विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः, अनुभावैः, कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः व्यभिचारिभिर्निर्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितो मुख्यावृत्या रामादौ अनुकार्ये तद्रूपतानुसन्धानान्नर्त्तकेऽपि प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः ।'

आलोचना–भट्टलोल्लट सम्मत उपर्युक्त 'रसोत्पत्तिवाद' विषयक सिद्धान्त पर आक्षेप करते हुए आचार्य 'शङ्कुक' ने कुछ दोषों को उपस्थापित किया है, जो इस प्रकार हैं–

1. इनके मत में सबसे बड़ा दोष, सामाजिक रसानुभूति का अभाव है । इन्होंने सामाजिक-रसानुभूति के विषय में कुछ नहीं कहा है ।

2. रामसीतादि तो अब इस लोक में नहीं हैं, अतः इस समय किए जाने वाले अभिनय से उनमें रसोत्पत्ति कैसे होगी ?

3. अनुकार्यों के कल्पित होने से उनका अस्तित्व ही प्रामाणिक नहीं है, तो फिर उनमें रसानुभूति कैसे होगी ?

4. स्थायिभाव का विभावादि के साथ संयोग न होने से विभावादि के लिङ्गत्व के अभाव में अनुमान भी नहीं होगा ।

(ii) शङ्कुक सम्मत रस-सिद्धान्त (अनुमितिवाद)–'अनुमितिवाद' के प्रवर्तक आचार्य शङ्कुक सम्मत अनुमित्याधारित रससूत्रविषयक नैयायिक सिद्धान्त को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–'नट कृत्रिम रूप से कटाक्षादि अनुभाव का प्रकाशन करता है, लेकिन, उसके उस बनावटी सौन्दर्य के कारण उसमें वास्तविकता जैसी प्रतीति होती है । इन बनावटी अनुभावादि को देखकर नट में वास्तव में स्थित न होने पर भी सामाजिक उसमें रस का अनुमान कर लेता है, तथा अपनी वासना के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का आस्वादन करता है ।' इनके मत को आचार्य मम्मट ने निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है–

(i) **राम एवायम् अयमेव राम इति**–सम्यक प्रतीति ।

(ii) **न रामोऽयमित्यौत्तरकालिके बाधे रामोऽयमिति**–मिथ्याप्रतीति ।

(iii) **रामः स्याद्वा न वाऽयमिति**–संशयात्मक प्रतीति ।

(iv) **राम सदृशोऽयमिति**–सादृश्यात्मक प्रतीति ।

इन चारों प्रकार की प्रतीतियों से भिन्न **'चित्रतुरग-न्याय'** से होने वाली पञ्चम प्रकार की प्रतीति से ग्राह्य नट में–

"सेयं ममाङ्गेषु सुधारसच्छटा सुपूरकर्पूरशलाकिका दृशोः ।
मनोरथश्रीर्मनसः शरीरिणी प्राणेश्वरी लोचनगोचरतां गता ॥"

इत्यादि काव्यों के अनुशीलन से, तथा शिक्षा के अभ्यास से सम्पादित किए हुए अपने कार्य से नट के ही द्वारा प्रकाशित किए जाने वाले, कृत्रिम होने पर भी, कृत्रिम न समझे जाने वाले कारण, कार्य व सहकारियों के सहयोग से अनुमीयमान होने पर भी वस्तुसौन्दर्य के कारण तथा आस्वाद का विषय होने के कारण स्थायिरूप से सम्भाव्यमान, रति आदि स्थायिभाव वहाँ न रहते हुए भी सामाजिकों के संस्कारों द्वारा आस्वाद किया जाता हुआ 'रस' कहलाता है ।

आलोचना–आचार्य शंकुक सम्मत उपर्युक्त मत में भट्टतौत आदि आचार्यों ने कुछ आपत्तियाँ उपस्थापित की हैं, जो इस प्रकार हैं–

शंकुक के मत में सहृदय तथा नट में जो विभावादि हैं, वे सब कृत्रिम हैं । इन कृत्रिम विभावादि के आधार पर रसानुभूति नहीं हो सकती, क्योंकि इन्होंने रसानुभूति का आधार अनुमान माना है । अतः अनुमिति आनन्द रूप नहीं हो सकती । यह एक बौद्धिक-प्रक्रिया है । सामाजिकों को अनुमिति की जगह साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) होना चाहिए, जो अनुमिति से असम्भव है । फिर वह अनुमिति ही कैसी ? जिसमें सब कुछ कृत्रिम ही है । अतः शङ्कुकसम्मत प्रस्तुत अनुकरणसिद्धान्त दर्शक तथा सहृदय की दृष्टि से आदरणीय नहीं है ।

चित्रतुरग-न्याय–इस न्याय का सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य शंकुक ने 'अनुमितिवाद-प्रस्थापन' क्रम में किया है । जिस प्रकार चित्रस्थ घोड़े को देखकर लोग 'यह घोड़ा (तुरग) है'–ऐसा व्यवहार करते हैं, किन्तु यह ज्ञान; न तो सम्यग् ज्ञान है, न मिथ्याज्ञान है, न संशयज्ञान है, और न ही सादृश्य ज्ञान है, अपितु चित्रस्थ तुरग में होने वाला यह एक विलक्षण ज्ञान है, जो उपर्युक्त चतुर्विध ज्ञानों से भिन्न है । इसी प्रकार से नट में राम की प्रतीति उपर्युक्त चारों प्रकार की प्रतीतियों से विलक्षण है । इसी को अनुकृतिजन्यज्ञान या अनुकृत-प्रत्यय कहते हैं–**'सम्यग्मिथ्यासंशयसादृश्यप्रतीतिभ्यो विलक्षणया चित्रतुरगादिन्यायेन यः सुखी रामः असावयम्' इति प्रतीतिरस्ति // अभिनवभारती //**

प्रस्तुत 'चित्रतुरगन्याय' की प्रत्यक्षादि प्रमाणों से पृथक् एक स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में गणना की जाती है; क्योंकि-प्रत्यक्षज्ञान में इन्द्रियाँ करण होती हैं **(इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्)** जबकि चित्रस्थ तुरग में आरोहण रूप अधिकरणत्व तथा धावनादि रूप कार्यत्व से युक्त तुरग का पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्ध स्थापित ही नहीं होता । अतः प्रस्तुत न्याय प्रत्यक्ष प्रमाण गम्य नहीं हो सकता

अपितु एक पृथक् प्रमाण है । इसी प्रकार अनुमान का आधार चूँकि प्रत्यक्ष होता है, अतः उसमें अन्तर्भाव न हो सकने के कारण अनुमानगम्य भी नहीं हो सकता । उपमान में **'गो सदृशः गवयः'** ऐसा किसी व्यक्ति के वतलाने पर ही सादृश्यज्ञान से उपमिति होती है, परन्तु चित्रस्थ तुरग में ऐसी वात नहीं है । जहाँ तक शब्द-प्रमाण का प्रश्न है, तो **'आप्तवाक्यं शब्दः'** के अनुसार-ऋषि व वेदोपनिषदादि सम्मत वाक्य 'शब्दप्रमाण' के अन्तर्गत आते हैं, परन्तु यहाँ पर ऐसी भी कोई वात नहीं है । इस प्रकार सुस्पष्ट है कि–चित्रस्थतुरग, प्रत्यक्ष-अनुमान-उपमान तथा शब्द प्रमाण गम्य नहीं है, अपितु अपने आप में स्वयं एक पृथक् प्रमाण है ।

(iii) भट्टनायक सम्मत रससिद्धान्त (भुक्तिवाद)–'भुक्तिवाद' के प्रवर्तक सांख्यमतानुयायी आचार्य भट्टनायक के मत में वास्तविक रसानुभूति सामाजिकों को होती है । इन्होंने–**न प्रतीयते, नोत्पद्यते, तथा नाभिव्यंज्यते'** के माध्यम से क्रमशः शंकुक, लोल्लट तथा अभिनवगुप्ताचार्य के मतों का खण्डन करके 'भुक्तिवाद' सिद्धान्त की व्याख्या की है । इनके मत में विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के द्वारा भोज्य-भोजक-भाव रूप सम्वन्ध से रस की निष्पत्ति (भुक्ति) होती है अर्थात् सामाजिकों द्वारा रस का भोग (आस्वाद) किया जाता है । इस प्रकार इन्होंने अभिधा तथा लक्षणा के अतिरिक्त भावकत्व एवं भोजकत्व नामक दो नवीन काव्य-व्यापारों की कल्पना की है । इनमें भावकत्व नामक व्यापार से काव्यार्थ का साधारणीकरण होता है, पुनः शब्द का भोजकत्व नामक दूसरा व्यापार सामाजिकों को रस का साक्षात्कारात्मक भोग करवाता है । मम्मटाचार्य ने इनके मत को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है–**'न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभिव्यंज्यते अपितु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादि साधारणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी सत्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्त्वेन भोगेन भुज्यते इति भट्टनायकः ।'** अर्थात्–न ताटस्थ्य रूप से न आत्मगत रूप से रस की प्रतीति होती है । न उत्पत्ति होती है और न अभिव्यक्ति होती है, अपितु काव्य और नाटक में अभिधा से भिन्न विभावादि के साधारणीकरण स्वरूप भावकत्व नामक व्यापार से साधारणीकृत स्थायिभाव सत्त्वगुण के उद्रेक से प्रकाश और आनन्दमय अनुभूति की स्थिति के समान भोजकत्व व्यापार द्वारा भोग किया जाता है । कहने का भाव यह है कि–काव्य के श्रवण तथा नाटक के दर्शन से पहले उसका अर्थ समझा जाता है, फिर भावकत्व व्यापार द्वारा भावित किया जाता है । उसके वाद सत्त्वोद्रेक से प्रकाशरूप आनन्द का अनुभव होता है । यही वेद्यान्तर-सम्पर्कशून्य रसानुभव है ।

समालोचना–

1. भट्टनायक सम्मत भावकत्व एवं भोजकत्व नामक दो नवीन व्यापार अनुभव सिद्ध नहीं हैं ।
2. भावकत्व एवं भोजकत्व-व्यापार, व्यञ्जना और रसास्वाद से भिन्न नहीं प्रतीत होते, केवल नामान्तर मात्र है ।
3. जिस स्थायिभाव का भोग वतलाया गया है, वह रामादि, नटादि अथवा सामाजिकगत है; इसका स्पष्टीकरण नहीं हुआ है । यही कारण है कि यह मत विद्वानों से समादृत न हो सका ।

(iv) **अभिनवगुप्त सम्मत रस-सिद्धान्त (अभिव्यक्तिवाद)**–रस-सूत्र के सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता 'अभिव्यक्तिवाद' के प्रवर्तक आचार्य अभिनवगुप्त एक आलंकारिक आचार्य हैं । इनके सम्पूर्ण विवेचन का केन्द्रविन्दु सामाजिक रसानुभूति ही है । साराँश रूप में रससूत्रविषयक इनका सिद्धान्त निम्नलिखित है–

'सामाजिक के हृदय में इत्यादि स्थायी भाव बीज रूप में स्थित होता है, जो काव्य के सीतादि रूप आलम्बन विभाव, उद्यानादि रूप उद्दीपन विभाव, कटाक्षादि रूप अनुभाव तथा चापल्यादि व्यभिचारिभाव के साथ व्यष्टिशः तथा समष्टिशः संयोग रूप काव्य की तीसरी शब्दशक्ति, व्यंञ्जना से अभिव्यक्त होकर शृंगारादि अलौकिक तथा चमत्कारिक रस कहलाता है । आचार्य मम्मट के शब्दों में–**"लोके प्रमदादिभिः स्थाय्यनुमानेऽभ्यासपाटवतां काव्ये नाट्ये च तैरेव कारणत्वादिपरिहारेण विभावनादिव्यापारवत्त्वादलौकिकविभावादिशब्दव्यवहार्यैर्ममैवेति, शत्रोरेवैतेतटस्थस्यैते, न ममैवैते, न शत्रोरेवैते,**

न ताटस्थस्यैवेते, इति सम्बन्धविशेषस्वीकारपरिहारनियमानध्यवसायात् साधारण्येन प्रतीतैरभिव्यक्तः सामाजिकानां वासनात्मकतया स्थितः स्थायी रत्यादिको नियतप्रमातृगतत्वेन स्थितोऽपि साधारणोपायबलात् तत्कालविगलितपरमितप्रमातृभाववशोन्मिषितवेद्यान्तरसम्पर्कशून्यापरमितभावेन प्रमात्रा ...... अलौकिक-चमत्कारकारी शृंगारादिको रसः" इस प्रकार का यह रस कार्य नहीं है, विभावादि का नाश होने पर भी इसकी स्थिति सम्भव है । यह ज्ञाप्य भी नहीं है, क्योंकि यह पहले से विद्यमान नहीं है, अपितु विभावादि से व्यंजित और आस्वादनीय है–**"स च न कार्यः, विभावादिनाशेऽपि तस्य सम्भवप्रसंगात् । नापि ज्ञाप्यः, सिद्धस्य तस्यासम्भवात्, अपितु विभावादिभिर्व्यञ्जितश्चर्वणीयः ।"**

प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में लौकिक अनुभाव से उद्भूत रति आदि भावनाएं पहले से ही निरन्तर विद्यमान होती हैं । अभिनय-प्रदर्शन या काव्य-श्रवण के समय उनके द्वारा हमें ऐसे विभाव तथा अनुभाव आदि का अनुभव होने लगता है, जो अन्तःकरण के अनुकूल होने के कारण बहुत सुन्दर प्रतीत होता है । इस समय हमारी रत्यादि सहज भावनाएं उद्भूत हो जाती हैं । इस प्रकार सामाजिक के कोमल हृदय में एक प्रकार की आनन्दानुभूति होने लगती है । इसी आनन्दानुभूति को 'रस' कहते हैं । यह रस अनुभाव, विभावादि से वैसे ही विलक्षण होता है, जैसे–इलायची, मिर्च, चीनी, कपूरादि के मिश्रण से निर्मित **'पानक-रस'** इलायचीत्यादि के रस से विलक्षण होता है ।

समीक्षा–अभिनवगुप्ताचार्य सम्मत 'अभिव्यक्तिवाद' अपनी विलक्षण विवेचना पद्धति के कारण विद्वानों में सर्वत्र समादरणीय है । आचार्य मम्मट ने भी पूर्वोक्त–**'व्यक्तः स तैः'** के माध्यम से अभिनवगुप्त का ही समर्थन किया है । मम्मट के मत में–आलम्बन तथा उद्दीपन विभावादि एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त रत्यादि स्थायिभाव ही रस कहलाता है (**कारणान्यथकार्याणि ...... रसः स्मृतः ।**) यह सिद्धान्त अभिनवगुप्ताचार्य के रसविषयक सिद्धान्त का ही पोषक है ।

8. काव्यदोष

सामान्य-लक्षण– **"मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः ।**
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः ॥"

अर्थात्–जिससे मुख्यार्थ का अपकर्ष होता है, उसे दोष कहते हैं । ध्यातव्य है कि 'रस' ही मुख्यार्थ होता है, न कि वाच्यार्थ, परन्तु रस का आश्रय होने से अभिधेयार्थ भी मुख्यार्थ कहा जाता है । अतः, रस के साथ-साथ चमत्कारी वाच्य का अपकर्षक तत्त्व अर्थदोष कहलाता है । चूँकि शब्द आदि–रस तथा वाच्यार्थ दोनों के बोधन में सहायक होते हैं । अतएव जब उक्त दोष इनमें होता है, तो वह पद-दोष कहलाता है ।

विशिष्ट-लक्षण

1. पद-दोष

"दुष्टं पदं श्रुतिकटु च्युतसंस्कृत्यप्रयुक्तमसमर्थम्। निहतार्थमनुचितार्थं निरर्थकमवाचकं त्रिधाऽश्लीलम् ॥
सन्दिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेत् क्लिष्टम् । अविमृष्टविधेयांशं विरुद्धमतिकृत् समासगतमेव ॥"

अर्थात्–(i) श्रुतिकटु, (ii) च्युतसंस्कृति, (iii) अप्रयुक्त, (iv) असमर्थ, (v) निहतार्थ, (vi) अनुचितार्थ, (vii) निरर्थक, (viii) अवाचक, (ix) त्रिधाऽश्लील, (x) सन्दिग्ध, (xi) अप्रतीत, (xii) ग्राम्य, (xiii) नेयार्थ, (xiv) क्लिष्ट (xv) अविमृष्ट विधेयांश तथा (xvi) विरुद्धमतिकृत् । ये 16 विशिष्ट काव्य दोष कहे गए हैं । इनमें से प्रथमतः 13 दोष पदगत तथा समासगत दोनों प्रकार के होते हैं, जबकि अन्तिम तीन दोष केवल समासगत होते हैं ।

(i) **श्रुतिकटुदोष–"श्रुतिकटु परुषवर्णरूपं दुष्टं यथा"** अर्थात्–कठोर वर्ण रूप पद 'श्रुतिकटु दोष' कहा जाता है । जैसे–

"अनंगमंगलगृहापांगभंगितरंगितैः । आलिंगितः स तन्वंग्या कार्त्तार्थ्यं लभते कदा ॥"

यहाँ पर 'कार्त्तार्थ्यं' पद श्रुतिकटु है ।

(ii) **च्युतसंस्कृति–"च्युतसंस्कृति व्याकरणलक्षणहीनम्"** अर्थात्–**च्युता स्खलिता संस्कृतिः (संस्कारः) व्याकरणलक्षणानियमो यत्र तदित्यर्थः** । उदाहरणतया–

"एतन्मंदविपक्वतिन्दुकफलश्यामोदरापाण्डुर,–प्रान्तं हन्त पुलिन्दसुन्दरकरस्पर्शक्षमं लक्ष्यते ॥
तत् पल्लीपति पुत्रि ! कुञ्जरकुलं कुम्भाभयाभ्यर्थना । दीनं त्वामनुनाथते कुचयुगं पत्रावृतं मा कृथाः ॥"

यहाँ पर 'अनुनाथते' में 'च्युतसंस्कृति दोष' है । क्योंकि–'आशिषि नाथः' वार्त्तिक से नाथ् धातु 'आशीः' अर्थ में प्रयुक्त होती है, जबकि यहाँ पर याचना अर्थ है ।

(iii) **अप्रयुक्तदोष–**सिद्ध होने पर भी कवियों के द्वारा उपेक्षित पद 'अप्रयुक्त' कहलाता है–**"अप्रयुक्तमृतथाऽऽम्नातमपि कविभिर्नादृतम् ।"** उदाहरणतया–**"यथाऽयं दरुणाचारः सर्वदैव विभाव्यते । तथा मन्ये दैवतोऽस्य पिशाचो राक्षसोऽथवा ॥"**

यहाँ पर 'दैवतानि पुंसि' के अनुसार 'दैवत' शब्द पुल्लिंग में प्रयुक्त होता है, परन्तु किसी कवि ने ऐसा प्रयोग नहीं किया है । अतः यहाँ पर पुल्लिंगस्थ दैवत पद अप्रयुक्तदोष-दूषित है ।

(iv) **असमर्थदोष–**जो शब्द जिस अर्थ में प्रयोग किया गया हो, यदि उस अर्थ के बोधन में उसकी सामर्थ्य न हो, तो उसमें 'असमर्थदोष' होता है–**"असमर्थं यत्तदर्थं पठ्यते न च तत्रास्य शक्तिः ।"** उदाहरणतया–

"तीर्थान्तरेषु स्नानेन समुपार्जितसत्कृतिः । सुरस्रोतस्विनीमेष हन्ति सम्प्रति सादरम् ॥"

यहाँ पर 'हन्ति' पद गमन अर्थ में प्रयुक्त है, यद्यपि 'हन्ति' पद गमनार्थक बोध कराने में असमर्थ है ।

(v) **निहतार्थदोष–**जो शब्द प्रसिद्धाप्रसिद्ध दोनों अर्थों का वाचक होने पर भी किसी अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त हो, वहाँ पर निहतार्थ दोष होता है । **"निहतार्थं यदुभयार्थमप्रसिद्धेऽर्थेप्रयुक्तम् ।"** उदाहरणतया–

"यावकरसार्द्रपादप्रहारशोणितकचेन । मुग्धा साध्वसतरला विलोक्य परिचुम्बिता सहसा ॥"

यहाँ पर 'शोणित' शब्द अप्रसिद्धार्थक (कुछ-कुछ लाल) है, जबकि इसका प्रसिद्ध अर्थ रक्त है । अतः यहाँ निहतार्थ दोष है ।

(vi) **अनुचितार्थ दोष–**जो शब्द विवक्षित अर्थ का तिरस्कार करने वाले किसी अर्थ का व्यंजक होता है, उसका प्रयोग अनुचितार्थदोषदूषित होता है; जैसा कि–निम्नलिखित उदाहरण में 'पशु' पद विवक्षितार्थ 'शूरता' का तिरस्कार करके 'कातरता' का बोध करा रहा है–

"तपस्विभिर्या सुचिरेण लभ्यते प्रयत्नतः सत्रिभिरिष्यते या ।
प्रयान्ति तामाशुगतिं यशस्विनो रणाश्वमेधे पशुतामुपागताः ॥"

(vii) **निरर्थकदोष–"निरर्थकं पदपूरणमात्रप्रयोजनं चादिपदम् ।"** अर्थात्–जहाँ पर 'च' 'वा' इत्यादि पद केवल पादपूर्तिवशात् प्रयुक्त हुए हों, उसे 'निरर्थकदोष' कहते हैं । उदाहरणतया–

"उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरद्युते ! मम हि गौरि !। अभिवांक्षितं प्रसिद्ध्यतु भगवति ! युष्मत्प्रसादेन ॥"

यहाँ पर हि शब्द पादपूरणार्थक होने से 'निरर्थक' है ।

(viii) **अवाचकदोष–**जहाँ पर कोई शब्द अपने विवक्षित धर्मरूप वाचकता से रहित होता है, वहाँ 'अवाचकदोष' होता है । जैसे–निम्नलिखित उदाहरण में 'जन्तु' पद 'अदाता' अर्थ में विवक्षित होने पर 'अदाता' अर्थ का वाचक नहीं है–

"अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः ।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः ॥"

(ix) **त्रिधाश्लीलदोष–**व्रीड़ा, जुगुप्सा तथा अमंगल भेद से अश्लील दोष तीन प्रकार का होता है । जैसे–निम्नलिखित उदाहरण में 'वायु' शब्द जुगुप्सा का व्यंजक होने से 'अश्लील' पद है, क्योंकि 'वायु' पद अपानवायु का भी वाचक होता है–

"साधनं सुहृदयस्य यन्नान्यस्य विलोक्यते । तस्य धीशालिनः कोऽन्यः सहेतारालितां ध्रुवम् ॥"

(x) **सन्दिग्धदोष**–जहाँ पर कोई पद किसी एक निश्चित अर्थ का वाचक नहीं होता । जैसे–निम्नलिखित उदाहरण में 'वन्द्या' पद 1. वलात् हरण की गई महिलाओं तथा 2. वन्दनीय इन दोनों में से किस अर्थ में प्रयुक्त है । यह 'सन्दिग्ध' है ।

"आलिंगितस्तत्र भवान् सम्पराये जयश्रिया । आशीः परम्परां वंद्यां कर्णे कृत्वा कृपां कुरू ॥"

(xi) **अप्रतीतदोष–"अप्रतीतं यत्केवले शास्त्रे प्रसिद्धम्"** अर्थात्–जो पद केवल शास्त्र में ही प्रसिद्ध है, उसका प्रयोग करना अप्रतीत दोष है । उदाहरणतया–

"सम्यग्ज्ञानमहाज्योतिर्दलिताशयताजुषः । विधीयमानमप्येतन्न भवेत्कर्मबन्धनम् ॥"

यहाँ पर वासनार्थक 'आशय' पद केवल शास्त्रों में प्रयुक्त होने के कारण 'अप्रतीत' है ।

(xii) **ग्राम्यदोष–"ग्राम्यं यत्केवले लोके स्थितम् ।"** अर्थात्–जो शब्द केवल लोक में प्रसिद्ध है, उसका प्रयोग 'ग्राम्य-दोष' कहा जाता है । उदाहरणतया–

"राकाविभावरी कान्तसंक्रान्तद्युति ते मुखम् । तपनीयशिलाशोभा कटिश्च हरते मनः ॥"

यहाँ पर 'कटि' शब्द ग्राम्य (असभ्य) है, जबकि विदग्ध समाज में यह नितम्व से कहा जाता है ।

(xiii) **नेयार्थदोष**–जहाँ पर रूढ़ि या प्रयोजन के अभाव में भी कवि स्वेच्छया मुख्य अर्थ से सम्वद्ध लाक्षणिक शब्दों की कल्पना कर लेता है, वहाँ नेयार्थदोष होता है । जैसाकि–'चपेटा-पातन' शब्द निम्नलिखित उदाहरण में मुख्यार्थ को वाधित कर 'पराजय' रूप अर्थ को द्योतित कर रहा है, परन्तु यहाँ पर कोई रूढ़ि या प्रयोजन न होने से 'नेयार्थ दोष' है ।

"शरत्काल समुल्लासिपूर्णिमाशर्वरीप्रियम् । करोति ते मुखं तन्वि । चपेटापातनातिथिम् ॥"

(xiv) **क्लिष्टदोष–"क्लिष्टं यतोऽर्थप्रतिपत्तिर्व्यवहिता ।"** अर्थात् जिस शब्द के द्वारा विवक्षितार्थ-प्रतीति अत्यन्त विलम्व से होती है, उसे 'क्लिष्ट दोष' कहते हैं । जैसे–

"अत्रिलोचनसम्भूतज्योतिरुद्गमभासिभिः । सदृशं शोभतेऽत्यर्थं भूपाल ! चव चेष्टितम् ॥"

यहाँ पर 'अत्रि ऋषि के नेत्र से उत्पन्न चन्द्रमा की ज्योति के उद्गम से विकसित होने वाले कुमुदों से' यह अर्थ काफी विलम्व से प्रतीत हो रहा है । अतः **'अत्रिलोचनसम्भूतज्योतिरुद्गमभासिभिः'** इस समस्त पद में ' क्लिष्टदोष' है ।

(xv) **अविमृष्टविधेयांशदोष–"अविमृष्टः प्राधान्येनानिर्दिष्टो विधेयांशो यत्र तत् ।"** अर्थात्–जहाँ पर विधेय अंश का प्रधान रूप से निर्देश नहीं होता है, वहाँ अविमृष्टविधेयांश दोष होता है । उदाहरणतया–

"स्रस्तां नितम्बादवरोपयन्ती पुनः पुनः केसरदामकाञ्चीम् ।
न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण द्वितीयमौर्वीमिव कार्मुकस्य ॥"

यहाँ द्वितीयत्व मात्र की उत्प्रेक्षा है । 'मौर्वी द्वितीयाम्' यह पाठ ही समुचित है ।

(xvi) **विरुद्धमतिकृत्दोष**–जहाँ पर प्रकृत (विवक्षित) अर्थ के प्रतिबन्धकरूप अप्रकृत (अन्य) अर्थ की वुद्धि उत्पन्न हो जाती है, वहाँ 'विरुद्धमतिकृत्दोष' होता है । उदाहरणतया–

"सुधाकरकराकारविशारदविचेष्टितः । अकार्यमित्रमेकोऽसौ तस्य किं वर्णयामहे ॥"

यहाँ पर 'अकार्यमित्रं' पद का विवक्षितार्थ–'निःस्वार्थभाव से मित्रता करने वाला है' परन्तु इसी पद से अप्रकृत–'अकार्ये-कुकार्ये मित्रम्' यह अर्थ भी निकलता है । अतः 'अकार्यमित्रम्' पद में विरुद्धमतिकृत् दोष है ।

2. वाक्यदोष

"अपास्यच्युतसंस्कारमसमर्थं निरर्थकम् । वाक्येऽपि दोषाः सन्त्येते पदस्यांशेऽपि केचन ॥"

अर्थात्–च्युतसंस्कार, असमर्थ और निरर्थक; इन तीन दोषों को छोड़कर शेष तेरह दोष वाक्य में भी होते हैं तथा कुछ दोष पदांश में भी होते हैं । जैसे–

"स रातु वो दुश्च्यवनो भावुकानां परम्पराम् । अनैडमूकताद्यैश्च द्यतु दोषैरसम्मनात् ।"

यहाँ पर 'दुश्च्यवन' इन्द्र अर्थ में तथा 'अनैडमूक' शब्द मूकवधिर अर्थ में अप्रयुक्त है । इसी प्रकार अन्यान्य वाक्यदोषों को भी समझना चाहिए । इन सामान्य वाक्यदोषों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट वाक्यदोष भी होते हैं ।

आचार्य मम्मट के शब्दों में–

"प्रतिकूलवर्णमुपहतलुप्तविसर्गं विसन्धि हतवृत्तम् । न्यूनाधिककथितपदं पतत्प्रकर्षं समाप्तपुनरात्तम् ।
अर्थान्तरैकवाचकमभवन्मतयोगमनभिहितवाच्यम् । अपदस्थपदसमासं संकीर्णं गर्भितं प्रसिद्धिहतम् ॥
भग्नप्रक्रममक्रमममतपरार्थं च वाक्यमेव तथा ॥"

अर्थात्–(i) प्रतिकूलवर्ण, (ii) उपहतविसर्ग, (iii) लुप्तविसर्ग, (iv) विसन्धि, (v) हतवृत्त, (vi) न्यूनपद, (vii) अधिकपद, (viii) कथितपद, (ix) पतत्प्रकर्ष, (x) समाप्तपुनरात्त, (xi) अर्थान्तरैक वाचक, (xii) अभवन्मतयोग, (xiii) अनभिहितवाच्य, (xiv) अपदस्थपद, (xv) अपदस्थसमास, (xvi) संकीर्ण, (xvii) गर्भित, (xviii) प्रसिद्धिहत, (xix) भग्नप्रक्रम, (xx) अक्रम तथा (xxi) अमतपरार्थ– ये इक्कीस वाक्यगतदोष कहे गए हैं । इनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

(i) **प्रतिकूलवर्णता–**रस के प्रतिकूल वर्णों का प्रयोग होने पर, जैसे–निम्नलिखित उदाहरण में शृंगार रस में टवर्ग प्रयोग वर्जित होने के बाद भी प्रयोग किया गया है–

"अकुण्ठोत्कण्ठया पूर्णमाकण्ठं कलकण्ठिनाम् । कम्बुकण्ठ्याः क्षणं कण्ठे कुरू कण्ठार्त्तिमुद्धर ॥"

(ii) & (iii) **उपहतविसर्गता तथा लुप्तविसर्गता–"उपहत उत्वं प्राप्तो लुप्तो वा विसर्गो यत्र तत् ।"** अर्थात्–उपहत-उत्व को प्राप्त (विसर्ग) तथा लुप्तविसर्ग जहाँ हो, वहाँ उपहतविसर्ग तथा लुप्तविसर्ग दोष होता है । उदाहरणतया–**"धीरो विनीतो निपुणो वराकारो नृपोऽत्र सः । यस्य भृत्या बलोत्सिक्ता भक्ता बुद्धिप्रभाविता ॥"** यहाँ पर पूर्वार्द्ध में धीरो, विनीतो, निपुणो, वराकारो तथा नृपोऽत्र में उपहतविसर्गत्व एवं उत्तरार्द्ध में भृत्त्या, भक्ता, बलोत्सिक्ता में लुप्तविसर्गत्व दोष है ।

(iv) **विसन्धिदोष–"विसन्धि सन्धेर्वैरूप्यम्, विश्लेषोऽश्लीलत्वं कष्टत्वं च ।"** अर्थात्–जहाँ सन्धि होनी चाहिए, वहाँ सन्धि का न होना, विसन्धिदोष होता है । यह विसन्धि सन्धिवैरूप्य तीन प्रकार का होता है–विश्लेष, अश्लीलता तथा कष्टत्व । उदाहरणार्थ 'अश्लीलताविसन्धिदोष' का उदाहरण निम्नलिखित है–

"वेगादुड्डीय गगने चलण्डामरचेष्टितः । अयमुत्तपते पत्री ततोऽत्रैव रुचिङ्कुरू ॥"

यहाँ पर चलत् + डामर तथा रूचिम् + कुरू; इन पदों में सन्धि करने पर 'चलण्डामर' में 'लण्डा' और 'रूचिङ्कुरू' में 'चिङ्कु' (स्त्रीयोनि) का सूचक होने से 'अश्लीलता-विसन्धि-दोष' है ।

(v) **हत्तवृत्तदोष–**वर्ण्यवस्तु व रस के अनुकूल वृत्त (छन्द) का प्रयोग न होना 'हतवृत्तदोष' माना जाता है । यह 1. अश्रव्य, 2. अप्राप्तगुरूभावान्तलघु तथा 3. रसाननुगुण भेद से तीन प्रकार का है । रसाननुगुण का उदाहरण निम्नलिखित है–

"हा नृप ! हा बुध ! हा कविबन्धो ! विप्रसहस्रसमाश्रय ! देव !।
मुग्ध ! विदग्ध ! सभान्तररत्न ! क्वासि गतः क्व बयं च तवैते ॥"

यहाँ 'करुण-रस' की प्रधानता है । अतः मन्दाक्रान्तादि वृत्त का प्रयोग करना चाहिए, परन्तु करुण के प्रतिकूल 'दोधक' वृत्त का प्रयोग किया गया है, जो हास्यरस के अनुकूल होता है ।

इसी प्रकार अन्यान्य वाक्यदोषों को भी समझना चाहिए, जिसका आचार्य मम्मट ने सविस्तार उल्लेख किया है ।

3. पदांशगतदोष

पद के एक देश में रहने वाले दोष को 'पदैकदेशगतदोष' या पदांशगतदोष' कहते हैं । श्रुतिकटु, निहतार्थ, निरर्थक, अवाचक, अश्लीलता, सन्दिग्धत्व तथा नेयार्थ भेद से यह सात प्रकार का होता है–

(i) **पदांशगतश्रुतिकटु-दोष**–उदाहरणतया–

"अलमतिचपलत्वात् स्वप्नमायोपमत्वात्; परिणतिविरसत्वात् संगमेनांगनायाः ।
इति यदि शतकृत्त्वस्तत्त्वमालोचयाम,–स्तदपि न हरिणाक्षीं विस्मरत्यन्तरात्मा ॥"

यहाँ पर 'त्वात्' यह पदांशश्रुतिकटु-दोष-दूषित है ।

(ii) **पदांशगत-निहतार्थ-दोष**–उदाहरणतया–

"यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्विभर्त्ति ।
वलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम् ॥"

यहाँ पर 'मत्ता' पदांश उन्मत्त अर्थ में निहतार्थ है ।

(iii) **पदांशगत-निरर्थक-दोष**–उदाहरणतया–

"आदावञ्जनपुञ्जलिप्तवपुषां श्वासानिलोल्लासित; प्रोत्सर्पविरहानलेन च ततः सन्तापितानां दृशाम् ।
सम्प्रत्येव निषेकमश्रुपयसा देवस्य चेतोभुवो; भल्लीनामिव पानकर्म कुरूते कामं कुरंगेक्षणा ॥"

यहाँ पर दृशाम् में वहुवचन का प्रयोग निरर्थक है, क्योंकि एक ही कुरंगेक्षणा (मृगनयनी) का ग्रहण होने से द्विवचन में 'दृशोः' का ही प्रयोग होना चाहिए । अतः बहुवचनस्थ 'दृशाम्' पद निरर्थकदोष-दूषित है ।

(iv) **पदांशगत-अवाचक-दोष**–उदाहरणतया–

"चापाचार्यस्त्रिपुरविजयी कार्तिकेयो विजेयः, शस्त्रव्यस्तः सदनमुदधिर्भूरियं हन्तकारः ।
अस्त्येवैतत् किमु कृतवता रेणुका कष्टबाधां, बद्धस्पर्धस्तव परशुना लज्जते चन्द्रहासः ॥"

यहाँ पर विजेय में यत्प्रत्यय रूप कृत्यप्रत्यय 'क्त' प्रत्यय के अर्थ में अवाचक है ।

(v) **पदांशगत-अश्लीलता-दोष**–उदाहरणतया–

"अतिपेलवमतिपरिमितवर्णं लघुतरमुदाहरति शठः ।
परमार्थतः स हृदयं वहति पुनः कालकूट घटितमिव ॥"

यहाँ पर 'पेलव' शब्द का एकदेश (अंश) 'पेल' शब्द अश्लीलता का वाचक है । अतः व्रीडाव्यञ्जक होंने से 'व्रीडाजनक अश्लील दोष' है ।

(vi) **पदांशगत-सन्दिग्धत्व-दोष**–उदाहरणतया–

"कस्मिन्कर्मणि सामर्थ्यमस्य नोत्तपतेतराम् । अयंसाधुचरस्तस्मादञ्जलिर्बध्यतामिह ॥"

यहाँ पर 'साधुचरः' पद में 'भूतपूर्वे चरट्' सूत्र से 'पूर्वभूतः साधुः' इस अर्थ की प्रतीति तथा 'चरेष्टः' सूत्र से 'साधुषु चरति' अर्थ की प्रतीति हो रही है । इस प्रकार यहाँ दोनों में से कौनसा अर्थ अभिप्रेत है, यह संदिग्ध है ।

(vii) **पदैकदेशनेयार्थ-दोष**–उदाहरणतया–

"किमुच्यतेऽस्यभूपालमौलिमालामहामणेः । सुदुर्लभं वचोवाणैस्तेजो यस्य विभाव्यते ॥"

यहाँ पर 'वचः' पद से 'गीः' शब्द लक्षित होता है, यहाँ पर न केवल पूर्वपद ही, अपितु उत्तरपद भी पर्याय शब्द के परिवर्तन को सहन नहीं कर सकता । 'जलधि' आदि में तो उत्तरपद ही और वड़वानल आदि में पूर्वपद ही (पर्याय-परिवर्तन को सहन नहीं करता) ।

4. अर्थदोष

जहाँ पर अन्य शब्दों द्वारा कथित होने पर भी विवक्षित अर्थ दोषयुक्त रहता है, वहाँ पर अर्थदोष होता है–**'यत्र विवक्षित एवार्थोन्यथा अभिधानेऽपि दुष्यति सोऽर्थदोषः ।'** कुछ प्रमुख अर्थदोष इस प्रकार है–

"अर्थोऽपुष्टः कष्टो व्याहतपुनरुक्तदुष्क्रमग्राम्याः । सन्दिग्धो निर्हेतुः प्रसिद्धिविद्याविरुद्धश्च ॥
अनवीकृतः सनियमानियम विशेषाविशेषपरिवृत्ताः । साऽऽकांक्षोऽपदयुक्तः सहचरभिन्नः प्रकाशितविरूद्धः ॥
विध्यनुवादायुक्तस्त्यक्तपुनः स्वीकृतोऽश्लीलः ॥"

अर्थात्–1. अपुष्ट, 2. कष्ट, 3. व्याहत, 4. पुनरुक्त, 5. दुष्क्रम, 6. ग्राम्य, 7. सन्दिग्ध, 8. निर्हेतु, 9. प्रसिद्धिविरुद्ध, 10. विद्याविरुद्ध, 11. अनवीकृत, 12. सनियमपरिवृत्त, 13. अनियम-परिवृत्त, 14. विशेषपरिवृत्त, 15. अविशेषपरिवृत्त, 16. साकांक्ष, 17. अपदयुक्त, 18. सहचरभिन्न, 19. प्रकाशितविरुद्ध, 20. विध्ययुक्त, 21. अनुवादायुक्त, 22. त्यक्तपुनःस्वीकृत तथा 23. अश्लील । ये तेईस अर्थदोष कहे गए हैं । उदाहरणतया–

"अतिविततगगनसरणिपरिसुक्तविश्रामानन्दः । मरुदुल्लासितसौरभकमलाकरहासकृद्रविर्जयति ॥"

यहाँ पर 'अविततत्वादि' का ग्रहण न होने पर भी प्रतिपाद्यमान अर्थ का बाध नहीं होता है । अतः यहाँ पर 'अपुष्ट-दोष' है । इसके अतिरिक्त–

"भूपालरत्न ! निर्दैन्यप्रदानप्रथितोत्सव । विश्राणय तुरंग मे मातंगं वा मदालसम् ॥"

यहाँ पर तुरंग और मातंग में जो याचना अर्थ का क्रम है, वह लोकशास्त्र विरुद्ध है । अतः यहाँ पर दुष्क्रमत्व दोष है । इसी प्रकार अन्यान्य दोषों को भी समझना चाहिए । विस्तारभय से यहाँ पर समस्त दोषों का उदाहरण नहीं दिया जा रहा है ।

दोषापवाद

आचार्य मम्मट ने प्रस्तुत 'दोषापवाद' प्रकरण में दोषों के अदोष होने की चर्चा करते हुए यह समझाने का सफल प्रयास किया है कि–पूर्वकथित दोष, सर्वत्र तथा सदैव दोष ही नहीं रहते, अपितु विषय-विशेष के सन्निवेश व आश्रयवैशिष्यट्य से दोष भी गुण हो जाते हैं । ऐसे दोषों को अनित्य-दोष कहा गया है । आचार्य मम्मट ने इन्हीं 'अनित्य-दोषों' को 'दोषाङ्कुश' कहा है । ध्यातव्य है कि आचार्यमम्मट का यह दोषापवाद–प्रकरण आचार्य वामन के काव्यालंकार-सूत्र-वृत्ति पर आधारित हैं । कुछ प्रमुख दोषाङ्कुशों को उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है–

(i) **"यदा त्वामहमद्राक्षं पदविद्याविशारदम् । उपाध्यायं तदास्मार्षं समस्प्राक्षं च सम्मदम् ॥"**

यहाँ पर अद्राक्षम्, अस्मार्षम्, समस्प्राक्षम् आदि शब्द श्रुतिकटु हैं, किन्तु वैयाकरण बोद्धा (श्रोता) होने से यह गुण हो गया है ।

(ii) **"मातंगाः किमु वल्गितैः किमफलैराडम्बरैर्जम्बुकाः,**
सारंगा महिषा मदं व्रजथ किं शून्येषु शूरा न के ।
कोपाटोपसमुद्भटोत्कटसटाकोटेरिभारेः पुरः,
सिन्धुध्वानिनि हुंकृते स्फुरति यत् तद्गर्जितं गर्जितम् ॥"

यहाँ पर सिंह रूप वाच्य के औचित्य के कारण दीर्घ समास तथा परुषवर्णयुक्त कठोर शब्दों का प्रयोग सिंह वर्णन के प्रसंग में गुण हो गया है ।

(iii) **"करिहस्तेन सम्बाधे प्रतिश्यान्तर्विलोडिते । उपसर्पन् ध्वजः पुंसः साधनान्तर्विराजते ॥"**

यहाँ पर सुरत-क्रीड़ा में कामविषयक वर्णन में अश्लीलत्व गुण हो गया है ।

(iv) **"वद वद जितः शत्रुर्न हतो जल्पंश्च तव तवास्मीति । चित्रं चित्रमरोदीद्धा हेति परं मृते पुत्रे ॥"**

यहाँ पर वक्ता के हर्ष, विषाद, भय आदि से युक्त होने के कारण अधिकपदत्वदोष भी गुण हो गया है ।

(v) **"सितकरकररुचिरविभा विभाकराकार ! धरणिधर ! कीर्तिः ।**
पौरुषकमला कमला सापित वैवास्ति नान्यस्य ॥"

यहाँ पर 'कर-कर' 'विभा-विभा' तथा 'कमला-कमला' इन तीनों स्थलों पर पुनरुक्तता (कथितपदत्व) दोष अनुप्रास-अलंकार होने से गुण हो गया है ।

(vi) **"भवाम्यपहस्तितरेखो निरंकुशोऽथ विवेकरहितोपि ।**
स्वप्नेपि त्वयि पुनः प्रतीहि भक्तिं न प्रस्मरामि ॥"

यहाँ पर गर्भित दोष भी गुण हो गया है । इसी प्रकार अन्यान्य दोषों के विषय में भी समझना चाहिए ।

5. रसदोष

"व्यभिचारिरसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता । कष्टकल्पनया व्यक्तिरनुभाव–विभावयोः ॥
प्रतिकूलविभावादिग्रहो दीप्तिः पुनः पुनः । अकाण्डे प्रथनच्छेदौ अंगस्याप्यतिविस्तृतिः ॥
अंगिनोऽननुसंधानं प्रकृतीनां विपर्ययः । अनंगस्याभिधानं च रसे दोषाः स्युरीदृशाः ॥

अर्थात्–1. व्यभिचारी भावों, 2. रसों अथवा 3. स्थायी भावों का अपने वाचक शब्द द्वारा कथन, 4. विभाव और 5. अनुभाव की कष्टकल्पना द्वारा अभिव्यक्ति, 6. रस के प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण, 7. रस की पुनः पुनः दीप्ति, 8. रस का अनवसर विस्तार, 9. अनवसर रसच्छेद, 10. गौड़ रस (अप्रधान) का भी अत्यधिक विस्तार, 11. प्रधान रस का विस्मरण, 12. प्रकृति-विपर्यय तथा 13. अनंग (जो प्रकृत रस का उपकारक न हो) का कथन । इस प्रकार रसों में रहने वाले ये 13 रस दोष कहे गए हैं । उदाहरणतया–

(i) "सम्प्रहारे प्रहरणैः प्रहाराणां परस्परम् । ठणत्कारैः श्रुतिगतैरुत्साहस्तस्य कोऽप्यभूत् ॥"

यहाँ पर उत्साह-स्थायिभाव का स्वशब्द से कथन होने से, स्वशब्दवाच्यता दोष है ।

(ii) "तामनंगजयमंगलश्रियं किञ्चिदुच्चभुजमूललोकिताम् ।
नेत्रयोः कृतवतोऽस्य गोचरे कोऽप्यजायत रसो निरन्तरः ॥"

यहाँ पर 'रस' का रस शब्द के द्वारा अभिधान होने से रस-दोष है ।

(iii) "प्रसादे वर्त्तस्व प्रकटय मुदं संत्यज रुषं; प्रिये शुष्यत्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चन्तु वचः ॥
निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं; न मुग्धे ! प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥"

यहाँ पर शृंगार रस के विरोधी शान्त रस का अनित्यता-प्रकाशन रूप विभाव तथा उससे प्रकाशित निर्वेद रूप व्यभिचारी भाव का ग्रहण किया गया है । अतः, यहाँ पर प्रतिकूल-विभावादि रूप रसदोष है । इसी प्रकार अन्यान्य रसदोषों को भी समझना चाहिए ।

रसदोष-परिहार

कुछ विशेष-परिस्थितियों में उपर्युक्त 'रसदोष' दोष नहीं कहलाते, अपितु गुण हो जाते हैं । कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ निम्नलिखित हैं–

(i) प्रकृत रस के विरुद्ध संचारिभाव आदि का वाध्यत्वेन कथन करना दोष नहीं, अपितु गुण का आधायक होता है । यथा–"क्वाकार्यं शशलक्ष्मणः क्व च कुलं भूयोऽपि दृश्यते सा, ... ॥"

(ii) जो रस आश्रय के एक होने के कारण, विरुद्ध होता है, उसे भिन्न आश्रय में वर्णित करना चाहिए, और जो रस नैरन्तर्य से (अव्यवधान के कारण) विरुद्ध रस है, उसे किसी दूसरे रस से व्यवहित कर देना चाहिए ।

(iii) केवल प्रवन्ध-काव्य में ही नहीं, अपितु एक वाक्य में भी अन्य रस के व्यवधान कर देने पर विरोध दूर हो जाता है । यथा–

"सशोणितैःक्रव्यभजां स्फुरद्भिः पक्षैः खगानामुपवीज्यमानान् ।
संवीजिताश्चन्दनवारिसेकैः सुगन्धिभिः कल्पलतादुकूलैः ॥"

(iv) यदि विरोधी रस स्मर्यमाण रूप में अथवा साम्यरूप में विवक्षित हो, तो दोष नहीं होता, और जो दो विरोधी रस अन्य किसी के अंग हों, तो वे परस्पर दोषयुक्त नहीं रहते । उदाहरणतया–

"अयं स रसनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः । नाभ्यूरुजघनस्पर्शीनीवीविस्रंसनःकरः ॥"

यहाँ पूर्वावस्था का स्मरण शृंगार का अंग होने पर भी करुण रस को पुष्ट करता है । इस प्रकार सन्निवेशाश्रयपरिस्थितिवशाद् 'रस-दोष' भी कभीं-कभीं गुण में बदल जाते हैं ।

9. काव्य-गुण

आचार्य मम्मट ने गुणों के स्वरूप को समुद्घाटित करते हुए लिखा है–

"ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः । उत्कर्ष हेतवस्ते स्युश्चला स्थितयो गुणाः ॥"

अर्थात्–आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान मुख्य रस के जो अपरिहार्य तथा उत्कर्षधायक धर्म हैं, वे गुण कहलाते हैं । कहने का आशय यह है कि–जिस प्रकार शौर्यादिक आत्मा के ही धर्म होते हैं; शरीर के नहीं, उसी प्रकार माधुर्यादि गुण रस के ही धर्म होते हैं, वर्णों के नहीं, परन्तु कहीं-कहीं शौर्यादि आत्मगुणों के योग्य शरीर के आकार-प्रकार को देखकर–'इसका शरीर ही शूर-वीर है' ऐसा व्यवहार होने से तथा अन्यत्र अशूर व्यक्ति में भी विशाल लम्वे चौड़े शरीर मात्र से–'यह शूर है' ऐसा कह दिया जाता है । कहीं शूर व्यक्ति में भी शरीर की लघुता के कारण–'यह अशूर है'–इस प्रकार अदूरदर्शी भ्रान्त लोग जैसा व्यवहार करते हैं; उसी प्रकार मधुर आदि गुणों के व्यञ्जक सुकुमार आदि वर्णों में मधुरादि का व्यवहार होने से तथा अमधुरादि रसों के अंगभूत वर्णों में सुकुमारता आदि के कारण माधुर्यादि का तथा मधुर आदि के अंगभूत उन वर्णों के केवल कठोर होने से रस की मर्यादा को न समझने वाले भ्रान्तव्यक्ति, उनमें अमाधुर्यादि का व्यवहार करते हैं । अतएव इस पर ध्यान देना चाहिए कि–**"माधुर्यादयो रसधर्माः समुचितैर्वर्णैर्व्यज्यन्ते न तु वर्णमात्राश्रयाः ।"**

गुणभेद

आचार्य मम्मट ने, वामन-प्रतिपादित दस गुणों का खण्डन करते हुए–1. माधुर्य, 2. ओज तथा 3. प्रसाद; गुणों के ये तीन भेद स्वीकार किए हैं–

"माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश ।"

1. माधुर्य-गुण

"आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम् ।" अर्थात्–चित्त की द्रुति का कारण आह्लादकत्व या आनन्दस्वरूपता ही माधुर्यगुण है, और वह शृंगार रस में रहता है । इस प्रकार माधुर्यगुण–करुण, विप्रलम्भ, शृंगार और शान्त रस में उत्तरोत्तर चमत्कारजनक होता है–**"करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम् ।"**

माधुर्य गुण के व्यञ्जक तत्त्व–

"मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ॥"

अर्थात्–ट, ठ, ड, ढ, से रहित क से लेकर म पर्यन्त समस्त स्पर्शसंज्ञक वर्ण शिर पर अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त तथा ह्रस्व से व्यवहित रेफ़ और णकार, समासरहित एवं स्वल्पसमासयुक्त तथा अन्य पदों के साथ योग से माधुर्य युक्त रचना, माधुर्य-गुण के व्यञ्जक होते हैं ।

उदाहरण– "अनंगरंगप्रतिमं तदङ्गभङ्गीभिरङ्गीकृतमानताङ्ग्याः ।
कुर्वन्ति यूनां सहसा यथैताः स्वान्तानि शान्तापरचिन्तनानि ॥

यहाँ पर अपने वर्गों के अन्तिम वर्ण से युक्त–अनङ्ग, तरङ्ग, आदि में ग के साथ ङ् का तथा स्वान्त, शान्तादि में त के साथ न् का संयोग, ह्रस्व स्वर से व्यवहित रेफ स्वल्पसमासयुक्त रचना माधुर्य गुण के व्यञ्जक हैं ।

2. ओजगुण

दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः ।" अर्थात्–चित्त के विस्तार की हेतुभूत वीर रस में रहने वाली दीप्ति ही 'ओजगुण' कहलाती है । सामान्यतः यह 'वीर-रस' में पाया जाता है, वीभत्स तथा रौद्र रसों में क्रमशः उसका आधिक्य रहता है अर्थात् उत्तरोत्तर चमत्कारी बनता जाता है–**"वीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च ।"**

ओजगुण के व्यञ्जक तत्त्व–

"योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः ।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ॥"

अर्थात्–वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्णों के साथ अन्तिम अर्थात् द्वितीय एवं चतुर्थ वर्णों का रेफ के साथ नीचे-ऊपर अथवा दोनों जगह जिस किसी वर्ण का तथा दो तुल्य वर्णों का उसका उसी के साथ संयोग णकार को छोड़कर टवर्ग का प्रयोग शकार और षकार वर्ण दीर्घ समास तथा विकट रचनाएं ओजगुण के व्यञ्जक होते हैं ।

उदाहरण–

"मूर्ध्नामुद्वृत्तकृत्ताविरलगलगलद्रक्तसंसक्तधारा–,
धौतेशांघ्रिप्रसादोपनतजयजगज्जातमिथ्यामहिम्नाम् ।
कैलासोल्लासनेच्छाव्यतिकरपिशुनोत्सर्पिदर्पोद्धुराणां,
दोष्णां चैषां किमेतत् फलमिह नगरीरक्षणे यत्प्रयासः ॥"

यहाँ पर 'मूर्ध्नाम्', 'उत्सर्पि' तथा दर्पादि रेफ का ऊपर तथा 'गलद्रक्त' एवं 'अंघ्रि' में रेफ का नीचे संयोग, उद्वृत्त कृत्त आदि में दो तुल्य वर्णों का संयोग, इच्छा और दर्पोद्धुर आदि में च् छ् तथा द् ध् का संयोग, दीर्घ समास और विकट रचना-ये सभी ओजगुण को अभिव्यंजित कर रहे हैं ।

3. प्रसाद गुण

"शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः । व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः ॥"
अर्थात्–सूखे ईंधन में अग्नि के समान, तथा स्वच्छ वस्त्र में जल के समान, जो गुण सहसा (एकाएक) चित्त में व्याप्त हो जाता है, उसे प्रसाद गुण कहते हैं । यह सभी रसों तथा सभी रचनाओं में पाया जाता है ।

प्रसाद गुण के व्यञ्जक तत्त्व–

"श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ॥"

अर्थात्–जिस वर्ण, समास अथवा रचना के श्रवण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाए, वह सभी रचनाओं में रहने वाला तत्त्व प्रसादगुण का व्यञ्जक तत्त्व कहलाता है ।

उदाहरण–

"परिम्लानं पीनस्तनजघनसंगादुभयतः । तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम् ।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः । कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति विसिनीपत्रशयनम् ॥"

यहाँ पर माधुर्य के व्यञ्जक वर्ण, मध्यमसमास तथा मधुर रचना, सभी प्रसादगुण को अभिव्यंजित कर रहे हैं । पढ़ने या श्रवण मात्र से अर्थ की प्रतीति हो जा रही है ।

आचार्य वामन के दश गुणों का खण्डन–आचार्य वामन ने 1. ओज, 2. प्रसाद, 3. श्लेष, 4. समता, 5. समाधि, 6. माधुर्य, 7. सौकुमार्य, 8. उदारता, 9. अर्थव्यक्ति तथा 10. कान्ति नामक 10 शब्दगुणों तथा 10 अर्थगुणों (कुल 20 गुणों) को स्वीकार किया है । आचार्य मम्मट इनका खण्डन करते हुए लिखते हैं–

"केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात्परे श्रिताः । अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश ॥"

अर्थात्–वामनसम्मत कुछ गुण तो माधुर्य, ओज, प्रसाद–इन तीनों गुणों में अन्तर्भूत हो जाते हैं, कुछ दोषाभाव रूप हैं तथा कुछ कहीं पर गुण न होकर दोष रूप हो जाते हैं । अतः दश गुणों को मानना उचित नहीं है ।

जहाँ तक अर्थगुण का प्रश्न है, आचार्य मम्मट का कथन है कि–**"पदार्थे वाक्यरचनं वाक्यार्थे च पदाभिधा । प्रौढ़िर्व्यसिसमासौच साभिप्रायत्वमस्य च ॥"** अर्थात्–1. पदार्थ बोधन में वाक्यरचना,

2. वाक्यार्थ में पद रचना 3. विस्तार 4. संक्षेण तथा 5. अर्थ का साभिप्रायत्व–यह पाँच प्रकार की प्रौढ़ि होती है । इस प्रकार यह प्रौढ़ि जिसे 'ओज' कहा गया है, वह वैचित्र्य मात्र है, गुण नहीं; क्योंकि उसके विना भी काव्य व्यवहार होता है । अपुष्टार्थत्व, अधिकपदत्व आदि के द्वारा ओज, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता को दोषाभाव के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है । स्वभावोक्ति–अलंकार तथा रसध्वनि आदि से स्वभाव की अर्थस्पष्टता रूप अभिव्यक्ति तथा दीप्तरसत्वरूप कान्ति स्वीकृत है । श्लेष भी विचित्रता मात्र है । समता दोष मात्र है तथा अर्थदृष्टि रूप समाधि भी गुण नहीं है । अतः अर्थगुणों को नहीं कहना चाहिए अर्थात्-वामनसम्मत दश अर्थगुणों की कल्पना उचित नहीं है–**"तेन नार्थगुणा वाच्याः ॥"**

समीक्षा (गुण व अलंकार में भेद)

'गुण' विवेचनक्रम में 'अग्निपुराण' में गुण व अलंकार दोनों को समान महत्त्व प्रदान किया गया है–**"यः काव्ये महतीं छायां अनुगृह्णात्यसौ गुणः । काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते ।"** इन्हीं के अनुयायी भट्टोद्भट्ट ने गुण व अलंकार दोनों को एक मान लिया है–**"समवायवृत्या शौर्यादयः संयोगवृत्त्या तु हारादयः इत्यस्तु गुणालंकाराणां भेदः .... गड्ड लिकाप्रवाहेणैवेषां भेदः ।"** इसके वाद आचार्य वामन ने स्पष्ट रूप से गुण व अलंकारों में भेद स्थापित करने का प्रयास किया–**"काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः ॥ तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः ।"** इनके परवर्ती आचार्य आनन्दवर्धन ने गुणों व अलंकारों के भेदक तत्त्व का निरूपण करते हुए काव्य के आत्मभूत (अंगी) रसादि के आश्रित रहने वाले धर्म को गुण तथा काव्य के अंगभूत शब्द व अर्थ में रहने वाले धर्म को अलंकार कहा है–**"तमर्थमवलम्बन्ते योऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः । अंगाश्रितास्त्वलंकाराः मन्तव्याः कटकादिवत् ॥"** आचार्य मम्मट ने उपर्युक्त आचार्यों के विचारों का परिमार्जन व संशोधन करते हुए गुणों व अलंकारों के बीच में भेद निरूपण करने का सफल प्रयास किया है । इन्होंने भट्टोद्भट्ट के मत का सर्वथा परित्याग करते हुए वामन के समान गुणों को अपरिहार्य तत्त्व, तथा आनन्दवर्द्धन के समान गुणों को रस की अविचलस्थिति (नियतधर्म) तथा अलंकारों को शब्दार्थ का अस्थिर धर्म स्वीकार करके गुण व अलंकारों में भेद स्थापित किया है–

"ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः । उत्कर्षहेतवस्ते स्युश्चलास्थितयोगुणाः ॥
उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् । हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥"

अर्थात्–आत्मा के शौर्यादिधर्मवत् प्रधान रस के उत्कर्षक धर्म, जो नियत रूप से रहने वाले हैं, गुण कहे जाते हैं तथा जो शब्दार्थ रूप अंग के द्वारा इसमें विद्यमान अंगीरस को यदा-कदा उपकृत करते हैं, वे अनुप्रासोपमादि हारादि के समान अलंकार कहे जाते हैं ।

10. अलंकार

'अलंकार' को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट लिखते हैं–

"उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् । हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥"

अर्थात्–जो धर्म शब्द और अर्थ रूप अंग के द्वारा इसमें विद्यमान अंगी (रस) को कभी-कभी उपकृत करते हैं, वे अनुप्रास, उपमा आदि हार आदि के समान अलंकार कहे जाते हैं । यहाँ पर हमें मुख्यतः तीन बातें दृष्टिगोचर होती हैं–

1. शब्द तथा अर्थ रूप अंगों के उत्कर्ष के द्वारा जो मुख्यरस को उत्कर्षयुक्त करते हैं । वे कण्ठादि अंगों के उत्कर्षाधान द्वारा आत्मा के भी परम्परया उत्कर्षाधायक हारादि के समान अलंकार कहलाते हैं, जैसे–

"अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः ।
अलमलमालिमृणालैरिति वदति दिवानिशं वाला ॥"

2. जहाँ रस नहीं होता, वहाँ पर अलंकार कुरूपा स्त्री के द्वारा धारण किए गए अलंकरण के समान काव्य के अनुप्रासादि अलंकार केवल उक्तिवैचित्र्यमात्र प्रतीत होते हैं । जैसे–

"चित्ते विघटते न त्रुट्यति सा गुणेषु शय्यासु लुठति विसर्पति दिङ्मुखेषु ।
वचने वर्तते प्रवर्त्तते काव्यबन्धे ध्याने न त्रुट्यति चिरं तरुणी प्रगल्भा ॥"

3. कहीं पर रस के होने पर भी ये अलंकार किसी सुन्दरी नायिका द्वारा धारण किए गए ग्रामीण-भूषणसदृश उसके उत्कर्षक नहीं होते, जैसे–

"मित्रे क्वापि गते सरोरूहवने .... निहिता जीवस्य निर्गच्छतः ॥"

समीक्षा

प्रथमतः 'अग्निपुराण' ने 'अलंकार' को काव्य का अनिवार्य धर्म वताया–**"काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते ।"** तदनुसार भामह, दण्डी, उद्भट, रुद्रट आदि आचार्यों ने गुण और अलंकार दोनों को समान महत्त्व दिया । तत्पश्चात् आचार्य वामन ने गुण व अलंकार में अन्तर देखा तथा काव्य में शोभाकारक धर्मों को 'गुण' और उस शोभा को वढ़ाने वाले तत्त्व को अलंकार कहा– **"काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः ।"** आचार्य वामन की इस दृष्टि को आनन्दवर्धनाचार्य ने समझा और इस विचारसरणि में एक कड़ी और जोड़ दी–**"अंगाश्रितास्त्वलंकाराः मन्तव्याः कटकादिवत् ।"** इन्हीं दोनों आचार्यों की विचारधाराओं को ग्रहण कर आचार्य मम्मट ने अलंकारों का एक निर्दुष्ट लक्षण स्थिर करने का सफल प्रयास किया–**"उपकुर्वन्ति तं सन्तं ...... ॥"** आगे चलकर आचार्य मम्मट की इन्हीं विचारधाराओं को कविराज विश्वनाथ ने–

"शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः । रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥"

इन शब्दों से सुस्पष्ट किया ।

(i) श्लेष अलंकार

शब्द व अर्थ भेद से श्लेष के मुख्यतः दो भेद हैं–

1. शब्दश्लेष

"वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद् भाषणस्पृशः ।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा ॥"

अर्थात्–अर्थभेद होने से भिन्न-भिन्न शब्द समानानुपूर्वीक होने से एक साथ उच्चारण के कारण जव आपस में मिलकर एक हो जाते हैं, तो वह शब्द श्लेष अलंकार कहलाता है, कहने का तात्पर्य यह है कि–अर्थभेद के कारण भिन्न होने पर भी समानाकार शब्द जब एक साथ उच्चारण के कारण परस्पर मिल जाते हैं या अपने भिन्न स्वरूपत्व को छोड़ देते हैं, तो वह शब्दश्लेषालंकार कहलाता है । (क) सभंग तथा (ख) अभंग भेद से इसके मुख्यतः दो भेद हैं । इनमें प्रकृतप्रत्ययादि भेदक उपाधियों के कारण सभंगश्लेष आठ प्रकार का होता है–

1. वर्णश्लेष, 2 पदश्लेष, 3. लिङ्गश्लेष, 4. भाषाश्लेष, 5. प्रकृतिश्लेष, 6. प्रत्ययश्लेष, 7. विभक्ति-श्लेष, 8. वचनश्लेष ।

उदाहरण–

"पृथुकार्त्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेषपरिजनं देव । विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम् ॥"

प्रस्तुत उदाहरण में–**"पृथुकार्त्तस्वरपात्रम्"** का याचक पक्ष में–**'पृथुकानां बालानां आर्त्तस्वरस्य करुणक्रन्दनस्य पात्रम्'** अर्थात् घर बच्चों के रोने का स्थान है, तथा राजा के पक्ष में–**"पृथूनि विपुलानि कार्त्तस्वरस्य सुवर्णस्य पात्राणि यत्र तत्"** अर्थात् घर सोने के बड़े-बड़े बर्तनों से युक्त है । इसी प्रकार–**"भूषित-निःशेष परिजनं देव"** तथा **"विलसत्करेणुगहनम्"** में भी पदश्लेष दर्शाया गया है । इसी तरह अन्य उदाहरणों को भी समझना चाहिए ।

अभङ्गश्लेष–"भेदाभावात्प्रकृत्यादेर्भेदोऽपि नवमो भवेत् ।" अर्थात् प्रकृति-प्रत्ययादि का भङ्ग (विच्छेद) न होने से स्वरभेद से या स्वरभेद के बिना भी अनेक पदों के श्लिष्ट होने से पूर्वकथित आठ सभङ्गश्लेषों के अतिरिक्त इसे नवम भेद माना गया है । यद्यपि रूय्यकादि कुछ आचार्य अभङ्गश्लेष को अर्थालंकार मानते हैं, किन्तु आचार्य मम्मट ने इसे शब्दालंकार ही माना है– उदाहरणतया–

"योऽसकृत्परगोत्राणां पक्षच्छेदक्षणक्षमः । शतकोटिदतां विभ्रद्विबुधेन्द्रः स राजते ॥"

यहाँ पर 'परगोत्रादि' शब्द अनेकार्थक हैं, तथा उसके एकार्थ में नियन्त्रण के लिए प्रकरण आदि का अभाव है । अतः राजा व इन्द्र दोनों ही अर्थों के वाच्य होने से अभंगश्लेषालंकार है ।

2. अर्थश्लेष

"**श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत् ।**" अर्थात्–जहाँ पर एक ही वाक्य में एक पद के अनेक अर्थ होते हैं, वहाँ अर्थश्लेष अलंकार होता है । यह अर्थनिष्ठ होता है तथा श्लिष्ट पदों से अनेकार्थ को कहता है । उदाहरणतया–

"**उदयमयते दिङ्मालिन्यं निराकुरुतेतरां, नयति निधनं निद्रामुद्रां प्रवर्त्तयति क्रियाः ।**
रचयतितरां स्वैराचारप्रवर्तनकर्त्तनं, बत बत लसत्तेजःपुंजो विभाति विभाकरः ॥"

यहाँ पर–'**विभाकरः**' पद राजा व सूर्य दोनों का वाचक है । 'उदयम्' 'दिङ्मालिन्यम्' 'निद्रामुद्राम्' आदि शब्दों के विभाकर राजा तथा सूर्य, दोनों ही पक्षों में द्विविध अर्थ (अनेकार्थ) प्रकट हो रहे हैं । अतः यहाँ अर्थश्लेष है ।

(ii) यमक अलंकार

"**अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः यमकम् ।**" अर्थात्–अर्थ के होने पर भिन्न-भिन्न अर्थ वाले वर्णों की उसी क्रम से पुनरावृत्ति होने पर 'यमक अलंकार' होता है । यद्यपि इसके चालीस भेद बताए गए हैं, किन्तु इनमे–1. संदंश, 2. युग्म, 3. महा, 4. सन्दष्ट, 5. आद्यन्तिक, 6. आद्यन्तिक-अन्तादिक-समुच्चय, 7. पादगत (पूर्वार्द्धोत्तरार्द्ध में) आद्यन्तिक-अन्तादिक-समुच्चय तथा 8. अनियतस्थानावृत्तियमक ये आठ प्रमुख भेद हैं ।

उदाहरण–"सन्नारीभरणोमायमाराध्य विधुशेखरम् । सन्नारीभरणोऽमायस्ततस्त्वं पृथिवीं जय ॥"

यहाँ पर 'सन्नारीभरण' शब्द में वर्णों की आवृत्ति ठीक उसी क्रम में है तथा अर्थ भी भिन्न-भिन्न है । प्रथम सन्नारीभरण का अर्थ–'सती स्त्रियों का आभरण करने वाली पार्वती' तथा द्वितीय का अर्थ–'शत्रुओं के हाथियों का विनाश करने वाले' (**सन्नाः मृता अरीणां शत्रूणां इमा गजा यत्र तादृशो रणो युद्धं यस्य सः सन्नारीभरणः**) इस प्रकार यहाँ पर 'संदंश यमक' है । इसी प्रकार इसके अन्यान्य भेदों को भी समझना चाहिए ।

(iii) उपमा अलंकार

"**साधर्म्यमुपमा भेदे ।**" अर्थात्–उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर साधर्म्य का कथन 'उपमा-अलंकार' होता है । अर्थात्–उपमान और उपमेय का ही साधर्म्य होता है, कार्य और कारण आदि का साधर्म्य नहीं होता । अतः उन दोनों का ही समान धर्म से सम्वन्ध होना उपमा है । यहाँ पर भेद का ग्रहण अनन्वयालंकार से पार्थक्य दिखाने के लिए है । पूर्णा, लुप्ता, श्रौती, आर्थी इत्यादि के विचार से इसके कई भेद दिखाए गए हैं ।

उदाहरण–"स्वप्नेषु समरेऽपि त्वां विजयश्रीर्न मुंचति । प्रभावप्रभवं कान्तं स्वाधीनपतिका यथा ॥"

यहाँ पर 'स्वाधीनपतिका' उपमान है, विजयश्रीः' उपमेय है, 'न मुंचति' साधारणधर्म है तथा 'यथा' उपमा वाचक शब्द है । इस प्रकार यह पूर्णोपमा का उदाहरण है ।

(iv) रूपक अलंकार

"**तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः ।**" अर्थात्–उपमान और उपमेय जिनका भेद प्रसिद्ध है, उनका अत्यन्त साम्य के कारण जो अभेद वर्णन (अभेदारोप) है, वह रूपक अलंकार कहलाता है । रूपक के प्रमुख भेद निम्न हैं–1. समस्तवस्तुविषयक साङ्ग रूपक, 2. एकदेशविवर्ति साङ्ग रूपक, 3. शुद्ध निरङ्गरूपक, 4. माला-निरङ्गरूपक, 5. श्लिष्ट-परम्परित-रूपक, 6. अश्लिष्ट परम्परित रूपक तथा 7. रसना रूपक ।

उदाहरण–

"**ज्योत्स्नाभस्मच्छुरणधवला बिभ्रती तारकास्थी,–न्यन्तर्द्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम् ।**
द्वीपाद्दीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्राकपाले, न्यस्तं सिद्धाञ्जनपरिमलं लांछनस्यच्छलेन ॥"

यहाँ पर अतिशयसादृश्य के कारण रात्रि पर कापालिकी का **(रात्रिरेव कापालिकी)**; *ज्योत्स्ना* (चाँदनी) पर भस्म का, तारकों पर अस्थि का, चन्द्रकला पर कपाल का तथा लांछन पर सिद्धाञ्जन *परिमल* का आरोप किया गया है। इस प्रकार यह समस्तवस्तुविषयक सांगरूपकालंकार का उदाहरण है।

(v) उत्प्रेक्षा अलंकार

"सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।" अर्थात्–जहाँ पर प्रकृत (उपमेय) की सम (उपमान) के साथ सम्भावना (उत्कटकोटिक सन्देह) की जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। इस प्रकार उत्प्रेक्षा भी एक प्रकार का सन्देह होता है। इसमें उपमान कल्पित होता है। उपमेय की कल्पित उपमानरूपेण सम्भावना ही उत्प्रेक्षा है। इस प्रकार उत्प्रेक्षा की आत्मा सम्भावना है। ध्यातव्य है कि उपमा और उत्प्रेक्षा दोनों ही सादृश्यमूलक अलंकार हैं, किन्तु उपमा साधर्म्यमूलक है, जबकि उत्प्रेक्षा अध्यवसायमूलक है।

उदाहरण–लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः। असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥"

यहाँ पर व्यापनादि उपमेय, उपमानभूत लेपनादि रूप से सम्भावित है। अतः यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(vi) अनन्वय अलंकार

"उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे अनन्वयः॥" अर्थात्–एक वाक्य में एक ही पदार्थ के उपमान और उपमेय दोनों होने पर 'अनन्वयालंकार' होता है। अर्थात्–अन्य उपमपान का सम्बन्ध न होना ही अनन्वय है। यहाँ पर उपमेय तथा उपमान में कोई भेद नहीं होता। दोनों की स्थिति एक जैसी होती है। ध्यातव्य है कि–यदि भेद का वर्णन हुआ, तो भेदग्रहणमात्र से ही 'उपमालंकार' हो जाएगा।

उदाहरण– "न केवलं भाति नितान्तकान्तिर्नितम्बिनी सैव नितम्बिनीव।
यावद्विलासायुधलास्यवासास्ते तद्विलासा इव तद्विलासा॥"

यहाँ पर नितम्बिनी अपने ही समान है, तथा उसका विलास भी उसी के विलास के समान है। इस प्रकार यहाँ नितम्बिनी ही उपमान और उपमेय दोनों रूप में गृहीत है, उससे भिन्न अन्य कोई उपमान नहीं है, अतः यहाँ अनन्वयालंकार है।

(vii) अतिशयोक्ति अलंकार

"निगीर्याध्यवसानं तु प्रकृतस्य परेण यत्। प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्॥
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः। विज्ञेयातिशयोक्तिः सा॥"

अर्थात्–उपमान के द्वारा उपमेय का निगरण (अन्तर्भाव) करके काल्पनिक और अभेद का निश्चय (अध्यवसान) करना, (प्रथम प्रकर की अतिशयोक्ति), प्रस्तुत (उपमेय) का अन्य रूप में वर्णन करना (द्वितीय प्रकार की), 'यदि' शब्द के पर्यायवाचक 'चेत्' आदि शब्दों के कथन के द्वारा असम्भव कार्य की कल्पना करना (तृतीय प्रकार की), तथा कार्यकारण के पूर्वापर भाव का विपर्यय (चतुर्थप्रकार की अतिशयोक्ति है)। इस प्रकार अतिशयोक्ति के चार भेद समझने चाहिए। अग्निपुराणकार ने इसी को–**"लोकसीमानिवृत्तस्य वस्तुधर्मस्य कीर्त्तनम्।"** कहा है।

उदाहरण–"राकायामकलङ्कं चेदमृतांशोर्भवेद्वपुः। तस्या मुखं तदा साम्यपराभवमवाप्नुयात्॥"

यहाँ पर 'यदि' का समानार्थक शब्द 'चेत्' लगाकर कल्पना की गई है कि 'पूर्णिमा की रात में यदि चन्द्रमा का बिम्ब कलङ्करहित हो जाए तो शायद उस नायिका का मुख समानता रूप पराभव को प्राप्त हो सकता है (अन्यथा नहीं) अतः यहाँ पर उपर्युक्त तृतीय प्रकार की अतिशयोक्ति है। इसी प्रकार अन्य भेदों को भी समझना चाहिए।

(viii) समासोक्ति अलंकार

"परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।" अर्थात्–श्लेषयुक्त विशेषणों के द्वारा पर अर्थात् अप्रकृत के व्यवहार का कथन होने पर, दो अर्थों का संक्षिप्त रूप से कथन होने के कारण 'समासोक्ति अलंकार'

कहलाता है–(**समासेन संक्षेपेण उक्तिः समासोक्तिः**) कहने का तात्पर्य यह है कि–प्रस्तुत अर्थ के प्रतिपादक वाक्य के द्वारा, शिलष्ट-विशेषणों के प्रभाव से (विशेष्य के सामर्थ्य से नहीं) जो अप्रस्तुत अर्थ का कथन है, वह संक्षिप्त रूप से (समासेन) प्रकृत तथा अप्रकृत दोनों का कथन होने से समासोक्ति–अलंकार कहलाता है ।

उदाहरण–"लब्ध्वा तव बाहुस्पर्शं यस्याः स कोऽप्युल्लासः ।
जयलक्ष्मीस्तव विरहे न खलूज्ज्वला दुर्बला ननुसा ॥"

यहाँ पर केवल विशेष्यवाचक जयलक्ष्मीशब्द अप्रकृत कान्ता रूप अर्थ का वाचक नहीं है, अपितु शिलष्ट-विशेषणों (बाहुस्पर्शादि) द्वारा जयलक्ष्मी शब्द नायिका का बोधक भी होता है । अतः यहाँ समासोक्ति अलंकार है ।

(ix) अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार

"**अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया ।**" अर्थात्–प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराने वाली, जो अप्रस्तुत अर्थ की प्रशंसा (उपस्थिति) है, उसी को अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार कहते हैं । कार्य, कारण, सामान्य और विशेष के प्रस्तुत होने पर उससे भिन्न का तथा तुल्य के प्रस्तुत होने पर उसके समान अप्रस्तुत का कथन करना; ये पाँच भेद होते हैं–"**कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति । तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पञ्चधा ॥**"

उदाहरण–"याताः किन्न मिलन्ति सुन्दरि पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते,
नो कार्या नितरां कृशाऽसि कथयत्येवं सवाष्पे मयि ।
लज्जामन्थरतारकेण निपतत्पीताश्रुणा चक्षुषा;
दृष्ट्वा मां हसितेन भाविमरणोत्साहस्त्वया सूचितः ॥"

यहाँ पर यात्रा का विचार क्या छोड़ दिया ? इस प्रकार यात्रा से निवृत्त कार्यरूप अर्थ के पूछे जाने पर नायक ने उसके 'कारण' मरणोत्साह का कथन कर दिया । इस प्रकार यात्रानिवृत्तिरूप कार्य के प्रस्तुत होने पर अप्रस्तुत प्रिया के भाविमरणोत्साह रूप कारण का कथन होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है ।

(x) दृष्टान्त अलंकार

"**दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिविम्बनम् ।**" अर्थात्–जहाँ पर उपमान,उपमेय, उनके विशेषण तथा साधारणधर्म का दोनों वाक्यों (उपमान वाक्य तथा उपमेय वाक्य) में विम्व-प्रतिविम्व भाव होता है, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है । जहाँ पर दृष्टान्त या उपमान वाक्य के साथ विम्व-प्रतिविम्वभाव के द्वारा दार्ष्टान्तिकवाक्य या उपमेय वाक्य के अर्थ का अन्त (निश्चय) देखा जाता है, वहाँ दृष्टान्त अलंकार समझना चाहिए । यह साधर्म्य एवं वैधर्म्य भेद से दो प्रकार का होता है ।

उदाहरण–

(साधर्म्य पूर्वक)–"**त्वयि दृष्ट एव तस्या निर्वाति मनो मनोभवज्वलितम् ।**
आलोके हि हिमांशोर्विकसति कुसुमं कुमुद्वत्याः ॥"

यहाँ पर नायक तथा चन्द्रमा का, नायिका व कुमुदिनी का, मन व कुसुम का, कामदेव सन्तापत्व व सूर्यसन्तापत्व का तथा निर्वाण व विकास का विम्ब-प्रतिविम्व भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है ।

(वैधर्म्य पूर्वक)–"**तवाहवे साहसकर्मशर्मणः करं कृपाणान्तिकमानिनीषतः ।**
भटाः परेषां विशरारुतामगुः दधत्यवाते स्थिरतां हि पांशवः ॥"

यहाँ पर धूलि और शत्रुसेना का तथा पलायन और अस्थिरता का विम्व-प्रतिविम्वभाव है । अतः यहाँ वैधर्म्यपूर्वक दृष्टान्त अलंकार है ।

टिप्पणी

1. दृष्टान्त अलंकार, प्रतिवस्तूपमा से भिन्न होता है; क्योंकि प्रतिवस्तूपमा में वस्तु-प्रतिवस्तुभाव (**एकस्यार्थस्य शब्दद्वयेनाभिधानं वस्तु-प्रतिवस्तुभावः**) होता है, जबकि दृष्टान्त में विम्ब-प्रतिविम्बभाव (**द्वयोरर्थयोर्द्विरूपादानं विम्ब-प्रतिविम्बभावः**) होता है ।

2. दृष्टान्त और उपमा दोनों सादृश्यमूलक अलंकार हैं, परन्तु उपमा सादृश्य वाच्य होता है, जवकि दृष्टान्त में गम्य ।

3. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास दोनों में परस्पर निरपेक्ष दो वाक्य होते हैं; परन्तु अर्थान्तर न्यास एक सामान्य व एक विशेष वाक्य वाला होता है, जवकि दृष्टान्त में दोनों वाक्य विशेष होते हैं ।

4. दृष्टान्त और निदर्शना दोनों ही सादृश्यगम्य, विम्व-प्रतिविम्वभाव वाले तथा दो वाक्यों वाले अलंकार हैं, किन्तु दृष्टान्त में दोनों वाक्य निरपेक्ष होते हैं, जबकि निदर्शना में दोनों वाक्य परस्पर सापेक्ष होते हैं तथा दृष्टान्त में वाक्यार्थप्रतीति के वाद विम्वप्रतिविम्वभाव की प्रतीति होती है, जवकि निदर्शना में विम्वप्रतिविम्वभावप्रतीत्यनन्तर वाक्यार्थप्रतीति होती है ।

(xi) निदर्शना अलंकार

"निदर्शना अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः ।" अर्थात्–जहाँ वस्तु का असम्भव (अनुपपद्यमान) सम्वन्ध प्रकृत का अप्रकृत के साथ उपमा का परिकल्पक अर्थात् उपमा में पर्यवसित होता है, वह निदर्शना नामक अलंकार होता है । वाक्यार्थ पदार्थ तथा मालारूप निदर्शना इसके तीन भेद हैं, इसके अतिरिक्त–**"स्वस्वहेत्वन्यस्योक्तिः क्रिययैव च सापरा ।"** अर्थात्–क्रिया के द्वारा ही अपना और अपने कारण के सम्वन्ध का कथन एक दूसरे प्रकार की निदर्शना होती है ।

उदाहरण–"क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्वचाल्पविषयामतिः । तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।"

यहाँ पर–जिस प्रकार छोटी नौका से समुद्र को पार करना असम्भव है, उसी प्रकार मेरी तुच्छवुद्धि से सूर्यवंश का वर्णन करना असम्भव है । इस प्रकार पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों वाक्यों में अन्वयवोध के लिए उपमानोपमेयभाव की कल्पना कर ली गई है । अतः यह वाक्यार्थ निदर्शना का उदाहरण है । इसीप्रकार–

"उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥"

यहाँ पर स्पष्ट है वारणेन्द्र (गजराज) की लीला को पर्वत धारण नहीं कर सकता, अतः उसके समान इस उपमा में पर्यवसित होता है । अतः पदार्थनिदर्शना का उदाहरण है ।

"दोर्भ्यां तितीर्षति तरंगवतीभुजंगमादातुमिच्छति करे हरिणांकविम्वम् ।
मेरुं लिलंघयिषति ध्रुवमेष देव ! यस्ते गुणान् गदितुमुद्यममादधाति ॥"

यहाँ पर एक ही 'गुणगणवर्णन' रूप उपमेय के 'समुद्रतरण' आदि अनेक उपमान हैं । अतः यहाँ मालारूपा निदर्शना अलंकार है ।

(xii) अर्थान्तरन्यास अलंकार

"सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येण परेण वा ॥"

अर्थात्–जहाँ पर सामान्य का विशेष के द्वारा या विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन होता है, वहाँ अर्थान्तरन्यास-अलंकार होता है; जो साधर्म्य तथा वैधर्म्य भेद से दो प्रकार का है ।

उदाहरण–

(साधर्म्यपूर्वक)–**"निजदोषावृतमनसामतिसुन्दरमेव भाति विपरीतम् ।**
पश्यति पित्तोपहतः शशिशुभ्रं शंखमपि पीतम् ॥"

यहाँ पर–'मन में दोष होने पर अच्छी बात, बुरी मालूम पड़ती है ।' इस सामान्य तथ्य का समर्थन–'पीलियारोगग्रस्त रोगी को शंख पीली नजर आती है ।' इस विशेष कथन से किया गया है । अतः यहाँ साधर्म्यपूर्वक अर्थान्तरन्यास है ।

(वैधर्म्यपूर्वक)–**"गुणानामेव दौरात्म्याद् धुरि धुर्यो नियुज्यते ।**
असञ्जातकिणस्कन्धः सुखं स्वपिति गौर्गलि ॥"

प्रस्तुत उदाहरण में–'उत्तम-पुरुष ही सदैव कार्य में सन्निविष्ट किए जाते हैं ।' इस सामान्य का समर्थन–'दुष्टवैल ही कन्धे पर चिह्न धारण किए विना ही सुखपूर्वक सोता है ।' यह वैधर्म्ययुक्त विशेष कथन सामान्य का समर्थक है । अतः यहाँ वैधर्म्यपूर्वक अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

टिप्पणी

1. अर्थान्तरन्यास व काव्यलिङ्ग में महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि अर्थान्तरन्यास में सामान्यविशेष-भाव सम्बन्ध होता है, जबकि काव्यलिङ्ग में समर्थ्य-समर्थक का कार्यकारणभाव सम्बन्ध होता है ।

2. अर्थान्तरन्यास और निदर्शना दोनों में ही दो वाक्य होते हैं, किन्तु अर्थान्तर में दोनों वाक्य परस्पर निरपेक्ष तथा तर्कमूलक होते हैं, जबकि निदर्शना में दोनों वाक्य परस्पर सापेक्ष तथा सादृश्यमूलक होते हैं ।

(xiii) विभावना अलंकार

"**क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना ।**" अर्थात् क्रिया (कारण) का निषेध (अभाव) होने पर भी फलोत्पत्ति होना ही विभावना अलंकार है । ध्यातव्य है कि–'**क्रियतेऽनयेति व्युत्पत्त्या क्रियाशब्दः कारणपरः**' इस व्युत्पत्ति के अनुसार क्रिया शब्द कारण का बोधक है । आचार्य विश्वनाथ कविराज ने–'**विभावना बिना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते ।**' ऐसा विभावना का लक्षण किया है ।

उदाहरण–"कुसुमितलताभिरहताऽप्यधत्त रुजमलिकुलैरदष्टापि ।
परिवर्त्तते स्म नलिनी लहरीभिरलोलिताऽप्यघूर्णत सा ॥"

यहाँ पर लताओं से ताड़ित न होने पर भी नायिका पीड़ा को प्राप्त हो रही है । भ्रमरों के द्वारा काटे न जाने पर भी तड़प रही है । कमलिनीयुक्त लहरों में फँसे बिना भी चक्कर आ रहा है । इस प्रकार यहाँ पर कारणों का निषेध होने पर भी फलोत्पत्ति का वर्णन होने से विभावनालंकार है ।

(xiv) विशेषोक्ति अलंकार

"**विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः ।**" अर्थात्–समस्त प्रसिद्ध कारणों के एकत्र होने पर भी फलोत्पत्ति का अभाव ही विशेषोक्ति कहा जाता है । अनुक्तनिमित्ता, उक्तनिमित्ता तथा अचिन्त्यनिमित्ता भेद से विशेषोक्ति के तीन भेद वतलाए गए हैं ।

उदाहरण–

1. "**निद्रानिवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारपदं पराप्ते ।**
श्लथीकृताश्लेषरसे भुजंगे चचाल नालिंगनतोऽङ्गना सा ॥"

यहाँ पर निद्रानिवृत्ति, तथा सूर्योदय आदि कारणों के एकत्र होने पर भी आलिङ्गनपरित्याग रूप कार्य का अभाव होने से तथा अनुरागातिशयनिमित्त का कथन न होने से अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति है ।

2. "**कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने । नमोऽस्त्वकार्यवीर्याय तस्मै मकरकेतवे ॥"**

यहाँ पर शरीर के भस्म होने पर भी शक्तिक्षय रूप फलोत्पत्ति का अभाव है । '**अकार्यवीर्यत्व**' रूप निमित्त का कथन होने से उक्तनिमित्ताविशेषोक्ति अलंकार है ।

3. "**स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः । हरतापि तनुं यस्य शम्भुना न बलं हृतम् ॥"**

यहाँ पर–शरीर का नाश होने पर भी वल का नाश रूप फलोत्पत्ति का अभाव है, परन्तु शिवजी ने कामदेव के बल का नाश क्यों नहीं किया, इस हेतु का विचार न होने से 'अचिन्त्यनिमित्ताविशेषोक्ति' अलंकार है ।

विशेष

विभावना और विशेषोक्ति दोनों ही कार्यकारणभावाश्रित और विरोधमूलक अलंकार हैं, किन्तु इनमें मुख्य अन्तर यह है कि–विशेषोक्ति में कारण के होने पर भी कार्य का अभाव पाया जाता है, जबकि विभावना में कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति देखी जाती है ।

(xv) सङ्कर-अलंकार

ध्यातव्य है कि सङ्कर और संसृष्टि दोनों ही उभयालंकार अर्थात् शब्दार्थालंकार के अन्तर्गत आते हैं । संसृष्टि के विपरीत जव काव्य में दो या दो से अधिक अलंकारों की 'नीरक्षीरन्यायेन' परस्पर सापेक्ष रूप से स्थिति होती है, तो वहाँ सङ्कर अलंकार होता है । आचार्य रुय्यक के शब्दों में–**"नीरक्षीरन्यायेन तु सङ्करः ।"** यह 1. अंगांगिभाव, 2. सन्देहसंकर तथा 3. एकश्रयानुप्रवेशसंकर भेद से तीन प्रकार का होता है ।

1. अंगांगिभाव सङ्कर

"अविश्रान्तिजुषामात्मन्यङ्गाङ्गित्वं सङ्करः ।" अर्थात्–अपने स्वरूपमात्र में जिनकी विश्रान्ति न हो, उनका अंगांगिभाव होने पर परस्पर अनुग्राह्य–अनुग्राहकभाव धारण करने से इनके स्वरूप के परस्पर संकीर्ण हो जाने के कारण अंगांगिभावसंकर अलंकार होता है । उदाहरणतया–

"जटाभिर्भाभिः करधृतकलङ्काक्षवलयो; वियोगिव्यापत्तेरिव कलितवैराग्यविशदः ।
परिप्रेङ्खत्तारापरिकरकपालङ्कितत्तले; शशी भस्मापाण्डुः पितृवन इव व्योम्निचरति ॥"

प्रस्तुत उदाहरण में–उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और श्लेष में चारों अलंकार परस्पर अंगांगिभाव से प्रतीत हो रहे हैं ।

2. सन्देह-सङ्कर

"एकस्य च ग्रहे न्यायदोषाभावादनिश्चयः ॥" अर्थात्–किसी एक के मानने में साधक प्रमाण और वाधक प्रमाण न होने के कारण निश्चय न हो सकना ही सन्देहसङ्कर अलंकार होता है । उदाहरणतया–

"यथा गभीरो यथा रत्ननिर्भरो यथा च निर्मलच्छायः ।
तथा किं विधिना एष सरसपानीयोजलनिधिर्न कृतः ॥"

यहाँ पर समासोक्ति और अप्रस्तुतप्रशंसा; इन दोनों अलंकारों में एक के साधक व दूसरे के वाधक प्रमाण के न होने से सन्देह रूप सङ्कर अलंकार है ।

3. एकाश्रयानुप्रवेश सङ्कर

"स्फुटमेकत्रविषये शब्दार्थालंकृतिद्वयम् व्यवस्थितम् च ॥" अर्थात्–जहाँ एक ही विषय (पद) में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों स्पष्ट रूप से व्यवस्थित होते हैं, वहाँ एकाश्रयानुप्रवेशसंकर अलंकार होता है । उदाहरंणतया–

"स्पष्टोल्लसत्किरणकेसरसूर्यविम्ब; विस्तीर्णकर्णिकमथो दिवसारविन्दम् ।
श्लिष्टाष्टदिग्दलकलामुखावतार–;बद्धान्धकारमधुपावलि सञ्चुकोच ॥"

यहाँ पर एक पद में (प्रत्येक पद में) रूपक और अनुप्रास दोनों अलंकार स्थित हैं । अतः यह एकपदानुप्रवेश-सङ्कर का उदाहरण है ।

(xvi) संसृष्टि-अलंकार

"सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः ॥" अर्थात्–पूर्वकथित अलंकारों की (दो या दो से अधिक) काव्य या वाक्य में भेद अर्थात्–परस्पर निरपेक्ष रूप, से जो स्थिति है, वह संसृष्टि अलंकार मानी जाती है । यह संसृष्टि शब्दालंकारों, अर्थालंकारों या शब्दार्थालंकारों में भी हो सकती है । अतः इसी आधार पर इसके तीन भेद भी बताए गए हैं ।

उदाहरण–"लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः । असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥"

यहाँ पर पूर्वार्द्ध में उत्प्रेक्षा तथा उत्तरार्द्ध में उपमालंकार हैं । इस प्रकार यहाँ पर दोनों ही अलंकार परस्पर निरपेक्षभाव से-(तिलतण्डुलवत्न्यायेन) एकत्र हैं । अतः संसृष्टि है ।

विशेष

संसृष्टि और सङ्कर अलंकार में प्रमुख अन्तर यह है कि–'तिलतण्डुलन्यायेन' परस्पर निरपेक्ष अलंकारों का परस्पर संश्लेष (मिश्रण) संसृष्टि कहलाता है, जबकि–अनेक अलंकारों की 'नीरक्षीरन्यायेन' परस्पर सापेक्ष रूप से स्थिति सङ्कर-अलंकार है ।

(ख) ध्वन्यालोक (प्रथम उद्योत)

1. ध्वनि-सिद्धान्त

'ध्वन्यालोक' का प्रतिपाद्य-विषय मूलतः ध्वनिसिद्धान्त ही है । आचार्य आनन्दवर्द्धन ने इस सिद्धान्त का अत्यन्त सूक्ष्म साङ्गोपाङ्ग विवेचन करते हुए काव्य के एक सार्वभौम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है । ध्वनि के विरुद्ध सम्भाव्य आपत्तियों का निराकरण करते हुए उन्होंने प्रतीयमान की स्थापना और वाच्य से उसकी श्रेष्ठता का निर्धारण किया है । इसके उपरान्त ध्वनिकाव्य की श्रेणियाँ और ध्वनि के भेदों का वर्णन है, पुनः ध्वनि की व्यापकता अर्थात् तद्धित, कृदन्त, उपसर्ग, प्रत्यय आदि से लेकर महाकाव्य पर्यन्त उसकी सत्ता का प्रदर्शन किया गया है, तथा अन्त में काव्य के गुण, रीति तथा अलंकारसिद्धान्तों का ध्वनि में समाहार किया गया है ।

काव्यस्यात्मा ध्वनिः

काव्यतत्त्ववेत्ता विद्वान् पहले से ही यह कहते आए हैं कि काव्य की आत्मा ध्वनि है । उस ध्वनि का स्वरूप समस्त सत्कवियों के काव्य में, उपनिषद्भूत प्रधान तत्त्व है और यह तत्त्व अत्यन्त रमणीय है । यद्यपि आचार्य लोग प्राचीन काल से काव्यलक्षण करते चले आए हैं, किन्तु उस ध्वनि का उन्मीलन कभी भी सूक्ष्म से सूक्ष्म बुद्धि ने भी नहीं कर पाया ।

प्रतीयमानार्थ अथवा व्यंग्यार्थ की सत्ता या प्रधानता

काव्य की आत्मा के रूप में व्यवस्थित सहृदय-श्लाघनीय जो अर्थ है, उसके 1. **वाच्य** तथा 2. **प्रतीयमान** दो भेद हैं ।

"योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः । वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ॥"

इनमें प्रतीयमानार्थ, वाच्यार्थ से सर्वथा पृथक् है । इसी प्रतीयमानार्थ को व्यंग्यार्थ भी कहा जाता है, जो महाकवियों की वाणी में सुशोभित होता है । यह प्रतीयमानार्थ सहृदयों में अत्यन्त प्रसिद्ध है, तथा प्रसिद्ध अलंकारों से प्रतीत होने वाले शब्द तथा अर्थ रूपी अंगों से उसी प्रकार पृथक् है, जिस प्रकार प्रमदा-लावण्य रमणियों के मुख, नेत्र, श्रोत्रादि प्रतीत होने वाले अवयवों तथा अलंकारों से सर्वथा भिन्न होता है । इस प्रकार प्रमदालावण्यवत् महाकवियों की सूक्तियों में सुशोभित होने वाला यह प्रतीयमानार्थ अमृत के तुल्य एक अनोखा तत्त्व है, जो वाच्यार्थ को तथा स्वयं को (प्रतीयमानार्थ को) सुशोभित करता हुआ, सहृदयों के हृदय को आह्लदित करता है–

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु ॥"

प्रतीयमान रस को ही काव्य की आत्मा के रूप में प्रस्तुत करते हुए आचार्य आनन्दवर्द्धन ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं–

"काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा । क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥"

अर्थात्–प्रतीयमानार्थ के सम्पूर्ण भेदों में श्रेष्ठ रसध्वनि ही काव्य की आत्मा है । इसी से प्राचीन काल में क्रौंच पक्षी के जोड़े के परस्पर वियोग से उत्पन्न आदिकवि वाल्मीकि का शोक ही श्लोक रूप में परिणत हो गया ।

वस्तु तथा अलंकार ध्वनि वहीं पर काव्यरूपता को धारण करती है, जहाँ वे रसध्वनिपर्यवसायी होती हैं । उस प्रतीयमान अर्थ की काव्यात्मकता स्वसंवेदना सिद्ध भी है । जो वस्तु स्वसंवेदना-सिद्ध होती है, उसमें किसी को संदेह हो ही नहीं सकता । महाकवियों की वाणी उसी रसध्वनि, भावध्वनि आदि प्रतीयमानार्थ को प्रवाहित किया करती है । सामान्य व्यक्ति वाच्यार्थ के द्वारा व्यवहार करते हैं, परन्तु विशिष्ट्पुरुषों (महाकवियों) की वाणी में व्यंग्यार्थ का सौन्दर्य झलकता है, जो महाकवियों की विशेष प्रतिभा को समुद्घाटित करता है–

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निःष्यन्दमाना महतां कवीनाम् ।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम् ॥"

इस प्रतीयमान अर्थ को जानने के लिए काव्य-मर्मज्ञ होना या सहृदय होना आवश्यक है, क्योंकि वाच्यार्थ को व्याकरण तथा कोशग्रन्थों की सहायता से जाना जा सकता है, परन्तु व्यंग्यार्थ को नहीं । व्यंग्यार्थ या प्रतीयमानार्थ ज्ञान की कारणसामग्री सहृदयव्यक्ति या काव्यमर्मज्ञ ही हो सकता है–**"शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते । वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम् ॥"**

जहाँ तक व्यंग्यार्थ की प्रधानता का प्रश्न है–कवि व्यङ्ग्यार्थ का अवगम कराने के लिए ही विविध शब्दों का प्रयोग किया करता है, क्योंकि व्यंग्यार्थ ही कवि का चरमलक्ष्य होता है । अतएव कवि की दृष्टि में उसी की प्रधानता होती है । वाच्यार्थ तो व्यंग्यार्थ की प्रतीति में साधनमात्र होता है, जैसे–अन्धकार में अवलोकन के लिए दीपक–

"आलोकार्थी यथा दीपशिखायां यत्नवान् जनः । तदुपायतया तद्वदर्थे वाच्ये तदादृतः ॥"

जिस प्रकार पदार्थज्ञान के द्वारा वाक्यार्थज्ञान होता है, उसी प्रकार वाच्यार्थज्ञान के द्वारा व्यंग्यार्थज्ञान होता है– **"यथा पदार्थद्वारेण वाक्यार्थः सम्प्रतीयते ।**
वाच्यार्थपूर्विका तद्वत् प्रतिपत्तस्य वस्तुनः ॥"

वाच्य-व्यंग्य अथवा वाच्यार्थ-प्रतीयमानार्थ में भेद

"योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः ।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ॥"

अर्थात् काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित सहृदयश्लाघनीय अर्थ के दो भेद हैं–1. वाच्यार्थ तथा 2. प्रतीयमानार्थ । इन दोनों में कुछ प्रमुख भेद निम्नलिखित है–

1. स्वरूपभेद

(i) वाच्यार्थ विधिपरक हो तो व्यंग्यार्थ निषेधपरक हो जाता है–

"भ्रम धार्मिक विस्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन । गोदानदीकच्छकुञ्जवासिना दृप्तसिंहेन ॥"

प्रस्तुत उदाहरण का विधिपरक वाच्य अर्थ है–'हे ब्राह्मण ! अब तुम निश्चिन्त होकर गोदावरी के किनारे कुञ्ज में भ्रमण करो ।' जबकि व्यंग्य अर्थ निषेधपरक है कि–'गोदावरी नदी के किनारे कुञ्ज में अब तुम भूलकर भी मत जाना ।'

(ii) वाच्यार्थ के निषेधपरक होने पर भी व्यंग्यार्थ विधिपरक हो जाता है; यथा–

"श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोकय । मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायां मम निमंक्ष्यसि ॥"

यहाँ पर वाच्यार्थ–'मेरी चारपाई पर मत आ जाना' निषेधपरक है, जबकि व्यंग्य अर्थ–'मेरी चारपाई पर ही आना, दूसरे की चारपाई पर नहीं' विधिपरक है ।

(iii) कहीं वाच्य के विधिपरक होने पर व्यंग्यार्थ, अनुभयात्मक (विधि-निषेध दोनों से ही भिन्न) होता है । अथवा वाच्य के निषेधपरक होने पर व्यंग्यार्थ अनुभयात्मक होता है । उदाहरणतया–क्रमशः **"व्रजममैवैकस्या भवन्तु ... ॥"** तथा **"प्रार्थये तावत् प्रसीद ... करोष्यन्यासामपि हताशे ॥"**

2. विषयभेद

वाच्यार्थ तो सबके लिए एक ही होता है, परन्तु प्रतीयमानार्थ **पात्र** भेद से सामाजिकों में भी पृथक्-पृथक् होता है । उदाहरणतया–

"कस्य वा न भवति रोषो दृष्ट्वा प्रियायाः सव्रणमधरम् । सभ्ररपद्माघ्रायिणि वारितवामे सहस्वेदानीम् ॥"

यहाँ पर वाच्यार्थ तो सबके लिए समान ही है, परन्तु प्रतीयमानार्थ–पति, सपत्नी, पड़ोसी, नायिका, उपपति (जार) तथा रसिक सभी को **पात्र** भेद से भिन्न-भिन्न अनुभूत हो रहा है । इसी प्रकार अलंकार ध्वनि में भी वाच्यव्यंग्य का भेद होता है । रस ध्वनि में–रस स्वशब्द वाच्य होता ही नहीं, जबकि वाच्य, स्वशब्द वाच्य होता है ।

3. निमित्तभेद

वाच्यार्थ तो कारणादि (व्याकरण, कोशादि) से जाना जाता है, प्रतीयमानार्थ ज्ञान के लिए सहृदय होना आवश्यक है–

"शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते । वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम् ॥"

4. कालभेद

वाच्यार्थ से आक्षिप्त होकर ही व्यंग्यार्थ निकला है । अर्थात्–पहले वाच्यार्थ ज्ञान तत्पश्चात् व्यंग्यार्थ ज्ञान होता है ।

"यथा पदार्थद्वारेण वाक्यार्थः सम्प्रतीयते । वाच्यार्थपूर्विका तद्वत् प्रतिपत्तस्य वस्तुनः ॥"

5. आश्रयभेद

वाच्यार्थ का आश्रय केवल शब्द या वाक्य होता है, जबकि व्यंग्यार्थ का आश्रय–वाक्य, शब्द, पद, पदांश, वर्ण, रचना, कुछ भी हो सकता है ।

ध्वनिभेद निरूपण
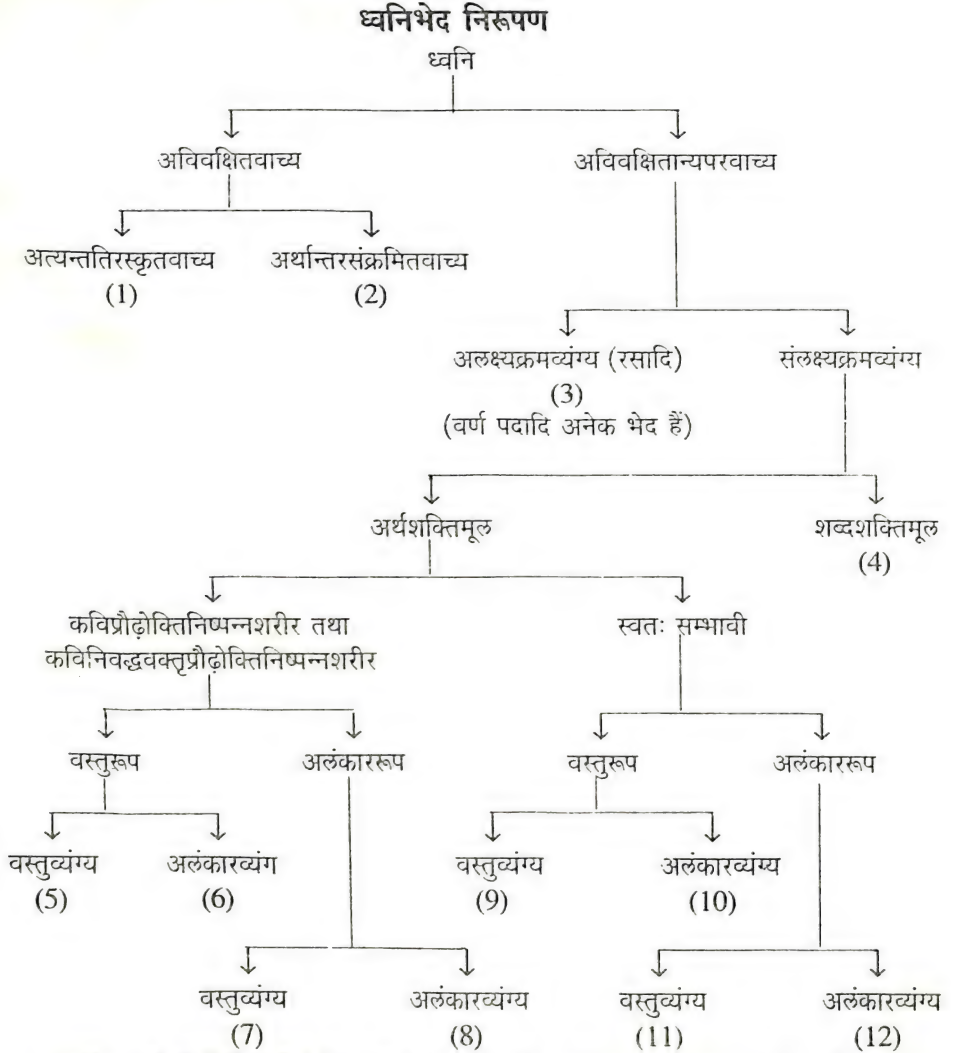
उपर्युक्त 12 भेदों में प्रत्येक के (i) पदप्रकाश्य (ii) वाक्यप्रकाश्य तथा (iii) प्रबंध प्रकाश्य तीन-तीन भेद होने से कुल ($12 \times 3 = 36$) छत्तीस भेद निष्पन्न होते हैं ।

2. अभाववादियों तथा भाक्तवादियों का खण्डन

अभाववादियों का खण्डन

"तस्याभावं जगदुरपरे ।" इस कारिकांश का प्रयोग आचार्य आनन्दवर्द्धन ने 'ध्वन्यालोक' की प्रथम कारिका में ही किया है । यह कारिकांश ध्वनि का अभाव मानने वाले 'अभाववादियों की ओर संकेत करता है ।' ये लोग ध्वनि का सर्वथा अभाव न मानकर उसका गुण, अलंकार, रीति, वृत्ति आदि में अन्तर्भाव करते हैं । ध्वनिकार ने इन अभाववादियों के तीन पक्षों को उपस्थापित कर उनका तर्कपूर्ण समुचित खण्डन किया है, जो निम्नलिखित है–

1. कुछ 'अभाववादियों' का कहना है कि–**'शब्दार्थशरीरं तावत्काव्यम् ।'** इनके मत में गुण, वृत्ति, रीति तथा अलंकार आदि प्रसिद्ध प्रस्थान से पृथक् ध्वनि नाम की कोई नई वस्तु नहीं है । इनके खण्डन में ध्वनिकार ने ध्वनि की परिभाषा देते हुए, निम्नलिखित कारिका को प्रस्तुत किया है– **"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ । व्यङ्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥"** अर्थात्–काव्य में जव अर्थ या शब्द अपनी आत्मा तथा अपने अर्थ को गौण वनाकर उस व्यंग्यार्थ को व्यक्त करते हैं, तव वह काव्यविशेष विद्वानों द्वारा ध्वनि नाम से अभिहित किया जाता है । अतः स्पष्ट है कि–ध्वनि का विषय–वाच्यार्थ की चारुता से उत्पन्न होने वाले उपमा आदि तथा वाचक की चारुता से उत्पन्न अनुप्रास आदि से पृथक है–**'अनेन वाच्यवाचकचारुत्वहेतुभ्य उपमादिभ्योऽनुप्रास-आदिभ्यश्च विभक्त एव ध्वनेर्विषय इति दर्शितम् ।'**

2. कुछ अभाववादियों का कहना है कि–**'नास्त्येव ध्वनिः'** क्योंकि काव्य का ऐसा कोई प्रकार सम्भव नहीं हो सकता, जो प्रसिद्धप्रस्थान–गुण, रीति, वृत्ति व अलंकारादि से पृथक् हो– **'सहृदयहृदयाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम् ।'** अतः ध्वनिसिद्धान्त अमान्य है । इनका खण्डन करते हुए आनन्दवर्धनाचार्य कहते हैं–ध्वनिकेवल लक्षणकारों में ही प्रसिद्ध नहीं है, अपितु–**'लक्ष्ये तु परीक्ष्यमाणे स एव सहृदयहृदयाह्लादकारि काव्यतत्त्वम् ।'** ये लक्ष्यग्रन्थ रामायण, महाभारतादि हैं । इनके अतिरिक्त सभी काव्य चित्रकाव्य ही कहे जाते हैं । यथा–**"मा निषादप्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीःसमाः । यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितं ॥"**

3. कुछ अभाववादियों का कहना है कि–**'न सम्भवत्येव ध्वनिर्नामापूर्वः कश्चित् ।'** अर्थात्–ध्वनिनाम की किसी अपूर्व वस्तु की सम्भावना ही नहीं हो सकती, क्योंकि काव्य की कमनीयता में इसका कोई विशेष महत्त्व न होने से काव्य सौन्दर्य के हेतुभूत–गुण, अलंकार आदि में ही ध्वनि का अन्तर्भाव हो जाता है । इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण उक्ति निम्नलिखित है–

"यस्मिन्नस्ति न वस्तु किञ्चन मनःप्रह्लादि सालंकृति–,
व्युत्पन्नै रचितं च नैव वचनैर्वक्रोक्तिशून्यं च यत् ।
काव्यं तद्ध्वनिना समन्वितमिति प्रीत्या सशंसञ्जडो,
नो विद्मोऽभिदधाति किं सुमतिना पृष्टः स्वरूपं ध्वनेः ॥"

ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्द्धन अभाववादियों के प्रस्तुत मत का खण्डन करते हुए कहते हैं–**'वाच्यवाचकमात्राश्रयिणि प्रस्थाने व्यंग्यव्यञ्जकसमाश्रयेण व्यवस्थितस्य ध्वनेः कथमन्तर्भावः'** क्योंकि वाच्यवाचक के चारुत्वहेतु उपमा तथा अनुप्रासादि तो उस ध्वनि के अंग रूप हैं । अङ्गी (प्रधान) तो ध्वनि ही है–

"व्यंग्यव्यञ्जकसम्बन्धनिबन्धनतया ध्वनेः । वाच्यवाचकचारुत्वहेत्वन्तःपतिता कुतः ॥"

इस प्रकार अभाववादियों के उपर्युक्त तीनों सम्प्रदायों का तर्कपूर्णखण्डन करके आचार्य आनन्दवर्द्धन ने अपने ध्वनि सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है ।

भाक्तवादियों का खण्डन

आचार्य आनन्दवर्द्धन ने अपनी प्रथम कारिका में ही–**"भाक्तमाहुस्तमन्ये"** इस कारिकांश के द्वारा भाक्तवादियों के मत को उपस्थापित किया है । भाक्तवादी ध्वनि का लक्षणा में अन्तर्भाव मानते हैं ।

इनके मत में ध्वनि या व्यञ्जना की जो भी विशेषताएं हैं, वे सभी लक्षणा में पाई जाती हैं । वक्ता या बोद्धा लक्ष्यार्थ की प्रतीति हेतु जिन सामीप्यादि निमित्त रूप में प्रसिद्ध धर्मों की पर्यालोचना करता है, उन प्रसिद्ध सामीप्यादि धर्मों को 'भक्ति' तथा उनसे प्राप्त होने वाले अर्थ को 'भाक्त' या लाक्षणिक अर्थ कहते हैं । अर्थात्–भक्ति को प्रयोजन के रूप में लेकर जो अर्थ निकलता है, उसे 'भाक्त'* कहते हैं, यथा–**'सिंहो माणवकः ।'** इस प्रकार भाक्तवादियों का विचार है कि ध्वनि तथा गुणवृत्ति दोनों परस्पर अभिन्न हैं । आचार्य आनन्दवर्धन ने तीन विकल्पों की कल्पना कर ध्वनि की लक्षणागम्यता का खण्डन किया है, जो इस प्रकार है–

1. **क्या भक्ति एवं ध्वनि दोनों एक ही हैं ?**

'भक्ति' एवं 'ध्वनि' में रूप भेद होने से दोनों एकरूपता को नहीं धारण कर सकतीं–**'भक्त्या विभर्ति नैकत्वं रूपभेदादयं ध्वनिः ।'** शब्द; वाच्यार्थ, व्यंग्यार्थ, व्यञ्जना-व्यापार तथा सबका समूह–इन पाँचों अर्थों से व्यवहृत ध्वनि का लक्षणा से रूपभेद होता है । अतः ध्वनि लक्षणा से विशिष्ट वस्तु है । **'वाच्यव्यतिरिक्तस्यार्थस्य वाच्यवाचकाभ्यां तात्पर्येण प्रकाशनं यत्र व्यङ्ग्यप्राधान्ये स ध्वनिः । उपचारमात्रन्तु भक्तिः ।'** अतः सुस्पष्ट है कि–भक्ति तथा ध्वनि दोनों एक नहीं हैं ।

2. **क्या 'भक्ति' ध्वनि का लक्षण है ?**

इस प्रश्न के उत्तर में ध्वनिकार का कहना है कि–अतिव्याप्ति और अव्याप्ति के कारण 'भक्ति' ध्वनि का लक्षण भी नहीं हो सकती–**"अतिव्याप्तेरथाव्याप्तेर्न चासौ लक्ष्यते तया ।"** कवि लोग ऐसे शब्दों का प्रयोग भी प्रायः करते हैं, जिनमें व्यञ्जना के रहते हुए भी कोई विशिष्ट सौन्दर्य नहीं दिखाई पड़ता । लक्षणा में प्रयोजन की प्रतिपत्ति तो सर्वत्र होती है, किन्तु काव्य को ध्वनि-रूपता प्राप्त करने के लिए प्रयोजन को कुछ न कुछ गूढ़ अवश्य होना चाहिए, परन्तु ऐसे भी स्थान देखे जाते हैं, जहाँ प्रयोजन बिल्कुल गूढ़ नहीं होता तथा श्रोता को चमत्कार का बोध नहीं होता, ऐसे स्थलों पर ध्वनि नहीं हो सकती, जबकि लक्षणा अवश्य होगी । उदाहरणतया–

"परिम्लानं पीनस्तनजघनसंगादुभयतः, तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम् ।
इदं व्यस्त न्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः, कृशांग्याः सन्तापं वदति विसिनीपत्रशयनम् ॥"

यही अलक्ष्य में लक्षण का घटना अतिव्याप्तिदोष है । ध्वनि का विषय तो वही होता है, जो ऐसी चारुता को प्रकाशित करे जो दूसरी उक्ति से असम्भव हो । दोनों का विषय एक होने पर ही लक्षण-लक्ष्य भाव बन सकता है, परन्तु दोनों में विषयभेद होने से भक्ति को ध्वनि का लक्षण नहीं कहा जा सकता है । ध्वनि के विवक्षितान्यपरवाच्यादि बहुत से प्रकारों में लक्षणा व्याप्त होती ही नहीं । अतः अव्याप्तिदोष है । उदाहरणतया–**"शिखरिणी क्व नु नाम ...... बिम्बफलं शुकशावकः ।"** अतः सुस्पष्ट है कि भक्ति, ध्वनि का लक्षण नहीं हो सकती–

"उक्त्यन्तरेणाशक्यं यत् तच्चारुत्वं प्रकाशयन् । शब्दो व्यञ्जकतां बिभ्रद् ध्वन्युक्तेर्विषयी भवेत् ॥"

3. **क्या 'भक्ति' ध्वनि का उपलक्षण हो सकती है ?**

इसके उत्तर में ध्वनिकार कहते हैं–**"कस्यचिद् ध्वनिभेदस्य सा तु स्यादुपलक्षणम् ।"** सम्भवतः ध्वनि के भेदोपभेदों में से किसी एक ध्वनि का लक्षणा, उपलक्षण भले ही हो जाय, परन्तु सम्पूर्ण-ध्वनिभेदों का उपलक्षण नहीं हो सकती । यदि ऐसा हुआ तो अभिधा व्यापार के द्वारा सम्पूर्ण अलंकारवर्ग ही लक्षित हो जाएगा । पुनः प्रत्येक का अलग-अलग लक्षण करना व्यर्थ सिद्ध होगा । ध्वनि का निरूपण कोई नई वस्तु नहीं है । लक्षणा या भक्ति को यदि कोई ध्वनि का उपलक्षण मान भी लेता है, तो इसमें तो हमारी ही पक्षसिद्धि होगी, कि–**'अस्तिध्वनिः, काव्यात्मा चास्ति'** । इस प्रकार ध्वनि ही काव्य की आत्मा सिद्ध होती है ।

---

* 'प्रतिपाद्ये शैत्यपावनत्वादौ श्रद्धातिशयो भक्तिः' अथवा 'भजते सेव्यते पदार्थेन इति सामीप्यादिधर्मो भक्तिः' । 'तत आगतः भाक्तः' । अर्थात्–मुख्यार्थबाधादि तीनों बीजों से जो अर्थ प्रतीत होता है, उस लक्ष्यार्थ को 'भाक्त' कहते हैं ।

परिशिष्ट (APPENDIX)

(क) कुछ प्रमुख संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का परिचय

1. **'अनादिवाक्'** (त्रैमासिक), 59/8 मध्यमार्ग, तुगलकाबाद एक्सटेंसन नई दिल्ली–19
2. **'अभिनव-संस्कृतम्'** कानपुर (उ.प्र.)
3. **'अर्वाचीनसंस्कृतम्'** (त्रैमासिक), वाणी विहार, देववाणीपरिषद् नई दिल्ली–59
4. **'आरण्यकम्'** (षाण्मासिकम्), मारुतिमन्दिरम्, प्रकाशपुरी, आरा, बिहार–802001
5. **'उद्यानपत्रिका'** (मासिक), तिरुपति, आन्ध्र प्रदेश ।
6. **'कोशल'** Journal of the Indian research Society of Awadh,1222. Dilli Darwaja, Faizabad (U.P.)-224001
7. **'गाण्डीवम्'** (साप्ताहिक), सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी–221002
8. **'गीर्वाणसुधा'** (मासिकी), देववाणी-मन्दिरम्, इन्दिरानिवास, गिरगाँव (मुंवई)–4
9. **'गुरुकुलपत्रिका'** नागरी-प्रचारिणी पत्रिका वाराणसी (उ.प्र.)
10. **'गैर्वाणी'** (मासिक), संस्कृतभाषाप्रचारिणीसभा, चितोर, आन्ध्रप्रदेश–517007
11. **'गोरखपुर-चर्चा'** वक्सीपुर, गोरखपुर (उ.प्र.)
12. **'दिग्वार्ता'** (दैनिकम्), 6 व 7 घटिया अजमत अली, इटावा (उ.प्र.)
13. **'दिव्यज्योतिः'** (मासिक), भारतीय विहार, मशोचरा, शिमला (हिमाचलप्रदेश)
14. **'दूर्वा' (त्रैमासिकी)**, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, चरबंगला रोड, भोपाल–1
15. **'नवप्रभातम्'** (दैनिक), 117/81 Q. शारदा नगर, कानपुर–208025
16. **'परमार्थसुधा'** (त्रैमासिकी), वाराणसी, (उ.प्र.)
17. **'पारिजातम्'** (मासिक), 105/194, प्रेमनगर, कानपुर (उ.प्र.)–201001
18. **'पुराणम्'** (षाण्मासिक), All India Kashiraj Trust, Fort, Ram Nagar, Varanasi.
19. **'पूर्णत्रयी'** (षाण्मासिक), (शोध पत्रिका) तृत्पूणित्तुर-केरल
20. **'प्रख्या'** (षाण्मासिक), संस्कृतविभाग, सागर वि.वि., मध्यप्रदेश–210003
21. **'प्रणवपारिजातम्'** (मासिकम्), कलकत्ता (पश्चिमबंगाल)
22. **'प्राच्यज्योतिः'** कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र (उ. प्र.)
23. **'प्रियंवदा'** (द्वैमासिकी), संस्कृतभवनम् लोकनाथ रोड, पुरी–752001
24. **'भारतमुद्रा'** (मासिक), पुरानाटटुकुरा, त्रिचुर, केरल–680551
25. **'भारतश्रीः'** (मासिकी), भारतीय-परिषद्, प्रयाग (उ.प्र.)
26. **'भारती'** (मासिक), भारती-भवनम् B-15 न्यू कालोनी, जयपुर-1
27. **'मञ्जूषा'** (मासिकी), भूपेन्द्रवसु, एवेन्यू कलकत्ता (पश्चिमबंगाल)
28. **'मालवमयूर'** (द्वैमासिक), मन्दसौर (मध्यप्रदेश)
29. **'युगगतिः'** (साप्ताहिक), संस्कृतसाप्ताहिकसमाचारपत्रम्, गोरखपुर (उ.प्र.)

30. **'ललिता'** (मासिक), किशोरज्ञानसदन, वाराणसी (उ.प्र.)
31. **'लोकसंस्कृतम्'** (मासिक), संस्कृतकार्यालय, पाण्डिचेरी–605002
32. **'लोकसुश्रीः'** (मासिक), लोकभाषाप्रचारसमिति, शरघावालि, पुरी–752002
33. **'व्रजगन्धा'** (त्रैमासिक), रामाश्रम, कृष्णपुरी, मथुरा (उ.प्र.)–280001
34. **'विश्वभाषा'** (त्रैमासिक), विश्वसंस्कृतप्रतिष्ठानम्, रामनगर-फोर्ट, वाराणसी–221008
35. **'विश्वसंस्कृतम्'** (त्रैमासिक), विश्वेश्वरानंद विश्वबंधुवैदिकशोधसंस्थान, होशियारपुर
36. **'वेदान्त-सन्देश'** (द्वैमासिकी), कानपुर (उ.प्र.)
37. **'वैदिक-पथ'** गुरुकुलकॉगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उ.प्र.)
38. **'शारदा'** (मासिक), झेलम, पत्रकारनगरी, पुण्यपत्तनम्–411016
39. **'श्रीः'** (मासिक), श्रीनगर (जम्मू-कश्मीर)
40. **'श्रीपण्डितः'** (मासिक), भदैनी, वाराणसी, (उ.प्र.) 221002
41. **'श्यामला'** (वार्षिक), कला एवं संस्कृति विभाग, शिमला (हिमाचल-प्रदेश)
42. **'सत्यानन्दम्'** (मासिक), इब्राहिमपुर रोड, यादवपुर (कलकत्ता)–700032
43. **'सरस्वती-सुषमा'** सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
44. **'सर्वगन्धा'** (मासिक), माईजी मन्दिर, असर्फाबाद, लखनऊ (उ.प्र.)–226003
45. **'संस्कृतम्'** (साप्ताहिक), अयोध्या, फैजावाद (उ.प्र.)
46. **'संस्कृतप्रचारकम्'** मौजपुर, दिल्ली
47. **'संस्कृतभवितव्यम्'** (साप्ताहिक), संस्कृतिभवन, 2-वेस्ट हाईकोर्ट रोड (नागपुर)
48. **'संस्कृतमञ्जरी'** (त्रैमासिक), दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली-प्रशासन
49. **'संस्कृत-सञ्जीवनम्'** (शोधत्रैमासिक), वाणी वाटिका, सैदपुर, पटना (बिहार)–4
50. **'संस्कृत-सम्मेलनम्'** (त्रैमासिक) रमणीरञ्जनमुररका संस्कृत कालेज, पटना–8
51. **'संस्कृत-साकेतः'** (पाक्षिक), अयोध्या, फैजाबाद (उ.प्र.)
52. **'संस्कृतसाहित्यपरिषत्पत्रिका'** (मासिकी) श्यामबाजार, कलकत्ता
53. **'संस्कृतामृतम्'** (मासिक), 1418 बाजार गुलियान, दिल्ली–110006
54. **'सागरिका'** सागरिका समिति, महामनापुरी, वाराणसी-221005
55. **'साम्नास्यम्'** (मासिक), अहमदाबाद, गुजरात
56. **'सुधर्मा'** (दैनिक), रामचन्द्र आग्रहर, महीशूर (कर्णाटक)–570004
57. **'स्वरमंगला'** (त्रैमासिक), राजस्थान संस्कृत अकादमी, वीरेश्वर-भवन, गणगौरी बाजार, जयपुर (राजस्थान)

नोट–संस्कृत-पत्र-पत्रिकाओं के सम्बन्ध में अधिक जानकारी हेतु डॉ. रामगोपाल मिश्र कृत **'संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास'** देखें, जो "विवेक प्रकाशन, C-11/17 माडल टाउन, दिल्ली-9" से प्रकाशित है ।

ENGLISH JOURNALS RELATED TO SANSKRIT

1. Acta Orientaila.
2. Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.
3. Abadungen fur die kunde des Morgenlondes.

4. Adyar Library Bulletin.
5. American Journal of Philosophy.
6. Ancient India.
7. Bharatiya Vidya.
8. Bombay Gazetteer.
9. Britain & Ireland (London).
10. Bulletin of the School Oriental and African Studies (London).
11. Gottingen Gelherte Auzeigen.
12. Harvard Journal of Asiatic Studies (Massachusetts 02138, U.S.A.)
13. Hindustan Review.
14. Indian Antiquary.
15. Indian Culture.
16. Indian Historical Quarterly.
17. Journal of the American Oriental Society.
18. Journal of Asiatic Society of Bengal.
19. Journal of Bombay Branch of Royal Asiatic Society.
20. Journal of Bihar and Orissa Research Institute.
21. Journal of Ganganath Jha Research Institute.
22. Journal of Oriental Institute, Baroda.
23. Journal of Royal Asiatic Society of Great.
24. Journal of University of Bombay.
25. Journal of University of Poona.
26. Journal of Vedic Studies (Lahore)
27. Journal of Oriental Research, Madras.
28. New Indian Antiquary.
29. Nagpur University Journal.
30. Oriental College Magazine (Lahore)
31. Our Heritage.
32. Poona Orientalist.
33. Quarterly Journal of the Mythic Society. Banglore-2.
34. Sitzunberihte des Berliner Academic des Wissenchaft.
35. Shri Venkteswara University Oriental Journal.
36. The Journal of the International Dayananda Veda Peeth.
37. Transactions of American Philosophical Society Delhi.
38. Visheshvaranand Indological Journal Hoshiarpur (Punjab)-21.
39. Wiener Zeitschrift fur die kunde des Morgenlandes.
40. Yoga International : RRI, BOX 407, Honesdale, Pennsylvania.
41. Zeitschrift des Deuts chen Morgenlandischen Gesellchaft.

Note :—Only some Journals are being published at present time, not all above.

(ख) प्राचीन भारतीय काल-निर्धारण-पद्धति

(सिद्धान्त-शिरोमणि के अनुसार)

18	निमेष	=	1 काष्ठा
30	काष्ठा	=	1 कला
30	कला	=	1 घटी
02	घटी (60 कला)	=	1 मुहूर्त
60	घटी (30 मुहूर्त)	=	1 दिन-रात्रि (अहोरात्र)
15	दिन-रात्रि	=	1 पक्ष
2	पक्ष	=	1 मास
6	मास	=	1 अयन (उत्तरायण या दक्षिणायन)
2	अयन	=	1 वर्ष
1	दक्षिणायन	=	1 दिव्य रात
1	उत्तरायण	=	1 दिव्य दिन
30	वर्ष	=	1 दिव्य मास
360	वर्ष	=	1 दिव्य वर्ष
3030	वर्ष	=	1 सप्तर्षि वर्ष
9090	वर्ष	=	1 ध्रुव वर्ष
96000	वर्ष	=	एक सहस्र दिव्य वर्ष
1728000	वर्ष	=	1 सत्ययुग (कृतयुग)
1296000	वर्ष	=	1 त्रेता युग
864000	वर्ष	=	1 द्वापर युग
432000	वर्ष	=	1 कलियुग
4320000	वर्ष	=	1 चतुर्युगी (चौकड़ी)
306720000	वर्ष	=	1 मन्वन्तर = $71\frac{6}{14}$ चतुर्युगी
4294080000	वर्ष	=	14 मन्वन्तर
25920000	वर्ष	=	मन्वन्तर संध्यांश
1972949064	वर्ष	=	सृष्टिभुक्तकाल
4320000000	वर्ष	=	1 ब्राह्म दिन या सहस्र चतुर्युगी
4320000000	वर्ष	=	1 ब्राह्म रात्रि या सहस्र चतुर्युगी

संस्कृत-वाङ्मय से सम्बद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

1. ऋग्वैदिक मण्डलों/सूक्तों/मन्त्रों की संख्या है—10/1028/10580$\frac{1}{4}$
2. अमरसिंह कृत कोष का नाम—नामलिङ्गानुशासन
3. संस्कृत का आदिकाव्य—रामायण
4. शिवमहिम्नः स्तोत्र के रचयिता—पुष्पदन्त
5. विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र का आधारग्रन्थ—महाभारत
6. भगवद्‌गीता के वक्ता—संजय
7. भगवद्‌गीता का आधारग्रन्थ—भीष्मपर्व (महाभारत)
8. मुख्य (शाङ्करभाष्ययुक्त) उपनिषदों की संख्या—दश
9. वेदत्रयी का अभिप्राय—ऋग्वेद/यजुर्वेद/सामवेद
10. प्रस्थानत्रयी का अभिप्राय—शाङ्करभाष्य (ब्रह्मसूत्र/गीता/उपनिषद्)
11. वृहत्त्रयी से संकेतित ग्रन्थ—शिशुपालवधम्/किरातार्जुनीयम्/नैषधम्
12. लघुत्रयी से संकेतित ग्रन्थ—रघुवंशम्/कुमारसम्भवम्/मेघदूतम्
13. 'त्रिमुनि' से संकेतित व्याकरणाचार्य—पाणिनि/पतञ्जलि/कात्यायन
14. उपनिषद् वाङ्मय में तीन रात्रि तक प्रतीक्षा करने वाला तथा बदले में तीन वरदान देने वाला—नचिकेता/यम
15. 'नमस्त्रिमूर्तयेतुभ्यम्' से युक्त रचना—कुमारसम्भवम्
16. त्रिगुणों की संख्या/नाम/स्वरूप—3//सत्त्व/रज/तम//प्रकाशक/चल/गुरु
17. तीनपदों वाला वैदिकछन्द—गायत्री
18. त्रिगुणों की साम्यावस्था—प्रकृति
19. त्रिगुणों में क्षोभ की अवस्था—सृष्टि
20. 'त्रिणाचिकेतस् उपाधिवाला—अग्नि (कठोपनिषद्)
21. देवताओं के तीन निवासस्थान—पृथ्वी/द्युलोक/अन्तरिक्ष
22. 'त्रिविक्रम' उपाधिवाला देवता—विष्णु
23. तीन पग में विश्व को नापने वाला देवता—विष्णु
24. त्रिकाल से संकेतित—भूत/वर्तमान/भविष्य
25. त्रिवर्ग से संकेतित—धर्म/अर्थ/काम
26. आचार्य पाणिनि कृत सुप्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ—अष्टाध्यायी या लिङ्गानुशानम्
27. कुमारिलभट्ट का प्रिय शास्त्र—मीमांसाशास्त्र
28. मृच्छकटिकम् की रूपक विधा—प्रकरण
29. मृच्छकटिकम् के नायक/नायिका—चारुदत्त/बसन्तसेना
30. 'संगीतरत्नाकर' के रचनाकार—शार्ङ्ग देव
31. चाणक्यकृत प्रसिद्ध ग्रन्थ—अर्थशास्त्र
32. पाण्डवों के अज्ञातवास का आधारग्रन्थ—महाभारत (विराटपर्व)
33. महाकवि कालिदास विरचित दूतकाव्य—मेघदूतम्
34. जर्मन कवि के द्वारा शिर पर उठाया गया नाटक—अभिज्ञानशाकुन्तलम्

35. नीतिशास्त्रीय ग्रन्थ 'पंचतन्त्र' के रचनाकार—विष्णुशर्मा
36. पञ्चतन्त्र पर आधारित 'हितोपदेश' के रचनाकार—नारायण पण्डित
37. वेणीसंहार नाटक का प्रमुख रस/नायक/नायिका—वीर/भीम/द्रौपदी
38. उत्तररामचरितम् का प्रमुख रस/नायक/नायिका—करुण/श्रीराम/सीता
39. रामायण के नायक 'श्रीराम' की नाट्यशास्त्रीय प्रकृति—धीरोदात्त
40. महाभारत के नायक 'युधिष्ठिर' की नाट्यशास्त्रीय प्रकृति—धीरशान्त
41. महाभारतस्थ 'भीम' की नाट्यशास्त्रीय प्रकृति—धीरोद्धत
42. महाभारतस्थ 'अज्ञातवास' में द्रौपदी का नाम था—सैरन्ध्री
43. जैनागमों की भाषा—अर्धमागधी
44. कामशास्त्र विषयक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ व ग्रन्थकार—कामसूत्र/वात्स्यायन
45. 'पंचदशी' के लेखक—विद्यारण्य
46. नासदीयसूक्त से सम्बद्ध वेद व सूक्त की प्रकृति—ऋग्वेद/दार्शनिक
47. बुधकौशिक कृत स्तोत्र—रामरक्षा स्तोत्र
48. शङ्कराचार्य का सुप्रसिद्ध कार्य—शारीरकभाष्य
49. 'चर्पटमंजरी स्तोत्र' के रचयिता—शङ्कराचार्य
50. संगीतशास्त्रीय श्रुतियाँ हैं—22
51. 'गान्धर्ववेद' का आधार है—सामवेद
52. गायत्री मन्त्र के द्रष्टा ऋषि—विश्वामित्र
53. मीमांसाशास्त्रीय 'गुरुमत' के प्रवर्तक आचार्य—प्रभाकर मिश्र
54. जैनलेखकों में श्रेष्ठ लेखक—हेमचन्द्र सूरि
55. षड्वेदाङ्ग से संकेतित ग्रन्थ हैं—शिक्षा/कल्प/व्याकरण/निरुक्त/छन्द/ज्योतिष
56. 'भक्ति' को स्वतन्त्र रस मानने वाले हैं—रूप गोस्वामी
57. 'ब्रह्मसूत्र-गोविन्दभाष्य' से सम्बद्ध सम्प्रदाय विशेष—वैष्णव
58. 'कोचीन' के अधिपति' जो संगीत लेखक थे—बालराम शर्मा
59. विशालकाय ग्रन्थ 'अद्भुतसागर' से सम्बद्ध विषय-विशेष—ज्योतिष शास्त्र
60. महाकवि बाणभट्ट के आश्रयदाता—हर्षवर्द्धन
61. शिवाजीचरित्र-विषयक महाकाव्य—शिवराज्योदयम्
62. महर्षि वेदव्यास के पिताश्री—पराशर
63. भास्कराचार्य से सम्बद्ध विषय-विशेष—ज्योतिष
64. 'अजितसिंहचरितम्' महाकाव्य के नायक का साम्राज्य—मारवाड
65. वैदिकमन्त्रों का साक्षात्कार करने वाले ऋषि—द्रष्टा
66. 'कृष्णकर्णामृतम्' के रचयिता—लीलाशुक
67. 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' के लेखक—विल्हण
68. 'बुद्धचरितम्' के रचयिता—अश्वघोष
69. 'शान्तरस को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले—भट्टतौत
70. अभिनवगुप्ताचार्य का निवासक्षेत्र—कश्मीर

71. 'अभिनवभारती' टीका से सम्बद्ध ग्रन्थ—नाट्यशास्त्र
72. रसशास्त्र में साधारणीकरण के प्रतिपादक—भट्टनायक
73. शब्द का मुख्य अर्थ—वाच्यार्थ या मुख्यार्थ
74. 'व्यक्तिविवेक' से सम्बद्ध विषय-विशेष—साहित्य
75. भट्टनारायण की एक उत्कृष्ट रचना—वेणीसंहारम्
76. वेदों के सर्वश्रेष्ठ व प्रामाणिक भाष्यकार—सायणाचार्य
77. प्रमुख वैदिक स्वर—उदात्त/अनुदात्त/स्वरित
78. राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ आधुनिक संस्कृत कवि—मथुरानाथ भट्ट
79. भट्टलोल्लट-सम्मत रस-सिद्धान्त—उत्पत्तिवाद
80. संस्कृत में शास्त्रपरक-काव्यलेखन के प्रवर्तक—भट्टि
81. महाकवि भट्टि-कृत महाकाव्य—रावणवधम्
82. 'प्रौढ़मनोरमा' टीका का आधारभूत ग्रन्थ—सिद्धान्तकौमुदी
83. भट्टोत्पलसम्बद्ध शास्त्र-विशेष—साहित्य
84. भारतीय-ललितकलाओं के आद्य आचार्य—भरतमुनि
85. 'शतपथब्राह्मण' सम्बद्ध वेद—शुक्लयजुर्वेद
86. 'गोसूक्त' सम्बद्ध वेद—ऋग्वेद
87. शङ्कराचार्य के पूर्ववर्ती वेदान्ताचार्य—भर्तृप्रपंच
88. 'राजतरंगिणि' सम्बद्ध ऐतिहासिकवर्णन से सम्बद्ध प्रदेश विशेष—कश्मीर
89. भर्तृहरि के 'शतकत्रय' व उनके विषय—शृंगार/नीति/वैराग्य
90. 'वाक्यपदीयम्' के लेखक—भर्तृहरि
91. 'तैत्तिरीयसंहिता' की सामान्य संज्ञा है—कृष्णयजुर्वेद
92. 'वाजसनेयिसंहिता' की सामान्य संज्ञा है—शुक्लयजुर्वेद
93. महाकवि भवभूति का निवासक्षेत्र—विदर्भ
94. 'महावीरचरितम्' नाटक के नायक/नायिका—श्रीराम/सीता
95. अध्यायसमाप्तिसूचकवाक्य का अभिधान विशेष—पुष्पिका
96. 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' उपाधिधारी महाकवि—भवभूति
97. भवभूति का मूलनाम—श्रीकण्ठ
98. 'षण्णमत-प्रतिष्ठापनाचार्य' उपाधिधारी विद्वान्—शङ्कराचार्य
99. साहित्यिक धरातल पर अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक—भामह
100. साहित्यिक धरातल पर रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक—वामन
101. कविराज विश्वनाथकृत 'काव्य-लक्षण'—'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'
102. पाणिनि व्याकरण के आधारभूत सूत्र—माहेश्वर-सूत्र
103. 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचनाकार—भारवि
104. कादम्बरी की काव्यविधा—कथा
105. हर्षचरितम् की काव्यविधा व लेखक—आख्यायिका/बाणभट्ट
106. 'अनूपसंगीतरत्नाकर' के लेखक—भावभट्ट

107. 'भास' की उपाधिविशेष है—अग्निमित्र
108. 'भासनाटकचक्र' की पाण्डुलिपि प्राप्त करने वाले—टी. गणपति शास्त्री
109. मेघदूतस्थ 'रामगिरि' को रामटेक बतलाने वाला विद्वान्—डॉ. मिराशी
110. परम्परानुसार कालिदास के आश्रयदाता का नाम—विक्रमादित्य
111. 'भासनाटकचक्र' की मूलप्रति की लिपि—मलयालम्
112. भासनाटकचक्रस्थ नाटकों की कुल संख्या—13
113. वह महान् नाटक जो अग्निपरीक्षा में नहीं जला—स्वप्नवासवदत्तम्
114. भास के अधिकांश नाटकों की कथावस्तु का आधार—महाभारत
115. कालिदासोक्त नाटककार का नाम विशेष—भास
116. 'ललितासहस्रनाम' की व्याख्या—सौभाग्यभास्कर
117. 'सिद्धान्त-शिरोमणि' सम्बद्ध विषय-विशेष—ज्योतिर्गणित
118. 'आश्चर्यचूडामणि' नाटक के रचयिता—शीलभद्र
119. मधुसूदनसरस्वती कृत सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ—अद्वैतसिद्धि
120. 'भक्तिरसायन' के लेखक—मधुसूदन सरस्वती
121. 'मध्वाचार्य' का अपरनाम—पूर्णप्रज्ञ
122. 'सर्वमूल' संज्ञक ग्रन्थों के रचयिता—आनन्दतीर्थ
123. मध्वाचार्य के दीक्षागुरु—अच्युतप्रेक्ष
124. 'राजानक' उपाधि से विभूषित आचार्य—मम्मटाचार्य
125. 'वाग्देवतावतार' उपाधि वाले आचार्य—मम्मटाचार्य
126. साहित्यशास्त्र का प्रसिद्ध आकरग्रन्थ—काव्यप्रकाश
127. 'शिल्पशास्त्रविधान' के लेखक—मय
128. 'सूर्यशतकम्' के प्रणेता कवि—मयूर
129. जगत् को शाश्वत मानने वाला दर्शनविशेष—पूर्वमीमांसा
130. मीमांसक मतानुसार 'मुक्ति' का आधार—कर्म
131. 'गोरखनाथ' के गुरु—मत्स्येन्द्रनाथ
132. 'अणुभाष्य, के लेखक—वल्लभाचार्य
133. रघुनाथ शिरोमणि से सम्बद्ध दर्शनविशेष—न्याय
134. 'गांधिविजयम्' नाटक के लेखक—मथुराप्रसाद दीक्षित
135. 'मदनविनोद' ग्रन्थ से सम्बद्ध विषयविशेष—आयुर्वेद
136. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान का प्रमुख प्रकाशन केन्द्र—वाराणसी
137. मधुच्छन्दा ऋषि के पुत्र—विश्वामित्र
138. लेखक, मधुसूदनजी ओझा का निवासक्षेत्र—राजस्थान
139. विश्व के सर्वश्रेष्ठ गणितशास्त्र के वैज्ञानिक--भास्कराचार्य
140. 'उत्तरपुराण' से सम्बद्ध सम्प्रदाय—जैन
141. वेदों के अनुसार 'अग्नि' के प्रथम आविष्कारक—भृगु
142. 'सरस्वती-कण्ठाभरण' के रचनाकार—भोजराज

143. 'समरांगण-सूत्रधार' का विषय—वास्तुशास्त्र
144. 'राजमार्तण्ड' टीका का आधारग्रन्थ—योगसूत्र
145. 'भोजप्रबन्ध' के लेखक—बल्लाल सेन
146. मीमांसक मण्डनमिश्र की पत्नी का नाम—भारती
147. वाचस्पति मिश्र की पत्नी का नाम—भामती
148. "नामूलं लिख्यते किञ्चिद्"–इस प्रतिज्ञावाक्य से सम्बद्ध—मल्लिनाथ
149. सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ का निवासक्षेत्र—आन्ध्रप्रदेश
150. आचार्य रामानुज का मत—विशिष्टाद्वैत
151. सुप्रसिद्ध संस्कृत लेखक महालिंग का निवासक्षेत्र—मद्रास
152. 'गणितसार-संग्रह' के लेखक—महावीराचार्य
153. 'ध्वनि-सिद्धान्त' के प्रथम खण्डनकर्ता—आचार्य महिमभट्ट
154. 'व्यक्तिविवेक' के रचनाकार—आचार्य महिमभट्ट
155. 'ज्योतिष-रत्नाकर' का मुख्य विषय—फलित ज्योतिष
156. 'माध्यन्दिन-संहिता' का अपरनाम—शुक्लयजुर्वेद
157. वक्रोक्ति में ध्वनि का अन्तर्भाव मानने वाले—आचार्य महिमभट्ट
158. 'वेददीपभाष्य' के रचयिता—महीधर
159. 'यन्त्रराज' ग्रन्थ का विषयविशेष—ग्रहगणित
160. महेश ठक्कुर को आश्रयदेने वाला बादशाह—अक़बर
161. 'सर्वदेशवृत्तान्तसग्रह' के लेखक—महेश ठक्कुर
162. महाकवि माघ का निवासक्षेत्र—सौराष्ट्र
163. अष्टाध्यायी की काशिका वृत्ति पर 'न्यास' की रचना करने वाले—जिनेन्द्रबुद्धि
164. जैनन्यायशास्त्र का आद्य सूत्रग्रन्थ—परीक्षामुख
165. 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' टीका के रचनाकार—प्रभाचन्द्र
166. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के श्रेष्ठ टीकाकार—राघवभट्ट
167. स्तोत्रकाव्य के प्रवर्तक—मातृचेट
168. बुद्धपरक स्तोत्र ग्रन्थ है—अध्यर्धशतक
169. सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'रोगविनिश्चय' के लेखक—माधव
170. माधवभट्ट के काव्य का नाम—राघवपाण्डवीय
171. कर्मविपाक से सम्बद्ध ग्रन्थ—मदनमहार्णव
172. 'भक्तामरस्तोत्र' के रचनाकार—मानतुंग
173. 'महावीर' परक स्तोत्र—भक्तामरस्तोत्र
174. मित्रमिश्रकृत प्रसिद्ध ग्रन्थ—वीरमित्रोदय
175. नेत्र चिकित्सा के लेखक—डॉ. मुंजे
176. अभिधा नामक शक्ति को ही मानने वाले आचार्य—मुकुलभट्ट
177. 'शब्दव्यापारविचार' ग्रन्थ का आधारभूत ग्रन्थ—अभिधावृत्तिमातृका
178. एक सौ से अधिक ग्रन्थों के प्रणेता—मुडुंबी वेंकटराम नरसिंहाचार्य

179. मुहम्मद तुगलक द्वारा सम्मानित आचार्य—मुनिभद्रसूरि
180. आचार्य वल्लभ सम्वद्ध सम्प्रदाय—पुष्टिमार्ग
181. 'अनर्घराघवम्' नाटक के रचनाकार—मुरारि
182. 'नयविवेक' ग्रन्थ के प्रणेता—मुरारि मिश्र
183. मैक्डोनल का जन्मस्थान—मुजफ्फरनगर
184. 'सप्तसन्धान' काव्य के रचनाकार—मेघविजय
185. शेक्सपीयर की नाट्यकथाओं के अनुवादक—मेडपल्ली वेंकटरमणाचार्य
186. 'दयानन्दलहरी' के रचयिता—मेधाव्रत शास्त्री
187. बौद्ध विज्ञानवाद के संस्थापक—मैत्रेयनाथ
188. याज्ञवल्क्य की पत्नी का नाम—मैत्रेयी
189. 'छत्रपतिसाम्राज्यम्' नाटक के लेखक—मूलशंकर याज्ञिक
190. 'आलवंदारस्तोत्र' के रचयिता—यामुनाचार्य
191. 'निरुक्तम्' नामक वेदाङ्ग के प्रसिद्ध आचार्य—यास्क
192. कालिदासकृत सुप्रसिद्ध नाटक—अभिज्ञानशाकुन्तलम्
193. 'मृच्छकटिकम्' नाटक के लेखक—शूद्रक
194. नाट्यशास्त्र के अनुसार रसों की संख्या—आठ
195. 'जवाहरलालनेहरूविजयम्' नाटक के लेखक—रमाकान्तमिश्र
196. 'रत्नखेट' उपाधि से विभूषित—श्रीनिवास दीक्षित
197. कालिदास की सुप्रसिद्ध उपाधि 'दीपशिखा' का आधार—रघुवंशम् //
संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ //
198. 'रासपञ्चाध्यायी' को अन्तर्भूत करने वाला ग्रन्थ—भागवत पुराण
199. महाभारत के क्रमिक तीन नाम—जय/भारत/शतसाहस्री
200. राजशेखर की विदुषी पत्नी का नाम—अवन्तिसुन्दरी
201. 'काव्यमीमांसा' के रचनाकार—राजशेखर
202. मासिक पत्रिका 'भारती' का प्रकाशन केन्द्र—जयपुर
203. 'संस्कृत-भवितव्यम्' का प्रकाशन केन्द्र—नागपुर
204. विश्व के सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण—आचार्य पाणिनि
205. शङ्कराचार्य का जन्मस्थान—कालडी (केरल)
206. 'श्रीकण्ठचरित' के लेखक—मंखक
207. 'शब्दकल्पद्रुप' कोश के लेखक—राधाकान्त देव
208. 'राधावल्लभ' भाष्य का आधारग्रन्थ—ब्रह्मसूत्र
209. भागवत की श्रीधरी टीका का नाम—भावार्थ दीपिका
210. साहित्य अकादमी की संस्कृत पत्रिका—संस्कृतप्रतिभा
211. रासपञ्चाध्यायी की टीका 'भाव-भाव-विभाविका' के लेखक—रामनारायण मिश्र
212. 'पतञ्जलिचरित' की रचना करने वाले—पं. तेजोभानु
213. केरल के राजाओं में सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार—रामवर्मा

214. केरल नरेश रामवर्मा की सर्वश्रेष्ठ संस्कृतकृति—रुक्मिणी-परिणयम्
215. प्रसिद्ध तमिल-काव्य 'नालयिरम्' के संस्कृत अनुवादक—कुरुकापुरवासी रामानुज
216. एक सौ बीस वर्षों तक जीने वाले दार्शनिक विद्वान्—रामानुजाचार्य
217. दश प्रकार के रूपकों की रचना करने वाले विद्वान्—ह्री. रामानुजाचार्य
218. 'स्वरमेलकालनिधि' के लेखक—रामामात्य
219. 'परमार्थदर्शन' के प्रणेता—पं. रामावतार शर्मा
220. रामाश्रम कृत सिद्धान्तचन्द्रिका से सम्बद्ध व्याकरणविशेष—सारस्वत
221. 'संस्कृतचन्द्रिका' के प्रथम सम्पादक—जयचन्द्र सिद्धान्तभूषण
222. 'सूनृतवादिनी' पत्रिका का प्रकाशन केन्द्र—कोल्हापुर
223. बागुलवंशीय राजाओं के चरित्र से सम्बद्ध महाकाव्य व कवि—राष्ट्रोढवंशम्/रुद्रकवि
224. लक्षण-ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' के लेखक आचार्य—रुद्रट
225. रूपगोस्वामी का साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थ—उज्ज्वल-नीलमणि
226. 'विख्यातविजयम्' नाटक के रचनाकार नोआखली-नरेश—लक्ष्मणमाणिक्य
227. 'जार्जशतकम्' के लेखक—लक्ष्मण सूरि
228. मलबार-निवासी 'सन्तानगोपाल' काव्य की लेखिका—लक्ष्मी
229. वेदाङ्ग ज्योतिष के प्रणेता आचार्य—लगधाचार्य
230. अलाउद्दीन खिलजी द्वारा सम्मानित जैन पण्डित—ललितकीर्ति
231. 'खाण्डवदहनम्' महाकाव्य के प्रणेता—ललितमोहन भट्टाचार्य
232. 'विश्वगुणादर्श' चम्पू के लेखक—वेंकटाध्वरी
233. 'वैद्यकजीवन' के लेखक लोलिम्बराज का निवासक्षेत्र—महाराष्ट्र
234. लौगाक्षिभास्कर के 'अर्थसंग्रह' का विषय—पूर्वमीमांसा
235. तुकोजी राजा का भैंसे के साथ साम्यवर्णन करने वाला कवि व काव्य—वंगेश्वर/माहिषशतकम्
236. श्रीमद्भागवत की सम्पूर्ण श्लोक संख्या—अट्ठारह हजार (18000)
237. श्रीमद्भागवत की कुल अध्याय संख्या—तीन सौ पैंतीस (335)
238. मन्दसौर-शिलालेख सम्बद्ध काव्य का प्रणेता—वत्सभट्टि
239. माध्यसम्प्रदायी 'वेदान्तसिद्धान्त संग्रह' के लेखक—वनमाली मिश्र
240. अष्टाध्यायी पर लिखित वार्तिकों की संख्या—लगभग पाँच हजार
241. 'बृहत्संहिता' का विषय—ज्योतिषशास्त्र
242. 'पञ्चसिद्धान्तिका' ग्रन्थ के लेखक—वाराहमिहिर
243. 'बृहज्जातकम्' का विषय—भविष्यकथन
244. पुष्टिमार्गी वैष्णवसिद्धान्त—शुद्धाद्वैत
245. वल्लभाचार्य के चित्र को दिल्ली दरबार में स्थापित करने वाला—सिकन्दर लोदी
246. वल्लभाचार्यजी के कनकाभिषेककर्ता राजा—कृष्णदेव राय
247. वल्लभाचार्य का जलसमाधि क्षेत्र—काशी
248. सम्प्रति वल्लभाचार्य के उपलब्ध ग्रन्थों की संख्या—31
249. 'बसवराजीय' ग्रन्थ का विषय-विशेष—आयुर्वेद

250. ऋग्वेद सप्तममण्डल के द्रष्टा ऋषि—वशिष्ठ
251. पुराणों के अनुसार वशिष्ठ के भाई का नाम—अगस्त्य
252. वह विद्वान् जिसे द्वितीयबुद्ध की संज्ञा दी गयी—वसुबन्धु
253. वसुबन्धु के 'अभिधम्मकोश' से सम्बद्ध वौद्धसम्प्रदाय विशेष—वैभाषिक
254. 'नरनारायणानन्दम्' के प्रणेता महाकवि—वस्तुपाल
255. 'लघुभोजराज' की उपाधि से विभूषित—वस्तुपाल
256. 'अष्टाङ्गसंग्रह' के रचयिता वाग्भट्ट का जन्मक्षेत्र—सिन्धु
257. आयुर्वेद का दह ग्रन्थ जिस पर सर्वाधिक टीकाएं लिखी गयीं—अष्टांगसंग्रह
258. आयुर्वेद को विदेशों में प्रतिष्ठित करने वाले—वाग्भट्ट
259. 'काव्यानुशासन' एवं 'छन्दोनुशासन' के लेखक—वाग्भट्ट
260. वैशेषिक-दर्शन के अतिरिक्त अन्य सभी दर्शनों पर टीकाएं लिखने वाला विद्वान्—वाचस्पति मिश्र
261. 'भामतीप्रस्थान' के रचयिता—वाचस्पति मिश्र
262. 'तात्पर्याचार्य' एवं 'षड्दर्शनीवल्लभ' उपाधि-विभूषित—वाचस्पति मिश्र
263. अभिनव-वाचस्पति मिश्र का प्रमुख ग्रन्थ—विवादचिन्तामणि
264. कामविषयक ग्रन्थ का लेखक ब्रह्मचारी विद्वान्—वात्स्यायन
265. वात्स्यायन-कामसूत्र के अधिकरणों की संख्या—सात
266. 'वात्स्यायनभाष्य' का आधार ग्रन्थ—न्यायशास्त्र
267. वादिराजतीर्थ का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—तीर्थप्रवन्ध
268. 'स्याद्वादविद्यापति' की उपाधि से अलंकृत—वादिराज सूरि
269. वह स्तोत्र जिसके पाठ से वादिराज सूरि को कुष्ठरोग से मुक्ति मिली—एकीभावस्तोत्र
270. न्यायविनिश्चय के लेखक—वादिराजसूरि
271. कश्मीरनरेश जयापीड के मन्त्री व काव्यालङ्कार सूत्र के रचयिता—आचार्य वामन
272. रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक—आचार्य वामन
273. जयादित्य के सहयोग से 'काशिकावृत्ति' की रचना करने वाले—वामन
274. 'सिद्धान्तकौमुदी' पर वासुदेव दीक्षित लिखित टीका—बालमनोरमा
275. नवद्वीप में सर्वप्रथम न्यायशास्त्र का विद्यापीठ स्थापित करने वाले—वासुदेव सार्वभौम
276. माध्वसम्प्रदाय के मुख्य व्याख्याकार—विजयध्वजतीर्थ
277. 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' नामक टीका के लेखक—वाचस्पति मिश्र
278. 'मिताक्षरा' टीका का आधारग्रन्थ—याज्ञवल्क्य-स्मृति
279. गुजरात में पुष्टि सम्प्रदाय का प्रचार करने वाले—विट्ठलनाथ
280. पंचदशीकार विद्यारण्य स्वामी का मूलनाम—माधवाचार्य
281. 'जिनसहस्रनाम' के प्रणेता—विनयविजयगणि
282. 'चोलराजवंश' (तमिलनाडु) का वर्णन करने वाला ग्रन्थ—चोलविलासचम्पू
283. ज्योतिष-विषयक 18 टीका ग्रन्थों के लेखक—विश्वनाथ
284. मेवाड-निवासी विश्वनाथकृत कोशग्रन्थ—कोशकल्पतरु
285. रसवादी प्रमुख साहित्यकार—विश्वनाथ कविराज

286. 'विश्वनाथ चक्रवर्ती' कृत सारार्थदर्शिनी टीका का आधारग्रन्थ—भागवत
287. विश्वनाथ-पञ्चानन कृत 'भाषापरिच्छेद' से सम्बद्ध दर्शन—वैशेषिक
288. संस्कृत-सुभाषित-कोशों में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ—सुभाषितरत्नभाण्डागारम्
289. वैविध्यपूर्ण चरित्रवाला वैदिक-ऋषि—विश्वामित्र
290. शुनःशेप को पुत्रवत् स्वीकार करने वाला वैदिक ऋषि—विश्वामित्र
291. ऋषि विश्वामित्र का मूलनाम—विश्वरथ
292. महर्षि वशिष्ठ से सतत विरोध रखने वाले ऋषि-–विश्वामित्र
293. शाङ्करमत को पाखण्ड कहने वाला व्यक्ति—विश्वासभिक्षु
294. 'रणवीरज्ञानकोश' के रचयिता—विश्वेश्वर पण्डित
295. 'सर्वज्ञसूक्त' के रचयिता व रुद्रसम्प्रदाय के प्रवर्तक—विष्णुस्वामी
296. वल्लभमत की अन्तिम भागवत टीका—भागवतचन्द्र-चन्द्रिका
297. ऋगर्थदीपिका (वेदभाष्य) के लेखक—वेंकटमाधव
298. उत्तररामचरित चम्पू के रचयिता—वेंकटाध्वरी
299. वेंकटेशकृत 'रामचन्द्रोदय' काव्य की सर्ग संख्या—तीस
300. प्रधान वेंकप्पा रचित व्याकरणनिष्ठ काव्य—जगन्नाथविजयम्
301. 'जय' को 'भारत' का स्वरूप देने वाले आचार्य—वैशम्पायन
302. ऋग्वेद के पदपाठ कर्ता—शाकल्य
303. 'खिस्तधर्मकौमुदी' नामक आलोचनात्मक ग्रन्थ के लेखक—ब्रजलाल मुखोपाध्याय
304. व्यासतीर्थकृत सर्वश्रेष्ठ द्वैतवादप्रतिपादक ग्रन्थ—न्यायामृत
305. कृष्णदेवराय के गुरु—व्यासराय
306. नव्यवेदान्त के प्रवर्तक आचार्य—व्यासतीर्थ
307. व्यासराय के सर्वश्रेष्ठ शिष्य—पुरन्दरदास
308. महाभारत की रचना का स्थान—बदरीक्षेत्र
309. सोलहवर्ष की अवस्था में विश्वविश्रुत भाष्यग्रन्थ-लेखक—आदिशङ्कराचार्य
310. तुषाग्निदहन द्वारा गुरुद्रोह का प्रायश्चित्त करने वाले आचार्य—कुमारिल्ल भट्ट
311. 'सौन्दर्यलहरी' स्तोत्र के रचयिता—आदिशङ्कराचार्य
312. शङ्कराचार्यकृत लोकप्रिय प्रकरणग्रन्थ—विवेक-चूडामणि
313. शङ्कराचार्यकृत तान्त्रिक स्तोत्र-ग्रन्थ—सौन्दर्यलहरी
314. फिट्सूत्रों के कर्ता—शंतनु
315. 'ब्राह्मणसर्वस्व' के लेखक—हलायुध
316. मीमांसा-सूत्रों के पहले भाष्यकार—शबर
317. शरणदेवकृत 'दुर्घटवृत्ति' का आधारग्रन्थ—अष्टाध्यायी
318. गुजरात निवासी कातन्त्र-व्याकरण के कर्ता—शर्ववर्मा
319. महायान सम्प्रदाय के दार्शनिक शांतिदेव का जन्मस्थान—सौराष्ट्र
320. तिब्बत में बौद्ध धर्म के प्रचारक आचार्य—शांतिरक्षित
321. 'वादिवेताल' उपाधि से विभूषित—शांतिसूरि

322. 'आदिशाब्दिक' उपाधि से विभूषित—शाकटायन
323. प्रत्येक संस्कृत शब्द को धातुज मानने वाले प्रथम वैज्ञानिक—शाकटायन
324. शारदातनय रचित 'भावप्रकाशन' का विषय—नाट्यशास्त्र
325. निःसङ्ग शार्ङ्गदेव का निवासस्थान—महाराष्ट्र
326. धातुभस्मीकरणप्रक्रिया का प्रथम उल्लेखकर्ता ग्रन्थ—शार्ङ्गधरसंहिता
327. जातिभेद के न मानने वाले मीमांसक—शालिकनाथ मिश्र
328. अ.भा.स. कवि-सम्मेलन में पद्यात्मक अध्यक्षीयभाषण देने वाले—शालिग्राम शास्त्री
329. 'शालिहोत्र' ग्रन्थ का विषय—अश्वायुर्वेद
330. 'पंचभाषाविलास' नामक यक्षगान के रचयिता—व्यंकोजी
331. सिंगभूपालकृत 'संगीतसुधाकर' नामक टीका का आधारग्रन्थ—संगीतरत्नाकर
332. 'एडवर्ड-राज्याभिषेक-दरबारम्' तथा 'जार्ज-राज्याभिषेक-दरबारम्' के रचयिता—शिवराम पाण्डे
333. शिवादित्यकृत 'सप्तपदार्थी' का विषय—न्यायवैशेषिक
334. भक्तियोग और वेदान्त के समन्वय का उत्कृष्टतम नमूना—भागवत
335. मृच्छकटिककार शूद्रक की मृत्यु का कारण—अग्निप्रवेश
336. 'साहसे श्रीः प्रतिवसति' इस सुभाषित से युक्त रचना—मृच्छकटिकम्
337. 'आन्ध्रपाणिनि' उपाधि के पात्र—शेषाचलपति
338. 39 नये अलंकारों से युक्त 'अलंकाररत्नाकर' के रचयिता—शोभाकर मित्र
339. 'सदुक्तिकर्णामृत' के रचयिता—श्रीधरदास
340. विक्टोरिया-विषयक काव्य के लेखक—श्रीश्वर विद्यालङ्कार
341. नानार्थकोश की परम्परा में श्रीधरसेनकृत अग्रगण्य कोश—विश्वलोचन
342. गणितसार के लेखक—श्रीधराचार्य
343. 'वैदिक मैथमेटिक' के प्रणेता—शङ्कराचार्य भारतीकृष्णतीर्थ
344. 'रत्नखेट' और षड्भाषाचतुर' उपाधियों से अलंकृत—श्रीनिवास दीक्षित
345. 'योगि-भोगि-संवाद-शतकम्' के लेखक—श्रीनिवास शास्त्री
346. कुम्भकोण में संस्कृत के प्राध्यापक आमरण संस्कृतपद्यभाषी आचार्य—श्रीनिवासाचार्य
347. ज्योतिष की प्रत्येक शाखा पर ग्रन्थ लिखने वाले महाराष्ट्रीय विद्वान्—श्रीपति भट्ट
348. 'टेंकलै' और 'वडकलै' मठ से सम्बद्ध-सम्प्रदाय—रामानुज
349. 'शास्त्रकाव्य' की संज्ञा वाला महाकाव्य—नैषधम्
350. षड्गुरुशिष्य की सर्वानुक्रमणी वृत्ति का नाम—वेदार्थदीपिका
351. 'स्वयम्भूस्तोत्र' के रचयिता—समंत भद्र
352. 'चायगीता' के प्रणेता—सहस्रबुद्धे
353. चारों वेदों की दैवत संहिताओं के सम्पादन कर्ता—वेदमूर्ति सातवलेकर
354. महाराष्ट्रीय विवाह-विधि में गेय मंगलाष्टकछन्द—शार्दूलविक्रीडित
355. सायणाचार्यकृत अन्तिम भाष्य—शतपथब्राह्मण भाष्य
356. जैन न्यायशास्त्र के प्रणेता—सिद्धसेन दिवाकर
357. उत्कल की ऐतिहासिक घटना पर आधारित नाटक—सभापतिविजयम्

358. रामानुजाचार्य के दार्शनिक ग्रन्थों के व्याख्याकार—सुदर्शन सूरि
359. शुक्लयजुर्वेद का अन्तिम अध्याय—ईशावास्योपनिषद्
360. 'गदनिग्रह' के रचयिता—सोढ्ढल
361. कालिदास के काव्यों की रीति—वैदर्भी
362. सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर' का आधार—बृहत्कथा (गुणाढ्य)
363. 'कल्याणमन्दिर-स्तोत्र' सम्बद्ध सम्प्रदाय—जैन
364. 'बसवपुराण' के लेखक का नाम—सोमनाथ
365. प्रत्यभिज्ञा दर्शन का आधारभूत ग्रन्थ—शिवदृष्टि
366. 'भारत' ग्रन्थ को 'महाभारत' करने वाले—सौती
367. ऋग्वेद के प्राचीनतम भाष्यकार—स्कन्द स्वामी
368. 'माध्यमिककारिका' के लेखक—नागार्जुन
369. स्वामिनारायण सम्प्रदाय का प्रमुख ग्रन्थ—शिक्षापत्री
370. कश्मीर के सर्वश्रेष्ठ संस्कृत लेखक—अभिनवगुप्त
371. 'भारतरत्न' उपाधि से अलंकृत संस्कृत-विद्वान्—डॉ. पी.वी. काणे
372. 'दशकुमारचरितम्' के छन्दोबद्ध अनुवादकर्ता—हरिवल्लभ शर्मा
373. हर्षवर्द्धन की कृतियाँ—रत्नावली/प्रियदर्शिका/नागानन्दम्
374. 'भारत-नररत्नमाला' के लेखक—श्रीपाद शास्त्री (इन्दौर)
375. सृष्ट्युत्पत्तिविषयक ऋग्वैदिक सूक्त—प्राजापत्यसूक्त
376. योगवाशिष्ठ की श्लोक संख्या—32 हजार
377. वेदान्त-मतानुसार जगत् का आदिकरण—ब्रह्म
378. अथर्ववेद की अपर संज्ञा—ब्रह्मवेद/भृग्वंगिरावेद
379. अथर्ववेद के काण्डों की संख्या—बीस
380. बौद्धवैभाषिक दर्शन का प्रमाणभूत प्रतिनिधि ग्रन्थ—अभिधर्मकोश
381. भारतीयनृत्यकला का उत्कृष्ट ग्रन्थ/ग्रन्थकार—अभिनयदर्पण/नन्दिकेश्वर
382. विश्व का प्रथम ज्ञानकोश—अभिलषितार्थचिन्तामणि (मानसोल्लास)
383. उमरखय्याम की रुबाइयों के प्रथम संस्कृत-अनुवादक—पं. गिरिधर शर्मा
384. 'अमरुशतक' के प्रथम टीकाकार—अर्जुनवर्मदेव
385. काव्यप्रकाशस्थ अलंकारों की संख्या—61
386. भाषाविज्ञान की दृष्टि से संस्कृत के आधुनिक विद्वान्—भोलाशङ्कर व्यास
387. भारत में बोली जाने वाली कुल बोलियाँ—लगभग 1650
388. अथर्ववेद के अंग्रेजी अनुवादक—ह्विट्टनी
389. राजानक रुय्यक के ग्रन्थ का नाम—अलंकार सर्वस्व
390. रुय्यककृत अर्थालंकार सर्वस्व के टीकाकार—केशव मिश्र
391. हीनयान सम्प्रदाय का प्राचीनतम अवदान ग्रन्थ—अवदानशतकम्
392. 'अवधूतगीता' को प्रमाण मानने वाला सम्प्रदाय—नाथ
393. 'अष्ट-महाश्रीचैतन्यस्तोत्र' के रचयिता—हर्षवर्द्धन

394. वर्णसमाम्नाय के प्रत्याहार सूत्रों की संख्या—14
395. पाणिनिकृत अष्टाध्यायी की सूत्र संख्या—3981
395A.'गीतगोविन्द' का श्रवण किए बिना अन्नग्रहण न करने वाला राजा—उत्कल नरेश कामदेव
396. 'तर्कपुंगव' की उपाधि से अलंकृत आचार्य—दिङ्नागाचार्य
397. भास्कराचार्य की विदुषी कन्या—लीलावती
398. हेमचन्द्र सूरि की उपाधि—कलिकाल सर्वज्ञ
399. तैत्तिरीय-संहिता के पदपाठकार—आत्रेय
400. विष्णुधमोत्तर पुराण में अध्यायों की संख्या—807
401. वाल्मीकि को विष्णु का अवतार माननेवाला पुराण—विष्णुधर्मोत्तर
402. दशलक्षणी पुराण—श्रीमद्भागवत
403. प्राचीनतम महापुराण—वायुपुराण
404. कृष्णप्रिया राधा का उल्लेखकर्ता पुराण—ब्रह्मवैवर्त पुराण
405. श्रीमद्भागवत पुराण के संवादक—शुक-परीक्षित
406. 'हंसगीता' को अन्तर्भूत करने वाला ग्रन्थ—विष्णुधर्मोत्तर पुराण
407. कच द्वारा शुक्राचार्य से प्राप्त की गयी विद्या—संजीवनी
408. चन्द्रमा को एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र में जाने में लगने वाला समय—60 घटी
409. सूर्य को एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र में प्रविष्ट होने में समय लगता है—13 दिन
410. राशिचक्र के अन्तर्गत आने वाले नक्षत्रों की संख्या—27
411. चन्द्रमा की सम्पूर्ण कलाएं—सोलह
412. धर्मशास्त्रों में विधर्मीय-विवाह विषयक विचार—नहीं हैं
413. चित्रकला एवं पाककला का विवरण देने वाला एकमात्र पुराण—विष्णुधर्मोत्तर
414. चौबीस जैन पुराणों में सर्वाधिक प्रसिद्ध—आदिपुराण
415. आदिपुराण के रचयिता—जिनसेन
416. ऋषभदेव विषयक पुराण—आदिपुराण
417. कामसूत्रकार वात्स्यायन का मूलनाम—मल्लनाग
418. छेक, वृत्ति, श्रुति, अन्त्य और लाट से सम्बद्ध अलंकार—अनुप्रास
419. चम्पू काव्यों में सबसे बड़ा काव्य—आनन्दवृन्दावनचम्पू
420. 'आनन्दवृन्दावनचम्पू' के लेखक—कविकर्णपूर
421. ऋग्वेद से सम्बन्धित ऋत्विक् विशेष—होता
422. 'सर्वज्ञानमयो हि सः'—मनु
423. 'अरेबियन नाइट्स' के संस्कृत अनुवादक—जगद्बन्धु
424. ज्योतिष विषयक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ आर्यभटीय का अपरनाम—आर्यसिद्धान्त
425. हालकवि कृत प्राकृतकाव्य 'सत्तसई' के संस्कृत रूपान्तरकार—गोवर्धनाचार्य
426. ऋग्वेद की उपलब्ध शाखा का नाम—शाकलसंहिता
427. 'इन्दुमती-परिणय' के लेखक—शिवाजी महाराज (19वीं शदी)
428. कश्मीरी शैवसम्प्रदाय का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—ईश्वरप्रत्यभिज्ञा

●

429. 'सर्पसत्र' करने वाले पौराणिक राजा—महाराज जनमेजय
430. जैनमतानुसार भगवान् श्रीकृष्ण के गुरु—तीर्थंकर नेमिनाथ
431. समुद्रपर्यटन के कारण परधर्म में प्रवेशित हिन्दुओं के स्वधर्म प्रवेश को बतलाने वाला ग्रन्थ—उद्धारचन्द्रिका
432. 'उद्धारचन्द्रिका' के लेखक—काशीचन्द्र
433. ऋग्वेद की कुल शंब्दसंख्या—एक लाख तिरपन हजार आठ सौ बत्तीस
434. ऋग्वेद की कुल अक्षर संख्या—चार लाख बत्तीस हजार
435. आक्सफोर्ड में प्रकाशित ऐतरेय आरण्यक के अंग्रेजी अनुवादक—ए.बी. कीथ
436. एक सौ अट्ठाइस अर्थों की निष्पत्ति वाला एक मात्र श्लोक—चारलुकृत 'कंकणबंधरामायण' का
437. 'रथरूपक' को उपस्थापित करने वाला उपनिषद्—कठोपनिषद्
438. 'कथासरित्सागर' में तरंगों की संख्या—124
439. स्वातन्त्र्यवीर सावरकर कृत 'कमलाकाव्य' के अनुवादक—ग.बा. पळसुले
440. 'तिलकयशोर्णव' के लेखक व बिहारप्रान्त के राज्यपाल—लोकनायकबापूजी अणे
441. 'गांधीसूक्तिमुक्तावली' के लेखक—श्री चिंतामणराव देशमुख
442. अमरकोश की अंग्रेजी व्याख्या लिखने वाला विद्वान्—चिंतामणराव देशमुख
443. अंग्रेजी शासनकाल में संस्कृत का सर्वाधिक प्रचार करने वाली संस्था—आर्यसमाज
444. 'हरि' शब्द के सोलह अर्थों को बतलाने वाला कोश—अमरकोश
445. पंचांग विषयक 'कल्पलता' ग्रन्थ के प्रणेता—सोम दैवज्ञ
446. गुप्तकालीन बौद्ध समाज में प्रचलित व्याकरण—कातन्त्र व्याकरण
447. श्रीशङ्कराचार्य के तत्त्वज्ञान का आधार—विवर्तवाद
448. पन्द्रह वर्ष की अवस्था में 'कंसवधम्' नाटक के लेखक—सिद्धान्तवागीश
449. जयशङ्कर प्रसाद कृत सुप्रसिद्ध कामायनी के संस्कृतअनुवादक—भगवद्दत्त
450. भगवद्गीता के 18वें अध्याय की संज्ञा—एकाध्यायी गीता
451. समस्यापूर्ति का ही प्रकाशन करने वाली मासिक पत्रिका—काव्यकादम्बिनी
452. 'औचित्य-विचारचर्चा' के लेखक—क्षेमेन्द्र
453. शांत को ही सर्वश्रेष्ठ रस मानने वाले आचार्य—भट्टतौत
454. 'काव्यमीमांसा' के लेखक—राजशेखर
455. दण्डी के काव्यादर्श का जर्मन अनुवादकर्ता विद्वान्—बोथलिंग
456. वाग्भटकृत 'काव्यानुशासन' में काव्यदोषों की संख्या—30
457. काव्यशास्त्र का स्वतन्त्र रूप से विचार करने वाला प्रथम ग्रन्थकार—भामह
458. 'काव्यालंकार' के लेखक—आचार्य रुद्रट
459. 'काव्यालंकार सारसंग्रह' के लेखक—आचार्य उद्भट
460. संस्कृत व्याकरण में धातुओं के विभाग का आधार—दश गण
461. व्याकरणशास्त्र में 'न्यासकार' उपाधि से प्रसिद्ध—जिनेन्द्रबुद्धि
462. उदयनाचार्य कृत 'किरणावली' ग्रन्थ का विषयविशेष—न्यायशास्त्र
463. विश्वनाथतर्कपञ्चानन कृत 'कारिकावली' ग्रन्थ का विषयविशेष—न्यायवैशेषिक
464. 'किरातार्जुनीयम्' काव्य की सर्गसंख्या/लेखक—18/भारवि

465. 'लक्ष्मीपदांक' उपाधि वाला महाकाव्य—किरातार्जुनीयम्
466. भारवि की वाणी को 'नारिकेलफल' की उपमा देने वाला विद्वान्—मल्लिनाथ
467. 'कुट्टनीमतम्' के लेखक कश्मीर नरेश जयापीड के प्रधानमंत्री—दामोदरगुप्त
468. अप्पयदीक्षित कृत कुवलयान्द में विवेचित अलंकारों की संख्या—123
469. जयदेवकृत 'चन्द्रालोक' से प्रभावित ग्रन्थ—कुवलयानन्द
470. वर्तमान 'कूर्मपुराण' की श्लोक संख्या—छः हजार (6000)
471. 'व्यासगीता' को अन्तर्भूत करने वाला पुराण—कूर्मपुराण
472. 'कृत्यकल्पतरु' के लेखक व कन्नौज के न्यायाधीश—लक्ष्मीधर
473. कृष्णयजुर्वेद के प्रथम आचार्य—वैशम्पायन
474. पातञ्जलमहाभाष्य के अनुसार यजुर्वेद की शाखाएं—101
475. 'उमाहेमवती आख्यान-विषयक उपनिषद्—केनोपनिषद्
476. 'कोकिलसंदेश' के रचयिता—उद्दण्ड कवि
477. कौटिल्य-अर्थशास्त्र में अधिकरणों की संख्या—15
478. कौटिल्य-अर्थशास्त्र में अध्यायों की संख्या—150
479. चाणक्यसूत्रों की कुल संख्या—571
480. आगमों की कुल संख्या—64
481. गरुडपुराण के दोनों खण्डों की कुल अध्याय संख्या—264
482. तमिलभाषीय 'रमणगीता' के संस्कृतअनुवादक—वशिष्ठ गणपति मुनि
483. बौद्धों के वज्रयान सम्प्रदाय का प्रमाणभूत तान्त्रिकग्रन्थ—गुह्यसमाजतन्त्र
484. 'चैतन्यप्रभु' को विष्णु का अवतार बतलाने वाला ग्रन्थ—गूढावतार
485. वाल्मीकीय रामायण और अध्यात्मरामायण के टीकाकार—रामवर्मा
486. 'साहित्य-संगीत-कला-विहीनः' से सम्बद्ध—भर्तृहरि
487. महाभारत का अन्तिमपर्व—स्वर्गारोहणपर्व
488. सुप्रसिद्ध शकुन्तलोपाख्यान विषयक महाभारत का पर्व—आदिपर्व
489. वह ग्रन्थ जिसका खिलभाग हरिवंशपुराण है—महाभारत
490. महाभारत की सर्वमान्य टीका व लेखक—भारतभावदीप/नीलकण्ठ चतुर्धर
491. 'श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः' से कालिदास ने जिसका संकेत किया है—वाल्मीकि
492. 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'—मनु
493. महर्षि पाणिनि का निवासस्थान—शालातुर
494. 'रघुवंशम्' के अन्तिम व 19वें सर्ग से सम्बद्ध राजा—अग्निवर्ण
495. बुद्धचरितम् की कुल सर्गसंख्या—28
496. आर्यशूर की जातकमाला में जातकों की संख्या—34
497. 'किरातार्जुनीयम्' का चित्रकाव्यमय सर्ग—15वाँ सर्ग
498. भारवि का कवित्वविषयक प्रसिद्धगुण—अर्थगौरव
499. श्रीलंकानिवासी 'जानकीहरणम्' के लेखक—कुमारदास
500. शिशुपालवधम्महाकाव्य की सर्ग संख्या—20
501. सोड्ढवल की 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के अनुसार 'सर्वेश्वर' उपाधि सम्पन्न—बाणभट्ट

502. योगवाशिष्ठसार तथा कादम्बरीकथासार के लेखक—अभिनन्द
503. बालभारत के रचयिता—अमरचन्द्रसूरि
504. 'हयग्रीववधम्' काव्य के प्रणेता—भर्तृमेण्ठ
505. रत्नाकर विरचित 'हरविजयम्' की सर्ग संख्या—50
506. 'कॉस्यताल' की उपाधि से विभूषित कवि—रत्नाकर
507. 'हरविजयम्' की श्लोक-संख्या है—4321
508. शिवस्वामी कृत 'कफ्फिणाभ्युदय' काव्य की अपरसंज्ञा—शिवाङ्क
509. 'शारदादेश' से सम्बोधित प्रदेश विशेष—कश्मीर
510. संस्कृतसाहित्य में 'हास्य' के धरातल पर सर्वश्रेष्ठ लेखक—क्षेमेन्द्र
511. मंखक के 'श्रीकण्ठचरितम्' का विषय—शङ्कर द्वारा त्रिपुरासुरसंहार
512. मंखक के गुरु—आचार्य रुय्यक
513. 'श्रीकण्ठचरितम्' की कुल सर्ग संख्या—25
514. श्रीहर्ष के 'खण्डनखण्डखाद्य' के खण्डन का विषय—उदयनाचार्य सम्मत सिद्धान्त
515. 'नरनारायणानन्दमहाकाव्यम्' के रचयिता—वस्तुपाल
516. 'नरनारायणान्दम्' का प्रतिपाद्य विषय—अर्जुनसुभद्रा-विवाह
517. जैनविद्वानों में अग्रगण्य संस्कृत-कवि—समन्तभद्र
518. 'वरांगचरितम्' के लेखक व सर्गों की संख्या—जटासिंहनन्दी/31 सर्ग
519. जैनधर्म के शलाकापुरुषों की कुल संख्या—63
520. जैनों के त्रिषष्ठिशलाकापुरुषों में चक्रवर्तियों की संख्या—12
521. 'शान्तिनाथचरितम्' तथा 'वर्धमानचरितम्' के रचनाकार—असंग
522. जैनसम्प्रदाय के 23वें तीर्थंकर—पार्श्वनाथ
523. 'त्रिषष्ठिशलाकापुरूषचरितम्' के रचनाकार—हेमचन्द्र
524. संस्कृतसाहित्य का प्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य—पद्मगुप्तकृत 'नवसाहसांकचरितम्'
525. 'नवसाहसाङ्कचरितम्' के नायक—मुंज के अनुज सिंधुराज
526. 'परिमल' उपाधि से अलंकृत—पद्मगुप्त
527. वह ग्रन्थ जिसमें कल्हण ने कश्मीर की ऐतिहासिक झाँकी खींची है–राजतरंगिणी
528. 'राजतरंगिणी' का मुख्य रस—शान्त
529. गुजरात के चालुक्य राजाओं के वर्णन से सम्बद्ध काव्य/कवि—कुमारपालचरितम्/हेमचन्द्र
530. चौहानवंश से सम्बद्ध ऐतिहासिक काव्य/कवि—हंम्मीरमहाकाव्य/नयचन्द्रसूरि
531. प्राकृत महाकाव्य 'गउडवहो' के रचयिता—वाक्पतिराज
532. दामोदरगुप्त के 'कुट्टनीमतम्' में आर्याओं की संख्या—1059
533. क्षेमेन्द्र के आठ काव्यों में सबसे बड़ा काव्य—कलाविलास
534. 'कलिविडम्बनम्' काव्य के रचयिता—नीलकण्ठ दीक्षित
535. 'शान्तिशतकम्' के रचयिता—शिल्हण
536. पाणिनीय-धातुपाठ में धातुओं की कुलसंख्या—1944
537. मल्लिनाथकृत काव्य—रघुवीरचरितम्
538. प्रसिद्ध टीकाकार कोलाचल मल्लिनाथ का निवास क्षेत्र—आन्ध्रप्रदेश

539. 'सप्तसन्धान' महाकाव्य के लेखक—मेघविजय
540. संस्कृतसाहित्य का प्राचीनतम् सूक्तिसंग्रह ग्रन्थ—सुभाषितरत्नकोष
541. सुभाषितों का महत्तम संग्रह ग्रन्थ—सुभाषितरत्नभाण्डागारम्
542. दक्षिणभारत का सर्वाधिक लोकप्रिय स्तोत्र—नारायणीयम्
543. संस्कृतसाहित्य में अहङ्कारपूर्ण गर्वोक्तियों के लिए प्रसिद्ध—पण्डित जगन्नाथ
544. 'चौरपञ्चाशिका' के रचनाकार—विल्हण
545. 'जाम्ववतीकल्याणम्' के रचयिता (विजयनगर नरेश)—कृष्णदेवराय
546. 'प्रतीकनाटकों में प्रथम—प्रबोधचन्द्रोदयम्'
547. महालिंगशास्त्री का वह ग्रन्थ जो शेक्सपीयर के मैकवेथ का अनुवाद है—जीवयात्रा
548. आनन्दरायमखी कृत नाटक 'जीवानन्दम्' का विषय—आयुर्वेद
549. सम्मोहनतन्त्र के अनुसार वैष्णवतन्त्रों की संख्या—75
550. महाभारत वनपर्व में यक्षप्रश्नों की संख्या—72
551. सम्पूर्ण तान्त्रिक-वाङ्मय में सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ—तन्त्रालोक
552. तन्त्रालोक के लेखक—अभिनवगुप्त
553. सर्वप्रथम यज्ञोपवीत का निर्देश करने वाला ग्रन्थ—तैत्तिरीय आरण्यक
554. 'दुर्जनमुखचपेटिका' के रचनाकार—गंगाधरभट्ट
555. 'देवीपुराण' के वक्ता ऋषि—वशिष्ठ
556. देवीभागवत के सातवें स्कन्द के नवें अध्याय में लिखित गीता—देवीगीता
557. दुर्गासप्तशती को अन्तर्भूत करने वाला पुराणग्रन्थ—मार्कण्डेय पुराण
558. दुर्गासप्तशती के वक्ता—सुमेधा ऋषि
559. धातुपाठविषयक सायणाचार्यकृत ग्रन्थ का नाम—धातुवृत्तिसुधानिधि
560. 'पञ्चतन्त्रसम्मत' कुल कथाओं की संख्या—87
561. पञ्चतन्त्र के रचनाकार व विषय—विष्णुशर्मा/राजनीति
562. आधुनिकचिकित्साशास्त्रविषयक गंगाधरकविराज के ग्रन्थ का नाम—पंचनिदानम्
563. 'पदार्थधर्मसंग्रह' के रचनाकार—प्रशस्तपादाचार्य
564. नागेशभट्टकृत 'परिभाषेन्दुशेखर' कुल परिभाषाओं की संख्या—130
565. छन्दशास्त्र में 8 गणों की पद्धति के प्रवर्तक—आचार्य पिंगल
566. सबसे बड़ा उपनिषद् ग्रन्थ—बृहदारण्यकोपनिषद्
567. बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रधानतत्त्वज्ञ—याज्ञवल्क्य
568. छः वेदाङ्गों के अतिरिक्त वेदविषयक जानकारी देने वाला श्रेष्ठ ग्रन्थ—बृहद्देवता
569. 'भुशुंडी रामायण' का विषय—श्रीरामचन्द्र की रासलीला
570. विष्णुपुराण के अनुसार अन्तिमपुराण—ब्रह्माण्ड़पुराण
571. ब्रह्माण्डपुराण की अध्याय संख्या—109
572. काव्यप्रकाश की कुल कारिकाएं—142
573. भविष्यपुराण में पर्वों की कुल संख्या—5
574. श्रीमद्भागवत के वर्तमान अध्यायों की संख्या—335

575. भुशुंडिरामायण के खण्ड/अध्याय/श्लोक/आधार—4/483/36000/श्रीमद्भागवत
576. पातञ्जल-महाभाष्य के आह्निकों की कुल संख्या—85
577. पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के सूत्रों की कुल संख्या—3981
578. जैमिनिकृत मीमांसा सूत्रों की कुल संख्या—2644
579. 'मीमांसासूत्र' का अपरनाम—द्वादशलक्षणी
580. 'मुग्धबोध' व्याकरण के लेखक—बोपदेव
581. 'मृडानीतन्त्र' की विशेष शिक्षा—सोना बनाने की प्रक्रिया
582. यजुर्वेद से सम्बद्ध ऋत्विक्—अध्वर्यु
583. शुक्लयजुर्वेद के अध्यायों की संख्या—40
584. 'द्वादशविद्याधिपति' की उपाधि से विभूषित—वादिराजसूरि
585. योगवाशिष्ठ की श्लोक संख्या—32 हजार
586. भारतीय रसायनशास्त्र का विवेचक ग्रन्थ/ग्रन्थकार—रसजलनिधि/विश्वेश्वर पाण्डेय
587. नागार्जुन के रसविद्या विषयक ग्रन्थ का नाम—रसेन्द्र मंगल
588. रामचरितमानस के संस्कृत रूपान्तर कार—तिरुवेंकटाचार्य
589. श्रीरामरक्षा स्तोत्र की कुल श्लोक संख्या—40
590. वाल्मीकिरामायण की अपरसंज्ञा—'चतुर्विंशतिसाहस्त्री-संहिता'
591. वाल्मीकिरामायण के काण्ड/सर्ग/श्लोक—7/645/24000
592. भट्टिकाव्य 'रावणवधम्' के 22 सर्गों की कुल श्लोक संख्या—3600
593. रुद्राध्याय के 'नमक' और 'चमक' में प्रत्येक में अनुवाक संख्या—ग्यारह
594. 'लिंगपुराण' में अध्यायों की संख्या व शिव के अवतार—163/28
595. कुन्तककृत 'वक्रोक्तिजीवित' में कारिकाओं की कुल संख्या—165
596. 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' के लेखक—महाकवि विल्हण
597. 'दशकुमारचरितम्' के सप्तम्-उच्छ्वास की विशेषता—निरोष्ठ्यवर्ण हैं
598. कणादकृत वैशेषिक सूत्रों की संख्या—270
599. सुरेश्वरकृत आयुर्वेदीय वनस्पतिकोश का नाम—शब्दप्रदीप
600. 'शब्दानुशासन' के रचयिता बौद्ध विद्वान्—चन्द्रगोमी
601. 'श्र्यंक' उपाधि वाला महाकाव्य—शिशुपालवधम्
602. सबसे बड़ा व प्राचीन शुल्बसूत्र—बोधायन (525 सूत्र)
603. 'शून्यतासप्तति' के रचयिता—नागार्जुन
604. महाभारत के शांतिपर्व में उल्लिखित गीता—हंसगीता
605. रामचरित मानस के संस्कृत पद्यानुवाद कर्ता/कृति—डॉ. जनार्दन गंगाधर रटाटे/मानस-भारती
606. भावनाषोडशी (कवितासंग्रहः) के रचयिता—डॉ. जनार्दन गंगाधर रटाटे

परिशिष्ट (घ)

परीक्षा-प्रारूप निर्धारण हेतु नमूने के प्रश्न

तृतीय प्रश्न-पत्र. जून–1994

समय—$2\frac{1}{4}$ घंटे पूर्णांक–200

महत्त्वपूर्ण-निर्देश (Important Instructions) :—

1. प्रश्नों के उत्तर को संस्कृत या हिन्दी या आँग्लभाषा में लिखिए ।
2. संस्कृत के सभी उद्धरणों को देवनागरी लिपि या रोमन लिपि में लिखिए ।
3. प्रत्येक समूह (Group) में कुल 10 प्रश्न हैं और प्रत्येक प्रश्न के 20 अंक हैं । कुल 10 प्रश्नों के उत्तर दीजिए । सभी प्रश्न एक ही समूह (Group) से होने चाहिए ।

वर्ग (Group) I. वेद

1. 'पुरुषसूक्त' के आधार पर सृष्टि-प्रक्रिया (Process of creation) को समझाइए ।
2. 'शिवसंकल्पसूक्त' के आधार पर मानव-मन (Human mind) का स्वरूप निर्धारित कीजिए ।
3. ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य वर्ण्यविषय (Subject-matter) क्या है ?
4. क्या 'शुनःशेपाख्यान' यज्ञों में मानव हिंसा (Human-sacrifice) को सूचित करता है ?
5. 'उपसर्ग' और 'निपात' का भेद समझाइए ।
6. 'ऊष्माक्षर' और 'अघोष' वर्णों का भेद बतलाइए ।
7. निर्वचनं (Etymology) के सामान्य सिद्धान्तों को समझाइए ।
8. यास्क के मतानुसार निर्वचन (Etymology) कीजिए ।
   (A) अश्व (B) वैश्वानर (C) गौः (D) आदित्य
9. क्या ब्राह्मण ग्रन्थों को वेदों का भाष्य (Commentary) कहा जा सकता है ?
10. विष्णु की विशेषताएँ बतलाइए ।

वर्ग (Group) II. दर्शन

1. अनुमान के प्रकार भेद क्या हैं ?
2. 'सत्कार्यवाद' पर एक निबन्ध लिखिए ।
3. पातञ्जलसूत्रानुसार 'योग' का लक्षण बतलाइए ।
4. 'अष्टांगयोग' के अन्तिम तीन अंगों का विवरण दीजिए ।
5. शांकरमतानुसार 'शास्त्रयोनित्वात्' सूत्र की व्याख्या कीजिए ।
6. अज्ञान के स्वरूप की चर्चा कीजिए ।
7. सांख्य के प्रकृतिकारणवाद का खण्डन कीजिए ।

8. नैयायिकों के मतानुसार ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण क्या हैं ?
9. सविकल्पप्रत्यक्ष और निर्विकल्पप्रत्यक्ष का भेद समझाइए ।
10. 'शाब्दबोध-प्रक्रिया' की चर्चा कीजिए ।

वर्ग (Group) III. काव्यशास्त्र

1. आचार्य मम्मट के अनुसार 'काव्यलक्षण' की व्याख्या कीजिए ।
2. आचार्य मम्मट के अनुसार 'काव्यहेतु' की व्याख्या कीजिए ।
3. आचार्य मम्मट के अनुसार 'काव्यप्रयोजन' की व्याख्या कीजिए ।
4. काव्यप्रकाश के अनुसार 'शब्दशक्तियों' का विवरण दीजिए ।
5. लोल्लट और भट्टनायक के मत में 'रससूत्र' की व्याख्या कीजिए ।
6. 'अभिहितान्वयवाद' तथा 'अन्विताभिधानवाद' में अन्तर स्पष्ट कीजिए ।
7. आचार्य मम्मट के अनुसार कुछ 'काव्यदोष' किस प्रकार 'काव्यगुण' बन जाते हैं ?
8. निम्नलिखित अलंकारों में अन्तर स्पष्ट कीजिए—
   (A) रूपक/उत्प्रेक्षा (B) अतिशयोक्ति/समासोक्ति (C) विभावना/विशेषोक्ति
9. 'ध्वनि' का 'लक्षण' और उसके मुख्य 'भेदों' को बतलाइए ।
10. "भाक्तमाहुस्तमन्ये"—इस कथन की व्याख्या कीजिए ।

नोट (Note)—समस्त प्रश्नों के उत्तर इस पुस्तक में यथा स्थान दिए गए हैं; उन्हें देखने का कष्ट करें ।